तब समुद्र ने हाथ जोड कर कहा कि 'मेरे[१] उत्तर तट पर आभीर आदि म उन का स्पर्श नहीं चाहता, आप अपने बाण को उस स्थल पर फेंक कर करें। रामचन्द्र ने समुद्र के कथनानुसार उस बाण को उस स्थल पर गिराया जिससे समुद्र का जल शुष्क होकर निरा जंगल हो गया और वह स्थल 'मरुकान्तार' इस नाम से पृथ्वी में प्रख्यात हुआ। जहां वह वज्र के सदृश रामचन्द्र का बाण गिरा वह पृथ्वी गूंजने लगी। और उस बाण विद्ध भूमि में जो छिद्र हुआ उस में से रसातल से पानी उबकने लगा। और उस छिद्र का नाम व्रणकूप प्रसिद्ध हुआ। जिसमे से जल सदा अविच्छिन्न बहता रहता है।"

हम अनुमान करते है कि यह व्रणकूप मारवाड के बीलाड़ा गांव की 'बाणगंगा' ही होना चाहिये। क्योंकि उसमें से सदा जल अविच्छिन्न बहता रहता है। कभी वह बन्द नहीं होता। बल्कि उस जल से आगे जाकर नदी बन जाती है। और उस स्थान पर किसी शिल्प निपुण सूत्रधार ने एक कुण्ड ऐसा समान सूत्र से बनाया है कि इस बहते हुए जल की मोरी में से तीन धारा हो जाती है जिन मे से जल ऐसा तुला हुआ सम रूप से निकलता है कि मोरी के पास कुण्ड में तीन तृण डाल दो तो एक तृण एक ओर, दूसरा दूसरी ओर और तीसरा तृण तीसरी धारा की ओर स्वयं बह कर चला जाता है। कभी दो तृण एक साथ एक धारा मे नही जाते। जिस से जल के न्यूनाधिक मिलने के विषय में कभी विवाद होने का संभव ही नहीं।

रामचन्द्र ने उस देश को वर[२] देते हुए यह कहा कि 'इस देश में रोग अल्प

---

१ 'उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतरो मम।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान्॥ २९॥
उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः।
आभीरप्रमुखा पापा पिबन्ति सलिलं मम॥ ३०॥
तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः।
अमोघः क्रियतां राम! अयं तव शरोत्तमः॥ ३१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः।
मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात्॥ ३२॥
तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम्।
निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः॥ ३३॥
ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता।
तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपात रसातलात्॥ ३४॥
स बभूव तदा कूपो व्रण इत्येव विश्रुत।
सततं चाक्षितं तोयं समुद्रस्येव दृश्यते॥ ३५॥
२ "वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽमरविक्रमः।
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः॥

होवेंगे। फल और मूल स्वादिष्ट होवेंगे। यह देश गाय-भैंस आदि पशुओं के लिये हितकारी होवेगा। इस मे दूध और घृत बहुत होवेगा और नाना प्रकार का अन्न उत्पन्न होवेगा, उस में सुगन्धी रहेगी।'

मारवाड़ में अभी तक ऐसी प्रसिद्धि भी है कि पहले यहां 'हाकड़ा' समुद्र था। उसके तट पर ईख की खेती बहुतायत से होती थी। उस के चिन्ह पत्थर के कोल्हू ठौर ठौर अब तक इस देश मे विद्यमान है।

आधुनिक यूरोपीय विद्वानों ने भी पूर्ण शोध करके यहीं निश्चय किया है कि प्रथम इस मरुस्थल की जगह समुद्र था। इम्पीरियल गेजेटियर की प्रथम जिल्द के प्रथम पृष्ठ मे यह लिखा है—"सब से पुरातन समय मे अरावली (अर्बुद) पर्वत समुद्र के किनारे पर था, जहां इस समय राजपूताना प्रान्त है।' (पृष्ठ ३३) फिर यह लिखा है कि 'राजपूताने में जो वालू है वह समुद्र के तल का है और (पृष्ठ ७६) उस समुद्र के समय का दिग्दर्शन करते हुए यह लिखा है कि 'जुरासिक के समय में यही राजपूताना वाला समुद्र दक्षिण में नर्मदा तक पहुंचा हुआ था। जिस के विषय मे अनुमान किया जाता है कि वह समय साठ लाख वर्ष पूर्व होना चाहिये। और रामचन्द्र को हुए पुराणों के हिसाब से पन्द्रह[1] लाख के अनुमान वर्ष होते हैं जिस समय मे समुद्र का शुष्क होना लिखा है।

मारवाड़ को 'मुरधर' देश भी कहते हैं। 'मुरधर' शब्द 'मरुधरा' का अपभ्रंश है। मरुधरा अर्थात् मरुस्थल की भूमि।

वर्तमान समय में जोधपुर का राज्य मारवाड़ नाम से प्रसिद्ध है। परतु इस में धन्व देश भी शामिल है। जो मरु देश के दक्षिण और पूर्व दिशा में है। जालोर, जसवंतपुरा, भीनमाल, गोड़वाड़, पाली, सोझत, जैतारण, बीलाड़ा, परबतसर, डीडवाणा आदि का प्रदेश धन्व देश होना चाहिये। पुराणो मे मरु और धन्व देशो का पृथक् उल्लेख है। श्री कृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थ (देहली) से आते जाते तब मरु और धन्व देश उन के मार्ग मे आते थे। इन्द्रप्रस्थ से द्वारका जाते समय पहले मरु[2] देश तदन्तर

बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिविविधौषधिः।
एवमेतैश्च सयुक्तो बहुभि संयुतो मरुः॥ युद्धकाण्ड सर्ग २२॥

१ रामचन्द्रजी का अवतार त्रेता युग के मध्य में माना जाता है। तब त्रेता युग के आधे वर्ष ६४६००० और द्वापर के ८६४००० वर्ष, दोनों का योग १५१०००० होता है। उसमे कलियुग के ५०२८ गत वर्ष मिलाने से आज तक १५१५०२८ वर्ष होते है।

२. अमरकोषकार ने मरुदेश का ही दूसरा नाम धन्व माना है। 'समानौ मरुधन्वानौ' परन्तु श्रीमद्भागवत मे मरु और धन्व का पृथक् निर्देश है। 'मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान्। (स्कन्ध १ अ० १० श्लोक ३५) यदि 'मरु' का पर्यायवाचक 'धन्व' शब्द होता तो उक्त पद्य मे 'मरुधन्व' ऐसे दो शब्द पृथक कहने

मरुदेश गिनाया गया है। इससे पाया जाता है कि सेखावाटी, बीकानेर और न ...
आदि का रेतीला प्रदेश मरु और उस से आगे का पाली, गोड़वाड़, आदि क
प्रदेश धन्व नाम से कहा जाता था। उस से अर्वाचीन काल में धन्व देश गुर्जर देश
माना गया है। चीनी यात्री हुएन्तसंग भीनमाल[1] को गुर्जर देश के अन्तर्गत कहत
हुआ भीनमाल (श्रीमाल) को गुर्जर देश की राजधानी बतलाता है। और प्रतिहा
भोज के संवत् ९०० के ताम्रपत्र में डीडवाणा[2] नगर गुजरात की भूमि में बताय
गया है।

मारवाड देश राजपूताना में पश्चिम दिशा की ओर है। जिसे आबू पहाड़ ...
श्रेणी पर्वत, जिन्हें अरवली (आडावला) कहते हैं मेवाड, सिरोही और पालणपु
के राज्य से विभक्त करते हैं। आडावला के दक्षिण की तर्फ उक्त तीनों राज्य हैं, औ
उत्तर की ओर जोधपुर का राज्य है। यह देश आबू पर्वत के श्रेणी पर्वतों से उत्त
दिशा में ढलता हुआ है। इस देश के ढालुपन की स्थिति को अपने बहाव से दिखात
हुई लूणी नदी आडावला के उत्तरी छोर रूपनाग पहाड से, जो अजमेर के निकट है
निकल कर कच्छ के रन में जा कर गिरती है।

मारवाड देश २४ अंश ३७ कला उत्तर अक्षांश से २७ अंश ४२ कला उत्त
अक्षांश तक और ७० अंश ६ कला पूर्व देशान्तर से ७५ अंश २२ कला पूर्व देशान्त
तक फैला हुआ है। इस का विस्तार राजपूताने के समस्त राज्यों की अपेक्षा अधि
है। इस की लंबाई अधिक से अधिक ईशानकोण से नैऋत कोण तक ३२० मील, औ
चौड़ाई वायव्य कोण से अग्नि कोण तक १७० मील है। जिस का क्षेत्रफल (मी
मुरब्बा) ३५०१६ ज़मीन है। जिस में खालसा ४८३०, और जागीर शासन (दान
दी हुई भूमि) ३०१८६ है। इस समय जोधपुर का राज्य विस्तार और आय
भारतवर्ष के समस्त प्राचीन और प्रसिद्ध राज्यों की अपेक्षा अधिक है। वर्तमान सम
में इस राज्य की आमदनी एक करोड़ पचास लाख है जिसमें रेल, नमक, साय
आदि सब शामिल है।

इस समय मारवाड की सीमा इस प्रकार है। पूर्व में जयपुर और कृष्णगढ़
अग्नि कोण में अजमेर, मेरवाडा और मेवाड़, दक्षिण में सिरोही और पालनपुर

की आवश्यकता नहीं थी। 'मरु' अथवा 'धन्वान' इतना ही कहना पर्याप्त था
परन्तु यहाँ दोनों शब्दों का पृथक् निर्देश है, जिससे स्पष्ट है कि मरु देश ध
देश से भिन्न है। अलबत्ता दोनों पास पास आ गये हैं, इसीलिये उक्त पद्य
'मरुधन्व' ऐसे साथ कहे गये हैं। दूसरा मरु और धन्व देश को पृथक् मान क
ही दोनों देशों का एक बहाव किया गया है। 'मरुध व यह पाठ निर्णयसाग
में मुद्रित पुस्तक का है। हस्तलिखित पुस्तकों में, जो हमारे पास प्राची
प्रतियाँ हैं उनमें, 'मरुधन्वे' ऐसा पाठ है। जिससे दोनों देशों का पृथक् हो
स्पष्ट है।

१. देखो बोम्बे गज़ेटियर जिल्द १ भाग १ पृ० ३।
२. 'महाराज श्रीभोजदेवः गुर्जरत्राभूमौ डेण्डुानक विषय सम्बद्धसिवाग्रामाग्रहारे

श्चिम में कच्छ का रन (समुद्र की खाड़ी) और सिंध , वायव्य कोण में जैसलमेर और उत्तर में बीकानेर का राज्य ।

मारवाड़ का राज्य २१ परगनों में विभक्त है। १ जसवंतपुरा २ जालोर ३ जैतारण ४ जोधपुर ५ डीडवाणा ६ देसूरी ७ नागोर ८ पचपदरा ९ परबतसर १० पाली ११ फलोधी १२ बाहड़मेर १३ बाली १४ बीलाड़ा १५ मेड़ता १६ साचोर १७ सांभर १८ शिव १९ सिवाणा २० शेरगढ़ और २१ सोझत। जिनके अन्तर्गत ४२४१ गांव है, जिनमे खालसा ७७९, मुश्तरका (आधा खालसा और आधा जागीर) ३७, जागीर २०७८, शाशन (दान) ५६३ और भोमीचारा के ७८४ गांव है।

मारवाड़ की कुल जन संख्या (आवादी) सन् १९२१ की मनुष्य गणना (मर्दुम-शुमारी) के अनुसार १८४१६४२ है।

मारवाड़ की राजधानी पहिले मंडोवर थी। जहां पूर्व काल में नागवंशी क्षत्रियों का राज्य होना पाया जाता है। उस के प्रमाण मे यद्यपि उन के शिलालेख आदि नही मिले है, तथापि उन का राज्य होने के प्रमाण मे यह कहना पर्याप्त होगा कि मंडोर के प्रदेश में बहुत से स्थान नागो के नाम से अब तक प्रसिद्ध हैं। जैसे 'नाग-कुण्ड' और उसी कुण्ड के पास जो नदी बहती है वह 'नागादरी' कहलाती है। और भाद्रपद बदि ५ को मंडोवर मे अब भी मेला होता है उसे 'नाग पञ्चमी' का मेला कहते है, जो उन का स्मारक कोई त्योहार का दिन होना चाहिये। इसके सिवा जिस पर्वत मे मंडोवर का क़िला है उस पर्वत का नाम 'भोगिशैल' है। 'भोगि' सर्प अथवा 'नाग' का नाम है। भोगिशैल अर्थात् नागों का पहाड़। भोगिशैल माहात्म्य में यह भी लिखा कि जन्मेजय के सर्पयज्ञ से बचे हुए नाग यहां आकर रहे थे। और नागोर नगर भी नागवंशियों का बसाया हुआ है। नागोर मे लिखी हुई प्राचीन पुस्ककों की इतिश्री के पीछे 'लिखितं नागपुर मध्ये' ऐसा लिखा मिलता है। और संवत् १३७३ के लाडणू के शिलालेख में नागोर के लिये 'नागपत्तन[1]' लिखा है । 'नागपत्तन' अर्थात् नाग वंशियों का शहर।

प्रतीहार बाउक के संवत् ८९४ के शिलालेख मे लिखा है कि बाउक ने मयूर[2] को मारकर विजय प्राप्त किया था। यहां मयूर से मयूर नाम का राजा अथवा मोरी वंश का राजा दोनों का संभव है। जिससे अनुमान किया जाता है कि नागवंशियों के समय में उन के समीप पश्चिम की तरफ़ मोरी वश का राज्य हो। संवत् ८०० के पूर्व चीतोड़ पर मोरि ां का राज्य था ; जिनके अन्तिम राजा मानमोरी को मारकर बापा रावल ने चीतोड़ का राज्य लिया था। संभव है कि मंडोवर के पश्चिम प्रान्त मे भी उस समय मोरियों का राज्य हो। और वहां प्रतिहारो (पड़िहारों) का प्रताप बढ़ने पर

---

१. "सपादलक्षादथनागपत्तनात् प्राचीदिशायां जलवर्जितं पुरम् (ए इं. जि. १२ पृ१७)

२. "धिग्भूतै कैन तस्मिन्प्रकटितयशसा श्रीमता बाउकेन"
स्फूर्जन्हत्वा मयूर तदनु नरमृगा घातिताहेतिनैव ॥ २७॥ (ज. रो. ए. सो. १८९४, पृ ४)

थे पराजित हो कर सिंध की तरफ चले गये हो। मेर जाति मुलतान और सिंध अब तक विद्यमान हैं। वह मुसलमान हो गई है।

संवत् ७०० के आस पास मंडोवर पर प्रतीहारों (पडिहारों) का राज्य होना पाया जाता है। प्रतीहार बाउक का शिलालेख संवत् ८९४ का मिला है। यह बाउक मंडोवर[1] के विजय करने वाले रज्जिल से ग्यारहवां पुरुष था। इतिहास-वेत्ताओं का सिद्धान्त है कि सौ १०० वर्ष में पांच पुरुष गिने जाते है। इस सिद्धान्त के अनुसार १० पुरुष में २०० दो सौ वर्ष हों तो संवत् ७०० के आस पास मंडोवर का प्रतीहारों के हस्तगत होना सिद्ध होता है। इस शिलालेख से यह भी जाना जाता है कि यह मंडोवर का किला पडिहारों ने नहीं बनाया था। किन्तु उन से पहले का बना हुआ था। इन्होंने इस किले का प्राकार[2] (कोट) अवश्य करवाया था। इस नगर का नाम 'माण्डव्यपुर'[3] था जिसका अपभ्रंश मंडोवर अथवा मंडोर है। उस समय मेडता नगर की भी, जो जोधपुर से ४० कोस की दूरी पर है, बडे शहरो में गणना थी, यह नागभट्ट (नाहडराव) की राजधानी थी। प्रतीहारों का प्रताप इतना बढ़ा हुआ था कि वे पश्चिम से पूर्व तक जा पहुँचे थे। कन्नौज भी पडिहारों की राजधानी थी। दिग्विजय करते इन्होंने गौड और वंग (बंगाल) देश को भी जा दबाया था। पश्चिम में काठियावाड़ तक इनकी आज्ञा चलती थी। और मालवा देश भी इनके अधिकार में था।

प्रतिहारों की उत्पत्ति कई तरह से लिखी मिलती है। पृथ्वीराजरासो का कर्त्ता तो उनकी उत्पत्ति अर्बुद पर्वत में वशिष्ठ मुनि के द्वारा अग्निकुण्ड[5] से कहता है। ग्वालियर का शिलालेख है कि प्रतीहार सूर्यवंशी लक्ष्मण के वंशज है। प्रतीहार ना

१-२-३ "श्रीमान्नागभटः कक्को रज्जिलो दद्द एव च ॥ ९ ॥
माण्डव्यपुरदुर्गेऽस्मिन्नेभिर्निजभुजार्जिते।
प्राकारः कारितस्तुङ्गो विद्विषां भीतिवर्द्धन ॥१०॥ (ज. रो. ए. सो. १८९४, पृ०

४. तस्मात्परभटाज्जातः श्रीमान्नागभटः सुतः।
राजधानी स्थिरा यस्य मान्मेडन्तक पुरम् ॥ १२ ॥ (ज. रो. ए. सो. १८९४, पृ

५. तब सुरिण्य वासिष्ट, कुंड रोचन रचितामह,
[illegible] ध्यान जजि होम, मध्य वदी सुर सामह।
तब प्रगट्यो प्रतिहार, राज नि[illegible] ठोर सुधारिय,
पुनि प्रगट्यो चालुक्य, ब्रह्मचारी व्रत धारिय।
पंवार प्रगट्यो चाग्वार, [illegible] परमारधन"।
[illegible]

६. [illegible] मनयमदमुषो मेघनादस्य सङ्ख्ये,
[illegible] प्रतिहारविधेर्य प्रतीहार आसीत् ॥ ३ ॥
तद्वंशे प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे
देवो नागभटः :—

(ज० रो० ए० सो० १८९४ पृ० ४)

प्रख्यात होने का कारण यह बतलाता है कि लक्ष्मण मेघनाद के युद्ध में रामचन्द्र का प्रतीहार हुआ था जिस से उस (प्रतीहार लक्ष्मण) के वंशज प्रतीहार कहलाये। और प्रतीहार वत्सराज के ओसियाँ के संवत १०१३ के शिलालेख मे लिखा है कि प्रतीहार वंश रामचन्द्र[1] से उत्पन्न हुआ। और प्रतीहार बाउक का जोधपुर का संवत ८९४ का शिलालेख प्रतीहार वंश को ब्राह्मण हरिचन्द्र[2] की सन्तान कहता है। उसमें लिखा है कि हरिचन्द्र के दो विवाहिता स्त्रियाँ थी। एक ब्राह्मणी, दूसरी क्षत्रिया। ब्राह्मणी के ब्राह्मण प्रतीहार और क्षत्रिया के क्षत्रिय प्रतीहार हुए। इससे जाना जाता है कि हरिचन्द्र पड़िहार ब्राह्मण होना चाहिये। जिसके वंशज पड़िहार ब्राह्मण भी हुए और क्षत्रिय भी हुए और क्षत्रिया स्त्री का विशेषण 'महाकुलगुणान्विता' दिया है जिससे क्षत्रिया स्त्री किसी राजवंश की होनी चाहिये। इस समय ब्राह्मण क्षत्रिया स्त्री नही व्याह सकता, परन्तु हरिचन्द्र के समय (सं० ७००) तक धर्मशास्त्र की मर्यादा के अनुसार ब्राह्मण का क्षत्रिया के साथ विवाह हो सकता था, यह इससे स्पष्ट है। और आधुनिक शोध करने वाले प्रतीहारों को वाहिर से आने वाली गुर्जर[3] जाति कहते है और जिला कांगड़ा व हुसियारपुर आदि में तखी पड़िहार आवाद हैं, वे अपने तई नागवंशी कहते हैं और मारवाड़ के पडिहार अपने को अग्निवंशी मानते हैं। परन्तु एक बात से मारवाड़ के पड़िहार भी नागवंशी ठहर सकते है। मंडोवर में प्रथम नागवंशियों का राज्य था, यह हम ऊपर दिखा चुके है। उन्ही नागवंशियों की संतान मारवाड़ के पड़िहार हों तो संभव है। बहुत समय हो जाने से अपने नागवंश को तो भूल गये हों, और अग्निवंशी मानने लगे हों। जैसे चाहमान और सोलंकी अपने वास्तविक वंश को भूल कर अपने को अग्निवंशी मानने लगे हैं। पृथ्वीराजरासो का कर्ता चाहमान, पड़िहार, पंवार और सोलंकी इन चारों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से कहता है। परन्तु चाहमानों के शिलालेख और प्राचीन काव्य उनको अग्निवंशी नही कहते। कोई तो उनको सूर्यवंशी और कोई चन्द्रवंशी बतलाते है। इसी तरह सोलंकी भी नवीन शोध के द्वारा अग्निवंश से पृथक् हो गये है। पड़िहारों को भी ग्वालियर का शिलालेख तो सूर्यवंशी और मारवाड़ का एक शिलालेख तो सूर्यवंशी और अन्य शिलालेख ब्राह्मण को संतान बतलाते है। जिस से पड़िहार भी अग्निवंशी नही रहे। केवल परमार अब तक अग्निवंशी माने जाते है।

---

१. तस्या कार्षीत्किल प्रेम्णा लक्ष्मण प्रतिहारताम्।
ततोऽभवत् प्रतीहारवंशो रामसमुद्भव ॥ ५ ॥ (ज-रो-ए-सो-१८९४, पृ ४)

२. बभूव रोहिल्लद्ध्यङ्को वेदशास्त्रार्थपारगः।
द्विजः श्री हरिचन्द्राख्यः प्रजापतिसमो गुरुः ॥ ६ ॥
तेन श्री हरिचन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा।
द्वितीया क्षत्(त्रि) या भद्रा महा कुल गुणान्विता ॥ ७ ॥

३. प्रतीहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्यां येऽभवन् सुताः।
राज्ञी भद्राच यान् सूते ते भूता मधुपायिनः ॥ ८ ॥
(ज-रो. ए सो १८९४ पृ० ४)

उनके शिलालेखों में भी उनको अग्निवंशी लिखा है। आबू पर्वत पर वि लव में सवत् १३७८ की चाहमान तेजसिंह की प्रशस्ति खुदी है उसमें परमार की उत्पत्ति अग्निकुण्ड[1] से लिखी है।

सं० ७०० से तीन सौ ३०० वर्ष तक मंडोवर पर पड़िहारों का राज्य बना रहा। विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में परमारों का प्रताप बढ़ा। उन्होंने मारवाड़ में जहाँ तहाँ अपना अधिकार कर लिया। इसी से मारवाड़ में यह कहावत चली आती है।

"पिरथी तणा पँवार, पिरथी परमारां तणी"

पँवारों में धरणीवराह बड़ा प्रतापी नामी राजा हुआ था। उसने अपने राज्य के ९ नौ विभाग करके भाइयों में राज्य को विभक्त[2] कर दिया था। सामंत को मंडोवर १, सिद्ध को अजमेर २, गजमल को पूगल ३, भाण को लोद्रवा ४, अल्ह और पल्ह दोनों को अर्बुद (आबू) ५, भोज को जालोर ६, जोगराज को धाट ७, हांसू को पारकर ८ दिया और अपने बांट में किराडू९ रखा।

धरणीवराह के समय का कोई शिलालेख या ताम्रपत्र नहीं मिला है, तथापि वक्ष्यमाण प्रमाण से उस का समय संवत् १०४० के आस पास होना चाहिये। हस्तीकुण्डी के राष्ट्रकूट धवल के संवत् १०५३ के बीजापुर के शिलालेख से जाना जाता है कि धरणीवराह अणहिलवाडे के स्वामी सोलंकी मूलराज प्रथम और राष्ट्रकूट धवल के समकालीन था। उस में लिखा[3] है कि मूलराज ने धरणीवराह को उखेड़ दिया, तब वह भागा हुआ राष्ट्रकूट धवल के शरण आया तब शरणागतवत्सल धवल ने मूलराज की परवाह न करके उसे अपने यहां रख लिया। तब मूलराज गुजरात का राजा था। उक्त मूलराज के दानपत्र संवत् १०३० से १०५१ तक के मिले हैं। बीजापुर के शिलालेख में धरणीवराह नाम तो है परन्तु उस का वंश नहीं लिखा

(क्रमशः)

---

१ यस्मिन् वशिष्ठानल कुण्डजन्मा क्षिति क्षितत्राण परः पुरासीत्।
प्रत्यर्थि सार्थोन्मथनात्कृतार्थः क्षिताविह श्रीपरमारनामा ॥ ३ ॥

२ "मंडोवर १ सामंत, हुवो अजमेर २ सिद्धसुव,
गढ पूगल ३ गजमल्ल, हुवो लोद्रवें ४ भाण भुव।
अल्ह पल्ह अरवद ५, भोज राजा जालंधर ६,
जोगराज धर धाट७, हुवो हांसू पारक्कर ८।
नव कोट किराडू९ संजुगत, थिर पँवार हर थपिया।
धरणी वराह धर भाइयां, कोट बांट जूजू किया ॥ १ ॥"

३ यं मूलादुदमूलयद्गुरुबल श्री मूलराजो नृपो,
दर्पान्धो धरणीवराह नृपतिं यद्वद्द्विपः पादपम्।
आयान्तं भुवि कांदिशीकमभिको यस्त शरण्यो दधौ
दंष्ट्रायामिव रूढमूढ महिमा कोलो मही मण्डलम् ॥ (ए. इं. जिल्द १० पृ १७

जससे यह निर्णय नही हो सकता कि यह परमार वंश का था, अथवा किसी अन्य वंश का था। परन्तु धरणीवराह के प्रपौत्र कृष्णराज का संवत् १११७ का शिलालेख[1] भीनमाल मे मिला है उसमे लिखा है कि परमार वंशोद्भव महाराजाधिराज कृष्णराज, धधुक का पुत्र, देवराज का पौत्र। और देवराज का ताम्रपत्र[2] संवत् १०५९ का भीनमाल मे मिला है, जिसका दूसरा नाम महिपाल भी था। संवत् १०९९ के परमार पूर्णपाल के वसंतगढ़ के शिलालेख मे धधुक का पिता महीपाल और उक्त शिलालेख मे धंधुक का पिता देवराज लिखा है जिससे जाना जाता है कि दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं। और वसतगढ़ के शिलालेख से यह भी जाना जाता है कि देवराज का पिता धरणीवराह और पितामह कृष्णराज प्रथम था। उक्त धरणीवराह और बीजापुर के शिलालेख का धरणीवराह समकालिक होने से जाना जाता है कि बीजापुर के शिलालेख का धरणीवराह प्रकृत धरणीवराह ही है, अन्य नहीं।

संवत् १२०० के आस पास मंडोवर पर चाहमानों का अधिकार हो गया था। परन्तु उन का राज्य मंडोवर पर १०० सौ वर्ष के लगभग रहा। नाडोल के राजा चाहमान लक्ष्मण के वंशज रायपाल[3] के पुत्र सहजपाल के टूटे हुए शिलालेख[4] से पाया जाता है कि सहजपाल ने मडोवर पर संवत् १२०० के आस पास अधिकार कर लिया था। और सवत् १३१९ का सूधा म ता का शिलालेख[5] कहता है कि लक्ष्मण के वंशज समरसिंह के पुत्र उदयसिंह का मंडोवर पर कब्जा था। जिस उदयसिंह के शिलालेख संवत् १२६२ से १३०६ तक के मिले हैं। सवत् १२८४ मे बादशाह शमसुद्दीन अलतमश ने मडोवर उदयसिह से ले लिया था। परन्तु फिर मौका पाकर पड़िहारों ने मंडोवर को जा दबाया। उन से फिर संवत् १३५० में जलालुद्दीन ने छीन लिया। परन्तु उस के चले जाने पर फिर पड़िहारों ने अपना कब्जा कर लिया।

मेवाड़ के इतिहास वीरविनोद मे मडोवर को गहलोतों का भी विजय करना लिखा है। उस में लिखा है कि "मडोवर का रईस मोकल पड़ियार पहली अदा-

---

१ "परमारवंशोद्भवो महाराजाधिराजा (जः) श्रीकृष्णराजः श्रीधंधुकसुतः, श्रीमद्देवराज पौत्रः।" (बोम्बे गेजेटियर वो १ भाग १ पृ ४७२)

२ "श्री श्रीमालावस्थित-महाराजाधिराज-श्री देवराज' (अप्रकाशित)

३. रायपाल नाडोल का राजा था। इस के शिलालेख सम्वत् ११८९ से १२०२ तक के मिले हैं।

४ आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया सन् १९०९—१० पृष्ठ

५. "श्री नड्डूल श्री जाबालिपुर-माण्डव्यपुर वाग्भट-मेरु सूराचन्द्र-राट-हड़-खेड राम-सैन्य-श्रीमाल-रत्नपुर-सत्यपुर-प्रभृतिदेशानामयमधिपतिः।"

घनों के कारण रावल कर्णसिंह[१] के कुटुम्बियों पर हमला करता था इस सबब से उक्त रावल का बड़ा बेटा माहप तो आहड में और छोटा राहप अपने आबाद किये हुए सीसोदा ग्राम में रहता था। मोकल पर चढ़ाई करने में माहप की टालाटूल देख कर राहप अपने बाप की इजाजत से मोकल पड़िहार को पकड़ लाया, तब कर्णसिंह ने मोकल पड़िहार से राणा खिताब छीन कर राहप को दिया, और मोकल को राव की पदवी दे कर छोड़ दिया। इस के बाद कर्णसिंह तो चीतोड़ पर हमला करने की हालत में मारा गया और माहप चीतोड़ लेने से नाउम्मेद हो कर डूंगरपुर को चला गया।

और मुहणोत नैणसी मंडोवर का राणा नहीं, मेड़ते का राणा कहता है उसने यह वृत्तान्त इस तरह लिखा है। "रावल करण के दो पुत्र हुए। माहप और राहप। करण ने बड़े बेटे माहप को सेना दे कर मेड़ता नगर में कोई राणा था उस पर भेजा। ग्रीष्म ऋतु थी, कुमार पहाड़ों की ठंडी छाया में झरनों का मौका देख कर वहीं बैठ रहा। सरदारों को घर जाने की आज्ञा दे दी गई। उन से कहा गया कि अभी गर्मी बहुत है। मास दो मास में वृष्टि हो जायगी तब चलेंगे। रावल करण चीतोड़ में बैठा इन्तज़ार करता है परन्तु कुमार का तो कभी पत्र ही नहीं आता है जिनको इस बात की खबर थी वे भी माहप के भय से रावल से कह नहीं सकते थे। रावल जब अत्यन्त आतुर हुआ तब किसी ने कहा कि महाराज कुमार तो ग्रीष्म ऋतु के कारण पहाड़ों की शीतल छाया का सेवन करते हैं। वर्षा होने पर मेड़ते पर जायगे। सरदारों को भी घर जाने की इजाजत दे दी गई है। इसी से उन का पत्र नहीं आता है। रावल यह सुन अत्यन्त आकुल हुआ उसने समझ लिया कि यह कुमार बहादुर नहीं। तब छोटे बेटे राहप को सेना देकर मेड़ते पर रवाना किया। यह पिता की आज्ञा पाते ही मेड़ते पर गया। युद्ध करके राणा को पकड़ लाया। तब करण ने प्रसन्न हो कर राहप को अपना पदाधिकारी किया और मेड़ते के 'राणा' की पदवी छीन कर राहप को दी गई। और माहप को प्रथम की 'रावल' पदवी दे कर डूंगरपुर की तरफ भेज दिया।

कर्नल टॉड साहब का कथन है कि रावल समरसी और सूरजमल दो भाई थे। समरसी का पुत्र करण और करण का माहप हुआ। और समरसी के भाई सूरजमल का पुत्र भरत और भरत का पुत्र राहप था। भरत राज-प्रपञ्च के कारण मेवाड़ से निकाल दिया गया, तब वह सिन्ध में चला गया। वहां के मुसलमान राजा ने उसे 'अरोर' की जागीर दी। जब सोनगरा चौहानों ने चीतोड़ राहलोतों से छीन लिया तब एक भाट अरोर जाकर भरत को वहां से ले आया। भरत के साथ सिन्ध की सेना थी। उसने सोनगरों को पाली के समीप युद्ध में परास्त कर अपने बाप के छोड़े हुए राज्य को पुनः प्राप्त किया।

---

१ वीरविनोद का कर्ता कविराजा श्यामलदास करणसिंह को समरसी के पुत्र रत्नसिंह का भाई बतलाता है और यह भी कहा जाता है कि कोई उसे रत्नसिंह का पुत्र मानते हैं।

कविराजा श्यामलदास और कर्नल टॉड साहिब दोनों माहप और राहप [को] समरसी के वंशज कहते हैं। जिस से माहप और राहप का समय समरसी के [अ]नन्तर मानना पड़ता है। और दोनों के लेखक माहप को डूंगरपुर का संस्थापक [क]हते हैं, जिस से डूंगरपुर के राज्य की स्थापना समरसी के उत्तर काल में सिद्ध [हो]ती है। और समरसी के शिलालेख सम्वत् १३३१ से १३४४ तक के मिले हैं। [औ]र समरसी के समकालीन जिनप्रभसूरि के रचे हुए 'तीर्थकल्प' में समरसी का [स]म्वत् १३५६ तक विद्यमान होना लिखा है। इस हिसाब से माहप का समय विक्रम [क]ी चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध होना चाहिये। जो समय लक्ष्मणसिंह के पौत्र [ह]मीर का होता है। और हमीर राहप से बारहवां पुरुष था, इस लिये कहना पड़ता [है] कि दोनों लेखक भ्रान्ति-सागर में निमग्न रहे। अलबत्ता नैणसी उन से अलग रहा [है]। वह माहप और राहप के पिता करणसिंह को वैरिसिंह का पौत्र और श्रीपुंज[1] [क]ा पुत्र कहता है। नैणसी ने ये नाम महाराणा कुंभा के समय में बने हुए एकलिङ्ग-[म]ाहात्म्य के अनुसार लिखे हैं। उक्त वैरिसिंह के पुत्र विजयसिंह का ताम्रपत्र कड़-[ि]ाल से सम्वत् ११४० का मिला है। नैणसी तो करणसिंह को वैरिसिंह का पौत्र [क]हता है, परन्तु शिलालेख उसे वैरिसिंह से छठा पुरुष कहते हैं :—१ वैरिसिंह २ [व]िजयसिंह ३ अरिसिंह ४ चोड़सिंह ५ विक्रमसिंह ६ रणसिंह। इसी रणसिंह के [स्थ]ान में एकलिङ्ग-माहात्म्य में करणसिंह का नाम लिखा है। और नैणसी भी करण-[स]िंह ही लिखता है। उक्त रणसिंह (करणसिंह) के पौत्र सामन्तसिंह का शिलालेख [डू]ंगरपुर राज्य में सम्वत् १२२८ का मिला है, जिस ने डूंगरपुर राज्य की स्थापना की [थ]ी। उक्त सामन्तसिंह के शिलालेख से जाना जाता है कि डूंगरपुर के राज्य की [स्थ]ापना सम्वत् १२२८ से पहले हो चुकी थी। तब कविराजा श्यामलदास और [क]र्नल टॉड साहिब डूंगरपुर के राज्य की स्थापना समरसी के अनन्तर विक्रम की [च]ौदहवीं शताब्दी के अन्त में बतलाते हैं, वह शिलालेखों से विरुद्ध होने से माननीय [न]हीं हो सकती। क्योंकि वैरिसिंह के पुत्र, रणसिंह (करणसिंह) के पौत्र, सामन्तसिंह [क]ा शिलालेख सम्वत् १२२८ का मिल जाने से रणसिंह का समय सम्वत् १२०० के [आ]स पास सिद्ध होता है। तब उस के पुत्र राहप का समय उस से कुछ ही काल [प]ीछे होना चाहिये। न कि चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध। राहप से उत्तर काल [म]ें होने वाले राणा शाखा के राजाओं की वंशावली शिलालेखों में कहीं देखने में नहीं [आ]ती। केवल एकलिङ्ग माहात्म्य में लिखी मिलती है। और उसी के अनुसार मुह-[ण]ोत नैणसी और मेवाड़ के इतिहास 'वीरविनोद' का कर्ता कविराजा श्यामलदास [ल]िखते हैं। और पण्डित गौरीशङ्कर जी हीराचन्द जी ओझा भी उन्हीं का अनुसरण [क]रते हैं।

राहप के अनन्तर नरपति से आरम्भ कर के लक्ष्मणसिंह के पिता जयसिंह [(]नैणसी जिसका नाम 'अजैसी' कहता है) तक के ६ नौ नाम शिलालेखों में लिखे [न]हीं मिलते, जो राणा कहलाते थे। राणा पदवी के विषय में भी नैणसी तो सेड़ते,

---

१. शिलालेख में श्रीपुंज का नाम नहीं है।

के राणा से, और कविराजा श्यामलदास मंडोवर के राणा से, लेकर राणा पर
राहप को देना लिखते है। परन्तु यह भी यथार्थ नहीं है। 'राणा' पदवी छुट भा
को दी जाती थी। पदाधिकारी 'राजा' अथवा 'राउल' आदि कहलाते थे। और छ
भाई 'राणा' कहलाते थे। और उसी के वंशज भी 'राणा' कहलाते थे। जैसे जोध
राज्य में जसवंतपुरा परगना में लोहियाणा ठिकाने के स्वामी 'राणा' कहलाते
यद्यपि अभी लोहियाणा ठिकाना जोधपुर राज्य की ओर से विध्वस्त कर दिया गय
तथापि उनके विद्यमान वंशज 'राणा' कहलाते हैं। लक्ष्मणसिंह छुट भाई का व
होने से कुंभलगढ़ के संवत् १५१७ के शिलालेख में 'राणा' लिखा गया है। अ
चीतोड़ के स्वामी रणसिंह (करणसिंह) के वंशज समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह
'राउल' लिखे गये हैं। जो राउल शाखा चीतोड़ पर राज्य करती थी। राउल रत्न
के समय में अलाउद्दीन खिलजी ने चीतौड़ पर आक्रमण किया उससे लड़
संवत् १३६० में रत्नसिंह के मारे जाने पर चीतोड़ पर दूसरी 'राणा' शाखा
लक्ष्मणसिंह स्वामी हुआ। वह एक वर्ष पर्यन्त मुसलमानों से लड़ता रहा, अन्त
वह भी सात पुत्रों के साथ मारा गया। और चीतोड़ में मुसलमानों ने अपनी तर्फ
जालोर के सोनगरा चाहमान मालदेव को अध्यक्ष रख दिया। उससे लक्ष्मणसिंह
पौत्र हम्मीर ने चीतौड़ ले लिया। तब से 'राणा' शाखा का अधिकार हुआ, जो
तक चला आता है।

यहां एक प्रश्न यह उठता है कि शिलालेखों का रणसिंह, करणसिंह होने
क्या प्रमाण है? उसका समाधान यह है कि जोधपुर राज्यान्तगत गोडवाड पर
के सादड़ी गांव के समीप 'राणपुर' का जैनमंदिर है, उस में महाराणा कुंभा
संवत् १४९६ का शिलालेख है उस में तथा कुंभलगढ़ की मामादेव की संवत् १५
। महाराणा कुंभा की प्रशस्ति में जिस राजा का नाम रणसिंह लिखा है, उन्हीं म
राणा कुंभा के समय में निर्मित हुए एकलिंगमाहात्म्य में जैत्रसिंह, तेजसिंह, सम
आदि के पूर्वज रणसिंह के स्थान में कर्णसिंह का नाम लिखा है और उसके स
यह भी लिखा है कि कर्ण से दो शाखा फटी। एक रावल, दूसरी राणा१। रा
शाखा में जैत्रसिंह आदि हुए और राणा शाखा में राहप, माहप आदि हुए। औ
उसके साथ यह भी लिखा है कि कर्ण के मरने पर राहप राजा हुआ। पण्डि
गौरीशंकरजी हीराचन्द्जी भी इस कथन को मानते है।

---

१ अथ कर्णभूमिभर्तुः शाखाद्वितयं विभाति भूलोके।
एका राउलनाम्नी राणानाम्नी परा महती ॥ ५० ॥
तत्रापि च [illegible] [illegible] समर [illegible]।
श्रीचित्रकूटदुर्गे [illegible] भूपा ॥ ५१ ॥
अपरस्यां शाखायां माहपराहपमुख्या महीपालाः।
[illegible] ॥ ७० ॥
[illegible] नृपतिः [illegible] मुक्त्वा [illegible] प्राप्ते।
[illegible] पृथिवीपतिराहपो नृप. ॥ ७१ ॥

यद्यपि मेवाड़ की ख्याति पुस्तकों और एकलिंग माहात्म्य में माहप और राहप नाम हैं, परन्तु सिवा एक राजप्रशस्ति के, जो शिलालेखों की अपेक्षा अर्वाचीन है, किसी शिलालेख में माहप और राहप नाम नहीं है। महाराणा के कुंभा के संवत् १५१७ के कुंभलगढ़ के शिलालेख में रणसिंह के पुत्र क्षेमसिंह के साथ महणसिंह का नाम है और उस लेख से यह भी पाया जाता है कि महणसिंह क्षेमसिंह का बड़ा भाई[1] था। शायद उसी का नाम एकलिंग माहात्म्य में माहप और राहप न लिख दिया हो। एकलिंग माहात्म्य में भी आगे जाकर राहप का वर्णन किया है कि दूसरी राणा शाखा में राहप आदि राजा हुए, परन्तु माहप के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। केवल राहप के साथ नाम मात्र का निर्देश कर दिया है जिससे जाना जाता है कि महण को हो कोई माहप और कोई राहप कहने लगे थे। जैसे अभी लिख आये हैं कि शिलालेखों का रणसिंह ही एकलिंग-माहात्म्य में करणसिंह लिखा गया है। और ऐसी गलती लेख-भ्रम से हो सकती है। जैसे 'रण' के पूर्व 'क' लग गया तो 'करण' हो गया। और एकलिंग-माहात्म्य में जो माहप और राहप नाम लिखे गये हैं वे भाटों के कथनानुसार लिखे गये हों, ऐसा जाना जाता है। और भाटों के लेख में ऐसी गलती होना साधारण बात है। क्योंकि वे लोग अक्षर के बहुधा मात्रा नहीं लगाते हैं, जिस से और का और पढ़ा जा सकता है। जैसे बनियों का लिखावट के लिये उदाहरण दिया जाता है। "ककजअजमारगयाटाबर टब्बरसोमरगयरईलजजा" इसको ऐसा भी पढ़ सकते हैं "काकाजी अजमेर गया, टाबर टूबर सामर गया, रुई ली जो जी" और ऐसा भी पढ़ सकते हैं "काकाजो आज मर गया, टाबर टूबर सो मर गया, रोई लीजोजी"। मात्रा के न देने से कितना अनर्थ हो जाता है, इसको प्रत्यक्ष देखिये। और प्रत्येक शब्द के बीच में स्पेश छोड़ना (अन्तर रखना) यह परिपाटी अभी ब्रिटिश गवर्नमेंट के राज्य शासन में अंग्रेज़ी भाषा की देखादेखी शुरू हुई है। इसके बिना भी अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरणार्थ "रोको मत जाने दो" को "रोको, मत जाने दो" भी पढ़ सकते हैं और उससे विपरीति "रोको मत, जाने दो" भी पढ़ सकते हैं। ये दोनों उक्त उदाहरणों में विद्यमान हैं। वही दशा भाटों की है। उस दशा में 'महण' का 'माहप' और 'राहप' पढ़ा जाना कोई असंभव नहीं है। 'ण' और 'प' सदृश होने से किसी ने 'महण' को 'माहप' पढ़ लिया है। और 'म' के बीच की रेखा कम दिखाई देती हो तो 'राहप' भी पढ़ा जा सकता है। शिलालेख में तो महण नाम है, और एकलिंग माहात्म्य में 'माहप राहप' नाम है। जिससे यह भी जाना जाता है कि एकलिंग माहात्म्य चाहे महाराणा कुंभा के समय में बना था, परन्तु वह

---

१ श्री महणसिंह-कनिष्ठभ्रातृ-श्रीक्षेमसिंहस्तत्सूनुः।
सामन्तसिंहनामा भूपतिर्भूतले जातः॥ १४९॥
भ्राता कुमारसिंहोऽभूत्स्वराज्यग्राहिणं परम्।
देशान्निष्कासयामास कीतूसंज्ञं नृपं तु यः॥ १५०॥
स्वीकृतमाघाटपरं गुर्जरनृपतिं प्रसाद्य ......।
येन नृपत्वे लब्धे तदनु श्रीमहणसिंहोऽभूत्॥ १५१॥

पूर्ण खोज होने के पूर्व बना था जिस से उस में भाटो के कथनानुसार 'माहप राहप' नाम लिखे गये हैं और कुभलगढ का सवत् १५१२ का शिलालेख महाराणा कुभा ने पूर्ण शोध करके तैयार करवाया था वह पीछे लिखा गया था, इसलिये उसमें वास्तविक 'महण' लिखा गया। यदि दोनो एक काल में बने होते तो दोनों में नाम एक ही होता भिन्न भिन्न नहीं होते।

कह आये हैं कि सवत् १३५० में मुसलमानो ने मडोवर ले लिया था, परन्तु उनके चले जाने पर ईंदा शाखा के पडिहारो ने फिर अपना दखल कर लिया। फिर जब मुसलमानो की सेना आई तब उसने ईंदों को निकाल कर मडोवर पर अपना थाना रख दिया। सवत् १४१? में मडोवर पर मुसलमानो का कब्जा था, वे राजपूतो के साथ बडी कडाई करते थे। एक समय मुसलमानो को घास की आवश्यकता हुई, तब उन्होंने ईंदा, भायल, आसायच आदि राजपूतो से बेगार मे घास लाने को कहा। ईंदों ने अपने समीपवर्ती राठोड चूंडाजी को, जो रावल मल्लीनाथजी की ओर से सालोडी के थानेदार थे और जिनके पास घोड़े और राजपूतो का अच्छा सग्रह था, कहलाया कि हम मंडोवर लेना चाहते हैं आप हमारे शामिल आ जायँ तो मडोवर ले लें। चूंडाजी ने स्वीकार किया। फिर ईंदा और राठौड़ मिल कर घास के गाडों के बहाने किले मे घुस गये। मुसलमानो को मार कर मडोवर का किला ले लिया। परन्तु उन को इस बात का भय रहा कि यदि मुसलमानो ने पीछा आक्रमण किया तो अपना निर्वाह होना कठिन है। इस बात को विचार कर ईंदों के मुखिया उगमसी के पुत्र रायधवल ने सब भाइयो से परामर्श कर के, उनकी सम्मति लेकर अपनी कन्या राठोड चूंडा को व्याह दी। और यौतक में मडोवर का क़िला भी दे दिया, जिसकी रक्षा करना वे कठिन समझते थे। इस विषय का एक प्राचीन दोहा-सोरठा प्रसिद्ध है :—

"पह ईंदां रौ पाड़, कमधज कदै न पांतरे।
चूंडो चॅवरी चाड़, दियौ मॅडोवर दायजे ॥१॥"

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में मडोवर चूंडाजी के हाथ लगा। चूंडाजी मडोवर के मालिक हुए। और ईंदो ने मडोवर से पश्चिम की तरफ अपना निवास किया वो प्रान्त इस समय ईंदावाटी नाम से प्रसिद्ध है। ईंदा, आसायच, भायल, सोयल आदि आपको चाकरी करते हैं चूंडाजी उनको बडे आदर मान से रखते हैं। इस तरह मडोवर पर राठोडों का राज्य इस भाग्यशाली पुरुष से हुआ।

राठोड वश बहुत प्राचीन है। इस वश का पता अशोक के समय तक चलता है। अशोक के शिलालेखों में 'रास्टिक' (राष्ट्रिक) वश का उल्लेख है। और अशोक का समय ईस्वी सन से पूर्व तृतीय शताब्दी का मध्यभाग माना जाता है। अशोक के समय में यह वश 'रास्टिक' नाम से प्रख्यात था। अशोक के शिलालेख भारतवर्ष के सब प्रान्तों में पाये जाते हैं। उन में से जूनागढ, मानसेरा और शाहबाजगढी के

ालालेखों में 'रास्टिक वंश का उल्लेख है। जूनागढ़ के पांचवें एडिक् (Edict ादेश) में यवन, काम्बोज, गांधार और पेतेनिक तथा 'रास्टिक' (राष्ट्रिक) वंश का देश है :—

'धमाय[1] तस्य च योन-कांबोज-गंधारानं रास्टिक पेतेनिकानं ये चापि अञे परांता'।

वैसे मानसेरा[2] और शाहबाजगढ़ी[3] में भी उक्त विषय होने से जाना जाता कि उस समय 'रास्टिक' (राष्ट्रिक) वश, जो पीछे 'राष्ट्रकूट' नाम से प्रख्यात आ, उन देशों मे अधिक था। और उसकी बलिष्ठ और वीर जातियों में गणना थी। सी 'रास्टिक' शब्द का अपभ्रंश 'रट्ट' शब्द हुआ। जिसको संस्कृत भाषा के विद्वानो 'राष्ट्र' इस रूप मे परिणत कर लिया। तदनन्तर 'राष्ट्र' जाति के मुखिया लोगों ा 'राष्ट्रकूट'[4] कहने लगे। राष्ट्रकूटों का राज्य दक्षिण[5] और उत्तर भारत में प्राचीन ाल से पाया जाता है। उन मे भी दक्षिण के राष्ट्रकूटों का प्रताप चालुक्यों सोलकियों) को विजय करने पर इतना बढ़ गया था कि भारतवर्ष के प्रायः बहुत देश उनके अधिकार मे हो गये थे। दक्षिण मे सेतुबन्धरामेश्वर तक, उत्तर मे पाल, पश्चिम प्रान्त में गुजरात और मालवा, पूर्व में मध्य प्रदेश, विहार, बंगाल और हिमालय पर्यन्त पहुंच गये थे। राष्ट्रकूटो मे दानपत्र उत्तर भारत और दक्षिण

'धर्माय तस्य च यवनकाम्बोजगन्धाराणां रारिटकपेतेनिकानां ये चाप्यन्ये अपरान्ताः' (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स पृ २-३)

मानसेरा बलूचिस्तान के समीप में पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के हजारा ज़िले में है।

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के पेशावर ज़िले की यूसुफजई तहसील मे शाहबाजगढ़ी गाँव है।

कूट, शेखर, तिलक, मुकुट, शार्दूल, महा, इत्यादि शब्द प्रधानता और श्रेष्ठता द्योतन के लिये जोड़े जाते हैं। जैसे राजशेखर, नरशार्दूल, महाराष्ट्र, इत्यादि।

दक्षिण मे शक संवत् ४०० (ई० सन् ४७८ वि० संवत् ५३५) से पूर्व राष्ट्रकूटों का राज्य था। उक्त समय के आस पास चालुक्य जयसिंह ने राष्ट्रकूट कृष्ण के पुत्र इन्द्र को, जिस की सेना मे ८०० हाथी थे, विजय करके चालुक्यो का राज्य स्थापित किया था। वह २७५ वर्ष तक चालुक्यों के करगत रहा। तदनन्तर शक संवत् ६७५ (ई० सन् ७५३ वि० संवत् ८१०) के आस पास राष्ट्रकूट दन्तिदुग ने चालुक्य कीर्तिवर्मा द्वितीय को परास्त करके राष्ट्रकूटों का राज्य दक्षिण मे पुन स्थापित किया। वह शक सवत् ८९५ (ई० सन् ९७३ वि० सवत् १०३०) तक राष्ट्रकूटों के हाथ मे रहा। उसी वर्ष मे चालुक्य तैलप ने अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कक्कल को परास्त करके उसका राज्य छीन लिया। उस से पीछे के दक्षिण के राष्ट्रकूटों का पता नहीं चलता। और उत्तर भारत के राष्ट्रकूटों के विषय में हम अगाड़ी लिखते हैं।

...त दोनों प्रदेशों में मिलते हैं। परन्तु डाक्टर फ्लीट साहब का कथन है कि दक्षिण में राष्ट्रकूट उत्तर भारत से गये थे। उसकी पुष्टि राष्टिक सम्बन्धी अशोक के शिलालेख मानसेरा और शाहबाजगढी में, जो पश्चिमोत्तर प्रान्त में हैं, मिलने से होती है। और जूनागढ का अशोक का शिलालेख भी उसी का पोषण करता है।

उत्तर भारत में राष्ट्रकूटों के कई दानपत्र मिले हैं परन्तु कन्नौज के राठौड़ों (गाहड़वालों) के सिवा, अन्य इतने नहीं मिले हैं कि जिन से दक्षिण के राष्ट्रकूटों की भाँति उनकी शृंखलाबद्ध वंशावली बन जाय। उत्तर भारत में राष्ट्रकूट अभिमन्यु, नन्नराज और नन्दराज के दान पत्र मिले हैं, वे दक्षिण भारत के राष्ट्रकूटों के समग्र शिलालेखों से पुरातन हैं। अभिमन्यु[1] का दान पत्र उंडिक वाटिका में मिला है, वह डाक्टर भाऊदा जी ने छापा है। उस दानपत्र में संवत् नहीं है तथापि डाक्टर भगवानलाल इन्द्र जी ने उसके विषय में पाँचवीं[2] शताब्दी का अनुमान किया है। और डाक्टर फ्लीट साहब उसको ईस्वी सातवीं[3] शताब्दी का बतलाते हैं। और उस में यह प्रमाण देते हैं कि उस की लिपि वल्लभी लेखों से मिलती जुलती है। उस में ये चार नाम हैं :—

१ मानाङ्क
२ देवराज
३ भविष्य
४ अभिमन्यु

मध्य प्रान्त के बेतूल परगने के मुलताई[4] प्रान्त में राष्ट्रकूटों के दो शिलालेख मिले हैं उन में से एक तो तिवरखेड का शक सम्वत् ५५३ (ई० सन् ६३१ वि० सम्वत ६८८) का नन्नराज का है। उस में ये चार नाम हैं :—

१ दुर्गराज
२ गोविन्दराज
३ स्वामिकराज
४ नन्नराज

दूसरा शक सम्वत् ६३१ (ई० सन् ७०९ वि० सम्वत् ७६३) का राजा नन्दराज[5] का है। उस में भी चार नाम हैं :—

१ दुर्गराज
२ गोविन्दराज
३ स्वामिकराज
४ नन्दराज

दुर्गराज आदि तीन नाम तो दोनों शिलालेखों में समान हैं। चौथा नाम प्रथम शिलालेख मे 'नन्नराज' और दूसरे में 'नन्दराज' है। और पहले शिलालेख में नन्नराज स्वामिकराज का पुत्र और दूसरे में नन्दराज उसी स्वामिकराज का पुत्र कहा गया है जिससे जाना जाता है कि नन्दराज, नन्नराज का छोटा भाई हो और स्वामिकराज के अनन्तर राज्य का स्वामी पहले नन्नराज हुआ हो और नन्नराज के अनन्तर उसका छोटा भाई नन्दराज राजा हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता है।

चौथा इससे अर्वाचीन संवत् ९१७ का राष्ट्रकूट परवल[1] का शिलालेख भोपाल के राज्य के अन्तर्गत पठारी गांव में मिला है, उसमें तीन नाम है :—

१ जेज्जट[2]
२ कर्कराज
३ परवल

परवल की कन्या रणा देवी गौड़ देश के पाल वंशी राजा धर्मपाल[3] को व्याही थी। उक्त शिलालेख के चौदहवें पद्य में परवल का नागावलोक को पराजित करना लिखा है। वह प्रतीहार वत्सराज का पुत्र नागभट प्रतीत होता है। नागभट[4] का शिलालेख मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत वीलाड़ा परगने के गांव वुचकला मे संवत् ८७२ का मिला है, वह इस परवल के शिलालेख के समय के समीप काल का होने से जाना जाता है कि प्रकृत शिलालेख का नागावलोक उक्त प्रतीहार नागभट ही होना चाहिये।

पांचवां उससे अर्वाचीन शिलालेख राष्ट्रकूट तुङ्ग[5] धर्मावलोक का वोध गया का है। उसमें तीन नाम है —

१ नन्नगुणावलोक
२ कीर्तिराज
३ तुङ्गधर्मावलोक

तुङ्ग की कन्या भाग्यदेवी[6] पालवंशी धर्मपाल के वंशज राजपाल को व्याही थी। राज्यपाल धर्मपाल से पांचवां पुरुष था। जिससे इस शिलालेख का समय ऊपर के शिलालेख से उत्तर काल मे सिद्ध होता है।

---

१. Epigraphia Indica. vol 4

२ Prof Keilhorn साहब 'जेज्ज' पढते हैं, परन्तु प्लेट में 'जेज्जट' है।

३. देखो कीलहार्न नार्दरन लिस्ट नम्बर ६३५

४ एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ९ पृ० १९९

५ देखो राजेन्द्रलाल मित्र का वुद्ध गया की पुस्तक पृष्ठ १९५. कीलहार्न नार्दरन लिष्ट नं० ६३०

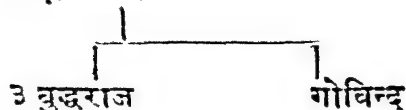
६ देखो कीलहार्न नार्दरन लिष्ट नवर ६४०

राजपूताने में इस समय जितने राठौड़ राजा महाराजा हैं वे सब सीहाजी के वंशज है। परन्तु सीहाजी से पूर्वकाल में भी राजपूताना मे राठौड़ राजा विद्यमान थे। उन के शिलालेख मिलते हैं। मारवाड के गोडवाड़ प्रान्त मे वीजापुर गांव के पास निर्जन स्थल में एक जैन मंदिर है। उसमे एक शिलालेख[1] मिला था, जो अब अजमेर म्यूजियम म है। वह जोधपुर के स्वर्गवासी महाराजा सरदारसिंह जी की तर्फ से कई शिलालेखों के साथ अजमेर म्यूजियम में भेजा गया था। उस शिलालेख से पता चलता है कि वहां पहले हस्तिकुण्डी नाम की नगरी थी। राष्ट्रकूट वहां के राजा थे। उस शिलालेख मे तीन राजाओं के संवत् दिये गये हैं, यथा—विदग्धराज का संवत् ९७३, मम्मट का ९९६ और धवल का १०५३। उसमें निम्न वंशावली दी हुई है—

१ हरिवर्मा
२ विदग्धराज
३ मम्मट
४ धवल
५ बालप्रसाद

इनके अतिरिक्त राजपूताना के शाहपुरा राज्य के अन्तर्गत धनोप गांव में राष्ट्रकूटों के २ दो शिलालेख और मिले हैं उनमें से एक तो बिलकुल टूटा हुआ होने से किसी काम का नहीं रहा। दूसरा संवत्[2] १०६३ का है। उसमें ये नाम हैं.—

१ भल्लील
२ दन्तिवर्मा



ऊपर के शिलालेख तथा ताम्रपत्र भिन्न भिन्न प्रान्तों और भिन्न भिन्न वंशावलियो के होने से उनसे राष्ट्रकूटों की शृंखलाबद्ध वंशावली तैयार नहीं हो सकती और न शृंखलाबद्ध इतिहास जाना जा सकता है।

कन्नौज के राठौडों के दानपत्र ८०-८५ के लग भग मिल गये हैं जिनसे उनकी यशोविग्रह से हरिश्चन्द्र तक की वंशावली व इतिहास जाने जा सकते हैं। और बदाऊं के शिलालेख से 'चन्द्र' से लेकर 'लाखणपाल' तक की वंशावली जानी जाती है। कन्नौज के दानपत्रों में कन्नौज के प्रथमराजा 'चन्द्र' का वंश गाहड़वाल और बदाऊं के शिलालेख में बदाऊं के प्रथम राजा 'चन्द्र' का वंश राष्ट्रकूट लिखा है, जिस से भिन्न साहब कहते हैं कि "गाहड़वाल राठौड हैं इसका कुछ पता नही, ये भिन्न वंश हैं।" परन्तु वक्ष्यमाण प्रमाणों से सिद्ध हो जायगा कि गाहड़वाल और राठौड भिन्न वंश नहीं हैं, किन्तु एक ही वंश हैं। गाहड़वाल राठौड वंश की एक शाखा है। जैसे चौहान, हाडा, खीची देवड़ा ये भिन्न वंश नहीं हैं, किन्तु हाडा आदि चौहान वंश की

१ देखो एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १०, पृ. १७
२ देखो इण्डियन एण्टिक्वेरी सन् १९११ जिल्द ४० पृ १७४

शाखा हैं, वैसे गाहड़वाल भी राठौड़ वंश की एक शाखा है। इसमें प्रथम प्रमाण तो यही है कि गाहड़वाल लोक अपने को राठौड़ कहते है। मिर्जापुर ज़िले मे मांडा और विजैपुर के राजा गाहड़वाल हैं, वे अपने तईं राठौड कहते है। और कहते हैं कि हम कन्नौज के महाराजा जयचन्द्र के भाई माणिक्यचन्द्र के वंशज है। दूसरा सार्वजनिक प्रमाण यह है कि कन्नौज के महाराजा जयचन्द्र राठौड़ प्रसिद्ध है। तीसरा पृथ्वीराज रासौ का कर्ता चंद वरदाई जयचन्द्र को राठौड़ लिखता है। और चौथा तथा सब से प्रबल प्रमाण यह है कि जैसे वदाऊं के लाखणपाल के शिलालेख में राष्ट्रकूट वंश का निर्देश करके पञ्चाल देश को खड्ग से विजय करने वाला प्रथम राजा 'चन्द्र' लिखा गया है, वैसे गाहड़वाल वंश का निर्देश करने वाले कन्नौज के दानपत्रों मे से चन्द्रावती के दानपत्र मे भी पाञ्चाल देश को खड्ग से विजय करने वाला प्रथम राजा 'चन्द्र' लिखा गया है। वदाऊ के शिलालेख में लिखा है कि "पाञ्चाल[1] देश मे राष्ट्रकूट वंश के राजाओं से पालित वोदामयुता (वदाऊं) पुरी है। वहां प्रथम राजा 'चन्द्र' हुआ जिसने अपने खड्ग से वैरिवृन्द को भयभीत कर दिया था।" और चन्द्रावती के संवत् ११५० के ताम्रपत्र में भी 'चन्द्र' के वर्णन में वही वार्ता लिखी है, जो वदाऊं के शिलालेख में लिखी हुई है। उस मे यह लिखा कि "चपल[2] पाञ्चाल देश की शिखा को चूमने वाला, अर्थात् विजय करने वाला, जिस का खड्ग है।" और कन्नौज के दानपत्रों[3] में लिखा है कि 'चन्द्र' ने अपने वाहुवल से गाधिपुर (कन्नौज) का राज्य लिया था। जिस से 'चन्द्र' कन्नौज का प्रथम राजा स्पष्ट है। वदाऊँ का शिलालेख भी 'चन्द्र' को पाञ्चाल देश को खड्ग से विजय करने वाला प्रथम राजा कहता है, और चन्द्रावती का ताम्रपत्र भी कहता है कि 'चन्द्र' पाञ्चाल देश को खड्ग से विजय करने वाला प्रथम राजा हुआ। जब दोनो स्थानो के लेख 'चन्द्र' को पाञ्चाल देश को खड्ग से विजय करने वाला प्रथम राजा कहते है, तब दोनों का 'चन्द्र' एक व्यक्ति होने में कुछ भी संदेह नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त इस की पुष्टि इस से होती है कि दोनों का समय भी एक है। चन्द्र के वंशज जयचन्द्र का पुत्र हरिश्चन्द्र, चन्द्र से छठा पुरुष था। जिस का दानपत्र[4] संवत् १२५३ का मिल गया है और वदाऊं का राजा लाखणपाल चन्द्र से आठवां पुरुष था, जिस

---

१ "प्रख्याताखिल राष्ट्रकूटकुलजक्ष्मापालदोःपालिता
पञ्चालाभिधदेशभूषणकरी वोदामयूता पुरी।
तत्रादितोऽभवदनन्तगुणो नरेन्द्र-
श्चन्द्रः स्वखड्गभयभीषित वैरिवृन्दः।"
(एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १ पृ० ६४)

२ "चपल पञ्चाल चूलचुम्बनचणचन्द्रहासः।"
(एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १४ पृ० १६९)

३. "श्री मद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम्।
(एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द ४ पृ० १००)

४ एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १. पृ. ६९.

कनौज के दानपत्र	फतेहगढ़ नामा	रामपुर	खेमसेपुर	मारवाड़ की ख्यातें
१ जयचन्द्र	जयचन्द्र	जयचन्द्र	जयचन्द्र	जयचन्द्र
२ हरिश्चन्द्र	हरसू	प्रहस्त जजपाल	प्रहस्त जजपाल	वरदायिसेन
३	सेतराम	सेतराम	सेतराम	सेतराम
४	सीहो	सीहो	सीहो	सीहो

ऊपर की वंशावली देखने से स्पष्टतया जाना जाता है कि वरदायिसेन, प्रहस्त, हरसू और हरिश्चन्द्र एक ही पुरुष के नाम हैं। एक पुरुष के दो तीन नाम दानपत्रों में बहुधा देखने में आते हैं। जैसे प्रतिहार भोज के शिलालेखों मे भोज और आदि वराह ऐसे उसी के दो नाम लिखे मिलते हैं। संवत् ६०० के शिलालेख मे भोज,[१] और संवत् ६३२ के लेख में आदिवराह[२] है। और मालखेड़ के राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथम के पांच[३] नाम देखने में आते हैं। अमोघवर्ष, नृपतुंग, शर्व, महाराज-षण्ड और अतिशय धवल। प्रकृति नामों में 'हरसू' नाम तो हरिश्चन्द्र नाम का ही अपभ्रंश है। और दूसरे नाम काही अपभ्रंश है। और दूसरे नाम भी हरिश्चन्द्र के ही पाये जाते हैं। क्योंकि समस्त इतिहास लेखक सीहाजी को जयचन्द्र का वंशज कहते हुए उन का मारवाड़ की ओर जाना कहते हैं। इसकी पुष्टि करता हुआ बीकानेर के राजा रायसिंहजी का संवत् १६५० का शिलालेख[४] कहता है कि सीहा जयचन्द्र का प्रपौत्र था। और आईन[५]-ए-अकबरी में भी लिखा है कि सीहा जयचन्द्र का भतीजा था। और कर्नल टॉड साहिब भी वैसाही[६] (भतीजा) कहते हुए सीहाजी को

---

१ एपि इण्डि. वो. ५ पृ० २११

२ „ „ वो. १ पृ० १५६

३ बांम्बे गेजेटियर वो. १ पार्ट २ पृ० ४०१

४ "तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचन्द्रस्ततोऽभवत् ।
वरदायीसेननामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रमः ॥
तदात्मज सेतरामो रामभक्तिपरायणः ।
सेतरामस्य तनयो नृपध्वजशिरोमणिः ॥
राजासीहः [illegible] शौर्यधैर्य समन्वित. ॥" (बंगाल ए. सो. ज. और प्रो. सन् १८९० वो. १९ पृ० ७७९

५ आईन ए-अकबरी का अंग्रेजी अनुवाद, ब्लाकमैन और कर्नल जारेट कृत वो. २ पृ० २६१

६ टाड राजस्थान वो० २ पृ० २

कहीं जयचन्द्र का पुत्र[1] और कहीं पौत्र[2] लिखते हैं। भतीजा, पुत्र अथवा पौत्र कुछ भी लिखो, जयचन्द्र का वंशज अवश्य सिद्ध होता है। वास्तव मे सीहाजी जयचन्द्र के प्रपौत्र थे।

६ सेतराम—वरदायिसेन के पुत्र सेतराम[3] का वृत्तान्त नैणसी ने उपन्यास की रचना में लिखा है। सेतराम अफीम बहुत खाते थे, जिससे उनके पिता उन से रुष्ट हो गये थे; और उनको कह दिया कि ऐसा अयोग्य पुत्र किस काम का? तिस पर सेतराम निकल गये। और नवीन भूमि उपार्जन की। तब पिता प्रसन्न हुए और अपना उत्तराधिकारी नियत किया। सेतराम के पुत्र सीहा के संवत् १३३० के शिलालेख में जो गांव बीठू में मिला है, सेतराम को सीहा का पिता लिखा है। "सेत-कंवर सुनु सीहो" और इस में 'सेत के साथ 'कंवर' पद होने से जाना जाता है कि सेतराम वरदायिसेन का छोटा पुत्र था। कन्नौज प्रांत मे, वल्कि समग्र यू० पी० में यह प्रथा है कि पट्टाधिकारी तो राजा, राव आदि पदवियों से और छोटे भाई तथा उनके वंशज पिता की अविद्यमानता में 'कंवर' पद से अलङ्कृत किये जाते है।

---

१ टॉड राजस्थान वो० १ पृ० ६५

२ ,, ,, वो० २ पृ० ६

३ कर्नल टॉड साहिब (टॉड राजस्थान वो० २ पृ० ६) सेतराम को सीहा का भाई लिखते हैं; और कहते है कि सीहा के लाखाफूलांणी के साथ युद्ध हुआ उसमें सेतराम मारा गया। परन्तु मारवाड़ की किसी ख्यात में सेतराम सीहा का भाई लिखा नहीं मिलता। और न उसका उक्त युद्ध में मारा जाना लिखा है। सेतराम सीहा का भाई नहीं, पिता था। सीहा का शिलालेख सेतराम को सीहा का पिता कहता है। 'सेतकँवर सुनु सीहो'। दूसरा उन्होंने सीहाजी का लाखा-फुलाणी के साथ युद्ध करना और उस को युद्ध में मारना लिखा है, वह भी भूल है। क्योंकि लाखाफूलांणी अणहिलवाड़ा के सोलंकी राजा मूलराज प्रथम के हाथ मारा गया था। हेमचन्द्रा चार्य कृत 'द्व्याश्रय काव्य' मे लिखा है कि लाखा-फूलांणी कच्छ का राजा था, वह सोरठ के राजा ग्रहरिपु की मदद मे आया था। मूलराज के और लाखा के युद्ध हुआ, जिसमे वह मूलराज की सांग से मारा गया थाः—

"कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लत्तं चुलुक्यराट्।" (सर्ग ५ श्लो. १२८) वह मूलराज विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी मे हुआ था। उसके दानपत्र संवत् १०३० और १०५१ के मिले है, लाखाफूलांणी उसके समकालीन था। और सीहाजी का शिलालेख सवत् १३३० का मिला है, जिस के ३०० वर्ष का अन्तर है। इस दशा में लाखाफूलांणी के साथ सीहाजी का युद्ध करना और मारना नही संभव था।

१० राव सीहो—संवत् १२६८ शमसुद्दीन अलतमश ने राज्यासन पाकर संवत् १२७१ में खोर पर आक्रमण किया था। जहां जयचन्द्र के वंशज राज्य शासन करते थे। शमसुद्दीन ने महाघोर कपट युद्ध के अनन्तर विजय पाकर राठौड़ों को वहां से निकाल दिया, तब राठौड़ इधर उधर जा बसे। राव सीहाजी अथवा उन के पिता गांव मोधा होते हुये गांव महुई मे पहुंचे। वहां काली नदी का सहारा पा, उसके तट पर दुर्ग निर्माण करके निवास किया। दुर्ग का ध्वंसावशेष अब तक वह विद्यमान है। वह ईंटों का बना टीला है। उसे उस प्रान्त के लोग सीहा राव का खेड़ा कहते हैं। पाया जाता है कि शायद वहां भी मुसलमानों का आक्रमण होने से वहां रहना उचित न समझ कर सीहाजी वहां से पश्चिम की ओर चल दिये हो। सीहाजी का मारवाड़ की तर्फ जाना संवत् १३०० के आस पास हुआ हो तो संभव है। क्योंकि मारवाड के पाली परगना में गांव बीठू में राव सीहाजी का शिलालेख संवत् १३३० का उपलब्ध हुआ है। और संवत् १२७१ में खोर छूट जाना शमसाबाद की कविता कहती है। उस का सारांश यह है कि शमसुद्दीन ने खोर लेने का विचार किया, नौ वर्ष तक खोर को घेरे रहा, परन्तु विजय होने की सूरत न दीख पड़ी, एक दिन वह एक फकीर के पास गया। उस से प्रार्थना की तब उसने यह सलाह दी कि ये राठोर हिन्दू हैं, ये लोग गऊ पर प्रहार नहीं करते, तुम गायों के सींगों के चरागें बांध कर गंगा में छोड दो, वे तैरती हुई परले तट पर चली जांयगी। तुम भी उनके पीछे २ परले तट पर पहुंच कर अपना कार्य कर सकते हो। शमसुद्दीन ने वैसा ही किया, इस तरह शमसुद्दीन ने जैचन्द के वंशजों को दगा देकर खोर लिया और उसका नाम शमसाबाद रक्खा। यह मामला संवत् १२७१ चैत्र मास की तृतीया को हुआ था। इस कविता में खोर को घेरना ९ नौ वर्ष लिखा है, परन्तु संवत् १२७१ में शमसुद्दीन के गद्दी बैठने से ३ तीन वर्ष ही होते हैं। यह कुतुबुद्दीन का गुलाम था, यदि इसे पहले से ही खोर पर भेज दिया हो तो ९ वर्ष भी हो सकते हैं।



"राठौड जयचन्द्र के प्रपौत्र राव सीहाजी"

खोर से निकले हुए जयचन्द्र के वंशज कुछ तो वहीं रहे। जिन में से इस समय रामपुर, जिला एटा, और खेमसेपुर, जिला फर्रुखाबाद, आदि स्थानों में विद्यमान हैं। हमारे सीहाजी खोर से निकल कर गांव मोधा (जिला फर्रुखाबाद) में आये, और वहां से उसी के समीप गांव महुई में पहुंचे। वहां उन्होंने अपनी रक्षा के लिये काली नदी के तट पर एक छोटा सा किला भी बनाया था। जिससे अनुमान किया जाता है कि वे वहां २५-३० वर्ष अवश्य रहे होंगे। तदनन्तर मारवाड़ में गये होंगे।

सीहाजी कन्नौज प्रान्त से मारवाड़ में गये थे इसी से उनके वंशज कनौजिया राठौड़ कहलाते हैं। मालानी प्रान्त के नगर ग्राम में राठौड़ जगमाल द्वितीय का संवत् १६८६ का शिलालेख[1] मिला है उसमें उनको सूर्यवशी कनौजिया राठौड़ लिखा है। और जोधा के एक ताम्रपत्र[2] की नकल सारस्वत ब्राह्मण जैराम के पास मिली है, उसमे उनकी कुलदेवी का कन्नौज से लाया जाना लिखा है। यद्यपि यह ताम्रपत्र असल नहीं मिला है, नकल मिली है, तथापि उसको प्रमाणित करने वाली एक सनद[3] असल मोहर छाप सहित महाराजा उदैसिंहजी की सारस्वत ब्राह्मण रिषभदेव के वंशज उक्त जैराम के पास है, उस मे जोधाजी के ताम्रपत्र का हवाला है। जिस से उक्त ताम्रपत्र की सत्यता दृढ़ होती है। और जोधाजी के ताम्रपत्र

---

१ 'सूरिजवंशी कनौजिया राठौड़ सीहा सोनंग इए खेड़ गोहिलां पासे खडग बले लीधी।' (अप्रकाशित लेख)

२. उस ताम्रपत्र की नकल हम नीचेदेते हैं:—

"महारावजी श्री जोधा जी बचनायते तथा कनोज सु सेवग लुंव रिसि जात रो सारखुत ओजालोड सेवा लेनै आयो सु राठौड़ वंस रा सेवग औ है-पहली राठौर वंस रै माताजी श्री आदि पंखणीजी चक्रेश्वरीजी पछै रावजी श्रीधूहड़जी नै वर दीधो नै नागरा रूपसूं दरसण दीधौ तरे नाग णेचियां कहांणी सु राव धूहड़जी रौ तांबापत्र ओजा रिषबदैव श्रीपत रा बेटा कनै थो सु वाचनै मे ही तांबा पत्र कर दीधौ—संमत् १५१६ रा मीगसर सुद २ दुवै श्रीमुष। परवानगी राठौड़ करमसी मुकाम सुपवास जोधपुर। लिषतं "हरिदास आईदासोत। महाराव जी रा हुकम सुं॥

३. सनद की प्रतिकृति इस भांति है:—

"महाराजाधिराज श्री उदयसिंहजी वचनायतं सेवग हरौ सदावंध कदीम सुं छै, राठौड़ वंस रो सेवक पणो कदीम सुं इण रै छै तिण रो हतेरण सांमत् १५१६ रो तांबापतर मुजब परवांणो कर दीनो छै सं॥ १६३५ रा माहावद ५॥

से यह भी जाना जाता है कि कन्नौज से कुल देवी की मूर्ति लाने पर धूहडजी ने लुंब ऋषि को अपनी कुल देवी का पुजारी नियत करके उसे ताम्रपत्र कर दिया था । उसी ताम्रपत्र को देखकर जोधाजी ने संवत् १५१६ में नवीन ताम्रपत्र कर दिया । धूहडजी के कुल देवी ने नाग के रूप से दर्शन दिया था जिससे कुल देवी का नाम नागणेचियां प्रसिद्ध हुआ । नागणेचियां का मन्दिर नागाणा (पचपदरा परगना) में है । वह धूहडजी का कराया कहा जाता है । उसके पुजारी राठौड है । वे कुल देवी नागणेचियां के संबंध से नागणेचियां राठौड कहलाते हैं । नागणेचियां की एक मूर्ति जोधपुर के किले में है । उसके पुजारी सारस्वत ब्राह्मण हैं ।

सीहाजी कन्नौज प्रान्त से निकल कर द्वारका यात्रा के निमित्त सोरठ देश को जाते मारवाड देश में आये, इस में तो किसी का मत भेद नहीं है । परंतु मारवाड के किस प्रान्त में आये, इसमें मत भेद है । कर्नल टॉड साहिब तो कहते है कि 'सीहा मारवाड में कोलूमढ में, जो बीकानेर से २० मील पश्चिम में है, सोलंकी राजा के पास ठहरे और वहां से पाली गया' । और मारवाड की ख्यातों में यह लिखा है कि सीहाजी का मुकाम पुष्करजी के समीप था, उस समय भीनमाल के ब्राह्मणों ने, जो पुष्कर यात्रा को गये थे, सीहाजी के परिकर को देख, उनके निकट जाकर अपना दुःख निवेदन करके प्रार्थना की कि 'मुलतान के मुसलमान अधिकारी वर्ग हम को सताते हैं, आप क्षत्रिय हैं, हमारी रक्षा करें ।' सीहाजी ने उनकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझ उनके साथ हो मुसलमानों को पराजित करके ब्राह्मणों की रक्षा की । इस विषय का एक प्राचीन दोहा[1] है उस का सारांश यह है कि 'वीर सीहा ने भाले के बल भीनपाल जी, बहुत सा दान दिया अपने सत्य धर्म को रक्खा, वह यश कभी लुप्त होने का नहीं है ।'

वहां से सीहाजी द्वारका को चले । मार्ग में जो कोई साम्हना करता उसको दण्ड देते हुए द्वारका पहुंचे । उस से पहले मार्ग में प्रथम तो थिरावद में युद्ध हुआ । सांचोर प्रान्त में पीलूडा नाम ग्राम को लूटा और कोली मेघड़ा को मारा । तदनन्तर करभां के पहाडों में दरपाल छोगाला को, जो जाति का कडतल था, मारा । वहां से आगे बढ़कर गांव भीलडा के स्वामी आस्मा डाभी को, जो ईडर के राजा का अमात्य था, मार कर मार्ग को निष्कण्टक किया । द्वारकानाथ के चरणस्पर्श कर अपने पुत्र अज को शंखोद्धार में गद्दी बिठला कर वह

---

१ "भीनपाल लीधी भडे, सीहे सेल बजाय ।
दत दीधो सत संग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय ॥"

से पीछे लौटते सीहाजी अणहिलवाड़े के स्वामी सोलंकी भीमदेव द्वितीय के भानजे होने से कुछ दिन अणहिलवाडा पाटण में ठहरे, वहां से मारवाड़ में आये। उस समय पाली के पल्लीवाल ब्राह्मणो ने सीहाजी के पास जाकर निवेदन किया कि हम को यहां के लुटेरे लोग मेर, मीने, वालीसा और सोलकी सताते हैं. आप हमारी रक्षा करें। हम आप को एक लाख[१] रुपये देंगे। उस समय पाली नगर व्योपार की वहुत वड़ी मडी थी। पच्छिम से अरव, फारस आदि का माल पाली मे हो कर आगे पूर्व की ओर जाया करता था। और पूर्व हिन्दुस्तान का माल पाली में होकर पश्चिम की तर्फ जाता था। कहा जाता है कि उस समय पाली में एक लाख घरों की वस्ती थी। पाली के मुखिया ब्राह्मण जसोधर के कहने से सीहाजी पाली में ठहरे। और लुटेरों का दमन कर ब्राह्मणों की रक्षा की। इस विषय का यह प्राचीन छुन्द है :—

"वोह वोला छाडि गया वालिसा,
सोलंकी कुणभार सहै।"

ब्राह्मणों ने सीहाजी को निर्वाह के लिये कुछ लाग देना नियत कर के पाली में रख[२] लिया। सीहाजी का सोलंकी जाति की स्त्री से

---

१. मारवाड़ की ख्यात में लिखा है कि सीहाजी ने उन लाख रुपयों के चतुर्थांश (२५००० रुपयों) से सोमनाथ का मन्दिर पाली मे बनवाया था। परंतु वह भूल है। क्योंकि सोमनाथ के मन्दिर के दक्षिण पार्श्व में एक शिलालेख संवत् १२०८ का सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का खुदा हुआ है जिससे स्पष्ट है कि वह मन्दिर सीहाजी से वहुत पूर्व काल में वना था। जिस समय में सीहाजी का जन्म भी नहीं हुआ था। यह शिलालेख अभी तक छपा नही है। हम उसकी नकल नीचे उद्धृत करते हैं:—

"ओं' संवत् १२०८ द्वि० ज्येष्ठ वदि ४ अद्येह पल्लिकायां श्रीमदणहिल पाटकाधिष्ठित समस्त राजावली विरोजित परमभट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वर उमापतिवर लब्ध प्रौढ़ प्रतापनिजभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकम्भरी भूपाल श्री मत्कुमार पाल देव कल्याण विजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीवि..... श्री करणादौ समस्त पारारपादपथ (?) .... अद्येह श्री मत्पल्लिकाधिष्ठित समस्त श्री विराजमान श्रीबीहडदेवप्रतिपत्तौ .... इस लेख की २० पंक्ति हैं जिनमे ऊपर ७ पंक्ति लिखी गई हैं शेष बिलकुल टूटी हुई है।

२. कर्नल टॉड साहिब सीहाजी का ब्राह्मणो को मार कर पाली लेना लिखते हैं, परंतु मारवाड़ का एक भी इतिहास वैसा नही लिखता। दूसरा पल्लीवाल ब्राह्मण पाला के राजा नही थे, जिन को मार कर पाली नगर लिया जाता। पाली व्योपार का

विवाह हुआ। उस के उदर से २ पुत्र हुए, आसथान और सोनग।
दूसरी राणी चावड़ी१ थी जिस के भी दो पुत्र हुए, अज और भीम।

बड़ा नगर था। ब्राह्मण व्यापारी थे। पाली पर विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सोलंकियों का अधिकार था। वह कुमार पाल के संवत् १२०६ के उक्त शिलालेख से स्पष्ट है। तत्पश्चात् जालोर के स्वामी सोनगरा चौहानों का अधिकार हो गया था। सोनगरा चाचिगदेव के वि० संवत् १३१६ के सूंधा माता के शिलालेख में लिखा है कि नाडोल * जालोर, साचोर, बाहडमेर और मण्डोवर आदि पर सोनगरा उदयसिंह का कब्जा था। तब पाली पर उसका अधिकार होना स्वयं सिद्ध है। उदयसिंह के शिलालेख संवत् १२६२ से १३०६ तक के मिले हैं, और उदयसिंह के अनन्तर भी पाली में सोनगरों का ही अधिकार था, परंतु वे निर्बल से थे, इसी से उनकी प्रजा को लुटेरे सताते थे। इसी हेतु भीनपाल और पाली के ब्राह्मणों को सीहाजी की शरण लेनी पड़ी थी। सीहाजी ने उनकी रक्षा की। इसके एवज में उन्होंने सीहाजी को लक्ष रुपये देकर और भविष्य मे कुछ लाग देना नियत कर पाली में रख लिया। उक्त लेख से स्पष्ट है कि पाली पर ब्राह्मणों का अधिकार नहीं था। वे व्यवसायी थे। वे अत: उनके मारने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

१ मुहणोत नैणसी चावड़ी राणी के तीन पुत्र होना लिखता है और उसके साथ एक विचित्र कथा लिखता है जो इस प्रकार है।—"एक दिन राणी चावड़ी को स्वप्न आया वह स्वप्न मे क्या देखती है कि तीन सिंह आये हैं, वे रानी का पेट विदीर्ण कर उसके अगले पहाड़ में चले गये हैं। तीनों सिंह रानी के अन्त्र लिये अलग अलग जा रहे हैं। स्वप्न के अनन्तर रानी की आंख खुली, जागृत हो कर रानी ने रावजी से कहा कि 'महाराज! आज तो मैं ने बड़ा विचित्र स्वप्न देखा।' तब रावजी ने कहा कि क्या? तब रानी ने स्वप्न का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। रावजी ने रानी के एक दम तीन चाबुक लगाये। रानी भयभीत हो पीड़ा के मारे ज्यों की त्यों बैठी रही। जब सूर्योदय हुआ तब रावजी ने चावडी के निकट जाकर कहा कि "मैंने जो तेरे अकस्मात् तीव्र प्रहार किया था, वह निष्प्रयोजन नहीं किया गया था किन्तु कारण वश किया गया था वह कारण यह है कि तुझे स्वप्न के अनन्तर निद्रा न आजावे। निद्रा आजाने से स्वप्न निष्फल हो जाता है। तेरा यह उत्तम स्वप्न निष्फल न हो, इसीलिये यह क्रिया की गई थी। तुझे बुरा न मानना चाहिये। इस स्वप्न का फल यह मिलेगा कि तेरे तीन पुत्र होवेंगे। वे सिंह के समान महा ओजस्वी होवेंगे· बहुत सी भूमि हस्तगत करेंगे बड़ी उन्नति करेंगे। यह सुन रानी प्रसन्न हुई। तदनुसार रानी के तीन पुत्र हुए और वे महा पराक्रमी हुए।

---

* श्रीमन्नड्डूल-श्रीजावालिपुर-माण्डव्यपुर-वाग्भटमेरु-सूराचन्द्र-राटहृद-खेड-रामसैन्य-श्रीमाल-रत्नपुर-सत्यपुर प्रमुखनगराण्यवति ।'

सीहाजी ने, पल्लीवालों से जो लाग मिलती थी उससे अपना निर्वाह करते पाली में मुकाम कर रक्खा था। मुहणोत नैणसी आदि समस्त इतिहास लेखक सीहाजी का लाखा के साथ युद्ध करना और उसको मारना लिखते हैं और लाखा को फूलाणी (फूला का पुत्र) बताते हैं।

मुहणोत नैणसी ने लाखा फूलाणी का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है:—"राजा सिंघसेन (सीहाजी) कन्नौज से द्वारका यात्रा के निमित्त रवाना हो गुजरात में आये। वहां सोलकियों का राज्य है, और चावड़ा भी राज्य करते हैं। गुजरात की राजधानी पाटण है। मारू लाखा जाम सिंध में राज्य शासन करता है। चावड़ों और लाखा के राज्य की सीमा सटी हुई होने से इनके परस्पर भूमि के लिये वैर हैं। सदा सीमा पर युद्ध होता रहता है। दूसरा कारण यह भी हुआ कि लाखा ने रखाइत के पिता को मारा था। लाखा की बहिन राखाइत के पिता को व्याही थी। वह लाखा के वहीं रहता था। उसे मारने का कारण यह हुआ था। कि उस ने लाखा के बाग का एक आम्र का वृक्ष कटवा दिया, जिससे लाखा ने क्रुद्ध हो कर अपने बहनोऊ को मार दिया। उक्त कारणों से इनके परस्पर द्वेष दृढ़ हो जाने से सदा युद्ध होता रहै। जिसमे लाखा सदा विजयी और चावड़े परास्त होते रहते हैं। उस का कारण यह लिखा गया है कि लाखा के तो इष्ट (उपासना) कुल देवी का है और चावड़ों के इष्ट (उपासना) क्षेत्रपाल का है, देवी प्रबल जिस से लाखा का विजय और क्षेत्रपाल निर्बल इस लिये चावड़ो का पराजय होता है। उसी अवसर में राव सीहाजी द्वारका जाते पाटण गये। उस समय मूलराज को स्वप्न मे क्षेत्रपाल ने कहा कि "कन्नौज का स्वामी राव सीहा राठौड़ तुम्हारे यहां आये हैं, उस को महादेव का वरदान है, तुम उन से जा कर मिलो। जिस से तुम्हारे वैर का बदला लिया जाय। उसके हाथ से लाखा मरेगा।" तब चावड़े इकट्ठे होकर राव सीहाजी के पास गये, और बड़ा आदर सत्कार करके भोजन के लिये निमन्त्रण दिया। रावजी ने स्वीकार किया। भोजन करने को उन के घर पर गये। उस समय मूल की माता ने सीहाजी का ध्यान आकर्षित करने के लिये यह योजना की। अपने पुत्र और कुटुम्ब की १५-१६-१७ वर्ष की बाल विधवा वधुओं को कहा कि जिस समय रावजी भोजन करने को बैठें तब भोजन की सामग्री उन को परोसने के लिये तुम लेकर आना, और लाकर मेरे साम्हने रख देना। जब रावजी तुम को इस अवस्था में देखेंगे तो

तुम्हारे विषय में वे अवश्य मुझसे प्रश्न करेंगे; तब मैं सर्व वृत्तान्त कह दूंगी वैसा ही हुआ। रावजी भोजन करने को अन्दर गये, तब मूल की माता ने कहा कि रावजी का आना फिर कब होगा, इनको भोजन मैं कराऊंगी, मैं अपने हाथ से परोसूंगी, अन्य सरदारो से कह दो कि वे भोजन करें। रावजी के लिये पट्टा और आसन लगाया गया। रावजी भोजन करने को बैठे। थाल आया। बाल विधवा स्त्रियां भोजन की सामग्री ला ला कर साम्हने रखने लगी। रावजी ने उन्हें देख कर मूल की माता से पूछा कि "यह क्या बात है? इतनी बाल-विधवा स्त्रियां कैसे?" तब मूलराज की माता ने पूछा रावजी से कहा महाराज! हमारे लाखा फूलाणी के साथ वैर है, लाखा ने इनके पतियों का वध किया है। लाखा के और हमारे सदा युद्ध होता रहता है। जिसमें लाखा सदा विजयी होता है और हमारे बन्धु मारे जाते हैं। साल भर में दो तीन युद्ध हो ही जाते हैं। अब आप का आगमन हो गया है। आप हमारी सहायता करें। तब सीहाजी ने कहा कि अभी तो हम द्वारका यात्रा को जाते हैं, पीछे आते यहां आवेंगे। उस समय जैसा आप कहेंगे, किया जायगा। अभी तो हम ने शस्त्र छोड़ रक्खे हैं। द्वारकानाथ के स्पर्श कर पीछे आ कर लाखा को मारूंगा। यदि मैं लाखा को मारूं तो मैं सेतराम का पुत्र। और रावजी ने यह भी कहा कि हम पीछे आते हैं। इतने तुम सेना एकत्र करो। और लाखा को कहला दो कि हम तुम पर चढ कर आते हैं, तैयार रहना। ऐसा कह कर सीहाजी द्वारका को चले गये। द्वारका पहुंच कर श्रीरणछोड़ भगवान् का दर्शन किया। गोमती में स्नान किया। एक मास द्वारका में रहे। बहुत दान पुण्य किया। वहां से पीछे लौट कर कुछ दिनों में पाटण आये। सीहाजी की आने की ख़बर होते ही सोलंकी और चावडे साम्हने जाकर उन्हें घर पर ले आये। सीहाजी से वार्तालाप हुआ। सीहाजी ने उन से कहा कि आप ने सेना तो एकत्र कर रक्खी है और मैं भी तैयार हूं अब लाखा को कहला देना चाहिये कि वह भी तैयार हो जावे। लाखा के पास इन का दूत पहुंचते ही, उस के शिथिलता कहाँ थी, तुरन्त तैयार हुआ। सेना इकट्ठी की। परंतु लाखा के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि हमेशा तो चावडा हमारा नाम सुनते ही भाग जाते हैं, और इस समय उलटा हमें कहलाया है कि हम आते हैं, तुम तैयार हो जावो। और चले आते हैं। यह क्या बात है? लाखा बड़ा विचक्षण था उसने अपना मनुष्य भेज कर जिज्ञासा की। दूतों ने लाखा के निकट जाकर कहा कि महाराज! हम देख आये हैं, इस समय चावडों की सेना में कनौजिया राठौड़ राव सीहाजी हैं यह सुन कर लाखा भी मन में शंकित हुआ। धीरे धीरे चलने लगा।

इससे पहिले किसी समय लाखा का भानजा राखायत राजपूतों के साथ बैठा था। राजपूतों ने राखायत से पूछा कि प्रभात के समय लाखाजी दरबार में आते है तब उनका मुख मलिन क्यों दिखाई देता है? आज ईश्वर की कृपा से उनका बड़ा राज्य है, बहुत सी नवीन भूमि हस्तगत की है, फिर ये दुमना क्यों रहते है। तब राखाइत ने कहा कि मैं इस बात से अज्ञात हूं। तब राजपूतों ने राखाइत को कहा कि तुम लाखाजी से पूछ इस का निश्चय करो। तब राखायत ने उन से प्रत्युत्तर में कहा कि मै उनसे पूछूँ और यदि वे मुझ पर कोप करैं और मुझे मरा दें तो मुझे कौन छुड़ा सकता है? तब राजपूतो ने कहा कि यदि लाखाजी कुपित होकर तुझे निकाल देंगे तो हम तेरे साथ निकलेंगे, और मारैं तो हम तेरे साथ मरेंगे। परंतु तू इस बात को पूछ। तब राखायत ने एक दिन लाखा से पूछा कि मामाजी आज परमात्मा की कृपा से आप के सब प्रकार का आनन्द हैं; राज्य का वैभव पूर्ण बढ़ा चढ़ा है, और सब प्रकार की उन्नति है। फिर आप का मुख प्रातःकाल मे मलिन सा क्यों रहता है? इस का क्या कारण है? तब लाखा ने राखायत से कहा कि हे प्यारे भानजा! इस का कारण मै तुझसे कहूँगा परंतु वह प्रकट से कहने योग्य नही है, एकान्त में कहूँगा। इस बात को पांच चार दिन हो गये। एक दिन लाखा अपने भानजे राखायत को साथ लेकर चला। समुद्र के तट पर गया। राजपूत भी लाखा के साथ थे। लाखा समुद्र के अन्दर घुसा और राखायत को भी अपने साथ लिया। लाखाजी देखते है तो एक काठ का तख्ता तैरता दृष्टि में आया। उस पर राखायत बिठला कर हाथ से धक्का दे समुद्र में चला दिया। राखायत तख्ते पर बैठा हुआ समुद्र की लहर से दूर चला गया। राजपूत सब किनारे पर बैठे देखते हैं; परंतु अब कर क्या सकते है? वश की बात नहीं रही। जब राखायत बहता २ दृष्टि से परे बहुत दूर चला गया; दीखता बन्द हो गया; तब लाखा पीछे लौट आया। और राखायत तैरता हुआ वहां पहुंचा जहां अप्सराओं का निवास है। लाखाजी ने पहले अप्सराओं को कह रक्खा था कि मेरा भानजा राखायत तुम्हारे यहां आवेगा, उसे सुख-पूर्वक रखना। लाखाजी के कथनानुसार अप्सरा आ कर राखायत को अपने भवन मे ले गई। वहां उसकी पूर्ण प्रीति के साथ सेवा की, राखायत स्वर्ग का आनन्द लूटने लगा। रात्रि में राखायत उसी भवन मे रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल लाखा राजपूतों को संग ले कर समुद्र के तट पर गया। इधर तो लाखा समुद्र के तट पर पहुंचा, उधर से अप्सराओ ने राखायत को उसी तख्ते पर बिठला कर समुद्र के तट पर पहुंचा दिया, जहां लाखाजी राजपूतों के साथ बैठे थे। राखायत लाखाजी से मिला। तब लाखाजी ने राखायत से पूछा

कि भानजा ! तू ने कुछ दृश्य देखा ? तब राखायत ने कहा कि मामाजी ! अप्सराओं के महल देखे। तब लाखाजी ने उस से कहा कि तू ने जो प्रासाद देखे हैं उन का अधिकारी वही है जो बाप के वैर और स्वामी के निमित्त अपने प्राणों को न्यौछावर करता है। हम भी रात्रि में वहीं जाते हैं और वहां का अद्भुत दृश्य देख कर प्रभात में पीछे आते हैं. उस उज्जागर के कारण हमारा मुख कुछ मलिन सा दिखाई देता है। तब भानजे ने पूछा कि मैं ने उरली ओर के प्रासाद तो देखे, परंतु परली तर्फ़ के महल उनसे ऊंचे और कहीं बढ़ कर अति उत्तम है। वे महल किसके हैं ? तब लाखा ने कहा कि जो परम स्वामिभक्त है और पिता के वैर और स्वामी के कार्य के हेतु आत्मा को समर्पण करता है उस के लिये वह स्थान है। राखायत यह सुन कर मौन रहा। राखायत के मन पर उसका इतना प्रभाव पड़ा कि उस को उसके आगे क्षण भर भी कल नहीं पड़ी। रात्रि होते ही राखायत ने तबेले में जाकर तबेले के दारोगे से कहा कि लाखाजी की सवारी का घोडा तैयार करो। दारोगा ने तुरंत घोडे को तैयार करा कर राखायत से कहा कि घोड़ा तैयार है। राखायत उस पर सवार हो सीधा चावडों और सीहाजी के पास गया। उन से मिल कर राखायत ने उन से कहा कि यदि लाखाजी को मारना अभीष्ट है तो यह समय है; जल्दी चलो सोलंकी, चावड़ा और सीहाजी सब ने चलने की तैयारी की; तब राखायत उसी घोडे पर सवार हो रात्रि में ही पीछे लाखाजी के वहां पहुंचा और घोड़े को ताजा कर के पीछा दारोगा को सौंप दिया। उसने जहां से खोला था वहीं पीछा बांध दिया। राखायत ने घोड़े को ताजा करने में सब क्रिया की थी, उसे झटक, खररा कर सब प्रकार से ताजा किया था, परंतु उसकी नाक साफ नहीं की थी। प्रातःकाल लाखा घोड़े को देखने को आया तब अपने सवारी के घोडे को देख कर कहा कि इस घोड़े को किसी ने खोला तो नहीं है ? तब दारोगे ने कहा कि महाराज आप के सवारी के घोडे को कौन खोल सकता है ? तब लाखा ने उस घोडे के शरीर को अपने दुपट्टे से पोछा, और उस की नाक पर दुपट्टे की छोर डाल कर नाक पोछी तो नाक में से लाल रग की पपरी निकली। तब लाखा ने समझ लिया की राखायत ने शत्रुओं को खबर देने के लिये घोडा खोला है। तुरंत मनुष्य भेज कर राखायत को कहलाया कि भानजा ! क्या तुम सिद्धपुर पाटण गये ? और सिवसेन (सीहाजी) तथा चावडों व सोलकियों को खबर दी ? तब राखायत ने लाखा के निकट आ, प्रणाम करके कहा कि "हां, मैं गया था, और उनको खबर दी है। बाप के वैर और स्वामी के कार्य के निमित्त दौडा हूं।" तब लाखाजी ने कहा भानजा ! अच्छा किया, परंतु ऊंचे महलों का

ध्यान रखना। तव राखायत ने कहा कि ऊंचे महलों की धारणा रक्खी तो है। तव लाखा ने कहा कि हमारा साथ करना। तव राखायत ने कहा कि मैं आप के साथ आया। आप भी सवार हूजिये। लाखा ने प्रयाण किया। शत्रु सेना साम्हने दिखाई दी। तव लाखा ने कुलदेवी का स्मरण किया। कुलदेवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि इस समय मेरा वल नही चलेगा। यह राजा सिंघसेन आया है। इसको महादेव का वर है। महादेव के आगे मैं कुछ नही कर सकती। तव लाखा ने कुलदेवी से कहा कि अन्य तो रहा। परतु मुझे मृत्यु तो अच्छी देना। तव देवी ने कहा कि 'वहुत अच्छा'। मृत्यु उत्तम रीति से होवेगी, परंतु विजय नही होवेगी। इतने में दोनो ओर सेनाओ की मुठभेड़ हुई। उस समय राखायत ने कहा मामाजी! मैं ने आप का अन्न खाया है, मैं आप के अगाड़ी लड़ूगा। फिर राखायत बड़ी धीरता से युद्ध कर रणाङ्गण मे पड़ा और लाखा भी रण शय्या शामी हुआ। राजा सिंघसेन (सीहाजी) लाखा को मार कर चावड़ों के साथ पीछे पाटण में आये।

उधर लाखा की माता और उस की स्त्रियां रण खेत में गई लाखा रण शय्या सोया है। कुछ प्राण शेष है। और राखायत समीप मे पड़ा है। उसे देख कर लाखा की स्त्रियाँ कहने लगी कि यह स्वामि-द्रोही यहां क्यों? इसे दूर हटाओ। तब लाखा ने कहा कि यह राखायत स्वामि द्रोही नही, स्वामिभक्त है। माता! आप देखती हो यह गृध पक्षी पड़ा है। वह मेरी आंख पर आ वैठा था और मेरी आंख निकालने लगा था, तव राखायत ने अपनी जांघ काट कर उस मांस-पिण्ड से गृध को मारा है। नही तो गृध मेरी आंख निकाल लेता। और आप मुझे कैसे देख सकती थी? आपने मेरा जीते का मुंह देखा है, यह इसी राखायत की कृपा है। राखायत को मेरे पास लाओ, मै इस को अपने हाथ से स्पर्श करूं, जैसे इस का मोक्ष हो। जब तक राखायत का प्राण पक्षी उड़ नहीं गया था, उड़ने को था। लाखाजी ने राखायत के निकट लाये जाने पर सिर पर हाथ रक्खा, राखायत की मोक्ष हुई। उस के साथ ही लाखाजी भी स्वर्ग को सिधारे। स्वर्ग में लाखाजी के महल तो ऊंचे, जिनके सुवर्ण का प्राकार और रत्नो के कंगूरे थे, और राखायत का प्रासाद उस से नीचा, जिस के रौप्य का कोट और सुवर्ण के कंगूरे थे। एक दिन राखायत ने ऊपर की तर्फ देखा तो लाखाजी ऊपर के महलो के गवाक्ष में बैठे हैं, इन्हें देख कर राखायत खिन्न हुआ, तब लाखाजी ने कहा कि भानजा! दुमना क्यों होता है? तब राखायत ने कहा कि मैने इन महलों के लिये यत्न तो बहुत किया, परंतु मिले नही। तव लाखाजी ने कहा कि केवल दौड़ धूप करने से ही क्या कुछ मिल सकता है?

जो भाग में बदा हो वही मिलता है। इस विषय का एक दोहा—सोरठा है :—

लिखियो[1] लाभै लोय, पर लिखियो लाभै नहीं।
पग सिर पद नहि जोय, जे विह विहचे अखियो ॥१॥

राज सोहाजी को चावड़ों ने अपनी कन्या व्याही। सोहाजी चावड़ी रानी को ले कन्नौज गये। और वहां का राज्य शासन किया। चावड़ी के तीन पुत्र हुए, जो महापराक्रमी थे सोहाजी का अन्तकाल होने पर उन का ज्येष्ठ पुत्र गद्दी बैठा। और चावड़ी अपने पुत्रों को ले पीहर पाटन चली आई।

मारवाड़ की एक ख्याति पुस्तक में सोहाजी का इतिहास लिखते यही कथा इस प्रकार लिखी है— 'सोलंकी राज और उसका पुत्र बीजल तोड़ा (राजपूताना जयपुर राज्य में) के ग्राम से निकल कर अनहिलवाड़ा पाटन में आये। जहां चावड़ा वंशी राज्य करते थे। राज और बीज दोनों तालाब के तट पर बैठे हैं इतने में पाटन के स्वामी की घोड़ियां तालाब पर आईं। उन में से चाकर ने एक सगर्भा घोड़ी के चाबुक मारा, तब राजड़ ने बीज से कहा कि इस चाकर ने बड़ा अनर्थ किया। घोड़ी के पेट में करोड़ी बछेरा था उसे इस ने कांना कर दिया। इस का चाबुक बछेरे की आंख पर लगा है, इस का हाथ तोड़ देना चाहिये। बीजड़ ने पिता के कहने से उस चाकर का हाथ तलवार से काट दिया पाटन में इस बात का बड़ा कोलाहल हुआ। और राजकीय मनुष्यों ने आकर जिज्ञासा की। उन से पूछा गया कि तुम कौन हो? कहां से आये हो? और हमारे चाकर का हाथ क्यों काटा गया? तब राजड़ ने कहा कि इस ने करोड़ी बछेरे को कांना कर दिया। इस अपराध में इस का हाथ काटा गया है। तब उन्होंने कहा कि तुम हाथ काटने वाले कौन? तब उन्होंने कहा कि हम राजपूत हैं और इसने बछेरे के खोड़ लगाई। तब उन्होंने अपने स्वामी के समीप आकर समस्त वृत्तान्त कहा। तब राजा ने उनको बुला कर कहा कि क्या तुम ऐसे देवता हो? यदि बछेरा कांना न हुआ तो तुम्हारे वास्ते क्या किया जाय? तब उन्होंने कहा कि हमारे सिर तैयार हैं। काट दिये जांय। तब राजा ने उन के भोजन का प्रबन्ध कर अपने यहां रख लिया। एक मास में घोड़ी

---

१. लोक में मिलता वही है जो अपने ललाट में लिखा है; दूसरे का लिखा नहीं मिलता। पृथ्वी में सिर और पैर को देखो, जिस तरह विधाता ने दिया है (सिर को रत्न और पैर को जूता)।

२. जैन प्राचीन इतिहास पुस्तकों में राज, बीज और दण्डक ये तीनों भाई लिखे मिलते हैं।

ब्याई, बछेरा हुआ, वह एक आंख से कांना हुआ, तब राजा को इन पर पूर्ण श्रद्धा हो गई। राजा ने इनको आदर पूर्वक पूछा कि आप कौन है और आपका निवास कहां है? तब उन्होंने अपना पुरातन समस्त वृत्तान्त कहा। उसे सुन राजा ने उन का पूर्ण सन्मान किया और बराबर का कुरब दिया। और वीजल को अपनी बहिन व्याह कर मौतक में बहुत सा द्रव्य दिया। जब हथलेवा छुड़ाया जाने लगा उस समय वीजल ने वह बछेरा मांगा। मूलराज ने उसे वह दे दिया। वीजल ने उस बछेरे को शिक्षा देनी आरम्भ की। उस ने बछेरे को ऐसा तैयार किया कि चार प्रहर में वह १२० कोस चला जाय। उस समय लाखा जाड़ेजा कच्छ का राजा था। वह शूकर को पूजनीय मानता था। वीजल उस घोड़े पर सवार हो पाटण से भुज नगर की सीमा मे जा, शूकर की शिकार कर पीछा प्रतिदिन पाटण आ जाता है। लोगों ने इस विचित्र घटना का वृत्तान्त लाखा को कहा। लाखा तो शूकर को पूजनीय समझता है और वीजल उसे मारता है। लाखा उस पर अति रुष्ठ हो कर वीजल के पीछे चला। परंतु उसे पहुंच न सका। ऐसी घटना कई वेर हो चुकी। वीजल तो शूकर की शिकार कर चार प्रहर में पाटण से ६० कोस जाकर पीछा वही आ जाता है। लाखा सूर की बाहर चढ़ उसे पकड़ने का प्रयत्न करता है परतु उसे वह पहुंच नही सकता है। मूलराज ने वीजड़ को मना किया कि तुम ऐसा मत करो। लाखा प्रबल है, हमारे उस के साथ तुम्हारे निमित्त शत्रुता हो जायगी। परंतु वीजल ने नहीं माना। वह तो वैसा ही करता रहा। अन्त में लाखा ने यह विचार किया कि किसी तरह इस का यह घोड़ा ले लेना चाहिये। यह घोड़े के बल उपद्रव करता है। उस ने घोड़ा छीन लेने के लिये अनेक उपाय किये परंतु एक भी सफल नहीं हुआ। तब लाखा ने यह काण्ड रचा कि अपनी बहिन वीजल को व्याह दी। वीजल को लाखा पर विश्वास हो गया कि अब यह हमारे साथ दुष्ट व्यवहार नहीं करेगा। वह लाखा के यहां पाहुना हो कर जाता है, दो दो चार चार दिन वहां रहता है, ससुराल के स्वर्ग सुख का अनुभव करता है। लाखा की दृष्टि उसी घोड़े पर है, उसने अनेक छल बल किये कि किसी तरह घोड़ा हाथ लग जाय, परन्तु वीजल इतना सावधान रहता है कि लाखा की एक न चली। तब उसने अन्त में अपने अन्तःकरण में पाप की वृत्ति को स्थान दिया। उसने अवसर देख कर विश्वस्त वीजल को मार कर घोड़ा ले लिया। वीजल की स्त्री लाखा की बहिन के गर्भ था। उस के पुत्र हुआ। उस का नाम राखायच रखा गया। राखायच ननिहार में जनमा था वह वहां रहता है। और वहां उसका भरण पोषण होता है।

लाखा ने वीजल को मार कर जो घोड़ा लिया था उस पर स्वयं सवार होता है और उस घोड़े के वीज से जो वछेरे होते हैं वे अपने सरदारों को दिये जाते हैं। अव लाखा उस घोड़े पर सवार हो पूर्व वैर के कारण पाटण पर धावा करता है और मूलराज को सताता है। मूलराज महाविपत्ति में है और अष्ट प्रहर उसी विचार में पड़ा रहता है। एक दिन राखायच ने अपनी माता से पूछा कि मेरा स्थान कौन सा है? तव माता ने उसे समस्त पूर्व वृत्तान्त कहा। उस ने भी यह वार्ता अपने मन में रख ली। और मूलराज पर धावा करने का कारण भी समझ में आ गया। अव राखायच के मन में यह चिन्ता हुई कि वाप का वैर लेना चाहिये और मामा के मुँह में धूल डालना चाहिये। राखायच तवेले में जाता है और वछेरों को देख कर प्रशंसा करता है तव साहनी (तवेले का दारोगा) कहते हैं कि यह आप के पिता का प्रताप है। फिर उन्होंने पूछने पर पिछला सारा वृत्तान्त सविस्तर कह सुनाया। राखायच स्तब्ध हो गया। किसी से कुछ नहीं वोला। वहां से घर पर चला आया। लाखा राखायच को वड़े प्रेम से रखता था, सव लोगों पर राखायच का पूरा प्रभाव था। उस ने लाखा के सवारी का घोडा रात्रि के समय तैयार कराय उस पर सवार हो पाटण की राह ली। पाटण में आकर चावड़ा मूलराज से मिला। मूलराज ने उस का अत्यन्त आदर सन्मान किया और राखायच को कहा कि लाखा तुम्हारे पिता का घातक है। यदि पितृघाती का वदला लेना हो और तुम्हारी इच्छा हो तो यहां रहिये। आप यहां रहें तो यह आप का घर है। राखायच उसी अभिप्राय से वहां आया था। राखायच मूलराज के यहां रहने लगा। इस वात से लाखा अप्रसन्न हुआ। मूलराज को अधिकतर सताने लगा। लाखा महावली है। मूलराज का वल उस की अपेक्षा अल्प है। मूलराज अति दुःखित हुआ। तव उस ने देवी के मन्दिर में जा कर धरना दिया। अनशन व्रत लेकर वैठ गया और मरने की ठान ली। तीसे दिन देवी ने उस का दृढ़ संकल्प देख कर उस से कहा कि "लाखा की मृत्यु कन्नौज के राठोड राव सीहा के हाथ से होनी है, उसे वह मारेगा। तव मूलराज ने देवी से निवेदन किया कि "वह कन्नौज से कव आवे? इतने में तो मैं मर मिटूंगा।" तव देवी ने मूलराज से कहा कि "जिस की मृत्यु जिस निमित्त से है वह तो उसी निमित्त से होवेगी, वह टल नहीं सकती। सीहा द्वारका यात्रा के निमित्त आवेगा तव तू ध्यान रखियो। लाखा का वध उसी के हाथ है। तव तक तू लाखा से वातचीत करता रह और समय टाल दे।" मूलराज ने वैसा ही किया। समय पर सीहा पाटण में आया मूलराज ने उस का पूर्ण स्वागत किया और विनय पूर्वक निज का दुःख निवेदन किया। तव सीहाजी ने कहा कि

अभी तो हम श्रीरणछोड़जी के दर्शन करने द्वारका जाते हैं। वहां से पीछे लौटते आप के पास आवेंगे। उस समय आप जैसा कहेंगे किया जायगा। सीहाजी से पाटण से द्वारका पहुँचे। श्रीरणछोड़जी का चरण-स्पर्श कर वहां से पीछे पाटण आये। मूलराज उन की प्रतीक्षा करता ही था। दोनों शामिल हो अपनी २ सेना ले लाखा पर चले। लाखा को ख़बर हुई कि मूलराज सेना ले कर आता है, लाखा भी अपनी सेना ले कर साम्हने आया; खेत बुहारा गया, परस्पर संग्राम होने लगा। उस समय रण भूमि के मध्य राखायच अपने घोड़े को डाल कर लाखा की सेना में जा कर वरछी चलाता है, वह इस विचार से कि उधर तो बाप का वैर और इधर स्वामी का काम। राखायच बड़ी वीरता से लड़ा और वही काम आया। तदनन्तर सीहा और लाखा के घमसान युद्ध हुआ। उस में लाखा सीहा के हाथ वि० सं० १२६० कार्तिक सुदि २ शुक्रवार को मारा गया। मूलराज की विजय हुई। लाखा को मार कर सीहाजी पीछे पाटण आये उस समय मूलराज ने सीहाजी को अपनी बहिन ब्याह दी और दहेज मे बहुत द्रव्य दिया। सीहाजी विवाह के अनन्तर कुछ दिन पाटण में रहे। फिर चावडी राणी को ले कन्नौज को चले। मार्ग में जाते खेड नगर के पास पहुंचे, वहां रानी रात्रि में स्वप्न में क्या देखती है, मेरे अन्त्र इन वृक्षों मे उलझेंगे। रानी की आंख खुली। रानी ने यह वार्ता सीहाजी से कही। तब सीहाजी ने रानी को निद्रा नहीं लेने दी। रानी को निद्रा आने लगी तो सीहाजी ने उसे तीन बार सचेत किया, तिसपर भी उस की आंख मुंदने लगी तो सीहाजी ने उस के तीन बेत मारी। और रानी से कहा कि तुम्हारे तीन पुत्र होवेंगे। वे इस देश के स्वामी होवेंगे। उन की संतति बहुत अधिक बढ़ेगी। मेरा दूसरा विवाह बंगाल के राजा की कन्या से हुआ है। वह रानी अत्यन्त उग्र स्वभाव की है। उस के चार पुत्र हैं। वे भी महाबलिष्ठ हैं। परन्तु मेरी प्रीति उस रानी से कम है। जब तक मैं जीवित हूं तब तक तो तुम्हारी ही आज्ञा चलेगी। परन्तु मेरे पीछे तुम्हारी ओर का मुझे बड़ा विचार है, क्योंकि वह रानी बहुत ही ज़ोरावर है और पट्टाधिकारी महानीच है। और तुम्हारी प्रकृति सादी सीधी है। तुम भोले देश की हो इस लिये मुझे इस बात की पूरी चिन्ता है। ऐसी २ बातें करते सीहाजी कन्नौज पहुंचे। सीहाजी के ७ पुत्र हुए जिन में से ४ बड़ी रानी के जो बंगाल के राजा के भानजे थे। वे तो कन्नौज में रहे और ३ चावड़ो के भानजे थे जिन में से

१ आसथानजी के तो मारवाड़ में खेडेचा राठौड़

१ सोनगजी के ईडर की भूमि में ईडरेचा राठौड़ और

१ अजजी के द्वारका में वाढ़ेला राठौड हुए।

उक्त ख्याति पुस्तक में भी कच्छ के राजा लाखा का वध सीहाजी के हाथ लिखा हुआ है। किन्तु यह भूल है। लाखा फूलाणी कच्छ का राजा था वह विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। जो अणहिलवाडे के सोलंकी राजा मूलराज प्रथम के हाथ से मारा गया था।

उक्त लाखा सीहा जी से तीन सौ पौने तीन सौ वर्ष पहले हुआ था। नैणसी और अन्य लेखक भी लाखा फूलाणी का सीहा जी के हाथ मारा जाना लिखते हैं परन्तु वह सीहाजी के हाथ से नहीं मारा गया था किन्तु अणहिलवाडा पाटण के पति सोलंकी मूलराज प्रथम के हाथ से मारा गया था जैसे हम ऊपर लिख चुके हैं। जैन सूरि हेमचन्द्राचार्य, जो सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह और उस के उत्तराधिकारी कुमारपाल के समय में विद्यमान था, अपने द्याश्रय काव्य में लिखता है कि चुलुक्य[1] राजा (मूलराज प्रथम) ने लोहे की सांग से लाखा को मारा।

और गुजरात के सोलंकी राजाओं के पुरोहित महाकवि सोमेश्वर ने विक्रम संवत् १२७७ और १२९२ के मध्य काल में 'कीर्ति कौमुदी' नामक ऐतिहासिक पुस्तक की रचना की थी, जिस में गुजरात के सोलंकी राजाओं का वर्णन है, उस ने भी उसी की पुष्टि करते हुए यह लिखा[2] है कि महा भीषण संग्राम के अन्दर जिस मूलराज प्रथम ने कच्छ देश के राजा लक्ष (लाखा) को अपने बाणों का निशाना बनाया।

उसी प्रकार जैन सूरि मेरुतुङ्गाचार्य ने वि० सं० १३६१ (ई० सन १३०५) में 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ बनाया, जिस में अनेक ऐतिहासिक कथाओं का संग्रह है। उस में भी वही वार्त्ता लिखी है कि जिस[3] मूलराज प्रथम ने अपने प्रतापाग्नि में लक्ष होम

---

१ कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट्। (सर्ग ५ श्लो० १२७)

२ समराकुलशत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम्।
महेन्द्रकच्छभूपालं लक्षं लक्षीचकार यः॥

३ स्वप्रतापानले येन लक्षहोमं वितन्वता,
अजनि स्मरलक्षाणां याप्यावग्रहनिग्रहः॥
कच्छपतिलक्ष्म्या सम्माधिक लम्बनाल मायातम्।
समरसागरमध्ये धीवरता दर्शिता येन॥'
कवि ने कविता में श्लेष रक्खा है, परन्तु उस का इतिहास में उपयोग नहीं।

करते हुए कच्छ देश के पति लक्ष (लाखा) को मारा।

वैसे ही कच्छी भाषा की प्राचीन कविता मे भी ऐसा ही लिखा मिलता है कि "लाखा[1] फूलाणी ने अभिमान किया किंतु वह लड़ाई में मूलराज के हाथ मारा गया"।

और गुजराती प्राचीन कविता में लाखा के जन्म और मृत्यु का वृत्तान्त लिखते हुये कवि ने इस प्रकार लिखा है कि शक[2] संवत् ७७७ (वि० सं० ९१२, ई० सन् ८५६) श्रावण सुदि सप्तमी को सोनल रानी के गर्भ से लाखा का जन्म हुआ और शक संवत् ९०१ (वि० सं० १०३६ ई० सन् ९८०) कार्तिक सुदि अष्टमी शुक्रवार के दिन वह सोलकी मूलराज के हाथ से मारा गया।

इन समस्त पुस्तकों में लाखा का मारा जाना मूलराज के हाथ से लिखा है। उस के साथ गुजराती कविता के पद्य मे मूलराज को सेनसिंघ की सहायता मिलना भी लिखा है "सेनसिंघ आशरे"। परंतु उस का परिचय नही कराया कि यह सेनसिंघ किस वश का और कहां का था ? मारवाड़ की ख्यातें लिखने वालों ने उक्त सेनसिंघ को सीहा समझ लिया है। ऐसा करने मे कदाचित् उन्होने प्रथम तो 'सेनसिंघ' इस शब्दों को उलट पुलट कर के 'सिंघसेन' समझा हो। और कविता में वैसा हुआ भी करता है। तदनन्तर 'सिंघ' का पर्याय 'सीहा' ले लिया। बस काम बन गया कि सीहा ने लाखा को मारा। परंतु केवल सीहा नाम की संगति हो जाने से काम नहीं बनता। समय भी सीहा और लाखा दोनो का एक होना चाहिये, वह बिल्कुल एक नही है। दोनो के मध्य में तीन सौ, पौने तीन सौ, वर्ष का अन्तर

---

१ अची फूलांणी फेरथोरो, रारो मांडांणूं।
मूलराज सांग ऊख थी, लाखो मारांणूं॥

२ शाके सात सतोतरे (७७७) (शुद) सातम सावण मास।
सोनल लाखो जनमियो, सूरज जोत प्रकास॥

छप्पय

सा के नव एक (९०१) मे, मास कातिक्क निरंतर,
पिता वैर छल ग्रहे साहड़ (स) दाखे अत सद्धर।
पड़े समा* सौ पनर (१५००) पड़े सोलंकी सौ खट (६००),
सो ओगणीस (१९००) चावड़ा, मुवा राजा रत्तण वट।
पातले गांवां मंगल गई हाधमल (?) सेनसिंघ ना आशरे,
आठमे पख शुक्रवानरो, मूलराज हाथ लाखो मरे॥

---

* समा जाड़ेचा की एक शाख है।

है। सीहा का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का आरम्भ है और लाखा का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी का प्रथम भाग है। यद्यपि उक्त लाखा का शिलालेख नहीं मिला है परंतु उस के समकालीन मूलराज सोलंकी के ताम्रपत्र वि० सं० १०३० और १०५१ (ई० सन् ९७३-९९४) के मिले हैं जिन से उस के प्रतिस्पर्द्धी लाखा का समय वही समझा जा सकता है। जब लाखा और सीहा के समय में तीन सौ वर्ष का अन्तर है तब हमारे सीहाजी के साथ लाखा फुलांणी और सोलंकी मूलराज प्रथम को जोड देना बड़ी भारी भूल है। और यह भूल गुजराती कविता में लिखे हुए 'सेनसिंघ' शब्द में सीहा का पर्यायवाचक 'सिंघ' शब्द मिल जाने से हुई है, ऐसा प्रतीत होता है। वास्तव में सीहाजी के समय में कच्छ देश का राजा लाखा फूलांणी नहीं था; किंतु जैसलमेर का रावल लाखणसी था, जिस के गद्दी बैठने का संवत् जैसलमेर की ख्यात में वि० सं० १३०९ लिखा मिलता है। यह लाखणसी पागल सा था जो रात्रि के समय शृगालों का शब्द सुन, उन्हें ठंढ से कष्ट पाते चिल्लाते हैं ऐसा समझ कर उन के लिये कपड़ों का प्रवन्ध करता था। उस लाखणसी का राज्य वहुत दूर तक चला गया था। पाली के समीप सोनई नाम का एक गांव है जो लाखा के संवन्ध से 'लाखा की सोनेई' इस नाम से पुकारा जाता है। जिस से पाया जाता है कि उस का राज्य वहां तक था। वह गांव पाली के समीप आ गया है और सीहाजी पाली के नियासी पल्लीवाल ब्राह्मणों की रक्षा के निमित्त पाली में रहते थे; दोनों की सीमा सटी हुई होने से उस के और सीहाजी के परस्पर युद्ध हुआ हो और उसमें सीहाजी के हाथ से रावल लाखा मारा गया हो तो संभव है। ख्यात वालों ने लाखा फूलांणी और लाखा रावल दोनों का नाम एक होने से लाखा रावल के स्थान में लाखा फूलांणी को लिख दिया हो तो कुछ असंभव नहीं। और उसी लाखा फूलाणी के समकालीन होने से उस के साथ मूलराज सोलंकी को भी जोड दिया हो, ऐसा प्रतीत होता है। और मूलराज का लाखा को मारने का कारण गुजराती कविता में पिता का वैर लेना लिखा है, परतु हेमचन्द्राचार्य द्वयाश्रय काव्य में लिखते हैं कि "सौराष्ट्र देश के राजा ग्रहरिपु ने, जो जाति का आभीर था, मूलराज के पास दूत भेज कर कहलाया कि तुम ब्राह्मणों का कहना मान कर हम से विरोध करते हो यह उचित नहीं है, परंतु मूलराज ब्राह्मणों की रक्षा करने और अधम को उठा देने के लिये ग्रहरिपु पर चढ कर गया उस समय उस का मित्र कच्छ देश का राजा लाखा उसकी सहायता के निमित्त आया वह युद्ध में मूलराज के हाथ मारा गया।" जो विश्वास योग्य है।

इस युद्ध का समय गुजराती कविता में शक संवत् ९०१ (वि०

सं० १०३६, ई० सन् ९७६) लिखा है वह यथार्थ प्रतीत होता है। क्योंकि मूलराज संवत् १०१७ मे पाटण के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था और संवत् १०५४ के क़रीब मरा था।

कर्नल टॉड साहिब ई० सन् ९३१ (वि० सं० ९८७) में और फार्वस साहिब उस से ग्यारह वर्ष पीछे ई० सन् ९४२ (वि० स० ९९८) मे मूलराज का राज्य पाना लिखते हैं। और पिछले लेखक टॉड साहिब के समय को सत्य न मान कर फार्वस साहिब के लिखे हुए समय को यथार्थ मानते हैं। परंतु फार्वस साहब का निर्णीत समय भी यथार्थ प्रतीत नही होता। क्योंकि उक्त साहब ने यह भी लिखा है कि ई० सन् ९३५ (वि० सं० ९९१) में चावड़ा वंश का अन्तिम राजा सामन्तसिंह (भूयगड देव) का वि० सं० ९९० (ई० सन् ९३४) पौष सुदि १ को गद्दी बैठना और सत्ताईस २७ वर्ष राज्य करना लिखा है। उस हिसाब से मूलराज का वि० सं० १०१७ में राज्य पाना सिद्ध होता है और यही समय मानने योग्य है।

मारवाड़ की ख्यातों मे सीहाजी का मारवाड़ की ओर आना संवत् १२१२ में लिखा है और वे उन को कन्नौज के महाराज जयचन्द्र के प्रपौत्र भी मानते हैं। और जयचन्द्र संवत् १२५० में स्वर्ग को सिधारे यह निश्चय हो गया है, तो उन के प्रपौत्र सीहाजी का उक्त समय में मारवाड़ की ओर आना किसी प्रकार नही संभवता। यह संवतो की गोल माल पृथ्वीराजरासा के सबब से हुई है। पृथ्वीराजरासा में पृथ्वीराज का जन्म संवत् १११५ में लिख कर उस से छत्तीसवे वर्ष में उस का संयोगिता के निमित्त कन्नौज के राजा जयचन्द्र के साथ युद्ध करना लिखा है। पृथ्वीराजरासा के हिसाब से यह युद्ध संवत् ११४६ में होना चाहिये। और उस समय पृथ्वीराज और जयचन्द्र का जन्म भी नही हुआ था। यह युद्ध संवत् १२४६ में संभवता है। इस समय मे और पृथ्वीराजरासा के समय मे सौ १०० वर्ष का अन्तर पड़ता है। वही १०० वर्ष का अन्तर राजपूताना के समस्त इतिहास ग्रन्थो मे देखने मे आता है। मारवाड़ की ख्यातो मे सीहाजी का मारवाड़ मे आना संवत् १२१२ मे लिखा है, वह इस हिसाब से संवत् १३१२ में होना चाहिये। परंतु हमारे मत मे सीहाजी का मारवाड़ में आना सवत् १३०० मे हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। इस मत की पुष्टि इस से होती है कि शमसुद्दीन अलतमश् ने संवत् १२७१ मे राठोड़ो को खोर-से निकाला तो वे कुछ समय तक तो उसी देश में, जहां जिस को सुविधा मिली, ठहरे। फिर वहां अपना टिकाव होता न देख कर जिस को जो राह मिली उधर ही चल दिये। उन में से सीहाजी पश्चिम की ओर चले आये। इन का शिलालेख मारवाड मे पाली नगर के समीप गांव बीठू मे सवत् १३३० का मिला है।

उस मे उन के पीछे सोलंकी जाति की उन की स्त्री पार्वती का सती होना लिखा है। मारवाड़ की समस्त इतिहास पुस्तकों मे भी सीहाजी की स्त्री सोलकिनी लिखी मिलती है। और टॉड साहिब भी वैसा ही कहते हैं। वे उसे कोलूगढ़ के सोलंकी को पुत्री बतलाते है। और मारवाड की बहुत सी ख्याति पुस्तकों मे अणहिलपाटण के स्वामी सोलकी मूलराज की कन्या का विवाह सीहाजी के साथ लिख कर उस के साथ सीहाजी के प्रसग मे लाखा फूलांणी की कथा जोड दी गई है जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं और उस का खण्डन भी कर चुके हैं। जिस से वह सोलकिनी मूलराज प्रथम की कन्या सिद्ध होती है। एक प्राचीन ख्यात मे पाटण के स्वामी सोलकी मूलराज की पुत्री का नाम राजलदे लिख कर उस के पुत्र आसथान और अज, और दूसरी रानी चावडा वाघराव के पुत्र धौल की पुत्री सोभागदे लिखकर उस के पुत्र सोनग और भीम लिखे गये हैं। मूता नैणसी सीहाजी की सोलकिनी स्त्री को सोलकी मूलराज की कन्या नहीं, किंतु सोलकी सिद्धराव जयसिह की कन्या लिखता है। (देखो हस्तलिखित पुस्तक पत्र १६७)। और उस का नाम न लिख कर उस का पुत्र आसथान कहता है। और दूसरी स्त्री वाघनाथ के पुत्र मूलराज चावड़े की बेटी बतला कर उस के पुत्र सोनग और अज लिखता है।

उक्त समस्त लेखों में से नैणसी का लिखना यथार्थ प्रतीत होता है। क्योंकि पाटण के स्वामी सोलकी सिद्धराज जयसिह दूसरे का, जिस का दूसरा नाम जयन्तसिह भी लिखा है, ताम्रपत्र[1] संवत् १२८० का मिला है। यह सीहाजी के समकालीन होने से उस की पुत्री के साथ सीहाजी का विवाह-संबन्ध होने का सर्वथा संभव है। नैणसी सीहाजी का दूसरा विवाह चावड़ा मूलराज की कन्या के साथ होना लिखता है, वह भी हो सकता है। क्योंकि उस समय चावडा जाति के सामन्तों का भी वहां होना संभावित है। नैणसी सीहाजी के समकालीन मूलराज को चावडा लिखता है और अन्य लेखक उक्त मूल-राज को सोलंकी लिखते है। परतु उक्त मूलराज को सोलंकी लिखना और उस की कन्या के साथ सीहाजी का विवाह संबन्ध लिखना भूल है। क्योंकि पाटण के सोलकियों के लेखों मे दो मूलराज होने का पता चलता है। जिनमें से प्रथम का समय संवत् १०१७ से १०५२ तक और दूसरे का समय संवत् १२३३ से १२३५ तक, जो बाल-मूलराज के पद से प्रसिद्ध था। ये दोनों सीहाजी के समकालीन न होने से उन में से किसी की पुत्री के साथ सीहाजी का विवाह संबन्ध होना सर्वथा असंभव है। और सोलंकी सिद्धराज जयसिंह दूसरा

---

१ देखो इ० ए० वो० ६ पृ० १६६.

सीहाजी के समकालीन होने से उस की पुत्री के साथ सीहाजी का विवाह सवन्ध होना, जैसा कि नैणसी ने लिखा है, यथार्थ जाना जाता है। और सीहाजी का दूसरा विवाह नैणसी ने चावड़ा मूलराज को भ्रान्ति से सोलंकी मूलराज समझ कर वैसा लिख दिया है। भ्रान्ति होने का कारण ऐसा जान पड़ता है कि पाटण के स्वामी सोलकी दोनो मूलराज अति प्रसिद्ध थे, और अधिकतर प्रसिद्ध वाले पुरुष पर ही दृष्टि पड़ती है ; उसी कारण से अन्य लेखकों ने भ्रम मे पड़ कर चावड़ा मूलराज के स्थान मे सोलकी मूलराज का नाम लिख दिया है। सोलकी जाति के दोनो मूलराज सीहाजी के समकालीन नहीं थे। जिस से स्पष्ट है कि जिस मूलराज की कन्या से सीहाजी का विवाह हुआ था, वह, सोलकी नहीं, चावड़ा था।

नैणसी के लेखानुसार सोलकी सिद्धराज जयसिंह द्वितीय की पुत्री का विवाह सीहाजी के साथ होने और उस का ताम्रपत्र संवत् १२८० का मिलने से सीहाजी का सवत् १२८० के मध्य मे पश्चिम की ओर आना सिद्ध होता है। और उस से सीहाजी के सवत् १३३० के लेख की दृढ़तर पुष्टि होती है। उक्त समय के शिलालेख का पोषक एक दूसरा शिलालेख और भी मिल गया है, जो उन के पौत्र का है। सीहाजी के पुत्र आस्थान, और आस्थान के पुत्र धूहड़। वह शिलालेख संवत् १३६६ का है और उस में ये अक्षर है "राठड आसथान पुत्र धूहड़"। यह शिलालेख भी मारवाड़ ही में पचपदरा परगना के गांव तींगड़ी मे मिला है। जहां पड़िहार राजपूतो के साथ युद्ध हुआ था, जिस में दोनों एक दूसरे के हाथ मारे गये थे। और एक हस्तलिखित ख्यात की प्राचीन पुस्तक मे आसथानजी स्वर्गवास संवत् १३४८ मे होना लिखा है, वह भी इसी को पुष्ट करता है। और इन सब प्रमाणों से नैणसी के लेख की पुष्टि होती है।

पहले लिख आये है कि सीहाजी द्वारका यात्रा को जाते मारवाड़ में आये थे। उन्होने पाली नगर के पल्ली वालो से कुछ सहायता पाने पर पाली मे निवास कर दिया था। पाली मे निवास करते सीहाजी ने खेड़ के गोहिलो की कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया था, और वहो अपना राज्य जमाने के विचार मे थे, उसी अर्से में मुसलमानो ने आकर पाली को लूटा। सीहाजी ने उन को युद्ध मे परास्त करके निकाल दिया। और वे पीछे लौट कर न आवे इस अभिप्राय से शत्रुओं का पीछा किया, गांव वीठू के पास जाते शत्रुओ से फिर

संग्राम हुआ। उस में सीहाजी शत्रुओं[1] के हाथ मारे गये। उन के साथ सोलंकी[2] जाति की उन की धर्म पत्नी पार्वती सती हुई। उस

---

१ आईन ए * अकबरी में सीहाजी का शमसाबाद में लड़ाई मे मारा जाना लिखा है परन्तु जो शिलालेख मारवाड के पाली परगना में मिला है, वह सीहाजी की रानी के सती होने का है। इस लिये शमसाबाद मे सीहाजी का मरना लिखना यथार्थ नहीं पाया जाता। और आईन ए अकबरी के लेखानुसार मुहणोत नैणसी भी सीहाजी का कन्नौज में देवलोक गमन लिखता है, वह शिलालेख से विरुद्ध होने से माननीय नहीं हो सकता।

२ टॉड साहिब सोलंकिनी रानी को कोलूगढ के अधिपति सोलंकी की कन्या कहते है और मारवाड की प्राचीन ख्याति मे सोलंकी मूलराज की कन्या लिखी है और उस का नाम राजलदे लिखा है। और मुहणोत नैणसी ने अपनी पुस्तक मे जहां उस ने बीकानेर के राजाओं का संक्षिप्त इतिहास लिखा है उस प्रकरण के आरम्भ में राव सीहाजी के तीन पुत्र लिखते हुए लिखा है:—"राव सीहाजी रै अतेवर सोलंकिणी सिद्धराज जैसिंघ री बेटी, तेरै बेटो आसथान १, दूसरो बीमाह चावडी सोभागदे मूलराज वाघनाथोतरी बेटी, जिण रै बेटो अज १ सोनग २।" (हस्तलिखित पुस्तक पत्र १८७)। सिद्धराज जैसिंघदेव सोलंकी दो हुए हैं। एक तो अणहिलवाड़ा पाटण के राजा कर्ण का पुत्र सिद्धराज जयसिंह। यह महाप्रतापी राजा हुआ था। उस का समय संवत् ११५० से ११९८ तक निश्चित हुआ है। उस के शिलालेख संवत् ११५० से ११९६ तक के मिले हैं। दूसरा सिद्धराज जयसिंह संवत् १२८० के आस पास हुआ था। वह भी अणहिलवाड़ा पाटण का राजा था। उस को अभिनव सिद्धराज कहते थे। उस का दानपत्र संवत् १२८० का इण्डियन† एण्टिक्केरी (Indian Antiquary) में छपा है। उस में लिखा है कि मूलराजदेव का उत्तराधिकारी भीमदेव और उस के अनन्तर उस के स्थान में दुर्दैव से नष्ट हुए गुर्जर भूमि के राज्य का उद्धारित करने वाला अणहिलपुर राजधानी में विराजमान श्री ‡ जयन्तसिंहदेव। उस मे जयसिंह के स्थान में

---

* आईन ए अकबरी अंग्रेज़ी अनुवाद ब्लाकमैन और कर्नल जेरेट्टकृत जि० २ पृ० २७१

† जिल्द ६ पृ० १९६

‡ "श्री मूलराजदेव पादानुध्यात महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक उमापतिवर लब्ध-प्रसाद.......... नारायणावतार श्री भीमदेव [: ×] तदनन्तरस्थाने महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक उमापतिवरलब्ध प्रसादसंपादित राज्य-लक्ष्मीस्वयंवर अत्यद्भुत प्रताप मार्त्तण्ड चौलुक्य कुलकल्प वल्लीविस्तारण होम म (सु) हु समय जलधिजनमग्न मेदिनीमण्डलोद्धरणमहावराह दुर्दैवदावानल निदग्ध गुर्ज्जरधरावीज प्ररोहणैकपर्जन्य एकाङ्गवीरेत्यादि समस्तविरुदावली समुपेत श्रीमदणहिलपुर राजधानीअधिष्टित अभिनवसिद्धराज श्रीमज्जयन्तसिंहदेव।"

विषय का सीहाजी का शिलालेख[1] संवत् १३३० का गांव बीठू मे मिला है। जो इस समय जोधपुर राज्य के महकमा तवारीख़ मे विद्यमान है। पाली में रोदावाव (वापी) के समीप एक पुराना चबूतरा है उसे वहां के लोग "सीहाजी का चबूतरा" कहते है। वहां कोई शिलालेख नहीं है, केवल किंवदन्ती मात्र है। शायद सीहाजी का स्मारक चिह्न दाह स्थान बीठू के सिवा पाली में भी ब्राह्मणों ने अथवा उनके पुत्रों ने स्थापित किया हो तो संभव है। ऐसी प्रथा[2] देखने में आती है कि जहां जिस पुरुष का निवास स्थान हो वहां भी दाहस्थान के अतिरिक्त उस का स्मारक चिह्न स्थापित किया जाता है।

११—आसथान—अपने पिता के समान ये भी पाली के ब्राह्मणो से लाग भाग ले कर पाली में रहे और ब्राह्मणों की रक्षा करते रहे। मुहणोत नैणसी लिखता है कि आसथान आदि सीहा के पुत्र प्रथम अणहिलवाड़ा पाटण में गये, वहां से ईडर और ईडर से पाली गये। सीहाजी का स्वर्गवास होने पर उन का ज्येष्ठ पुत्र कन्नौज में गद्दी बैठा; और उन

जयन्तसिंह लिखा है। जयन्तसिंह और जयसिंह नाम एक ही है, भिन्न नहीं; क्यों कि दूसरी प्लेट की पक्ति २१ में अन्त में हस्ताक्षर के स्थान मे 'जयसिंह' लिखा* है। जैसे कन्नौज के प्रसिद्ध राठौड़ राजा जयचन्द्रजी का नाम किसी ने जयचन्द्र, किसी ने जयन्तचन्द्र और किसी ने जैत्रचन्द्र भी लिखा है। दानपत्रो मे प्रायः जयचन्द्र नाम मिलता है; 'रम्भामञ्जरी' नाटिका में जैत्रचन्द्र और 'राजशेखर' कार ने जयन्तचन्द्र लिखा है। हमारा मुहणोत नैणसी का जयसिंह, दानपत्रो मे जयन्तसिंह और जयसिंह दोनों नामों से लिखा गया है और उसके साथ 'अभिनव' सिद्धराज इस लिये लिखा गया है कि पहले सिद्धराज जयसिह इस वंश मे हो चुका था। इस लिये दूसरे जयसिंह के साथ 'अभिनव' पद लगाया गया है। अभिनव अर्थात् नया।

१ "ओं ॥ संवछ (त्) १३३० कार्तिक वदि १२ सोमवारे रठड़ा श्री सेतकवरसुतु सीहा देवलाके गत सोलंक पार्वतिः तस्यार्थे देवली स्थापिता क (का) रापिव (ता, सुभं भवतु (:) ॥"

२ जोधपुर राज्य के प्रधान मंत्री कूंपावत राजसिंहजी का अन्तकाल संवत् १७८७ में जोधपुर में हो गया था, उन की दाहक्रिया कागा नामक स्थान मे हुई थी। जहां उन का स्मारक चिह्न छतरी और शिलालेख सहित मूर्ति स्थापित की गई थी, जा अभी तक वहां विद्यमान है। और उन के असली निवास स्थान ठिकाने आसोप में भी शिलालेख सहित मूर्ति स्थापित की गई थी। वह भी वहां विद्यमान है।

---

* "श्री मज्जयसिह देवस्य।"

की स्त्री चावड़ी अपने छोटे बालकों को ले कर पीहर चली आई। ये यहां (पाटण में) मामा के घर रहते हैं। एक दिन ये तीनों भाई गेंद (पोलो) खेलने मैदान में गये, खेल की गेंद एक वृद्धा के पैरों में जा पड़ी जो—कंडे बीन रही थी। तब आसथान ने उस के समीप जाकर वृद्धा से कहा कि हमारी गेंद तो दे दो। तब कंडे चुगती हुई वृद्धा ने आसथान से कहा कि 'मेरे मस्तक पर भार है, तुम ही घोड़े से नीचे उतर कर ले लो।' तब आसथान ने घोड़े को आगे बढ़ाया, वृद्धा के घोड़े का धक्का लग जाने से उस के कंडे बिखर गये और वह भी गिर गई। तब वृद्धा ने कहा कि "हमारे ही घरों में तो परवरिश पाई और हमारे ही ऊपर स्वामित्व करने लगे। मामा के टुकड़े (अन्न) खा कर ही तो बड़े हुए हो और मामा के लोक को ही मारते हो। अपने तो कोई स्थान नही।" इतना सुन कर तीनों भाई घर पर आये और अपनी माता से पूछा कि "माता! हम कौन हैं? हमारा पिता कहां है? हमारा भरण-पोषण कहां होता है? लोग कहते हैं कि अपने तो कोई ठौर नहीं।" तब माता ने कहा कि लोग बकते रहैं। परतु इन्हों ने अत्यन्त आग्रह किया, तब माता ने कहा कि "तुम ननिहार में परवरिश पाते हो।' तब आसथान ने तुरंत मामा के निकट जा कर आज्ञा मांगी कि हम जाना चाहते हैं, आज्ञा दीजिये। मामा ने उन को बहुत समझाया परतु आसथान वहां नहीं रहा। वहां से रवाना होकर ईडर गया। वहां से चल कर पाली जा कर डेरा किया।

पाली में कान्हा नाम का मेर स्वामी है। वह प्रजा से कर भी लेता है और अन्याय भी करता है। उस ने एक यह नियम रख छोड़ा था कि जो कारी कन्या व्याही जाय वह प्रथम तीन दिन उसके महल में रहे। आसथानजी का डेरा एक ब्राह्मण के घर में था, उस की कन्या कारी पूर्ण तरुणी घर में रहती है, उसे देख कर आसथानजी ने ब्राह्मण से पूछा कि क्या यह विधवा है? तब ब्राह्मण ने कहा कि नहीं, यह अविवाहिता है। तब पूछा कि कारी क्यों? तब ब्राह्मण ने कहा कि "महाराज! यहां एक बडा अन्याय है, जो कारी कन्या व्याही जाती है उसे मेरों के सरदार के घर भेजना पड़ता है; इस अत्याचार के भय से मैंने इस का विवाह नहीं किया है।" तब आसथानजी ने पूछा कि मेर के पास आदमी कितने हैं? ब्राह्मण ने कहा कि सब मिला कर २०००० होंगे। तब आसथानजी ने कहा कि तू अपनी बेटी का विवाह कर, हम देख लेंगे। ब्राह्मण ने उस के विवाह का दिन नियत कर विवाह किया। तुरत कान्हा मेर के मनुष्य आये, ब्राह्मण की कन्या को रथ में बिठा कर ले गये। जब वह रथ आसथानजी के डेरे के समीप पहुंचा लडकी रथ में से कूद कर आसथानजी के डेरे में चली गई।

मेर के मनुष्य बलात्कार करने लगे तब आसथानजी के मनुष्यों ने उन्हें मार हटाया। यह खबर कान्हा को मिली तब वह सेना लेकर आसथानजी के डेरे पर आया। आसथानजी वहां से निकल गये। कान्हा ने पाली को लूटा; लुटेरे लोग धन माल लेकर चलते हुए। कान्हा थोडे से मनुष्यों से पीछे रह गया तब आसथानजी अपने ५०० मनुष्यों के साथ उस के पास पहुंचे और युद्ध के लिये ललकारा। परस्पर घोर संग्राम हुआ; उस में मेरों का सरदार कान्हा मारा गया। तब आसथानजी ने उन लुटेरों का पीछा किया, जो धन माल लेकर चल पड़े थे; मेर जो जहां मिला उसे मार धन माल पीछा लिया। इस प्रकार ८४ गांवों के साथ पाली ले, उस के पार्श्ववर्ती भाद्राजण का प्रान्त भी ले लिया। उस के पीछे भी ८४ गांव थे। जो चौरासी कहलाता था।

एक ख्याति पुस्तक में ऐसा लिखा मिलता है कि आसथान, अज और सोनग इन तीनों पुत्रों सहित चावडी जी कन्नौज से रवाना हो पाटण को चली। इनके पास घोडे और राजपूत ६०-७० थे। पाटण के मार्ग में पाली नगर पड़ता है, इन्हों ने पाली के तालाब पर डेरा किया। पाली के लोगो ने उन से कहा कि आप यहां न ठहरें, नगर में आ जायं। क्योंकि यहां लुटेरे बहुत हैं, रात्रि में आप को लूट लेंगे। तब इन्होने उन को कहा कि आप हमारी चिन्ता नही करे, हम राजपूत है, लुटेरे हमारे पास क्या लेंगे ? इन्होंने अपना डेरा वहीं रखा। रात्रि मे लुटेरे दल बांध कर आये। ये भी सावधान थे। परस्पर सग्राम हुआ, जिस मे बहुत से लुटेरे गिरासिये मारे गये, और कुछ भाग गये। तीस चालीस घोड़े इस युद्ध में इन के हाथ लगे। प्रातःकाल नगर के लोगो ने आकर देखा तो लुटेरों की लाशे पड़ी हैं और उन के घोड़े भी इन के पास है। इस घटना से नगर के लोगों को विश्वास हो गया कि ये बड़े घराने के बलिष्ठ राजपूत हैं। नगर निवासियों ने इन से पूछा कि आप कौन है, कहाँ से आये है ? तब इन्होंने अपना समस्त वृत्तान्त उनको कहा। इन की वार्ता से वे लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और इन से कहा कि हमको ये गिरासिया लोग बहुत कष्ट देते है, हम इन के मारे दुःखी हैं। यदि तुम हमारी रक्षा करने में सहायता करो तो हम आपको निर्वाह के लिये कुछ द्रव्य देना नियत कर दें जिस से आप का गुज़र और हमारी रक्षा हो जाय। इन्होंने उनका कथन स्वीकृत किया और वहीं निवास कर दिया। पाली में निवास करते इन्होने गोहिलों और डाभियों को

(१) उक्त पुस्तक मे तीन अंक हैं चौथा नहीं है जगह छूटी हुई है। ऊपर का चौथा अक कुछ भी होगा।

मार कर अपना दोष जमाया। तदनन्तर गोहिलों को मार कर खेड़ का राज्य लिया। और थली (निर्जल मरुभूमि) में ईंदों और पड़िहारों को दबा कर अपने आश्रित करके सिवाने पर भी अपना दख़ल करना आरम्भ किया।

इस ख्याति पुस्तक मे आसथानजी का जन्म संवत् १२६ लिख कर उनके स्वर्गवास का संवत् १३४८ वैशाख सुदि १५ लिखा है। और उसके साथ यह भी लिखा है कि बादशाह फीरोजशाह मक्के की यात्रा को जाता पाली आया था, वहाँ उसने अत्याचार किया और पाली को लूटा, तब आसथान जी ने खेड़ से आकर पाली के तालाब पर युद्ध किया। उसी युद्ध मे वे १४० सुभटों के साथ स्वर्ग को सिधारे। देहली का बादशाह जलालुद्दीन फीरोज खिलजी सवत् १३४५ में गद्दी बैठा और सवत् १३५२ तक सात वर्ष राज्य किया। इस विषय का यह प्राचीन छन्द है :—

कवित्त।

पीरोजसाह पातसाह जात मक्का री जावै।
पाली पत्र पुर लुटै धन धन लोक वधावै॥
आसथान सुण खेड सूं तुरत त्वद बाहर आवै।
रतवासो दे राज भांजै अर वद छुड़ावै।
तेरे सौ संवत अडतालै वरस पूनम वैसाखी पवित।
आसथान काँप आयो सधर सात वीसो सुभटां सहित॥ १॥

पड़ राठौड पचास सात सोलकी सुकरता।
पड़ पनरै पंवार दस्स पड़िहार वदीता॥
भाटी पड़ रिण आठ आठ गेलोत इताई।
पडे पँचोली पाँच वेहद त्यां खाग वजाई॥
सांखला सात दस वाणेक जोगा वी परता (?)
सात वीस सगराम सिर आसथान राव संग पड़े पता (?) ॥२॥

पाली के वायव्य कोण में खेड़ का राज्य है। गोहिल राजपूत वहां के मालिक हैं, डाभी राजपूत उन के मन्त्री हैं। डाभियों के मनुष्य बहुत है, उन का बड़ा ज़ोर है। जब मन्त्री दल बल पकड जाता है, स्वामी नाम मात्र का रह जाता है। इसी कारण खेड़ के अधीश गोहिलों के और मन्त्री डाभी राजपूतों के आपस में वैमनस्य हो गया। डाभी राजपूत, जो गोहिलों के मन्त्री थे, आ कर आसथान जी से मिले। और कहा कि हिम्मत हो तो हम खेड़ का राज्य दिलवा दें। ये भी यही चाहते थे। आसा नाम के डाभी से आसथान जी से वार्तालाप हुआ: उस में यह निश्चय हुआ कि गोहिल और डाभी दोनों अलग २ बैठ जांय। जिस से भ्रान्ति हो कर किसी प्रकार की कार्य में बाधा न

हो। डाभियो ने इस बात को स्वीकृत किया और डाभी आसा ने आसथान जी से कह दिया कि आप मन में किसी प्रकार की भ्रान्ति न रक्खें, हम सब उचित प्रबंध कर लेंगे। जैसा आपने कहा है वैसा ही हम कर देंगे। हम लोग एक बाजू बाईं ओर रहेंगे; और गोहिल दाहिनी ओर। उसी समय से इस विषय की मारवाड़ में किंवदन्ती चली आती है "डाभी डावा नै गोहिल जीवणा।" उस समय खेड़ का स्वामी कल्याणसिंह का पुत्र प्रतापसिंह[1] था। उसने आसथान जी को बल पकड़ते देख कर मन मे विचार किया कि राठौड़ महा पराक्रमी है; सिर पर आ खड़े हुए हैं, इन से लडने में तो कुछ लाभ नही दीखता रसाई कर ली जाय तो कुछ दिन टिक सकते हैं। इस प्रकार का विचार कर प्रतापसिंह ने अपने मन्त्री डाभी को कहा कि तुम राव आसथान जी के पास जावो; वे अपने सबन्धी हैं, उन को कहो कि आप हमारे प्रिय संबन्धी हैं; हमारे घर पधारें; यदि वे स्वीकार करें तो खेड़ ले आओ। परन्तु प्रथम हमें सूचना कर दो, जिस से उन के स्वागत के लिये सब प्रकार की सामग्री तैयार कर ली जाय। डाभी को यह बहुत अच्छा अवसर मिल गया। उस ने आसथान जी के पास जाकर प्रकट मे तो वह वार्ता कही, जो गोहिल राजा ने कही थी; और अन्तरङ्ग में अपना सर्व हार्द प्रकट करके वह तजवीज बनाई, जिस से गोहिलो का नाश हो। डाभी ने गोहिल राजा के पास मनुष्य भेज कर कहलाया कि आसथान जी खेड़ आते हैं, आप आतिथ्य के लिये तैयारी करें। गोहिल राजा इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ। और उस ने बड़े उत्साह और प्रेम से मिहमानी की तैयारी की। इधर से आसथान जी खेड़ जाने के लिये सज्ज हुए उस समय डाभी गोहिल राजा के पास गया और कहा कि आसथान जी आते हैं। समय पर बैठक का विचार न हो सकेगा, अपने बैठक का विचार पहले कर लेना चाहिये। गोहिल राजा ने कहा, बहुत अच्छा। तब डाभी ने कहा कि आप हमारे मालिक हैं; हम आप के चाकर हैं। हम आप की बराबरी नही कर सकते। आप दाहिनी बाजू बैठें और हम बाईं तर्फ खड़े रहें। प्रथम आसथान जी आप से मिले, फिर हम उन से मिलें, ऐसा होगा तो उचित होगा। गोहिल राजा ने स्वीकार किया। उसी प्रकार का सब प्रबन्ध हुआ। आसथान जी खेड़ मे पहुंचे। उनका यथेष्ट स्वागत किया गया। गोहिल राजा के एक कन्या अति सुन्दर थी; परस्पर वार्तालाप होते आसथान जी ने गोहिल राजा से उस कन्या के लिये कहा तो राजा ने कुछ शिथिलता प्रकट की जिस से आसथान जी क्रुद्ध हुए; और गोहिल राजा से कहा कि आप अपनी पुत्री हमें व्याहेंगे तो हम आप की मिहमानी लेंगे। तिस पर गोहिल राजा भी तन गया। आपस

---

१ कर्नल टॉड साहिब महेशदास लिखते हैं।

में खिचाखिंची हो गई। फिर क्या था ? आसथान जी को तो कोई वहाना लेना था, वात तो पहले निश्चित हो चुकी थी। राठौड़ एकदम गोहिलो पर टूट पड़े। डाभी देखते रहे। खेड का स्वामी गोहिल प्रतापसिंह मारा गया और उस के साथ अन्य भी बहुत से गोहिल सरदार मारे गये। और कितनेक भाग कर काठियावाड़ की ओर चले गये। जिन के वंशज इस समय घोघा, ध्रांगधड़ा और भावनगर आदि के राजा है। आसथान जी ने खेड ले लिया। इस विषय का डिंगल (वार्डिक) का एक प्राचीन दोहा है। उसका सारांश यह है कि 'आसथान जी[1] ने आसा डाभी को अपना वनाय, उसे गले लगाय, खड्ग के वल गोहिलो का वल तोड, उन को मार खेड़ की भूमि ली।"

आसथान जी खेड में रहे। और अपने छोटे भाई सोनग को ईडर का राज्य ले दिया। उस समय ईडर[2] पर सांवलिया सोड नामी भील का कब्जा था। उसे मार कर ईडर का राज्य प्राप्त किया था। सोनग के वंशज ईडरिया[3] राठौड़ कहलाते है। इस समय ईडर के राजा जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह जी के वंशज है। उस से पहले सोनग[4] के वंशज थे। उस से छोटा भाई अज द्वारका के समीप

---

१ "गोहिल गल हथियेह, खेड धरा खागां मुहै।
आसो अपणायेह, गल भरियो वल गजियौ॥"

२ कर्नल टॉड साहिव ईडर पर डाभी वंशी किसी एक राजा का अधिकार करना लिखते है, परन्तु गुजरात राजस्थान के कर्ता ने ईडर के इतिहास (पृ० ६४) में सांवलिया सोड का अधिकार लिखा है।

३—कर्नल टॉड साहिव सोनग के वंशजों को हतौंडिया राठौड़ कहते हैं; परन्तु हतौंडिया तो हत्थूंडी (हस्तिकुण्डी) नगरी के संवन्ध से कहलाये है जिस हस्तिकुण्डी के राजा राष्ट्रकूट थे। उन्हीं के वंशज हतौंडिया राठौड़ हैं। हस्तिकुण्डी के राजा धवल का शिलालेख सम्वत् १०५३ का मारवाड़ के गोडवाड़ प्रान्त में गांव वीजापुर में मिला है। (ए० इं० जि० १० पृ० १७)

४ —गुजरात राजस्थान पुस्तक में सोनग का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है:—सोनग कडी परगना के समेत्रा गांव में आधिपत्य जमा कर रहने लगा था। उस समय ईडर का अधिपति सामलिया सोड नाम का एक भील था। वह महा अन्यायी और अत्याचारी था। प्रजा को सदा कष्ट देता था। उस के दरबार में एक नागर ब्राह्मण कर्मचारी था। उस की पुत्री अति रूपवती थी। एक दिन वह सामलिया सोड की दृष्टि में आ गई। उस सुकुमारी ब्राह्मण कुमारी के रूप से मोहित होकर उस ने उस के पिता से कहा कि तुम अपनी कन्या हमें व्याह दो। ब्राह्मण राजा के ये वचन सुन अति आकुल हुआ। इस अनिवार्य विपत्ति के कारण शोक ग्रस्त हो कर ब्राह्मण ने विचार किया कि अब इस समय हमें क्या करना चाहिये।

ओखामण्डल में गया। उस ने वहां के चावड़ा राजा भोजराज[1] को मार कर अपना अधिकार कर लिया। अज के दो पुत्र हुए। वागा जी और वाढेल जी। वागा के वंशज तो वाजी राठौड़ और वाढेल के वंशज वाढेला राठौड़ कहलाते हैं।

यदि स्पष्ट रूप से नाही करूंगा तो यह बलात्कार पूर्वक ले लेगा और नीच को कन्या कैसे दी जाय? ऐसी महाविपत्ति में पड़े हुए ब्राह्मण ने यह उपाय सोचा कि अभी तो जैसे तैसे अवधि ले कर टाल देना चाहिये। समय पर जो होगा सो देखा जायगा। इस विचार से उस ने सामलिया से कहा कि मुझे आप की आज्ञा पालन करने में कोई आपत्ति नही है; परन्तु मुझे छः मास की अवधि मिलनी चाहिये। इतने में मैं विवाह की सामग्री तैयार कर लूं। सामलिया ने स्वीकार करके कहा कि बहुत अच्छा। अब वह नागर इस उपाय की खोज मे लगा कि उसे कोई ऐसा प्रबल पुरुष सहायक मिले कि जिस के द्वारा उसके धर्म की रक्षा हो वह इधर उधर भ्रमण करता राठौड़ सोनग के समीप समेत्रा मे आया। सोनग का नाम इस ने पहले सुन रक्खा था कि वह बड़ा वीर पुरुष है और नवीन राज्य संपादन की चिन्ता में है। उस ने सोनंग के समीप जाकर वार्तालाप किया। सोनंग का हार्द समझ कर उस ने सोनग से यह कहा कि हिम्मत हो तो मैं आप को नौ लाख रुपयों की आय का ईडर का राज्य दिलवा दूं। सोनग ने कहा कि बहुत अच्छा। हम तैयार हैं। अब दोनो ने मिल कर यह विचार किया कि कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिये, जिससे उनके तो लक्ष्य में न आवे और अपना कार्य सिद्ध हो जाय। उस उपाय को सोच निश्चय कर नागर पीछा ईडर में आया। उस ने ईडर में आकर यह वार्ता प्रकट की कि मैं विवाह की तैयारी करता हूं और अपने सबंधी जन को बुलाता हूं और उस के साथ यह भी प्रकट कर दिया कि एक एक रथ में तीन तीन नागर स्त्रियाँ बैठ कर आवेंगी। इधर तो यह किंवदन्ती फैल गई; जिस से किसी को अन्य प्रकार का भ्रम होने का संभव ही नही रहा। और उधर पहले सोनग से मन्त्र हो ही चुका था। तदनुसार एक एक रथ में राठौड़ योधाओं को बिठला, ईडर में लाकर अपने यहां ठहरा लिया। फिर उसने बढ़िया मदिरा और बकरे मंगवाये। और सामलिया सोड को कहलाया कि आप बरात बना कर भोजन के लिये आवें। बराती लोगों को एकान्त स्थल मे ठहरा कर उनको मद्य पिलाना शुरू किया। बढ़िया मदिरा थी; पी कर सब मतवाले हो गये। जब देखा कि अब तो ये लोग बिलकुल बेहोश हो गये हैं; तब राठौड़ो ने तलवार उठाई। कोलियों (भीलो) का बहुत सा समुदाय मारा गया, परन्तु उन मे का एक गिरोह दरवाज़ा उघाड सामलिया सोड को ले बाहिर निकल गया, उस ने भाग कर किले मे घुसना चाहा परन्तु किले की घाटी पर जाते उन में के बहुत से मनुष्य मारे गये और सामलिया सोड ईडर के दरवाज़े के समीप मे गिर गया। वह छटपटा रहा था, वहां सोनग पहुँचा। उस

१ टॉड साहिब भीखम शाह नाम लिखते हैं (द्वि० भा० पृ० ११)। परन्तु गुजरात राजस्थान का कर्ता चावड़ा भोजराज लिखता है।

आसथान जी बडे प्रतापी और भाग्यशाली थे। इन्होंने अपने बाहुबल से खेड़ का राज्य सपादन कर अपने छोटे भाइयों को भी अपने समान धराधीश बना दिया था। ये सवत्[1] १३४८ मे स्वर्ग को सिधारे, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है। राव आसथान जी के आठ पुत्र थेः–धूहड़ जी १, धांधल २, चाचक ३, जोपसा ४, आसल ५, खींपसा ६, हरखो ७, और पोहड़ ८। आसथान जी खेड़ के स्वामी होने से उन के वशज खेडेचा राठौड़ कहलाये।

आसथान जी से १३ शाखा खांप हुईं.—

१ धूहड़ से धूहड़िया राठौड़

२ धांधल से धांधल राठौड

३ चाचक से चाचक राठौड़

४-६ जोपसा से ६ शाखा हुईं

सींधल १, ऊहड़ २, जोलू ३, मूलू ४, राजग ५, वरजोरा ६।

१० आसल से आसल राठौड़

११ खोपसा से खींपसा राठौड़

१२ हरखा से हरखावत राठौड़

१३ पोहड़ से पोहड़ राठौड़

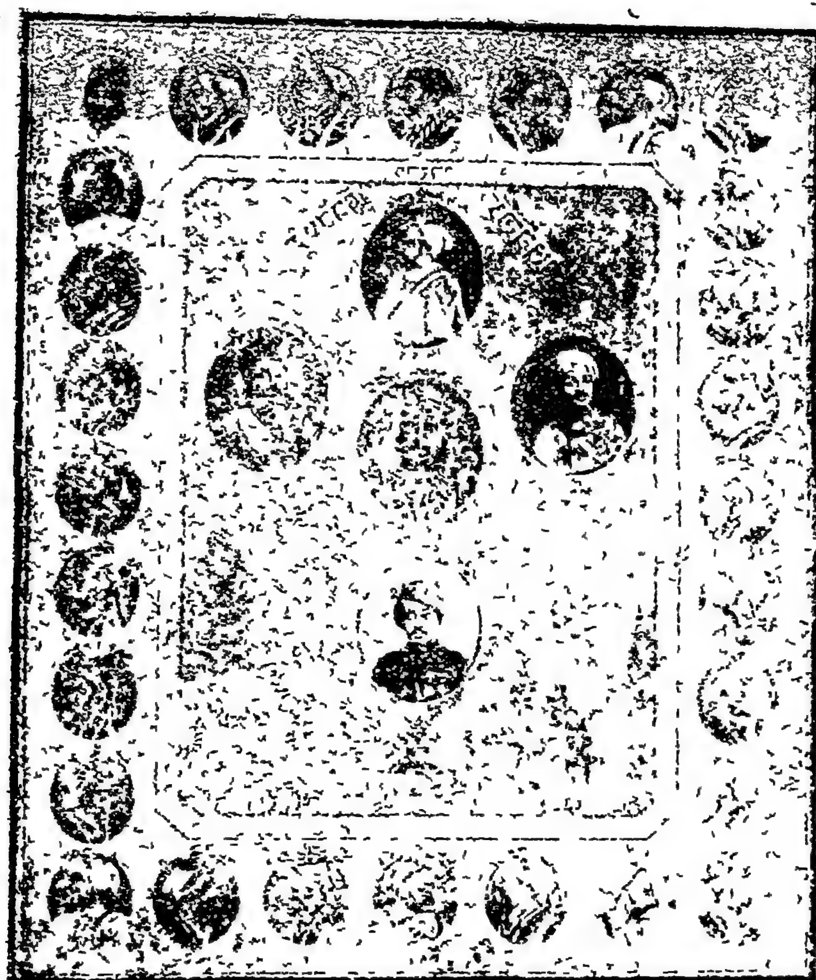
१२—राव धूहडजी—ये भी अपने पिता के समान प्रतापी हुए। इन्होंने अपने बाहु-बल से खेड़ के राज्य में १४० गॉव और भी शामिल किये। इनके समय में सारस्वत ब्राह्मण ल्होड़ ओझा लुंब ऋषि कन्नौज[2] से राठौडों की

समय सोड ने उठ कर अपने रुधिर से सोनग के ललाट मे तिलक किया। और मरते समय इतना कहा कि मेरा नाम स्थिर रखने के लिये तुम ऐसा प्रबन्ध करो कि तुम्हारे वंश में जो राठौड राव राजसिंहासन पर बैठे, उस के ललाट में मेरा वशज दाहिने हाथ की ॲगुली के रुधिर से तिलक किया करे। और उस समय ऐसा भी कहा जाय कि 'विजयी हो सामलिया सोड का राज्य।' सोनग ने उसे स्वीकृत किया। इतने में सामलिया सोड का प्राणपक्षी उड़ गया। सोनग ईडर का स्वामी हुआ सामलिया सोड के वंशज मेवाड की सीमा पर पाटणवाड़े के सरवाणा में रहते हैं। वे वहां खोखर इस अवटंक से पुकारे जाते है।

१—यह संवत् एक ख्याति में लिखा मिला है, जो मेडते के जोशी शिवराज जी पुष्करणा के पास थी।

२—मारवाड की किसी ख्याति में धूहडजी का कोंकण देश के कल्याणी नगर से कुलदेवी का लाना लिखा है। जिस से कितने एक ऐसा अनुमान करते हैं कि इन के पूर्वज दक्षिण में थे। जहां से वे मारवाड में आये। और उस की पुष्टि में यह प्रमाण भी बतलाते हैं कि उसी संबन्ध से दक्षिण देशीय षष्ठी विभक्ति का

कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति ले कर आया और धूहड़ जी से निवेदन किया। धूहड़ जी ने अपनी कुलदेवी को लाने वाले उस ब्राह्मण का पूर्ण आदर सत्कार किया। और अपनी कुलदेवी का सेवक होने से उसे अपने राठौड़ वंश का सेवग नियत कर अपने पास रख लिया। और आत्मरक्षा के पर्वत के समीप अपनी कुलदेवी का मन्दिर बनवा



राठौड़ राजवंश

वाचक 'चा' प्रत्यय 'खेड़' के साथ जुड़ कर ये 'खेड़ेचा' कहलाये। अन्यथा 'चा' प्रत्यय नहीं लगाया जाता। परन्तु यह कल्पना मात्र है। यद्यपि वर्तमान समय में 'चा' प्रत्यय केवल दक्षिण में ही प्रचलित है परन्तु प्राचीन काल में राजपूताना में भी 'चा' प्रत्यय का प्रयोग होता था। जो प्राचीन काल की डिंगल भाषा में देखने में आता है। उदाहरण के लिये हम एक प्राचीन डिंगल भाषा की जैनी ढाल का अवतरण देते हैं। यथा.—

कर उस मूर्ति को उस में स्थापित कर कुलदेवी की पूर्ण भक्ति से सेवा की, जिस से देवी ने प्रसन्न हो कर धूहड़ जी को नाग (सर्प) के रुप

वधाविया जिनवर हर्ष वहुतै धन्य हूँ कृत पुण्य ए ।
त्रैलोक्यनायक देव दीठो मुझ समौ कुण अन्य ए ॥
हे जगत जननी पुत्र तुम चो मेरु मज्जन वर करी ।
उच्छुग तुम चे वलिय थापिस आतमा पुण्ये भरी ॥

(जिनपूजापद्धति)

इस छन्द की भाषा स्पष्ट राजपूताने की है। जिस में दो स्थानों में षष्ठी विभक्ति वाचक 'चा' प्रत्यय का प्रयोग है। 'तुम चो' और 'तुम चे'। इस से स्पष्ट है कि 'चा' प्रत्यय का प्रयोग प्रथम राजपूताने की डिंगल भाषा में भी होता था। यही प्रत्यय वंश वाचक शब्दों के अन्त में भी लगाया जाता था जैसे गहलोतों में कोटेचा, चौहानों में आद्रेचा, माद्रेचा, मूलेचा और सांकेचा, और सोलंकियों में कालेचा आदि शब्द 'च' प्रत्ययान्त हैं। वैसा ही राठौड़ वंश का वाचक खेड़ेचा शब्द है। इस से इन राठौड़ों का दक्षिण से आना सिद्ध नहीं होता। इसी 'चा' प्रत्यय का प्रयोग राजरूपक ग्रन्थ में भी मिलता है, यथा.—

"दशरथ अजन ग्रेह हित राखै, राम अभौ उदियो हित राखै ।
वागो थाल जनम ची वेला, भागो अदिन अमगल भेला" ॥

(राजरूपक हस्तलिखित पृष्ठ १५४)

केवल 'चा' प्रत्यय के मिल जाने मात्र से वर्तमान नरेश्वर राठौड़ों का केवल कल्याणी नगरी के संबन्ध से दक्षिण से आने का अनुमान कर लेना यह हेत्वाभास है। दूसरा केवल कल्याणी नगर के नाम मात्र से इन राठौड़ों का दक्षिण से आना मानना भी वैसा ही है। क्योंकि कल्याणी नगर केवल दक्षिण में ही नहीं, कन्नौज में भी था। जहां से सीहाजी मारवाड़ में आये थे। इसलिये यहां कल्याणी नगर कहने से कन्नौज का कल्याणकटक (कल्याणी) ही समझना चाहिये। क्योंकि इन का आदि स्थान कन्नौज था। किसी लेखक ने कन्नौज के कल्याणकटक (कल्याणी) का परिज्ञान न होने से और उसे कोंकण देशान्तर्गत कल्याणी नगर का ही परिचय होने से कल्याणी शब्द देख कर कल्याणी के साथ 'कोंकण' शब्द अधिक जोड़ दिया, ऐसा प्रतीत होता है। और किसी ने कोंकण के स्थान में 'कर्णाटक' भी लिख दिया है। क्योंकि कल्याणी नगर दोनों देशों में है। एक बम्बई के समीप, जो कोंकण देश में है, और दूसरा हैदराबाद दक्षिण राज्य में, जो कर्णाटक देश में है। परन्तु पाठक स्वयं इसका विचार कर लें कि जब जोधा जी का ताम्रपत्र कहता है कि इन राठौड़ों की कुलदेवी धूहड़जी के समय में कनौज से लाई गई था, दूसरा सीहाजी स्वयं मारवाड़ में कनौज से आये थे जिस संबन्ध से ये कनौजिया राठौड़ कहलाते हैं तब राठौड़ों का आना कन्नौज के कल्याणी (कल्याणकटक) नगर से ही सिद्ध हो सकता है। क्योंकि कल्याणी नगर केवल

से दर्शन दिया जिस हेतु से कुलदेवी का नाम 'नागणेचियां' कहलाया। कुलदेवी का प्रथम नाम चक्रेश्वरी था। उक्त मन्दिर अब तक गांव नागाणा (पचपदरा परगना मे) विद्यमान है। और उस मे कुलदेवी की मूर्ति भी स्थापित है। नागणेचिया राठौड़ अभी तक उस की पूजा करते हैं। पाया जाता है कि गांव का नाम 'नागाणा' और पुजारी राठौड़ 'नागणेचिया' उसी देवी के संबन्ध से उक्त नाम से कहलाये हो। जैसा नागाणा मे राठौड़ो की कुलदेवो नागणेचियां का मन्दिर है, वैसे जोधपुर के किले में भी नागणेचियां की स्थापना है। माना जाता है कि उस देवी ने कुछ दिन निम्ब के वृक्ष मे निवास किया था, जिस से राठौड़ नीव वृक्ष को पूज्य समझते हैं और उसे काटते नही।

उक्त नागाणां गांव से ४ कोस की दूरी पर पचपदरा परगने में पचपदरे से १६ मील की दूरी पर तीगड़ी नाम का पुरोहितों का शासन ग्राम है; उस गॉव मे धूहड जी का संवत् १३६६ का शिलालेख[1] मिला है; जो धूहड़ जी के पितामह सीहाजी के शिलालेख के समय से ३६ वर्ष पीछे का है। उस के बहुत से अक्षर टूट जाने से यह पता नही चलता कि यह शिलालेख किस विषय का है। परन्तु उन का

दक्षिण में ही नहीं, किंतु कन्नौज प्रान्त मे भी कल्याणी नगर था जिस का नाम कल्याणकटक लिखा मिलता है। उसके अस्तित्व के लिये बोम्बे गेजेटियर देखो। जिल्द १ भाग १ पृ. १५०) उस में लिखा है कि "कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज के कल्याणकटक के चालुक्य राजा भूवड़ ने अणहिलवाडा पाटण राज्य के संस्थापक चावड़ा बनराज के पिता जयशेखर को संवत् ७५२ मे मारा था।" जब कल्याणकटक का कन्नौज में पता चलता है और जोधाजी का ताम्रपत्र कन्नौज से राठौड़ो की कुलदेवी का लाना कहता है, तो इन राठोड़ों की कुलदेवी कन्नौज के कल्याणी नगर की ही होनी चाहिये; दक्षिण की नही हो सकती।

१. यह शिलालेख छपा नहीं है। इस लेख की जांच करने के लिये इसके छापे राजपूताना के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० गौरीशंकरजी हीराचंदजी ओझा के पास जोधपुर इतिहास कार्यालय के भूतपूर्व सुप्रिंटेंडेंट खीची गुमानसिंहजी ने अजमेर भेजे थे। पंडितजी ने इसकी जांच करके उत्तर मे लिखा कि यह शिलालेख सही है। इसमे मुझे किसी प्रकार का संदेह नही है।

यह धूहड़ जी के शिलालेख का छापा हमको जोधपुर निवासी ब्रह्मभट्ट नानुराम के द्वारा प्राप्त हुआ था। इस से पूर्व राव सीहाजी का संवत् १३३० का शिलालेख भी इसी ने उपलब्ध किया था जिसे डाक्टर डी० आर० भांडारकर ने इंडियन एंटिक्वेरी मे प्रकाशित किया है। ये दोनों शिलालेख मारवाड़ के राठौड़ राजाओं के इतिहास के लिए बहुमूल्य और बड़े महत्त्व के हैं। प्राचीन शिलालेख आदि का अन्वेषण करने में यह पुरुष बड़ा प्रयत्न करता रहता है।

समय निर्णीत करने के लिये अति महत्त्व का है। गांव तीगड़ी के तालाब पर गायों की बाहर में गये हुए राव धूहड़ जी के पड़िहारों[1] के साथ युद्ध हुआ उस में वे मारे गये।

धूहड़ जी के ७ पुत्र थे। रायपाल १, बेहड २, पीथड़ ३, खेतपाल[2] ४, ऊनड़ ५, जोगो ६, और चन्द्रपाल ७। जिन से निम्न ५ शाखा हुईः—

१ वेहड़ से वेहड़ राठौड
२ पीथड़ से पीथड़ राठौड़
३ खेतपाल से खेतपाल राठौड़
४ जोगा से जोगावत राठौड़
५ ऊनड़ से ऊनड़ राठौड़

राव रायपाल—इन्हों ने पितृराज्य को पा कर बाहडमेर के पंवारों पर आक्रमण करके उनके ५६० गांव पर अपना अधिकार कर खेड़ के राज्य को विस्तृत किया था। और दुर्भिक्ष में अन्न दान दे कर प्रजा का पालन भली भांति किया था; जिस से लोग इन को 'महीरेलण' कहते थे। उस का अर्थ यह है कि जैसे मेघ वृष्टि कर के पृथ्वी को रेला देता है अर्थात् पूर्ण कर देता है; वैसे इन्हों ने अन्न से प्रजा को तृप्त कर दिया था। उसी से इन का महीरेलण विरुद हुआ। और चारणों में रोहडिया शाखा की उत्पत्ति इन्हीं के समय में हुई थी। बुध शाखा के भाटी चन्द को रायपाल जी ने रोहड कर अर्थात् तंग करके अपना पोलपात अर्थात् चारण बनाया था। इसलिये उस के वंशज रोहड़िया चारण कहलाये। इस विषय का डिंगल भाषा का एक प्राचीन पद्य[3] है। उस

---

१. एक ख्याति पुस्तक में आना नामक चाहमान के साथ युद्ध होना और उस में दोनों का परस्पर मारा जाना लिखा है।

२ कहीं कीतपाल लिखा है जो कीर्तिपाल का अपभ्रंश है।

३. कवित्त—'महिरेलण रायपाल चंद भाटी किय चारण'
तेरै वीस तुरंग साठ खुंडाल विसासण।
दे धण सांसण दत्त एह अखियात उवारे,
रोहडनैं राठवडै वधेवी एकण वारे।
मणि सीस माल सिंधुर मदँध वड़ा धणी उजवाल वट,
तारे वचन लागे थया बुध हूंता म्हे बारहट ॥ १ ॥"

इसके साथ यह कथा भी लिखी है—"जैसलमेर के भाटी मांगा के पुत्र नहीं था। उस ने महादेवजी पर आत्मघात करना चाहा; महादेव ने कहा कि तेरे ललाट में पुत्र लिखा नहीं है: तथापि तेरा हठ देख कर मैं तेरे घर चारणी के उदर से पैदा होऊँगा। तू मरमड़ा शाखा के चारण मावल के यहां विवाह

का सारांश यह है :—महिरेलण रायपाल जी ने चंद नाम के भाटी को चारण (अर्थात् अपना दानपात्र) बना कर उसे तेरह कोडी (२६०) घोड़े और साठ हाथी का दान दिया था। परन्तु उक्त भाटी को रोहड़ (तंग) करके चारण बनाया था इसलिये उस की शाखा रोहड़िया कहलाई। वही वार्ता वह स्वय अपने मुख से कहता है कि हे राव रायपाल ! तुम ने हमें सिरोपाव मे रत्न और मदान्ध हाथी दिये जिस से तुम्हारे वचन को निबाहने के लिये हम बुध (भाटी राजपूतों की एक शाखा) से बारहठ हुए हैं।

रायपाल जी के १४ पुत्र थे। उन में से १० खांपें फटी :—

१ केलण के पुत्र कोटेचा से कोटेचा राठौड़
२ थांथी के पुत्र फिटक से फिटक राठौड़
३ रांदा से रांदा राठौड़
४ डांगी से डांगी राठौड़
५ सूंडा से सूंडा राठौड़
६ मोपा से मोपा राठौड़
७ मोहण[1] से मोहणिया राठौड़
८ बूला से बूला राठौड़
९ विक्रमादित्य से वीकमायत राठौड़
१० हसता से हतूंडिया[2] राठौड़

उपर्युक्त १० पुत्रों के अतिरिक्त ४ पुत्रों के नाम ये हैं :—
कनपाल १, छाजड़ २, लाखण ३, राजो ४।

१४ राव कनपाल—इन्होंने खेड़ में राज्य किया था। वे तुरकों से लड़ कर काम आये। इन के ३ पुत्र थे। जालनसी १ भीम २ विजपाल ३। उन में भीम बड़ा

कर। उधर चारण मावल को स्वप्न हुआ कि तू अपनी कन्या बुध शाखा के भाटी मांगा को व्याह दे। मावल ने महादेवजी की आज्ञा से अपनी कन्या भाटी मांगा को व्याह दी। उसके चंद नाम का पुत्र हुआ। जिसे रायपालजी ने रोहड़ कर अपना याचक चारण बनाया। उसके वशज रोहड़िया बारहठ कहलाते हैं।

[1] मोहण से मोहणिया राठौड़ो के अतिरिक्ति एक शाखा मुहणोत नाम की और भी फटी, जो जैनी है और इस समय वे ओसवाल (वैश्य) समाज में हैं।

[2] टॉड साहिब राव आसथान जी के भाई सोनग के वंशजों को हतूंडिया राठौड़ बतलाते है। मारवाड़ की ख्यातियों में रायपालजी के पुत्र हसता से हतूंडिया राठौड़ होना लिखा है। हम तो हतूंडी के राठौड़ राजा धवल के वंशजो को हतूंडिया राठौड़ समझते है। शायद हसता के वंशज भी हतूंडिया राठौड़ कहलाते हों।

वीर पुरुष था। उस के और भाटियों के काक नदी के तट पर संग्राम हुआ जिस में यह वीर मारा गया था, परन्तु इस के पराक्रम से जेसलमेर और खेड की सीमा नियत हुई। जिस मे जेसलमेर की भूमि खेड के नीचे आई। इस सीमा विषयक एक प्राचीन दोहा प्रसिद्ध है :—

"आधी धरती भीव, आधी लोद्रवै[1] धणी।
काक नदी छै सींव, राठौडां नै भाटियां॥"

राठौडों और भाटियों के राज्य की सीमा काक नदी है। पूर्व तट राठौडों का और पश्चिम तट जेसलमेर के स्वामी का।

१५ राव जालणसी—इन्होने गांव चांदणी में एक वृक्ष को अमर किया था, अर्थात् उस का पत्र, पुष्प, फल, शाखा कोई न तोड़े। सोढों ने उस का फल तोड़ लिया[2] जिस से राव जी ने उन पर चढ़ाई की, उन के डेरे लूट लिये और उन्हें दण्डित कर विजय का पोतिया (सिर पर बांधने का वस्त्र, [साफा]) ले लिया। तब से राठौड पोतिया कान पर बांधते हैं। इन के चचा को सराई जाति के हाजी मलिक ने मारा, उस का बदला लेने के लिये पाल्हनपुर जा कर उस को मारा, और थटा प्रान्त को लूट कर मुलतान की चौथ (चतुर्थांश) ली। तदनन्तर उन पर मुसलमानों ने आक्रमण किया, ये भी अपने साथियों को ले कर साम्हने हो गये। परस्पर घोर युद्ध हुआ उस में ये राव जी मारे गये। इन के तीन पुत्र थे। छाडो १, भाखरसी २ डूंगरसी ३।

१६ राव छाडो जी—जालणसी जी ने अन्तिम समय में अपने पुत्र छाडा जी से कहा था कि सोढा दुजणसाल ने घोडे दण्ड में देने किये थे वे बाकी हैं, वे ले लेना। पुत्र ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर जितने घोड़े दुजणसाल ने देने किये थे उन से चतुर्गुण लिये। और जेसलमेर के भाटियों को कहलाया कि तुम ने गढ के बाहिर गांव बसाया है इसलिये तुम को हमें नालनथी और बेटी देना होगा। उन्होंने अस्वीकार किया। तब रावजी तलवाडे से चढ कर जेसलमेर गये। रावजी ने कहलाया कि अब भी समय है, नहीं तो हम जेसलमेर लूट लेंगे। भाटियों ने रावजी की आज्ञा को स्वीकार कर अपनी पुत्री व्याह कर अपनी आत्मरक्षा की।

इन के सात पुत्र थे। १ तीडो, २ खोखर, ३ वानर, ४ खीमसी, ५ सीहमल, ६ रुद्रपाल, ७ कानड़ जिन से तीन शाखा हुई :—

१ खोखर से खोखर राठोड

---

१. लोद्रवा जेसलमेर राज्य में है। पहले वह भाटियों की राजधानी थी।
२. कोई कहते हैं कि वीरमजी के पुत्र गोगादे ने कटवाया था।

२ वानर से वानर राठौड़

३ सीहमल से सीहमलोत राठौड़

१७ राव तीडोजी—इन्होने संवत् १४०१ में पितृराज्य को पा कर समस्त महेवा प्रान्त को विजय किया। तदनन्तर भीनमाल के स्वामी सोनगरा चाहमान सामन्तसिंह को परास्त करके भाटी और सोलंकियो से दण्ड लिया। उस समय सिवाना पर चाहमान सातल और सोम राज्य करते थे। उन पर मुसल्मानो ने आक्रमण किया तब उन्होने तीडाजी को सहायता करने के लिये कहलाया। रावजी भानजों की सहायता मे सिवाने गये। तुरकों के साथ युद्ध हुआ। वहां कई शत्रुओ को मार कर रावजी वही संवत् १४१४ मे रणशय्याशायी हुए।

इन के तीन पुत्र थे—१ त्रिभुवणसी २ कान्हड़' और ३ सलखो।

तदनन्तर कान्हड़ महेवा के स्वामी हुए। उन के समय मे मुसलमानों का बड़ा उपद्रव रहा। ये उन से लड़ते रहे। अन्त मे मुसलमानों ने इन को वहां से निकाल दिया और महेवे मे मुसलमानो का अधिकार हो गया।

१८ राव सलखा जी—राव सलखा जी मंडोवर के पड़िहार राणा रूपड़ा की बेटी व्याहे थे। सलखा जी ने राणा रूपड़ा से कहा कि आप हमे कुछ मनुष्यो की मदद दे तो हम अपनी भूमि मुसलमानो से पीछी छुड़ा ले। राणा ने अपने वीर राजपूत दे कर उन की सहायता की। उस सहायता को पाकर सलखा जी ने संवत् १४२२ मे मुसलमानो को परास्त कर महेवे में अपना अधिकार कर लिया। उस समय कान्हड़ ने भी अवसर पा कर मुसलमानो से खेड़ पीछा ले लिया था। परन्तु सलखा जी के ज्येष्ठ पुत्र मल्लिनाथ जो जालोर से मुसलमानो को चढ़ा लाये, कान्हड़ जी उन से लड़ कर स्वर्ग को सिधारे।

मुहणोत नैणसी लिखता है कि कानड़दे महेवे में राज्य करता था उस समय सलखा जी के पुत्र मल्लिनाथ जी ने, जिन की उम्र १२ वर्ष की थी, अपने चचा कानड़दे के पास जाकर प्रणाम किया। कानड़दे ने उन को अपने पास रख लिया। और हाथ ख़र्च के लिये कुछ रोकड़ नियत कर दिया। कानड़दे उन से बड़ी प्रीति रखते हैं, एक पात्र में भोजन करते हैं और मल्लिनाथ जी भी उनकी सेवा बड़ी प्रीति से करते हैं एक दिन राव कानड़दे शिकार को गये। सब राजपूत उन के साथ हैं, मल्लिनाथ जी भी साथ में हैं। शिकार करके पीछे लौटे, उस समय राव कानड़दे का अञ्चल पकड़ कर मल्लिनाथ जी ने कहा कि "मै भूमि का बंट मांगता हूं।" तिस पर कानड़दे ने उन से बहुत कुछ कहा और समझाया परन्तु उन्होंने नही माना और कहा कि "मेरा बंट दिये बिना अञ्चल कभी न छोडूंगा।" सजणून दूर खड़े

देखते है। कोई निकट नहीं आता है। और कहते हैं कि "चचा भतीजा अपने आप आपस में समझ लें, हमे बीच में पडने से क्या प्रयोजन ?' अन्त मे कानडदे को मल्लिनाथ जी ने कहा कि "मुझे यह लिखत यहीं खड़े २ लिख दें और अपने राजपूतों को जामिन दें तो छोडूं।" तव कानड़दे ने वही लिखत लिख दिया और राजपूतों की जामनी दी। तव अश्चल छोड़ा। मल्लिनाथ जी को तीसरे हिस्से की भूमि दी गई। मल्लिनाथ जी कानड़दे की सेवा बड़ी उत्तम रीति से करते है। कानडदे ने भी मल्लिनाथ जी को बुद्धिमान् और निपुण जान कर अपना प्रधानामात्य नियत किया। तव उमराव कहने लगे कि "जिस ठाकुर ने अपने बंधु को प्रधानामात्य बनाया है, उस का राज्य जाने वाला है।" मल्लिनाथ जी ने भूमि में अपना अधिकार बढ़ाया। राज्य का कार्य भली भांति चलने लगा। परन्तु राजपूत इस बात से राज़ी नही थे।

एक समय देहली के वादशाह ने अपने राज्य में दण्ड लेना ठाना, सव गढ़ो और स्थानों में दण्ड उगाहने के लिये किरोड़ी भेजे गये। महेवे मे भी किरोड़ी आया। तव कानडदे ने समस्त राजपूतों को बुलाया और मल्लिनाथजी व और भी सव मन्त्री बुलाये गये। अब वहाँ सलाह होने लगी कि "क्या करना चाहिये ?" तव मल्लिनाथजी ने कहा कि "किरोडी को मारेंगे, दण्ड हम हर्गिज़ नही देंगे।" यह बात सव को अच्छी लगी। परन्तु परस्पर कहने लगे कि कोई उपाय सोचना चाहिये। तव उन में से किसी ने कहा कि 'इन को अलग अलग ले जा कर मारेंगे। जुदा जुदा गांवों में ले जा कर मारना चाहिये।" सव राजपूत इस बात पर राजी हो गये। तव किरोडी को वुला कर कहा कि "आप अपने मनुष्यों को जुदा जुदा गांवों में भेज दीजिये, जिस से द्रव्य तुरत इकट्ठा हो जायगा।" किरोड़ी के स्वीकृत करने पर उन्होंने यह निश्चय किया कि आज से पाँचवें दिन परार्द्ध में वादशाही जो मनुष्य जहाँ होवे उसे वहीं मार देना चाहिये। यह निश्चय होकर सव अपने अपने घर गये। जो सरदार था उसे मल्लिनाथजी अपने यहाँ ले गये। दूसरों को दूसरी ठौड़ भेजा। दूसरे राजपूतों ने तो किरोडी के मनुष्यों को गांवों में ले जा कर सकेत के अनुसार मार डाला। और मल्लिनाथ जी ने उसका अति आदर सत्कार किया। पांचवें दिन मल्लिनाथ जी ने उस से कहा कि "आप के मनुष्यों को कानड़दे ने मरवा दिया है; मुझे भी यही आज्ञा है, परन्तु मैं तो आप को नहीं मारूंगा।" तव उसने कहा कि "यदि मैं जीता देहली पहुच जाऊं तो तुझे इस भूमि का स्वामी बना दूंगा।" और शपथ भी की। तव मल्लिनाथजी ने अपने मनुष्य उसके साथ देकर उसे देहली पहुचा दिया। तव किरोडी

ने देहली जाकर बादशाह से अर्ज़ किया कि "कानड़दे ने आप के सब मनुष्य मरवा दिये हैं ; मैं भी मारा जाता, परन्तु मुझे कानड़दे के भतीजे मल्लिनाथ ने बचाया है। माला हज़रत का परम स्वामिभक्त सेवक है।" तब बादशाह ने आज्ञा की कि "महेवा माला को दिया गया।" तब किरोडी ने अपना मनुष्य मल्लिनाथजी के पास भेज कर कहलाया कि "आप यहाँ आइये।" तब मल्लिनाथजी बहुत से राजपूत अपने साथ ले देहली गये। बादशाह के पैरो लगे। बादशाह ने प्रसन्न हो कर उन को महेवा दिया। मल्लिनाथजी देहली में ही थे, यहाँ कानड़दे का अन्तकाल हो गया। मल्लिनाथजी देहली से मारवाड़ में आये, परंतु कानड़दे के मरने पर उस का भाई त्रिभुवनसी महेवे का मालिक बन बैठा था। मल्लिनाथजी और त्रिभुवनसी के युद्ध हुआ। उस में त्रिभुवनसी घायल हुआ और उन्ही ज़ख़मों से थोड़े दिनो में मर गया। त्रिभुवणसी के तीन पुत्र थे। उन मे से ऊदा से बेठवासिया ऊदावत शाखा हुई।

सलखाजी ८ वर्ष महेवा का राज्य करके संवत् १४३० में मुसलमानों से युद्ध कर उन्ही के हाथ मारे गये। इन के ४ पुत्र थे। १ मल्लिनाथजी, २ जैतमालजी, ३ बीरमजी, ४ सोभितजी।

सलखाजी के अनन्तर मल्लिनाथजी संवत् १४३१ मे महेवा के स्वामी हुए। इन्होंने अपने छोटे भाई जैतमालजी को सिवाणा ले दिया था। बीरमजी खेड में रहे। सोभितजी ने गाँव ओसियाँ से पंवारो को निकाल कर वहाँ निवास लिया। सोभित के वंशज सोहड़ राठौड़ है। जैतमालजी से ५ शाखा हुई। १ जैतमालोत, २ जूंझाणिया, ३ राड़दड़ा, ४ खोभावत, ५ धवेचा।

मल्लिनाथजी सब से बड़े थे। उन को सब लोग सिद्ध पुरुष मानते थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि देवी[१] ने उन को साक्षात् दर्शन दिया था तलवाड़े मे लूनी नदी के तट पर उन का मन्दिर है। इन्होंने पड़ोसी

---

१. इस विषय की इस भांति कथा लिखी है। रावल मल्लिनाथजी सिंध की तर्फ घोड़ियों का धाड़ा करने गये थे, कोट डारला के तालाब पर डेरा किया। वहाँ एक सवार शस्त्रों से सजा हुआ आया, आकर उस ने 'राम राम' किया। तब मल्लिनाथजी ने पूछा कि 'आप कौन है'? उस ने कहा कि 'मै राजपूत हूं।' तब मल्लिनाथजी ने कहा कि 'आप कहाँ जाते है?' तब उस ने कहा कि "मैं घोड़ियो का धाडा करने जाता हूं।" तब मल्लिनाथजी ने कहा कि "हम भी घोड़ियों का धाड़ा करने जाते है।" तब उस राजपूत ने कहा कि "आपन साथ

भोमियों को अपने अधीन कर, और जिन्होंने इन की अधीनता स्वीकार नहीं की उन को मार कर, अपना राज्य बढ़ाया। महेवा प्रान्त से

ही चलेंगे; परन्तु आप का और हमारा हिस्सा बराबर आधा होगा।" तब मल्लिनाथजी के राजपूतों ने कहा कि "आप एकाकी हैं और हम सौ मनुष्य हैं, आधा हिस्सा कैसे हो सकता है?" तब उस राजपूत ने कहा कि "हमारी शक्ति के बल लेंगे।" ऐसा कह कर फिर कहा कि "चाहे तो तुम बाहर को रोको, चाहे घोड़ियों को ले जाओ। दोनों में से तुम्हें जो कठिन दीखता हो वही कार्य मेरे सुपुर्द करो।" तब मल्लिनाथजी ने कहा, "अच्छी बात।" फिर घोड़ियां ले पीछे लौटे, तब मल्लिनाथजी ने कहा "तुम बाहर को रोको।" उस ने वहीं ठहर कर बाहर को रोक दिया। और जहां मल्लिनाथजी घोड़ियां लिये ठहरे थे वहां आकर वह राजपूत शामिल हुआ। आते ही उस ने कहा कि "मेरे बंट की घोड़ियां दो।' तब उन्होंने कहा कि "हम आधी नहीं देंगे।" तब वह राजपूत घोड़ियों के बीच में जा खड़ा हुआ; आधी घोड़ियां ले, एक बच रही उस के तलवार से दो टूक कर उसे भी ले चल दिया। उस का साहस देख मल्लिनाथजी ने अपने राजपूतों से कहा कि "तुमने उस वीर राजपूत से वार्तालाप नहीं करने दिया; बहुत बुरा किया।" मल्लिनाथजी क्रुद्ध हो इकल्ले घोड़े पर सवार हो चल दिये। और अपने राजपूतों से कह गये कि मेरे साथ मत आना। आगे जा कर मल्लिनाथजी क्या देखते हैं; तालाब के अन्दर वह राजपूत तैर रहा है, घोड़ियां जंगल में चर रही हैं। एक तर्फ सिंह बैठा है, एक ओर अग्नि पर मांस के सूले भुन रहे हैं। तब मल्लिनाथजी के मन में ऐसा विचार हुआ कि 'यह तो शक्ति हो जैसा दृश्य दीख पड़ता है।' फिर घोड़े से उतर, घोडे को वृक्ष के बांध, जाकर सूले सेकने लगे। इतने में शक्ति तालाब से बाहिर आ उन के पास आ बैठी। बैठ कर पीछे की तर्फ़ हाथ किया तब मल्लिनाथजी ने उसको मदिरा का प्याला और बूथ (मांस खण्ड) दी। माताजी ने दोनों ले लिये, लेकर पीछे की ओर देख कर कहा कि "मल्लिनाथ! तू आया?" तब मल्लिनाथ जी ने कहा कि "हे माता! आया" तब देवी ने कहा कि "वर मांग, हम प्रसन्न हैं।" मल्लिनाथजी ने कहा कि "आप प्रतिज्ञा करें तो मांगूं।" माता ने वचन दिया। तब मल्लिनाथजी ने कहा कि "मेरे घर आइये।" देवी ने कहा कि "यह क्या मांगता है?" फिर कहा कि "मैं तुम्हारे देश में अवतार लूंगी। जो तुम हमें पहिचान लोगे तो तुम्हारे घर आऊंगी।" तब मल्लिनाथजी ने कहा कि "मैं आप को किस प्रकार से पहिचान सकूंगा?" तब देवी ने कहा "मै करामात दिखाऊंगी, यदि उस समय पहचान लेगा तो मैं आ जाऊंगी।" फिर देवी ने कहा कि ये घोडियां सब ले जाओ। मल्लिनाथजी घोड़ियां ले अपने राजपूतों के पास आये। वहां से घर पर आये। तदनन्तर कुछ दिनों में देवी ने बालहा राजपूत के यहां अवतार लिया। उन की उम्र १० वर्ष की हुई, उस अवसर में, मल्लिनाथजी उस गांव में जा निकले। मल्लिनाथजी के राजपूत खलियान में गये। वहां वह कन्या बैठी है। उसे देख राजपूतों ने कहा कि "बाई! थोड़ा धान्य

अमरकोट ८० कोस की दूरी पर है, वहां तक की सारी भूमि पर अपना आधिपत्य कर महावलवान वन गये थे। घोड़े, राजपूत, शस्त्र सब प्रकार की सामग्री पूर्ण है, उधर जैसलमेर तक उन का प्रभाव पड़ता है; इधर उधर के समस्त शासनकर्ता शंकित रहते हैं। मंडोवर, मेवाड़, गुजरात और सिन्ध में विगाड़ करते हैं, इसी से लोक उन की भूमि छोड़ २ कर रावलजी का आश्रय लेते हैं। मण्डोवर में मुसलमानों का अधिकार था, उन्होने वादशाह से अर्ज़ किया कि राठौड़ मल्लिनाथ अत्यन्त उद्धत हो गया है, उसे दण्ड दिये विना आप की आज्ञा का पालन नही हो सकता। तव वादशाह ने संवत् १४३५ में सेना भेजी। सेना के नेता ने अपनी सेना के १३ तुंगे वना कर आक्रमण किया ; रावल मल्लिनाथजी ने भी अपनी सेना ठीक ठाक वना कर सामना किया। मरुभूमि की निर्जलता के कारण वादशाही सेना को पीड़ित होकर पीछा लौटना पड़ा। इस विषय का यह छन्द का खण्ड प्रसिद्ध है :—

"तेरे तूंगा भांजिया, माले सलखाणी"

अर्थात् सलखा के पुत्र मल्लिनाथजी ने वादशाह की सेना के १३

दो तो घोड़ों को दें।" तव उस नें कहा " तुम्हारा ठाकुर आकर पाहुरा मांडे तो सव के पाहुरे भरा दिये जायँ।" तव राजपूतों ने आकर कहा कि एक कन्या खलियान में वैठी है, उस से हम ने धान्य के लिये कहा तो उसने कहा कि "तुम्हारा ठाकुर आकर पाहुरा मांडे तो सव के पाहुरे भरा दिये जायँ," आप चलें, तव मल्लिनाथजी पाहुरा लेकर गये। उस ने सव पाहुरे भर दिये, और धान्य उतना का उतना। तव मल्लिनाथजी को भान हुआ कि यह वही शक्ति है। तव मल्लिनाथजी ने उसके पिता के पास जाकर कहा कि "आप अपनी कन्या मुझे दीजिये।" अंत में वहुत हठ कर विवाह कर वे उसे अपने घर ले गये। समयान्तर में एक ऐसा वृत्तान्त हुआ कि भाटी उगमसी की गौ एक स्थान में जाकर स्वयं दूध झार दिया करें। तव गौ के स्वामी ने ग्वाला से कहा कि "मेरी गौ हमेशा कौन दोहता है ?" तव ग्वाला ने कहा "मैं पता लगाऊँगा।" प्रातःकाल में जाकर देखता है तो एक स्थान पर गौ खड़ी हो जाती है , दूध स्वयं निकल जाता है। ग्वाले ने जाकर उगमसी को कहा तव वह सेन्दूर आदि पूजा की सामग्री ले वहां गया, धूप करके प्रार्थना की कि "यहां कोई देवता है वह मुझे आज्ञा करे, मैं उस की सेवा करूंगा।" यों कह कर वह घर पर आया। रात्रि में स्वप्न में आकर देवी ने कहा कि "यहां मेरी पुस्तक है ; उस में जो विधि लिखी है तदनुसार आराधना करो। उस में संजीवन मन्त्र है।" तदनन्तर उगमसी ने वह पुस्तक भूमि में से निकाल उस के अनुसार पंथ चलाया। मल्लिनाथजी और उनकी स्त्री उसी पंथ में थे।

व्यूहों को भगाया। रावलजी की विजय होने से उन का प्रभाव और अधिक बढ़ा१।

मल्लिनाथजी के पुत्र जगमालजी बड़े वीर पुरुष थे। गुजरात के बादशाह की बेटी गींदोली को हरण कर ले आये थे। मारवाड़ में गींदोली का गीत अभी तक गाया जाता है :—

ख्यातों में लिखा है कि जैसलमेर के रावल दूदा और तिलोकसी के मारे जाने पर जैसलमेर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था, उस समय रावल रतनसी का पुत्र घड़सी महेवा में रावल मल्लिनाथजी के यहां चला आया। मल्लिनाथजी ने उसको आश्रय दिया और अपनी बहिन विमला व्याह दी। घडसी बहुत समय तक महेवे में रहा, जब रावल मल्लिनाथजी ने मौका देखा तब अपने पुत्र जगमाल को उन के साथ भेज कर जैसलमेर का राज्य पुनः प्राप्त करने में सहायता की। परतु यह वृत्तान्त शिलालेखों से विरुद्ध होने से माननीय नहीं हो सकता। जैसलमेर के रावल घड़सी के ४ शिलालेख जैसलमेर मे श्री टीकमजी के मन्दिर के बहिर्भाग में विक्रम संवत् १४१८ के मिले हैं। उन में लिखा है कि विक्रम सवत् १४१८ भट्टि संवत् ७३८ मार्गशीर्ष वदि ११ बुधवार के दिन महाराज श्री घड़सी के साथ ४ रानियां सती हुईं।

पहले शिलालेख की रानी का नाम लाचूलदे था। वह सोढा वंश के महाराणा अचलसिह की कन्या थी। दूसरे शिलालेख की रानी का नाम रतनादे था। वह देवड़ा वश की वणवीर की कन्या थी। तीसरे और चौथे शिलालेखों में रानियों के नाम नहीं है, केवल सवत्, मास, तिथि और घड़सी के स्वर्गगमन का उल्लेख है। उक्त लेखों में से एक की प्रतिलिपि यहां उद्धृत की जाती है :—

"संवत् विक्रमे १४१८ भाटिके ७३८ वर्षे मार्गसिर वदि ११ बुधे महाराज श्री घडसिंघ साहि साथे सहगमनं महाराणे श्री अचलसिंहस्य दुहिता राणी श्री सोढी लाचूलदे श्वसंगतं शुभं भूयात्।"

रावल मल्लिनाथजी का राज्य समय विक्रम सवत् १४३१ से १४१६ तक माना जाता है। और उक्त वृत्तान्त में मल्लिनाथजी की कन्या विमलादे का जैसलमेर के रावल घड़सी को व्याहना और उसी हेतु से राज्य भ्रष्ट घडसी की सहायता में मल्लिनाथजी के पुत्र जगमाल का जाना और घड़सी को जैसलमेर की गद्दी पर बिठाना यह कथा लिखी है, वह कल्पित प्रतीत होती है। क्योंकि रावल घडसी का स्वर्गवास विक्रम संवत् १४१८ में ही हो चुका था तो विक्रम सवत् १४३१ में राज्याधिकारी होने वाले मल्लिनाथजी के पुत्र जगमाल का घड़सी के समकालीन होना लिखना सर्वथा असंभव है। और घड़सी के साथ मल्लिनाथजी की कन्या विमला का विवाह केवल मारवाड़ की ख्यातों में ही नहीं, किन्तु जैसलमेर के इतिहास में भी लिखा है, परंतु शिलालेखों के मिलने से अप्रामाणिक ठहरता है।

"गीदोली जगमाल मालहै
गीदोली किम दीजे हो राज।"

उसी गीदोली का एक उपन्यास भी है, जो "गींदोली री बात" नाम से प्रसिद्ध है।

मल्लिनाथजी से १८ शाखायें हुई जिन में जगमालजी से १० :—

१ वाहड़मेरा २ वाटाड़ा ३ सगर ४ थूंवलिया ५ खावड़िया ६ ऊंगा ७ धारोइया ८ कानासरिया ९ कोटड़िया १० महेचा
मांडण से ११ कुसमलिया
जैमा से १२ आसड़ेचा
मंडलीक से तीन —
१३ धवेचा, १४ जसोलिया १५ वरयेचा
कूंपा से १६ गोमेचा
जगपाल से १७ पारकरा
मेहा से फलसूंडियां।

१९ राव वीरमजी—इन की राजधानी खेड़ थी। इन के और इन के बड़े भाई मल्लिनाथजी के एक घोड़ी के निमित्त वैमनस्य हो गया था। सिन्ध के निवासी जोइया (यौद्धेय) बादशाही द्रव्य लूट कर मल्लिनाथजी के पास चले आये थे। इस के अतिरिक्त यह भी लिखा मिलता है कि भाटी चूंडराय और जोइया लूणा के परस्पर बहुत समय से द्वेष चला आता था। सं० १४३५ के भाद्रपद मास में दोनो का मुकाबला हो गया जिस में लूणा भाटियों के हाथ मारा गया। लूणा के पुत्र देपाल और लखु पराजित हो कर भागे, भाटियों ने उन का पीछा किया। उस समय तो जोइयों ने शत्रु से आत्म-रक्षा कर ली; परन्तु भाटी प्रवल थे, उन के आगे उस भूमि में उन का ठहरना कठिन था, वे वहां से रावल मल्लिनाथजी के पास महेवा में चले गये। रावल मल्लिनाथजी का प्रताप उस समय बहुत बढ़ा हुआ था। सब कोई उन से शंकित रहते थे। मल्लिनाथजी ने जोइयों को बड़े आदर मान के साथ रक्खा। जोइयो के पास समाध नाम की बछेरी बहुत ही उत्तम थी। मल्लिनाथजी ने उस बछेरी के लिये कहा कि यह हमें दे दो। उन्होंने वह बछेरी मल्लिनाथजी को नहीं दी। और वे वहां से उठ वीरमजी के पास खेड़ चले गये और वह बछेरी वीरमजी को दे दी। देपाल, लखु और वीरमजी सदा शामिल रहते है। सदा साथ रहने के कारण उन के परस्पर प्रीति बहुत बढ गई है; सदा शामिल शिकार करते हैं और प्रसन्न रहते है। इन के परस्पर मेल को देख कर दुर्जन मनुष्यों को बड़ा दुःख हुआ उन का स्वभाव है कि उन से किसी का सुख और संपदा सहन नहीं होती। उन्होने रावल

मल्लिनाथजी के पास जा कर चुगली की कि "वीरमजी और जोइयों के परस्पर पूर्ण प्रेम हो गया है। यहां तक कि उन्होंने वीरमजी को वह बछेरी भी दे दी है, जिस के लिये आप ने याचना की थी। जोइयों की उन को पूर्ण सहायता मिल गई है, आप के वे बंटायत हैं। भला चाहने वाले नहीं हैं। आप को सावधान हो कर रहना चाहिये। उपेक्षा करना ठीक न होगा।" यह सुन मालाजी के मन में भी शंका उत्पन्न होकर भय ने स्थान दे दिया। मल्लिनाथजी ने उन का वहां निवास करना हानि जनक समझ कर कहला दिया कि तुम खेड़ से निकल जाओ। तब वीरमजी ने वहां से निकल निकट ही ३ तीन कोस जाकर घरिया नामक पर्वत के समीप वीरमपुर बसाया, परंतु मल्लिनाथजी के ज्येष्ठ पुत्र जगमालजी ने वीरमजी को वहां से भी निकल जाने के लिये कहला दिया कि या तो आप हमारी भूमि में निवास करते हैं इसलिये आप को समाध बछेरी हमें देनी होगी, नहीं तो आप को हमारे प्रान्त में से निकल जाना पड़ेगा। वीरमजी ने समझ लिया कि अब यहां रहना ठीक नहीं है। जगमाल महाक्रूर है, प्राणों का संशय है। तब वीरमजी अपनी प्रजा को साथ ले रेतीले मैदान को चल दिये। जहां सेतरावा गांव इस समय विद्यमान है, वहां बस्ती बसा कर अपने ज्येष्ठ पुत्र देवराज को वहां रख, आप जोइयों के पास चले गये।

मुहणोत नैणसी वैमनस्य का कारण एक दूसरा भी लिखता है कि "जोइया दला गुजरात में चाकरी करता था। वहां से द्रव्य उपार्जन कर पीछा लौटता महेवे में आ निकला। एक कुम्हार के यहां ठहरा। दला के पास द्रव्य भी बहुत है और एक स्त्री अत्यन्त ही रूपवती है। दला ने कुम्हार को कह कर नापित को बुलवाया, क्षौर करवाई। नापित ने उस का द्रव्य, घोडे और स्त्री को देख कर मल्लिनाथजी के पुत्र जगमालजी के पास जाकर कहा कि महाराज! एक धाड़वी (डाकु) आया है, उस के पास इतना ही तो द्रव्य है, वैसे ही उत्तम घोडे हैं और एक अत्यन्त ही रूपलावण्य संपन्न सुन्दरी है। कुम्हार के यहां ठहरा है। जगमालजी ने अपना मनुष्य भेज जिज्ञासा कराई, जाओ देख आओ, कौन है? गुप्तचरों ने जाकर जिज्ञासा कर के सब वृत्तान्त जगमालजी को कहा। कुम्हारी बुद्धिमती थी और जगमालजी की प्रकृति से परिचित थी। उस ने दला से कहा, कि "ठाकुर! आप मारे जाओगे, यहां से निकल जाओ।" तब दला ने उस से पूछा कि "मारने वाला कौन है?" तब कुम्हारी ने कहा कि "वह देश का स्वामी है। वह आप का द्रव्य भी ले लेगा, घोडे भी छीन लेगा और स्त्री को भी ले जायगा।" तब दला ने कहा कि "कोई रक्षा का उपाय भी है?" तब कुम्हारी ने कहा कि "उन के चचा वीरमजी के

पास आओ तो बच सकते हो।" दला तुरन्त सवार हो अपनी स्त्री को ले वीरमजी के पास चला गया। जगमालजी ने दला को मारने के लिये जो मनुष्य भेजे थे वे वह ख़बर पाकर पीछे लौट गये। जगमाल जी को भी शान्त होकर बैठना पड़ा। वीरमजी ने दला को ५-७ दिन अपने यहां रखा। दला ने जाने के लिये कहा तब वीरमजी ने कहा कि "आप की इच्छा।" जाते समय दला ने वीरमजी से कहा कि "ये आयु के अवशिष्ट दिन आप के दिये हैं; यदि आप हमारे यहां आवेंगे तो हम आप की सेवा करेंगे। हम आप के राजपूत हैं।" वीरमजी ने अपने मनुष्य साथ में देकर उसे जोइयावाटी तक पहुंचा दिया।

अब मल्लिनाथजी के पुत्रों के और वीरमदेजी के परस्पर वैमनस्य बढ़ा। तब वीरमदेजी महेवा छोड़, जेसलमेरी में गये। वहां भी सुविधा न देखी, तब पीछे नागोर आये। वहां भी न ठहर सके। नागोर में बिगाड़ किया, वहां के गांव लूटे। फिर जांगलू चले गये। उस समय जांगलू का स्वामी मूंजा का पुत्र ऊदा सांखला था; उस ने वीरमजी से कहा कि "आप यहां न ठहरें। अगाड़ी चले जायं। आप की उद्धतता के कारण कहीं हम न मारे जायं। आप ने नागोर में बिगाड़ किया है, आप के पीछे नागोर की वाहर (पीछा करने वाली सेना) आती है। आप तो जोइयावाटी मे चले जायं। पीछे वाहर आती है उसे मैं रोक लूंगा।" तब वीरमजी जोइयावाटी में गये; पीछे से वाहर आई, जांगलू को घेरा; ऊदा कपाट वन्द कर अन्दर बैठ रहा। तब वाहर वालों ने कहलवाया कि हमारा माल दो और वीरम को हाज़िर करो, ऊदा उन से मिलने गया। खान ने उस को पकड़ कर कहा कि "वीरम कहां है?" ऊदा ने कहा कि "वह ऊदा के पेट में है।" तब खान ने ऊदा की माता को बुला कर कहा कि "वीरम को हाज़िर करो, नही तो ऊदा की खाल खिंचवाता हूं और भूसा भरवाता हूं।" फिर ऊदा की मा को खड़ी रख कर कहा कि "ऊदा की खाल निकालो।" तब ऊदा की मा ने कहा कि "वीरम ऊदा की खाल में नही है, वीरम ऊदा के पेट में है। पेट फाड़ो," तब खान ने कहा "देखो मित्रो! रजपूतानी का बल। बेटे पर कितना भलप्पन रखती है।" खान ने प्रसन्न हो कर ऊदा को छोड़ दिया; और वीरम के अपराध को भी मुआफ़ कर दिया। खान पीछा नागोर आया, ऊदा जांगलू में जा बैठा।

वीरमजी जोइयावाटी में गये तब जोइयों ने उन का बड़ा आदर सत्कार किया। और कहा कि वीरमजी विपत् के कारण यहां आये हैं। इन के पास ख़र्चा नही है, इन की यथाशक्ति सेवा और सहायता करना हमारा कर्तव्य है। इस विचार से उन्होने दांण (कर) में कुछ हिस्सा नियत कर दिया। वीरमजी के मनुष्य जो दांण लेने पर नियत थे वे रात्रि के दांण में से हिस्सा लेते है, और कभी सारा का सारा

दांण ले जाते हैं। और कहते है कि कल तुम ले लेना। और कभी उन की बकरी कोई सिंह मार डालता है तो एक की ग्यारह लेते हैं और कहते है कि सिंह जोइयों का है।

वीरमजी अत्यन्त उद्दण्ड थे. हरेक काम विना विचारे कर बैठते थे। आभोरिया शाखा का भाटी बुकण जोइयों का मामा था और बादशाह का साला था। इसी संबन्ध से बुकण और उस का भाई दोनो देहली में रहते थे। बादशाह के कहने से बुकण का भाई मुसलमान हो गया और बुकण को मुसलमान होने के लिये कहा गया तो वह भाग कर जोइयावाटी में चला आया। बुकण के पास बादशाही अनेक प्रकार के शस्त्र, वस्त्र, रत्न, आभूषण आदि अमूल्य वस्तु थीं। उन्हें देख वीरमजी ललचाये। उन्होंने बुकण को मार कर वह वस्तु लेने की लिप्सा की। किसी समय वार्तालाप करते वीरमजी ने बुकण से कहा कि "आप ने हमें कभी मिहमानी दी ही नहीं; हमारी इच्छा है कि आप के यहां मिहमानी हो और हम सब शामिल भोजन करें।" तब बुकण ने कहा "बहुत अच्छा।" बुकण ने गोठ की तैयारी की। वीरमजी को बुला भेजा। "भोजन तैयार है; आप शीघ्र आइये।" उस समय वीरमजी ने अपने राजपूतों से कहा कि "आपन गोठ के बहाने जा कर बुकण को मारें।" उन के राजपूत भी तो वैसे ही थे। उन्हों ने कहा "बहुत अच्छा।" सब मिल बुकण के डेरे पर गये। उसे मार कर उस का माल असबाब धन दौलत घोड़े आदि सब लूट लिया ले कर डेरे पर आ गये।

वीरमजी के इस कृत्य को देख कर जोइयों के मन में चिन्ता हुई कि यह बलवान् पुरुष घर में आ घुसा, इसे किस तरह निकालें। इस वृत्तान्त को हुए पांच चार दिन हुए होंगे कि वीरमजी के मनुष्यों ने ढोल के वास्ते एक बड़ा फरवास का वृक्ष कटवा डाला। तो भी जोइयों ने पूर्व उपकार का स्मरण कर शान्ति धारण की। मन में विचार कर कहा कि अपने को वीरमजी से तोड़ना न चाहिये।

अब वीरमजी का यह विचार हुआ कि दला को मारें। फिर दला को बुलाया। वह खड़खल (एक प्रकार के रथ) में बैठ कर, जिस के एक ओर बैल और दूसरी ओर घोड़ा जोड़ा गया था, आया, वीरमजी की स्त्री मांगलियांणी ने दला को अपना भाई बनाया था, उसे वीरमजी का अभिप्राय ज्ञात हो जाने से उस ने दला को संकेत द्वारा सूचित कर दिया। वह संकेत यह था कि लोटे के अन्दर दतून उलटा डाला गया था। दला समझ गया कि घात है। उस ने अपने चाकर से कहा कि "मेरे पेट में शूल है, मैं जंगल फरागत जाऊँगा" इस बहाने से खड़खल में बैठ बाहिर जा, खड़खल से घोड़े को खोल, उस पर

सवार हो दला अपने घर पहुंचा। और खड़सल के एक तर्फ़ बैल और दूसरी तर्फ़ राठी,[१] ऐसे खड़सल ले चले। इतने में वीरमजी ने राजपूतों को एकत्र कर सलाह करके दला की जिज्ञासा की तो ज्ञात हुआ कि दला के पेट में दर्द था, वह जगल गया है। तब दोलिया नामक गहलोत ने कहा कि आप किस भरोसे पर है, वह तो चला गया। तब कहा कि खड़सल बैठा कितनी दूर जायगा। तब किसी ने कहा खड़सल के घोड़ा जुता हुआ है, उस से वह चला जायगा। तथापि वीरमजी ने कहा कि जिज्ञासा करो। तब सवार भेजा, उस ने जाकर देखा तो खड़सल के एक तर्फ़ बैल जुता हुआ है और दूसरी ओर राठी खीच रहा है। उस ने आकर ख़बर दी कि दला गया। तब राजपूतों ने कहा कि आप का भेद किसी प्रकार उसे विदित हो गया। उस समय राजपूतों ने वीरमजी से कहा कि अब आप को सावधान हो जाना चाहिये, जोइया अवश्य आप पर आक्रमण करेंगे। इतने में ख़बर आई कि जोइया लोग अपनी गायें ले गये है। वीरमजी सुनते ही गायों को छुडाने के लिये शस्त्र बांध उन के पीछे चले। संग्राम हुआ। जिस में जोइया देपाल और वीरमजी दोनों मारे गये।

वीरमजी की मृत्यु का संवत् १४४० कहा जाता है। वीरमजी के स्वर्गवास के समय उन का अन्तःपुर गांव बड़ेरण में था, उसे ले राजपूत मारवाड़ की ओर रवाना हुए। मार्ग में आते वीरमजी के पुत्र चूंडा को धाय ने विश्राम के हेतु एक आक के वृक्ष के नीचे सुलाया[२] था; वहां से सब लोग रवाना हुये तब वह उन के साथ चल पड़ी, चूंडा को लेना भूल गई। एक कोस गये जब चूंडा को नहीं देखा तब धाय से पूछा तो वह घबराई और लड़खड़ाती हुई वाणी से बोली कि मैने उसे एक आक के पौधे के तले सुलाया था, मै तो उसे लेना भूल गई। तब दला का पुत्र हरिदास पीछे लौटा; वह जाकर देखता है तो चूंडा के ऊपर एक सर्प छत्र किये बैठा है। हरिदास डरा। यह क्या बात है? वह बालक के समीप जाने लगा तब सर्प हट कर बिल

---

[१] एक शूद्र जाति है।

[२] इस से वीरमजी की मृत्यु के समय चूंडा की उम्र १-२ वर्ष की जानी जाती है। और दूसरी ख्यातो में चूंडा का जन्म संवत् १४३४ मे और वीरमजी की मृत्यु १४४० मे लिखी है उस हिसाब से चूंडा की उम्र वीरमजी की मृत्यु के समय के ६-७ वर्ष की होनी चाहिये। जो ठीक प्रतीत होती है।

में चला गया। हरिदास चूंडा को ले आया। और उस की माता को दे दिया। चूंडा जसहडों का दौहित्र और गोगादे, देवराज, जैसिंघ ये मांगलियो के दौहित्र थे। मार्ग में जाते उन को एक राठी मिला। उस से उन्होने पूछा कि यह क्या शकुन है? तब राठी ने कहा कि यह बालक छत्रधारी होगा। राजा होवेगा। यह सुन सब आश्चर्यान्वित हुए। अब ये सब गांव पद्रोलायां आये। उस समय चूंडा की माता ने कहा कि मुझे अपने स्वामी से प्रयोजन है, मेरे अपने प्राणप्रिय से अन्तर पड़ता है, मैं सती होऊँगी। फिर उसने अपने पुत्र चूंडा को धाय के अधीन किया और कहा कि चूंडा को आल्हा चारण के यहां पहुंचा देना। चूंडा की माता सती हुई। मांगलियाणी भी सती हुई। राजपूत सब इधर उधर चले गये। गोगादे, देवराज, जैसिंघ तीनों भाई ननिहार-रो जाये गये। चूंडा आल्हा चारण के घर पहुंचाया गया।

चूंडा को लेकर धाय (धात्री) आल्हा चारण के घर गई। दूसरी ख्यातों में मांगलियाणी (वीरमजी की स्त्री) का चूंडा को लेकर आल्हा चारण के यहां जाना लिखा है। आल्हा गांव कालाऊ में रहता था, आल्हा के निकट जाकर धाय ने कहा कि बाई जसहड़ सती हुई है। उस ने सती होते समय आप को आशिष दिया है और कहा है कि इस बालक को भली भांति रखना, किसी को कह कर प्रख्यात मत करना। यह आप के गोद मे दिया गया है। अब उस बालक के विषय में जब कभी कोई पूछता है तो आल्हा कहता है कि वह इसी राजपुतानी का बालक है। हमारे यहां आ बसी है। चूंडा का पालन पोषण धाय करती है वह किसी को नहीं कहती है कि यह वीरमजी का पुत्र है। अब चूंडा ८-९ वर्ष का हो गया है, बालकों के साथ खेलता है, रमता है। वर्षा का समय है। एक दिन बछरे चरने के लिये वन में चले गये हैं। गवाल दूसरे बछरों को लेकर चला गया था, और आल्हा चारण के बछरे घर पर रह गये थे। तब चारण की माता ने चूंडा से कहा कि बेटा चूंडा! बछरे दूर जंगल में चर रहे हैं, अपने बछरे घर रह गये हैं, इन्हें भी तू जंगल में ले जा और उन के शामिल कर आ। तब चूंडा बछरों को ले जंगल में गया कि अपने बछरों को दूसरे बछरों के शामिल कर दूं परन्तु वे बछरे नहीं मिले, तब वह स्वयं उन्हें चराने लगा। इतने में चारण घर पर आया, उसने देखा तो चूंडा घर में नहीं है। उस ने अपनी माता से पूछा कि चूंडा कहां है? तो माता ने कहा कि आज अपने बछरे घर पर रह गये थे, उन को दूसरे बछरों के शामिल करने के लिये मैंने उसे जंगल में भेजा है, तब आल्हा चूंडा के पाद चिन्ह के पीछे पीछे जंगल में गया। और

जाते समय माता से कहा कि माता ! आप ने बहुत बुरा किया। चूंडा को नहीं भेजना था।

चारण जंगल में जाकर क्या देखता है कि चूंडा ने बछरों को जंगल मे खडा कर दिया है ; स्वय वृक्ष की छाया मे सो रहा है। और सर्प विल मे से निकल कर चूंडा के ऊपर छत्र कर के बैठा है। चारण इस दृश्य को देख अत्यन्त चकित हुआ। जब चारण चूंडा के निकट जाने लगा तो पैर की आहट पाकर सर्प हट कर एक वृक्ष के अन्दर चला गया। चारण ने चूंडा के समीप जा, उसे जगा कर कहा कि तुम यहां क्यों आये ? चलो, घर पर चलो, फिर उसे घर पर ले आया। आकर माता से फिर कहा कि माता ! तू ने बहुत बुरा किया। आयंदे इस को कभी मत भेजना। फिर चारण ने एक घोड़ा और शस्त्र ले दिये और वस्त्र भी बनवा दिये। फिर रावल मल्लिनाथजी के पास ले गया।

वीरमजी के ५ पुत्र थे। १ देवराज, २ गोगादे, ३ जैसिंह, ४ विजो, ५ चूंडा, उन से ४ शाखाएं फटीं :—

१ देवराज से देवराजोत राठौड़

२ गोगादे से गोगादे

३ जैसिंघ से जैसिंघ

४ चाहड़दे से चाहड़दे

२० राव चूंडाजी—राव चूंडाजी बड़े भाग्यशाली पुरुष थे। मारवाड़ में राठौड़ों के राज्य की दृढ़ता इन्हीं के समय से हुई। इन का जन्म संवत्[१] १४३४ में होना लिखा मिलता है। इन्होंने मण्डोवर हस्तगत होने पर मुसलमानों से नागोर, डीडवाना और सांभर भी छीन लिया था। वीरमजी के मरने पर चूंडाजी की माता मांगलियाणी ने बालकों को ले, थल मे जा, गांव कालाऊ में आल्हा चारण के यहाँ निवास किया। आल्हा ने चूंडाजी के लक्षण देख कर कहा कि यह बालक छत्रधारी होवेगा।

जब चूंडाजी तरुण हुए तब आल्हा चारण चूंडाजी को उन के पितृव्य मल्लिनाथजी के पास ले गया। मल्लिनाथजी ने उन्हें अपने पास रख लिया। चूंडाजी बड़े वीर और उदार प्रकृति के थे। परन्तु

---

१. टॉड साहिब चूंडाजी का वि० सं० १४३८ में गद्दी बैठना लिखते है (टा. रा. प्रथम भाग पृ० १९)। परन्तु उन के पिता वीरमजी की मृत्यु का समय १४४० है। उसी अर्से में मांगलियाणी बालको को ले कर गांव कालाऊ गई थी। संवत् १४३८ में वीरमजी विद्यमान थे। उन की विद्यमानता में चूंडाजी का गद्दी बैठना किसी प्रकार से नहीं संभवता।

उस समय उन के पास किसी प्रकार का परिकर न होने से उन की अति संकुचित दशा थी। ऐसा उदार चित्त पुरुष ऐसी दशा में कितने दिन रह सकता है? उन्होंने महेवे के महाजनो को लूट कर अपना निर्वाह करना आरम्भ किया। महाजनों ने मल्लिनाथजी के पास जाकर निवेदन किया कि "आप ने यह क्या किया? आप जानते नही है? यह वीरमजी का पुत्र है। हम इस के उपद्रव के मारे आप की भूमि में नही रह सकते। आप इस का प्रवन्ध करे।" उसी अवसर में सांखला वीसलदे ने अपनी कन्या मल्लिनाथजी को व्याहने के लिये अपने प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ नालियर भेजा। मल्लिनाथजी ने उस सवन्ध को स्वीकृति कर बरात की तैयारी की। बरात में चूंडाजी भी शामिल थे। जव मल्लिनाथजी का विवाह निर्विघ्न हो चुका, तव चूंडा जी को देख कर वीसलदे के मन मे यह संकल्प हुआ कि मेरी दूसरी कन्या योग्य वय में है इसे चूंडाजी को व्याह दी जाय। यह राजपूत प्रशस्त गुणवाला दिखाई देता है। और इस के लक्षण महाभाग्यशाली हो वैसे प्रतीत होते हैं। यह अवश्य किसी न किसी देश का राजा होवेगा। यह सोच कर उसने अपनी दूसरी वेटी चूंडाजी को व्याह दी। रावल मल्लिनाथजी और चूंडाजी विवाह कर के पीछे महेवा को लौटे; उस समय महाजनों ने फिर चूंडाजी की शिकायत की, जिस से मल्लिनाथजी चूंडा पर अप्रसन्न हुए। और चूंडाजी को निकल जाने के लिये कहा गया। परंतु मल्लिनाथजी के एक भौहा नाम का नापित मन्त्री था, उस के और चूंडाजी के परस्पर प्रीति थी। उस ने मल्लिनाथजी से कहा कि "यह वीरमजी का पुत्र है, क्षुधातुर है। 'क्षुधातुरः किन्न करोति पापम्।' इस के लिये कुछ तजवीज कर देनी चाहिये, जिस से इस का निर्वाह हो जाय। तव मल्लिनाथजी ने कहा कि तू जानता है? यह वीरम का पुत्र है। यह सरल कभी नहीं रहेगा।" तव भौहे ने कहा कि "आप इस को सालोड़ी के थाने पर रख दीजिये। जिस से आप को दोनों ओर से लाभ है। या तो भाटियों को यह सीधा वना देता है; या भाटी इसे मार लेते हैं।" इस वात को मल्लिनाथजी ने भी मान लिया। चूंडाजी सालोड़ी के थाने भेजे गये। अब चूंडाजी गांव सालोडी के थाना पर रहते हैं; वहां अपने पास कुछ राजपूत भी रख लिये हैं। कुछ घोड़े भी पायगा में हो गये हैं। और रहने के लिये कुछ झोंपडे भी वना लिये हैं। इस वात की मल्लिनाथजी के पास किसी ने चुगली की कि चूंडाजी अपना वल वढाता जाता है। इस वात से मल्लिनाथजी के मन में अन्देशा पैदा हुआ। उन को यह बहुत बुरा लगा। क्योंकि ग्रासिये (ग्रास भोक्ता) का वल वढना अच्छा नहीं। तव मल्लिनाथजी ने भौहा से कहा कि ये लोग क्या कहते हैं? तव भौहा ने कहा कि मुझे तो यह बात असत्य

प्रतीत होती है। आप किसी को भेज कर निर्णय करा सकते है। और आप स्वयं भी जाकर देख सकते हैं। "गाल थाप के कितना अन्तर?" तब मल्लिनाथजी ने चूंडा जी के पास अपना मनुष्य भेजा। उस से पहले भौहा ने चूंडाजी के पास अपना प्रच्छन्न दूत भेज कर कहला दिया कि रावलजी के पास चुगलखोरों ने आप की चुगला की है। और उस के साथ मल्लिनाथजी का आशय भी प्रकट कर दिया। और इस बात की सूचना कर दी कि आप का वृत्तान्त जानने के लिये रावलजी के मनुष्य आते है उस से पहले आप अपने राजपूत और घोड़े आदि जो परिकर है उसे अपने पास से हटा देवें। और आप भी साधारण वेष में रहें। रावलजी के मनुष्य चूंडाजी के पास पहुँचे उस से प्रथम चूंडाजी ने भौहा के कथनानुसार सब तजवीज वैसी ही बना ली थी। रावलजी के मनुष्यों ने जाकर देखा तो चूंडाजी के पास उन की सवारी के घोड़े के सिवा दूसरा घोड़ा तक नही है। थाना में सिर्फ़ पांच चार राजपूत है। और स्वयं चूंडाजी का वेष भी साधारण रीति का है। यह दृश्य देख पीछे जा कर दूतो ने रावलजी से कहा कि आप को किसी ने मिथ्या बात कही है। हम अपनी आँखों से देख आये है; चूंडाजी के पास उन की खुद की सवारी के सिवाय दूसरा घोड़ा तक नही है और न कोई दूसरा परिकर है। यह सुन रावलजी को तसल्ली हुई, और मन में समझ गये कि चूंडाजी के साथ लाग होने के कारण यह झूठी बात कही गई है। अतएव फिर मल्लिनाथजी ने चूंडाजी की तर्फ़ बिलकुल ध्यान नहीं दिया। और चूंडाजी अपना परिकर बढ़ाते रहे। होते होते उन का प्रभाव इतना बढ़ गया कि समीप के समस्त राजपूत उन से शंकित रहने लगे। और वे उस प्रान्त में बड़ी प्रसिद्धि पा गये।

चूंडाजी के सालोड़ी में निवास करते सांखली रानी से एक पुत्र हुआ। उस का नाम रणमल्ल रखा गया। जब वह दो वर्ष का हुआ तब चूंडाजी ने सांखली को रणमल्ल के साथ गांव चूंडासर में भेज दिया। और आप स्वयं सालोड़ी में निवास करते रहे। चूंडाजी कभी कभी चूंडासर भी जाया आया करते थे। चूंडाजी का दूसरा विवाह भाटियों के हुआ था। जब चूंडाजी ने देखा कि बहुत से राजपूतों और घोड़ों का संग्रह हो गया है और प्रति दिन वैभव वृद्धि पा रहा है, तब उन्होंने इधर उधर की भूमि दबाना शुरू किया। उस समय मण्डोवर का राज्य बहुत विस्तृत था; उस के कुछ गांवों पर अधिकार कर लिया। उस समय उन को अकस्मात् कुछ द्रव्य की भी सहायता मिल गई। इस विषय में ऐसा लिखा मिलता है कि कुछ व्यौपारी नमक के पोठ लिये सालोड़ी की हद में होकर निकले, जिन में उन्हों ने सुवर्ण छिपा रखा था। चूंडाजी को किसी कदर मालूम

हो गया था कि इन पोठों में वनजारों ने सुवर्ण छिपा रखा है। चूंडाजी के मनुष्यों ने राहदारी मांगी और पोठ दिखाने के लिये कहा; जिस पर वनजारों ने इनकार किया। इसी बात पर लड़ाई हो पड़ी। चूंडाजी ने उन को मार कर सुवर्ण तो अपने हस्तगत किया और नमक के पोठ मल्लिनाथजी के पास भेज दिये। चूंडाजी को अकस्मात् जो यह द्रव्य की सहायता मिल गई उस से उन्होंने अपना परिकर और यथेष्ट बढ़ा लिया।

इसी अर्से में ईंदों[1] और मुसलमानों के आपस में छिड गई। उस का कारण यह हुआ कि मण्डोवर पर मुसलमानों का अधिकार है, कोटेचा, आसायच, मांगलिया, सींधल आदि राजपूत मण्डोवर के समीप गांवों में निवास करते हैं। मुसलमान लोग उन से वेगार लेते हैं। जब दूसरे समस्त राजपूत वेगार देने लगे तो ईंदे कैसे बच सकते थे? ईंदों से घास के गाडे वेगार में लाने के लिये कहा गया। परन्तु ईंदों को इस बात का अभिमान था कि हम मण्डोवर के मालिक हैं, इस लिये उन को यह असह्य लगा। उन्होंने विचार किया कि आज तक हम ने वेगार नहीं निकाली है, अब यह नया दण्ड सिर पर पडता है। परन्तु उस समय टंटा करना उचित न समझ कर ईंदों के मुखिया हरधवल और ऊदा ऊगमावत ने घास के गाड़ा लाना स्वीकृत किया। फिर अपने प्रान्त (ईंदावाटी) में जाकर परस्पर विचार कर के यह निश्चय किया कि इस समय तुरक प्रबल हैं, आपन उन से लड़ कर विजय नहीं पा सकते। इन को छल से मार कर अपना काम निकालना चाहिये। तब किसी वृद्ध पुरुष ने कहा कि "इन को मारने का एक उत्तम उपाय है। वह यह कि ४०-५० गाड़े घास के भर कर तैयार किये जावें और हरेक गाड़े में चार चार पांच पांच राजपूत शस्त्रों से सझ कर घास के अन्दर छिप कर बैठ जायँ। जब घास के गाडे खाली किये जायँ उस समय सब के सब एक साथ मुसलमानों पर टूट पड़ें।" इस बात को सुन कर समस्त राजपूतों ने एक मत हो कर कहा कि "बहुत अच्छा। आप वृद्ध हैं, आप ने बहुत कुछ देखा है, आप हमारे नेता हैं, आप जो कुछ कहें, हम करने को तैयार हैं।" इस प्रकार सब की समति हो जाने पर उन्होंने वैसा ही किया। ४०-५० गाडे मण्डोवर ले जाकर तलहटी में खडे किये गये। ईंदा हरधवल और ऊदा ने गढ पर जाकर मुसलमानों के प्रधान आफ़िसर से कहा कि आप की आज्ञानुसार घास के गाडे ले आये हैं। आप चल कर देख लीजिये। मुसलमान अधिकारी ने आकर गाडों को अच्छे चंगे भरे देखकर गाड़े खाली करने के लिये कहा। ईंदों ने देखा

---

[1] ईंदा पड़िहारों की एक शाखा है।

कि मुसलमान सब घास के गाड़े देखने में लगे हुए हैं। गाड़ों को एक साथ उलाड़ दिया। गाड़े उलड़ते ही २०० राजपूत वीर गाड़ों मे से निकल मुसलमानों पर टूट पड़े। तुरक असावधान थे इसलिये बहुत से मारे गये और कुछ भाग निकले। कुछ ईंदे भी मारे गये। परतु मंडोवर का किला ईंदों ने ले लिया। परन्तु उस को हस्तगत रखना दुर्वह समझ कर ईंदो ने चूंडाजी से सहायता मांगी। चूंडाजी ने उन को पूर्ण सहायता प्रदान की जिस से ईंदों के मुखिया रायधवल[1] ने अपनी कन्या चूंडाजी को व्याहो ; और यौतुक में मण्डोवर भी दे दिया। उस विषय का यह प्राचीन दोहा सोरठा है प्रसिद्ध है :—

ईंदा रो उपकार, कमधज मत भूलौ कदे।
चूंडो चँवरी चाड, दियो मँडोवर दायजे ॥ १ ॥

एक ख्याति में यही वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है। ईंदा राणा टोहा बड़ा वीर उदार प्रकृति का था। वह ऊमरकोट सोढों के यहां व्याहा था। उसको स्त्री का नाम अवतारदे था। दोनों स्त्री पुरुष बड़े दानी मनुष्य थे। टोहा सुसराल ऊमरकोट गया था, वहां से लालस चारण को अपने साथ ले आया था। उस समय मण्डोवर के थाने पर मुगल ऐबक था उस ने सूंडा शाखा के राठौड़ तोला को, जो पहले वांरुछाण थली (मरुभूमि) में रहता था और पश्चात् वहां से बांवरली तोलीसर में आकर निवास कर दिया था, कहा कि घास के गाड़े लावो। तब तोला सूंडा ने मुगल को कहा कि "नवाब साहब! ईंदों के गांव में घास बहुत अच्छी है।" तब मुगल ने ईंदों को घास लाने के लिये कहा। ईंदा टोहा और हरधमल ने थानेदार को कहा कि "आप घास कही दूसरी जगह से मंगा लीजिये। हम से यह नया काम करने को न कहें।" परन्तु मुगल ने उन से कहा कि "तुम को घास लानी होगी।" तब १०० गाड़े घास के भर, प्रत्येक गाड़े में पांच पांच मनुष्य सशस्त्र बिठला कर गाड़े ले आये। और मुगल से कहा कि गाड़े देख लीजिये। मुगल अपने साथियों को लेकर गाड़े देखने आया। जब ईंदो ने देखा कि अब अच्छा अवसर है, तुरन्त गाड़ों को उलाड दिया। उन मे से एक साथ ५०० वीर सशस्त्र निकले। फिर क्या था? तुरंत तलवार खोंच कर मुगलो को साफ कर दिया। उस विषय के ये प्राचीन दोहे हैं :—

---

१. रायधवल हरधवल का भाई है।

"जो[1] मण्डोवर, ईंदा उजलावत नही ।
तौ हिन्दू चामुंड, मांहै गलता मेछ पण ॥ १ ॥
ईंदै आगे हीं लगै, जुड़ जीता सत्र जंम ।
पैवक टोहै आमगौ, राजे इम राहंम ॥ २ ॥"

तदनन्तर ईंदो ने विचार किया कि मंडोवर आपन ने ले तो लिया है . परन्तु मुसलमानों के आगे आपन रख न सकेंगे। और अपने समीप सालोड़ी के थाने पर चूंडा राठौड मल्लिनाथजी की ओर से रहता है उस को शामिल ले लें तो अच्छा होगा । इस विचार से वे चूंडाजी के पास आये . और किले मे चूंडाजी को रख ईंदा रायधवल ने अपनी पुत्री राव चूंडाजी को व्याह[2] दी ।

इस के साथ यह कथा भी लिखी है कि चूंडाजी को चामुण्डा देवी की कृपा से घोड़ो की सहायता मिली थी । चूंडाजी ने चामुण्डा से विनती की कि आप की कृपा से मण्डोवर का राज्य तो मिल गया है , परन्तु मेरे पास घोड़े नहीं है । तब चामुण्डा माता ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम एक मोटा वाडा (कांटों की भित्तिवाला विस्तृत प्रदेश) बना कर उस के द्वार पर बैठ जाओ । कल आंधी आवेगी, उस आंधी के अन्दर घोडे आवेंगे, तुम को जितने घोड़े चाहिये वाड़े के अन्दर आने देना, हो हो शब्द मत करना । हो हो शब्द करोगे तब घोड़ों का आना बन्द हो जायगा । चूंडाजी ने वैसा ही किया । देवी की कृपा से चूंडाजी को मनोवाञ्छित घोड़े मिल गये । अब चूंडाजी ने इधर उधर की भूमि दबानी शुरू की । चूंडाजी को ईंदों से पूर्ण सहायता मिली है उन का उन पर पूर्ण विश्वास है । मण्डोवर से पश्चिम की तर्फ महेवा, खेड, नगर सिवाणा ये सब मल्लिनाथजी और उन के भाइ बेटों के अधिकार में है । मल्लिनाथजी, राणी रूपादे (मल्लिनाथजी की स्त्री,) सांखला हरभू, मांगलिया मेहा, तुंवर रामदेव, चहुवाण गोगो, ये देवी उपासक हैं, परम भक्त हैं । इस लिये चूंडाजी ने पश्चिम की भूमि को छोड कर पूर्व की पृथ्वी की ओर ध्यान रक्खा। चार वर्ष तक मंडोवर में रह कर वहां का राज्य जमाया । तदनन्तर नागोर के नवाब अजमत-अलीखां को नागोर से निकाल कर नागोर लिया । पश्चात् जोइयों पर

---

[1] यदि ईंदा राजपूत बल पूर्वक मण्डोवर को मुसलमानों से मुक्त करके उज्ज्वल नहीं करते तो चामुंड के हिन्दू मुसलमान हो कर नष्ट हो जाते ॥ १ ॥ परन्तु ईंदों ने प्रथम ही युद्ध करके यम के सदृश शत्रुओं को जीत लिया । टोहा ने पैवक पर हल्ला कर विजय प्राप्त की जिस से वह रहीम के समान शोभित हुआ ॥ २ ॥

[2] किसी ख्याति में ईंदा गांगादे की पुत्री लालांराय चूंडाजी के साथ विवाह होना लिखा है । यह इस से अन्य हो ।

चढ़ाई कर अपने पिता वीरमजी के वैर का बदला लिया। और जांगलू की तर्फ़ सांखला राज्य करते थे उन को आधीन कर जांगलू पर भी अपना अधिकार कर लिया था।



राठौड़ राव चूंडाजी

मुहणोत नैणसी चूंडाजी के विषय में यों लिखता है कि मल्लिनाथजी ने चूंडाजी से कहा कि तुम गुजरात की तर्फ़ जाकर अपनी चौकी रक्खा, और कुछ राजपूतों से कहा कि तुम इन के साथ जाओ। ईंदा सिखरा को साथ जाने के लिये कहा गया तब उस ने मल्लिनाथजी से कहा कि मुझे आप समझ कर देना, तब रावलजी ने कहा कि हम हुक्म देते हैं। तुम इन के साथ जाओ। और अन्य भी ईंदा राजपूत चूंडाजी के साथ गये, चूँडाजी को घोड़ा सिरोपाव देकर रवाना किया। चूँडाजी थाने पर जा बैठे। वहां उन्हों ने बहुत उत्तम प्रबन्ध किया। थाने में रहते कुछ समय हुआ होगा; घोड़ों के व्योपारी घोड़े ले कर उधर की ओर आ निकले। चूंडाजी ने उन से घोड़े छीन कर अपने राजपूतों को दे दिये और एक घोड़ा आप ने रख लिया। व्योपारियों ने देहली जा कर निवेदन किया तब वहां से अहदी भेजे गये। उन्हों ने मल्लिनाथजी को तंग किया तब मल्लिनाथजी ने चूँडाजी को कहलाया कि घोड़े दे दो; उत्तर में चूँडाजी ने कहलाया कि घोड़े तो राजपूतों को दे दिये गये है, मेरे पास एक घोडा है, वह तैयार है। यह उत्तर पाकर मल्लिनाथजी ने घोड़ों के एवज़ में द्रव्य देकर छुटकारा पाया। परन्तु चूँडाजी को कहला दिया कि हमारे देश मे मत रहो। तब चूंडाजी ईंदावाटी में चले गये। उस समय मण्डोवर में मुसलमानों का अधिकार था। ईंदों से मण्डोवर के स्वामी मुसलमानों ने घास लाने को कहा, तब ईंदों ने चूंडाजी से कहा कि आप मदद करे तो मुसलमानों को मार कर मण्डोवर ले ले। चूंडाजी ने कहा बहुत अच्छा, हम तैयार है। फिर घास के गाड़ों में चार चार राजपूत बिठा कर गाडे मण्डोवर ले गये। सध्या होते मण्डोवर में

पहुंचे। गाडे सब किले के अन्दर गये, इतने मे रात्रि हो गई थी, राजपूतों ने गाडों से निकल कर मुसलमानों को मार कर मण्डोवर का किला ले लिया। और चूंडाजी को मुरब्बी मान कर उनकी आज्ञा प्रवृत्त की। मल्लिनाथजी ने सुना कि चूंडाजी ने मुसलमानो से मण्डोवर ले लिया है तब मल्लिनाथजी अपने बन्धुवर्ग को साथ लेकर मण्डोवर में आये, चूंडाजी से मिले और कहा कि शाबास, तू सुपुत्र है। चूंडाजी ने मल्लिनाथजी की महिमानी की। चूंडाजी मण्डोवर मे रहे, और मल्लिनाथजी पीछे महेवे गये।

कर्नल टॉड साहिब अपनी पुस्तक के प्रथम भाग में सातवें प्रकरण में पडिहारों के प्रसंग मे लिखते है "कन्नौज[1] के राठौड वशी राजा जब वहां से भागे तो पड़िहारों के पास आकर शरण पाये। उस का बदला उन्होंने विश्वासघात से दिया। और चूंडा नामी एक प्रसिद्ध राठौड ने पडिहारों के अन्तिम राजा का राज्य छीन लिया।

---

[1] मालवा के दक्षिणी विभाग मे आलीराजपुर नामक छोटा सा राठोडों का राज्य है। उस के स्वामी अपने को कन्नौज के महाराज जयचन्द्र के वशज कहते है। उन का कथन है कि जयचन्द्र के ४ पुत्र थे। १ हरिश्चन्द्र, २ जजपाल, ३ मेघचन्द्र, ४ उदयपाल। जजपाल के पुत्र भूरसेन से छठा पुरुष अभैपाल हुआ। उस के दो पुत्र हुए। पर्जनपाल और मदनपाल। पर्जनपाल के वशज राजा का राज्य रामपुर और खेमसेपुर में है।

मदनपाल सवत् १३७५ में दक्षिण में गया। उस से चौथा पुरुष देवपाल हुआ। वह सवत् १४०२ के करीब ओंकारनाथ के चौहान राजा को मार कर वहाँ का राजा हुआ। परन्तु उसे चोहान राजा के सेनापति भील ने मार डाला। देवपाल का पुत्र जगदेव। वह संवत् १४३७ में भाभरा के मोटीपोल स्थान में जा रहा। उसका पुत्र दीपसेन। उसने सवत् १४४३ में मोटीपोल में किला बनाया। उस से पांचवां पुरुष हेमचन्द्र हुआ। वह मालवे के बादशाह होशंग से लड कर मारा गया। उस का पुत्र आनन्ददेव। उस ने संवत् १४६४ के आश्विन सुदि १० को मोटीपोल से १६ मील पर किला और आनदावली नगर बसाया। वह इस समय 'आली' नाम से प्रसिद्ध है। आनंददेव का पुत्र चंचलदेव। और चञ्चलदेव के २ पुत्र हुए। गूगलदेव और केसरदेव। केसरदेव ने स० १५२१ में जोपट राजस्थान कायम किया। गूगलदेव का पौत्र कृष्णदेव। उस का भतीजा बछराज। उस से पांचवां पुरुष दीपदेव। दीपदेव का भाई सबलसिंह। इस ने सोंडवा ठिकाना कायम किया। दीपदेव का पौत्र पहाडदेव। उस का पुत्र उदयदेव। उस का पुत्र पहाड़सिंह। तत्पुत्र प्रतापसिंह। इस ने ५ कोस पर राजपुर राजधानी कायम की। तत्पुत्र जसवतसिंह। इस के २ पुत्र। गगदेव और रूपदेव। रूपदेव के विजयसिंह। तत्पुत्र प्रतापसिंह। इस समय यह विद्यमान है।

इस राज्य की आमदनी सात लाख की है। १३ तोपों की सलामी है। H H (महाराजा) पदवी है।

और मण्डोवर के दुर्ग पर राठौड़ों का झंडा खड़ा कर दिया।" और दूसरे भाग में राठौड़ चूंडाजी के इतिहास मे लिखते हैं "राठौड़ चूंडा ने पड़िहार राजा को मार कर मण्डोवर के किले पर कन्नौज का झंडा खड़ा किया।" परन्तु कन्नौज से भागने वाला राठौड़ राजा सीहा था। वह टॉड साहिब के लेखानुसार प्रथम कोलूमढ़ में गया, जहॉ का राजा सोलंकी था। पीछे अणहिलवाड़े मे गया, वहाँ का भी राजा सोलंकी था। पीछे खेड़ मे गया, जहॉ का राजा गोहिल और प्रधान डाभी थे। पड़िहारों का कही उल्लेख भी नही है; तब उन के लेखानुसार पड़िहारों के पास आकर शरण पाना लिखना केवल कल्पना मात्र है। यथार्थ नही। कदाचित् यहाँ राठौड़ वंशी राजा से चूंडाजी समझ लिये जॉय तो वे कन्नौज से भाग कर नही आये थे। तो भी यदि चूंडाजी ही मान लिये जायें तो कहना पड़ता है कि चूंडाजी पड़िहारों के शरण कभी नही गये थे। प्रत्युत ईंदा जाति के पड़िहारो को मुसलमानों को मार कर मण्डोवर लेने मे चूंडाजी की मदद लेनी पड़ी थी। उसी से उन्होंने अपनी बेटी चूंडाजी को दी थी और मण्डोवर दहेज में दिया था। इस दशा मे पड़िहार राजा को मार कर मण्डोवर लेना लिखना असंगत है। और पड़िहारों का मण्डोवर दहेज में देने की जो प्राचीन कविता मिलती है उस का अभिप्राय ऐसा जान पड़ता है कि ईंदा और चूंडा दोनों ने मिल कर मण्डोवर लिया था। परन्तु ईंदों ने 'एक म्यान में दो तलवार नही रह सकती' इस न्याय को विचार, चूंडा को प्रबल देख कर दहेज के नाम से चूंडा को मण्डोवर दे दिया था।

संवत् १४५१ में मण्डोवर पा कर चूंडाजी ने ईंदा, मांगलिया, आसायच आदि राजपूतों को अपने पास बड़े आदर मान और प्रतिष्ठा से रक्खा। और जिस के पास जो भूमि थी वह बहाल रक्खी और उजड़ गांवों को आबाद करके कुछ तो खालसे रक्खे और बाकी अपने राजपूतों को दे दिये। परन्तु चौरासियों के अच्छे २ गांव खालसा कर लिये गये। चूंडाजी ने अधिकतर राज्य बढ़ाने का ध्यान पूर्व की ओर रक्खा था। क्योंकि पश्चिम मे महेवा और सिवाना आदि में उन के चचा मल्लिनाथजी और जैतमालजी, तथा उन के पुत्र पौत्रादि विद्यमान थे। जो उन की आज्ञा से बाहिर नहीं थे।

जब चूंडाजी का प्रताप बढ़ा तब इधर उधर के सब लोग उन के पास आने लगे। आल्हा चारण ने भी, जिस के यहां चूंडाजी ने बाल्यावस्था में परवरिश पाई थी, उन के निकट जाना उचित समझा; और चूंडाजी से मिलने के लिये मण्डोवर मे आया। परन्तु रावजी राज्य वैभव पा कर उसे बिलकुल विस्मृत हो गये थे। "प्रभुता पाइ

पाइ काहि मद नांहि" । रावजी मण्डोवर के महलों के गवाक्ष में बैठे थे, आल्हा ने वहां पहुँच कर चूंडाजी को ये दोहे सुनाये :—

दोहा सोरठा

"चूंडा[१] नावै चीत, काचर कालाऊ तणा।
भलौ भयो भैभीत, मण्डोवर रै मालियां ॥ १ ॥
तो कालाऊ कांय, चीत न आवै चांड राव।
फाटो फाटो जाय, डीडवाणो डंडियां पछै ॥ २ ॥

यह सुनते ही चूंडाजी ने आल्हा को अपने समीप बुला कर उस का अनिशयित आदर सत्कार किया। और कहा कि "जो इच्छा हो कहिये।" तब आल्हा ने कहा, "मैं यह चाहता हूं कि मुझे मेरे गाँव के समीप अति उत्तम भूमि मिलै, जिस मे मेरी गैयां सुख पूर्वक रहें।" रावजी ने उसी क्षण उस भूमि का परवाना कर दिया जो जितनी चाही थी और उस के ऊपर इतना पारितोषिक दिया, छ हज़ार ६०००) रुपये, दो घोडे और जनाना मरदाना सिरोपाव।

चूंडाजी ने कई वर्षों तक मण्डोवर में रह कर अपने राज्य को दृढ कर लिया है और धर्म-पूर्वक राज्य शासन कर रहे हैं; प्रजावर्ग उन के शासन में परम प्रसन्न है। बन्धुवर्ग परम प्रीति से उन की सेवा में तत्पर हैं। संबन्धी लोगों के साथ भी उन का वर्ताव अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। परन्तु मुसलमान लोग अपने जाति स्वभाव से उन से द्वेष करते हैं। गुजरात के मुसलमानो ने उन पर आक्रमण किया था। वह वृत्तान्त गुजरात के इतिहास की पुस्तक तवारीख़ मिरआत सिकंदरी में इस भाँति लिखा है—"मण्डोवर के राजा ने मुसलमानों को सताना शुरू किया, जिस पर गुजरात का सूबहदार जफरखाँ हिजरी सन् ७९९ (वि० सवत् १४५३ ई० सन् १३९६) मे मण्डोवर गया। राजा ने किले का आश्रय लिया। जफरखाँ एक वर्ष और कई महीने उस को घेरे पडा रहा। जब किले में सामान हो चुका तो राजा ने यह वचन दिया कि फिर मुसलमानों को नहीं सताऊँगा। और नजराना भी दिया। तब जफरखाँ अजमेर चला गया।"

इस के दो वर्ष के अनन्तर चूंडाजी ने संवत् १४५६ में रावल मल्लिनाथजी प्रभृति अपने बन्धुवर्ग को एकत्र कर बड़ी सेना बना के

नोट—(१) हे चूंडा! तुझे कालाऊ गाँव के काचरे (फूट ककडी) स्मरण नहीं होते। इस मंडोवर के महलों में बैठ कर बड़ा निःशंक हो गया है। हे चूंडा राव! तुझे कालाऊ का स्मरण क्यों नहीं होता? डीडवाणे को दंडित किये पीछे तू अत्यंत ही फटा जाता है अर्थात् गर्वयुक्त हो रहा है।

नागौर पर चढ़ाई की। वहाँ के जलाल खोखर॰ को मार कर, वहाँ का प्रान्त अपने आधीन कर, जोइयों से अपने बाप के वैर का बदला लिया। वहाँ से पीछे लौटते जांगलू पर आधिपत्य प्राप्त किया। फिर खाटू को विजय कर, बादशाही शहर सांभर और डीडवाना पर आधिपत्य स्थापित कर नागौर के भोमिया मोहिल और सांखलों को पराक्रान्त कर नागौर को अपना मुख्य निवास स्थान बनाया। पुरोहित अक्खा ने नागौर में चूंडाजी के पास आ कर निवेदन किया कि आप मेरे साथ चलें तो मैं फलोधी का परगना आप को दिलवा दूँ। चूंडाजी उस की बातों में आ गये। उस के कहने से अपने चचा जयसिंह के ऊपर चढ़ चले, जो फलोधी के जाडोला आदि ५५ गांवों का स्वामी था। चूंडाजी ने जाकर गढी को घेर लिया। जब गढ़ी टूटने की नौबत पहुँची तब सोलंकी मूलराज ने जयसिंह से कहा अब मरना तो निश्चित है तो वीरता से लड कर मरना ही उत्तम होगा, जिस से जगत् में जस और स्वर्ग का खुला मार्ग मिले। तब जयसिंह गढ़ी से बाहिर आकर बड़ी बहादुरी से लड़ कर ८४ मनुष्यों के साथ मारा गया। रावजी की विजय हुई।

एक दिन रावजी नागौर में दरबार में बैठे है। सरदार और बन्धुवर्ग उपस्थित है। वहाँ दरबार मे आकर एक किसान ने कहा कि "महाराज! मेरे खेत में द्रव्य है। मैं हल चला रहा था, वहाँ हल की नोक से ज़मीन मे से चरू (पीतल का बड़ा पात्र) के किनारे निकले है। मैं अनुमान करता हूं कि वहां अवश्य गड़ा हुआ धन है। पृथ्वी में जो गड़ा हुआ धन होता है उस का स्वामित्व राजा का होता है इस लिये मै आप को निवेदन करने आया हूँ।" रावजी ने उस की सरलता देख उस के साथ अपने मनुष्य भेज कर कहा कि "जाओ देखो क्या बात है?" किसान उन

॰ किसी ख्यात में खानजादा आजम को मार कर नागोर लेना लिखा है वह ठीक नहीं है। क्योकि खानजादों का नागोर पर अधिकार वि० सं० १४६४ के करीब होना पाया जाता है। जफरखां गुजरात का स्वतंत्र बादशाह उसी समय में हुआ था और उसी समय मे अपने छोटे भाई शमसखां को नागोर भेज कर नागोर पर अपना आधिपत्य जमाया था। जिस शमसखां ने नागोर में अपने नाम से शमस नामक तालाव करवाया और उसी के तट पर एक बड़ी मस्जिद बनवाई जिसके मदारे दूर से दिखाई देते है। खानजादा पदवी इसी खानदान की थी इस से पूर्व नागोर पर खानजादो का अधिकार नही था। खोखर जाति के राजपूत भी हैं और मुसलमान भी हैं। "नागोर की उत्पत्ति" नामक पुस्तक मे "चूंडाजी की मौसी खोखर सरदार को व्याहना लिखा है" जिस से यह खोखर सरदार राजपूत पाया जाता है।

मनुष्यों को ले कर वहाँ गया, और वह भूमि दिखला कर बोला कि "यहाँ ये किनारे दीख पडते हैं, देखिये ।" उन्होंने जाकर देखा तो सचमुच चरू के किनारे हैं। तब कुछ पृथ्वी खोदी गई। परंतु वे औंडे अधिक थे, अन्त न आया। तब उसे वैसे ही छोड, किसान को भलामन दे, अपने एक मनुष्य को वहाँ रख, पीछे रावजी के पास आ कर कहा कि "महाराज! चरू तो है परन्तु औंडा बहुत है कुछ खुदाई भी की गई है, परतु उसका छोर दिखाई नहीं देता है। आप चल कर देख लें तो ठीक होगा।" तब रावजी हाथी पर सवार हो वहाँ गये। वेलदारों को बुला कर खुदाई की गई। अधिक खोदने पर ज्ञात हुआ कि ये बरतन (पात्र) पाक बनाने के हैं। चरू, देंगे, कूडियाँ और थालियें आदि देख कर सरदारों ने रावजी से कहा कि "आप भी देखें।" देखा तो उन बरतनों के ऊपर नानग छा (चा) वडे का नाम खुदा हुआ है और यह लिखा हुआ है कि "जो इन पात्रों को काम में लावै वह इन पात्रों के अनुसार भोजन की सामग्री तैयार करे। यह देख कर रावजी ने कहा कि "इन बरतनों को पीछे ज़मीन में ज्यों के त्यों गाड दो"। तब राजपूतों ने कहा कि "इन मे से कुछ भी तो बरतन लेना चाहिये।" तब रावजी ने एक पली [घृत लेने का पात्र] उठाई। अन्य समस्त पात्र गाढ दिये गये। रावजी ने नागौर आ कर पली को तुलवाया तो उस में २५ पैसे भर घृत आ सकता था। रावजी ने उसी क्षण आज्ञा दे दी कि "आज से हरेक राजपूत को भोजन मे घृत यह पली भर कर दिया जाय। यदि कुछ कम दे तो दण्ड किया जाय।" चूंडाजी खान पान आदि से राजपूतों को इस भांति परम प्रसन्न रखते थे। राजपूत भी तन मन से उन की सेवा करते थे। उसी से उन का राज्य दिन पर दिन वृद्धि पा रहा था।

जांगलू देश में सांखला हरभू का पिता महराज रहता है। बीकूंपुर का भाटी जेता ईंदावाटी से सांखला महराज के यहाँ पाहुना हो कर आया। महराज ने जेता की बडी शिष्टाचारी की और उसे योग्य वर देख कर अपनी कन्या व्याह दी। जब वह घर को जाने लगा तो महराज ने अपने पुत्र आलणसी को कहा कि तुम अपने बहनोऊ को बीकूंपुर पहुंचा आओ। जेता और आलणसी बीकूपुर पहुचे। दो चार दिन के पश्चात् जेता ने पूंगल देश के स्वामी अपने चचा भाटी राणंगदे से कहा कि विवाह में खर्च होने से हमें इस समय कुछ द्रव्य की आवश्यकता है। आप हमारी सहायता करें। आप हमारे मुरब्बी हैं। जेता ने बहुत सी विनति और खुशामद की, परतु राणगदे ने उस के कहने पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। तब जेता ने राणगदे के गावों में बिगाड करना शुरू किया। राणंगदे को यह कब सहन हो सकता था? वह तुरंत उस पर

चढ़ आया। लड़ाई हुई, जिस में जेता ८-१० मनुष्यों के साथ मारा गया और उस के साथ सांखला महराज का पुत्र आलणसी भी यमलोक को सिधारा। तव महराज ने राणगदे को कहलाया कि "जेता तुम्हारा आसिया था इस लिये उसे मारना तो कदाचित् उचित हो सकता है, परतु हमारे पुत्र (आलणसी) को मारना उचित नही था।" पुत्र के मारे जाने से महराज के मन में द्वेषानल अत्यन्त प्रज्वलित हो रहा था। उस ने चूंडाजी के निकट जा कर कहा कि "भाटी राणंगदे ने मेरे पुत्र को निष्कारण मारा है और आप के भी भाई गोगादेजी का वैर लेना राणगदे में वाकी है। आप सहायता करे तो वैर का वदला लिया जा सकता है।" चूंडा जी भो अवसर देख ही रहे थे, उन्होंने महराज के कथन को स्वीकृत किया। तव महराज ने कहा कि "राणगदे का वैभव वहुत अधिक है, वह मुझ से पूर्ण द्वेष रखता है। उस बलवान् शत्रु के अगाड़ी मै अपने स्थान मे इस समय नही रह सकता। मेरे निवास के लिये कोई स्थान वतलाइये।" तव चूंडाजी ने महराज को रहने के लिये गांव भांवडां दिया; और अपने पु। अडकमाल को कह दिया कि "महराज कही दौड़ धूप करै तो तुम मदद देना।"

एक दिन राव चूंडा जी के पुत्र अड़कमाल ने भैसे पर प्रहार किया, भैसे के दो टूक हो गये। तव सब सरदार उस की प्रशसा करने लगे, वाह वाह !! वहुत अच्छा तलवार चलाई। तव, राव चूंडाजी ने कहा कि "तुम इतनी प्रशंसा क्यों करते हो? इस ने ऐसा क्या प्रहार किया? एक पशु को बांध कर मारा है। ऐसा प्रहार यदि राणगदे भाटी अथवा उस के पुत्र सादूल पर किया जाय तो हम जानें कि अच्छा प्रहार किया। मेरे हृदय में भाटी राणंगदे सदा खटकता है। उस ने भाई गोगादेजी को भ्रष्ट कहा था। मुझे वह शल्य सा लगता है।" अड़कमाल उस समय कुछ न बोला। परतु उस के मन मे निरंतर पूरी चिन्ता लगी रहती थी कि राणंगदे अथवा सादा (सादूल) को मारूं। वह प्रसंग इस तरह बन गया कि उसी अर्से में औड़ींट के स्वामो मोहिल माणिकदेव की पुत्री कोड़मदे का विवाह, जो चूंडाजी के पुत्र अड़कमाल की मांग थी, पूगल के अधिपति राणगदे के पुत्र सादा (सादूल) के साथ हुआ। हर एक जाति मे, और विशेषतया राजपूतों में, दूसरे की मांग व्याहना मांगवाले का वडा भारी अपमान समझा जाता है। इसी लिये अड़कमाल सादूल को मारने के लिये ४००० सेना ले मार्ग में जा डटा। उस के साथ सांखला हरभू का पिता महराज भी था। प्रथम तो महराज राव चूंडा जी का सामत था। दूसरा उस के पुत्र आलणसी को राणंगदे ने मारा था, इस लिये महराज को अपने पुत्र

के वैर का बदला लेना था। सादूल दुलहन को लिये अपने साले मेघराज के साथ पूंगल को रवाना हुआ। जब वह राठौड़ अडकमाल मार्ग रोके बैठा था वहां पहुंचा, अड़कमाल ने देखते ही युद्ध के लिये ललकारा। परस्पर विकट सग्राम हुआ, जिस में सादूल मारा गया। कोड़मदे[1] सती हुई। राणंगदे अपने महावीर पुत्र के वध से अत्यन्त शोकाकुल हुआ। उस ने अडकमाल को दुर्धर्ष समझ कर उस के सहायक सांखला महराज पर चढाई कर उसे मार डाला। तब राव चूंडाजी ने अपने सामन्त के मारने वाले राणगदे को मार, अपने भाई गोगादे जी के वैर का बदला ले कर चित्त को शान्त किया।

राणगदे के मारे जाने पर उस की स्त्री सोढी पूंगल की स्वामिनी हो कर वीर राजपूतों की सहायता से राज्य शासन करती थी। उस का ऐसा अभिप्राय था कि यदि कोई मेरे पति और पुत्र का बदला लेवे तो उसे मैं पूंगल का स्वामी कर दूं। उस समय जैसलमेर के स्वामी रावल केहर का छोटा पुत्र भाटी केल्हण उस के बडे भाई लखमण से निकाला जा कर वीकूंपुर में आ निवास करने लगा था। जब केल्हण को राणंगदे की स्त्री का सकल्प विदित हुआ तो उस के मन की तरगें लहराने लगी। वह चाहता ही था कि किसी उपाय से कहीं कोई बड़ा स्थान हाथ लगे, उस ने पूगल का राज्य मिलने का यह अति उत्तम अवसर देख कर पूंगल जाने का निश्चय किया। अपने राजपूतों से सलाह कर उन को साथ ले वह वीकूंपुर से पूगल गया। बाहिर डेरा कर के अपना एक प्रतिष्ठित पुरुष सोढी रानी के

---

[1] टॉड साहिब कोडमदेसर तालाव को, जो कोड़मदेसर (बीकानेर राज्य में) गांव में है, इस कोडमदे का कराया कहते हैं। और नैणसी आदि अन्य इतिहास-लेखक भी वैसा ही लिखते हैं। परतु राव जोधाजी का संवत् १५१६ का शिलालेख (जो एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नल और प्रोसीडिंग्ज में छपा है) कोड़मदेसर तालाव के तट पर कीर्ति-स्तम्भ में खुदा हुआ मिला है, उस से उक्त लेखकों का लेख असत्य ठहरता है। राव जोधाजी की माता का नाम भी कोडमदे था और सादूल की स्त्री का भी नाम कोड़मदे था। उसी से इतिहास-लेखकों को भ्रम हुआ है। वास्तव में उक्त कोडमदेसर तालाव राव जोधाजी की माता ने करवाया था। यह वार्ता राव जोधाजी का उक्त शिलालेख कहता है। उस में लिखा है कि रिणमल के पुत्र राठौड महाधिराय राय श्री जोधाजी ने श्री कोड़मदे के निमित्त तडाग की प्रतिष्ठा करवाई और कीर्ति-स्तम्भ स्थापित किया। इस लेख के मिल जाने से निश्चय हो गया है कि कोडमदेसर तालाव को कराने वाली कोड़मदे राव जोधाजी की माता थी। सादूल की स्त्री कोड़मदे नहीं।

पास भेज कर कहलाया कि भाटी केल्हण आया है, आप को जुहार कहलाया है। और आप की विश्वस्त-पात्र दासी को बुलाया है। सोढी केल्हण का आगमन सुन अति आनन्दित हुई। उस ने अपनी विश्वस्त दासी को केल्हण के पास भेजा। केल्हण ने एकान्त में उस दासी से कहा की तुम अपनी स्वामिनी से कहो कि आप ने जो संकल्प किया है वह पूर्ण करने का प्रण कर के मैं आप के समीप आया हूं। मै आप की आज्ञा पालन करने को तैयार हूं। परंतु वह कार्य तब हो सकता है कि पूगल का आधिपत्य मुझे दे दिया जाय। विना आधिपत्य प्राप्त होने के न तो किसी पर प्रभाव पड़ सकता है और न कोई आज्ञा पालन करता है। सोढी का वह अभीष्ट था ही। उस ने अपने राजपूतों से सलाह कर उन की संमति ले केल्हण को पूगल का स्वामी बना दिया। केल्हण के राजतिलक हो जाने पर उस ने वहाँ के समस्त सरदारों को अपने वश में कर लिया। प्रथम तो केल्हण जैसलमेर के राजा का पुत्र था। दूसरा वह स्वयं बुद्धिमान और वीर पुरुष था। वहाँ के लोगो पर उस का प्रभाव पड़ जाने से उस ने थोड़े ही समय में पूरा बल पकड़ लिया। जब केल्हण ने देखा कि अब यहां के समस्त राजपूत हमें सहायता देने को तैयार है और मोहिल भी हमारे शामिल है, अब हमे राणगदे के वैर का वदला लेना चाहिये। परंतु जब तक हमे किसी महावलशाली की सहायता न मिले तब तक इन राठौड़ो को विजय करना सर्वथा अशक्य है। इसी अर्से में केल्हण के भाई जेसलमेर के रावल लखमण ने केल्हण को कहलाया था कि राठौडों मे अपने दो चार वैर का बदला लेना है। तुम से बन सके तो लेना। उस बात को भी ध्यान में रख, केल्हण[1] मोहिलों को अपने साथ ले मुलतान गया। वहाँ के अधिकारी ववियां खान[2] से मिला। केल्हण बड़ा वीर था और उस के साथ वैसे ही राजपूत थे। ववियाखान के पास रह कर उस ने ४ मास पर्यन्त चाकरी की। ववियाखान ने चाकरी से प्रसन्न होकर केल्हण को कहा कि तुम कैसे आये? क्या चाहते हो? तब केल्हण ने कहा कि राठौड राव चूंडा हमारा प्रबल शत्रु है और आप का भी अपराधी है। उस ने नागोर में से बादशाही कब्जा उठा कर अपना आधिपत्य कर लिया है। अकसर वह बादशाही मार्ग में लूट खसोट

---

[1] नैणसी राणगदे के पुत्र का, जो मुसलमान हो गया था, मुलतान से सेना लाना लिखता है और उस के साथ में केल्हण को भी बतलाता है।

[2] टॉड साहिब खिजरखां नाम लिखते है।

करता है। तब वबियाखान ने केलहण से कहा कि तुम हमारे सेनापति सलीम को साथ में लेकर जाओ। यह सब प्रवन्ध कर देगा। तब पूगल के भाटी और मोहिल मुलतान के सेनापति सलीम के साथ मारवाड़ में आये और नागोर को घेरा। उस समय राव चूंडाजी का वल विलकुल घट गया था। उस का कारण यह हुआ था कि एक दिन रावजी के भोजन सामग्री के लिये घृत के भरे गाड़े आ रहे थे। प्रतिदिन १२-१३ मन घृत भोजन में उठता था। जो कोई राजपूत आ जाता उस के लिये भोजन दिया जाता था। किसी को मनाई नही थी। किसी समय रावजी की मोहिल स्त्री ने, जो लाडणू द्रोणपुर के स्वामी मोहिल माणकराव के पुत्र आसराव की कन्या थी, घृत के गाड़े देख कर पूछा कि क्या रावजी के किसी का विवाह है? जो इतना घृत आया है। दासी से कहा कि जा जिज्ञासा कर। दासी ने जाकर पूछा तो ज्ञात हुआ कि रावजी के प्रतिदिन भोजन सामग्री मे १२-१३ मन घृत उठता है। यह सुन दासी ने आकर अपनी स्वामिनी से कहा। मोहिलाणी ने यह सुन कर कहा कि रावजी का घर ऐसे ही तो लुटा जा रहा है। समय देख कर मोहिलाणी ने रावजी से कहा कि यदि भोजन-सामग्री मेरे निरीक्षण में कर दी जाय तो क्या कुछ हानि है? रावजी ने कहा, नहीं, तुम्हारी इच्छा है तो तुम्हारी निगरानी में रक्खो। रावजी क स्वीकार करने पर मोहिलाणी ने ऐसा कड़ा प्रवध किया कि थोड़े ही समय में घृत को घटाते घटाते पॉच सेर पर ला छोडा। राजपूत सब अप्रसन्न हो गये। सीधल, आसायच, मांगलिया, ईदा आदि समस्त राजपूत अपने अपने घरो को चल दिये। एक दिन मोहिलाणी ने अपनी होशियारी दिखाने के लिये रावजी को कहा कि मैंने आप के घर मे कितनी किफ़ायत की है उसे देखिये। कहां तो १२-१३ मन घृत, और कहॉ पॉच[1] सेर। रावजी ने यह सुनते ही अत्यन्त खिन्न होकर कहा कि हा!! तू ने मुझ को मरा दिया। तुझे मालूम नहीं है कि मेरे ऊपर कितने शत्रु घूम रहे हैं? मेरे कितनों से वैर है? जिनके भरोसे पर मैंने सब लोगों से वैर बांधा था, आज वे मेरे साथी कभी नहीं हो सकते। ज्योंही न तो राजपूत रहे हैं और न घोडे हैं।

उस दशा में शत्रुओं ने आकर रावजी को घेर लिया है। कुछ थोडे से राजपूत और बन्धुवर्ग अपने पास में है, उन को रावजी ने बड़े पश्चात्ताप और दुःख क साथ कहा कि तुम यहॉ से निकल जाओ। तब उन्होंने कहा कि हमें आप निकल जाने को कहते हैं तो आप ही निकल जाइये, जिससे आत्म-रक्षा हो सकेगी। उस के उत्तर में रावजी

१ दूसरी ख्याति पुस्तक में पांच सेर के स्थान मे पांच मन लिखा है।

ने कहा कि मैंने अपने जीवन में शत्रु को कभी पीठ नहीं दिखाई है, क्या अब वृद्धावस्था में अपने ऊपर यह कलंक लगाऊंगा ? कभी नहीं। अवश्य लड़ूंगा ; क्योंकि शत्रु के ललकारने पर युद्ध करना ही उचित है। ऐसा कह अपने पुत्रो को तो निकाल दिया और आप बड़ी वीरता से लड़ कर काम आये। ख्याति पुस्तको में चूंडाजी की मृत्यु गांव टूंकला (परगना नागोर) में होना लिखा है। और वहाँ के लोग भी चार खभों वाली तालाव पर की छतरी को राव चूंडाजी की छतरी कहते हैं। परन्तु हम ने गांव टूंकला मे जाकर उस छतरी को देखा तो उस मे जो शिलालेख है वह चूंडाजी का नही है। हम ने उस छतरी के शिलालेख के सिवा जितने शिलालेख उस गांव मे थे घूम घूम कर देख लिये, परन्तु चूंडाजी का शिलालेख कहीं नही मिला। नैणसी चूंडाजी का देहपात होना नागोर के दरवाज़े के वाहिर लिखता है। चूंडाजी की मृत्यु का समय भिन्न भिन्न लेखक भिन्न भिन्न लिखते हैं। एक ख्याति में, जो स्वर्गवासी कविराजा मुरारदानजी (जोधपुर में) के यहां है, लिखा है कि चूंडाजी की मृत्यु संवत्[१] १४२८ में हुई। दूसरी ख्याति में, जो मेड़ता के भूतपूर्व जोशी शिवराजजी के पास है, संवत्[२] १४३८ में चूंडाजी का स्वर्गवास होना लिखा है। कर्नल टॉड साहिव संवत्[३] १४६५ में उन का काम आना लिखते है। एक ख्याति में चूंडाजी का मरना संवत् १४८० में लिखा गया है। हमारी संमति में चूंडाजी का अन्तकाल संवत् १४८० में लिखना यथार्थ प्रतीत होता है। क्योंकि चूंडाजी का ताम्रपत्र[४] सवत् १४७८ का गांव बड़ली (परगना जोधपुर) में मिला है, जिस से चूंडाजी का स्वर्गवास करना उस के अनन्तर संवत् १४८० में ही संभवता है। इस की पुष्टि इस से भी होती है कि एक ख्याति[५] पुस्तक मे लिखा मिलता है कि चूंडाजी के पुत्र कान्हा ने नागोर में निवास करते सोखला पुनपाल पर चढ़ाई की थी, उस समय पुनपाल ने अपने मामा राव रणमल्लजी को सहायता करने के लिये कहलाया तो उन्होंने अपने भाई भीम और

---

१ यह ख्याति पुस्तक पुरातन है। जोधपुर शहर में कोतवाली का नया मकान वनते समय पुराने मकान तुड़वाये गये थे तब यह पुस्तक एक मकान में से मिली थी। जो जूनी भाखसी कहलाता है।

२ यह पुस्तक भी प्राचीन है। इन प्राचीन पुस्तकों में संवतों का गोलमाल 'पृथ्वी राजरासा' के संवतों के कारण है।

३ टाडराजस्थान पृ. ३६८ सन् १८०२ में कलकत्ता में मुद्रित

४ यह छपा नहीं है। बड़ली के पुरोहितों के पास है।

५ हस्तलिखित, पत्र ५६ पंक्ति २। यह बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में है।

पुत्र जोधाजी को १००० सेना देकर पुनपाल की मदद के लिये भेजा था। और कान्हा गद्दी पाने के पीछे केवल एक साल राज्य करके पेट की बीमारी से मर गया था। यदि चूंडाजी की मृत्यु संवत् १४२८, १४३८ अथवा १४६५ में उक्त लेखानुसार मान ली जाय तो कान्हा चूंडाजी का उत्तराधिकारी हुआ था और एक वर्ष राज्य करके मर गया था, उस समय में जोधाजी का सहायतार्थ आना किसी प्रकार नहीं संभवता। क्योंकि उस समय में जोधाजी का जन्म भी नहीं हुआ था। जोधाजी का जन्म वि० संवत् १४७२ में हुआ था। जोधाजी का कान्हा के विपक्षी सांखला पुनपाल की सहायता में जाना तभी संभवता है कि चूंडाजी का स्वर्गवास संवत् १४८० में हुआ हो। दूसरा राव रणमल्लजी मण्डोवर लेने को मेवाड की सेना लेकर मण्डोवर पर गये थे उस समय रणमल्लजी का भाई सत्ता मण्डोवर का शासन करता था। राव सत्ता ने रणमल्लजी का मुक़ावला करने के लिये नरवद को भेजा। तव रणमल्लजी ने भी उस के साम्हने स्वयं जाना उचित न समझ कर अपने पुत्र जोधाजी को अच्छे वीर सुभट और सरदार साथ में देकर भेजा। वहां जोधाजी के और नरवद के महाघोर संग्राम हुआ, जिस मे नरवद की एक आंख फूट जाने से वह काना हो गया और घायल होकर रणाङ्गण में गिर गया था। जिसे मेवाड़ के लोग अपने साथ मेवाड़ में ले गये थे, तव से वह वहीं रहने लगा था। यह युद्ध संवत् १४८६-७ मे हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता है। इस की पुष्टि वीकानेर का इतिहास करता है। वीकानेर के इतिहास-लेखक घीटू शाखा के चारण दयालदास ने अपने इतिहास[1] में लिखा है कि 'सवत् १४८७ ज्येष्ठ सुदि ७ को रणमल्ल ने मण्डोवर लिया। अव सत्ताजी और नरवदजी राणाजी के पास रहते हैं।' उक्त लेख से स्पष्ट है कि चूंडाजी के मारे जाने के अनन्तर कान्हा गद्दी वैठा; उस ने एक वर्ष के लगभग राज्य किया था। तत्पश्चात् सत्ताजी राज्य के स्वामी हुए। उन्होंने ४-५ वर्ष राज्य किया होगा। इस अर्से में भाई रणधीर के कहने से रणमल्लजी मेवाड़ की सेना लेकर मण्डोवर पर गये और सत्ता से मण्डोवर छीन लिया। रणमल्लजी ने मण्डोवर का राज्य प्राप्त कर नागोर भी ले लिया था। संवत् १४६० में महाराणा मोकलजी मारे गये थे उस समय रणमल्लजी नागोर में थे। वहां से मेवाड जा, चाचा मेरा को मार कर अपने भानजे मोकल के वैर का वदला ले, उन के पुत्र कुंभाजी को चीतोड़ के राज्य सिंहासन पर स्थापित किया था।

वीकानेर राज्य में गांव चूंडासर चूंडाजी का वसाया कहा जाता है। और गांव चावण्ड में, जो जोधपुर से पश्चिम में ६ कोस के

[1] हस्तलिखित, पत्र ५६ पृ. २। यह वंगाल एशियाटिक सोसाइटी में है।

अन्तर पर है, चामुण्डा माता का मन्दिर भी राव चूंडाजी ने कराया था ऐसा वहां के लोग कहते हैं। वह मन्दिर पर्वत की गुफा में आ गया है। उस गुफा में संवत् १४५१ का शिलालेख[1] खुदा हुआ है। उस में किसी का नाम नहीं है। परन्तु जाना जाता है कि वह शिला-लेख मन्दिर के निर्माण का हो और उसी संवत् में चूंडाजी ने मंडोवर का राज्य प्राप्त होते ही बनायां हो।

जिस समय राव चूंडाजी के मण्डोवर का राज्य हस्तगत हुआ था, उस समय उस प्रान्त के आस पास कोई बड़ा राज्य नहीं था। मुसलमानों की भी अवनत दशा थी। उन्हीं के इतिहास से जाना जाता है कि संवत् १४५२ में देहली का बादशाह महमूद तुग़लक था। उस के समय में देहली का साम्राज्य अत्यन्त निर्बल और क्षीण दशा में था। जहां जिस का जी चाहा हाकिम बन बैठा था। यही कारण था कि ईंदों ने मुसलमानों को मार कर मण्डोवर ले लिया, तिस पर भी ईंदों और चूंडाजी पर मुसलमानों का पुनराक्रमण नहीं हुआ। किसी ने यह लिखा है कि मण्डोवर माण्डू के बादशाह के पास था, परंतु उस समय माण्डू का कोई बादशाह नहीं था। देहली की तर्फ से ही दिलावरखां सुबहदार होकर रहता था। जब संवत् १४५८ के पश्चात् महमूद तुग़लक की बादशाही बिगड़ी, तब वह माण्डू का बादशाह बन बैठा था। संवत् १४५३ में महमूद तुग़लक के भाई नुसरतखां ने अपने भाई को हटा कर बादशाह होने का प्रयत्न किया, परन्तु मल्लू इकबालखां ने नुसरतखां को निकाल कर अपना अधिकार कर लिया। संवत् १४५५ में तैमूर ने विलायत से आकर मल्लू इकबाल-

---

[1] संवत् १४५१ वरषें (वर्षे) मार्गसिर सुदि ३ त्रिति (तृती) या बृहस्पतिवारे उत (त्त) राषाढा नक्षत्रे मध्येमि (मीं) नलग्ने मकरस्थे चंद्रे उच (च्च) नक्षत्रे······ ······पित·········

२ १	१२ बृ	
	श्रीः	

खां को परास्त कर देहली में सर्वसाधारण जनता की हत्या की, उस समय महमूद तुग़लक गुजरात में जफरखां के पास चला गया। और वहां से मालवे में जा बैठा था। इस उपद्रवी समय में मालवा और जौनपुर के हाकिम स्वतन्त्र बादशाह बन बैठे थे। उस समय में चूंडाजी ने भी सांभर, नागोर और डीडवाना इन बादशाही नगरों पर अपना कब्जा कर लिया था[1]। अजमेर राव रणमल्लजी की सहायता से राणा लाखा ने ले लिया था - जो चूंडाजी के जामाता थे।

चूंडाजी राठौड़ों में महाभाग्यशाली प्रथम राजा हुए। उन्होंने अपने बाहुबल से १०० कोस विस्तृत देश तुर्कों को विजय कर अपना नूतन राज्य स्थापित किया। जिस की सीमा पूर्व में अजमेर और आमेर, दक्षिण में मेवाड़, और जालोर, पश्चिम में भाटियों के राज्य और उत्तर में हांसी हिसार से जा लगी थी।

चूंडाजी के १४ पुत्र थे, जो चौदह ही राव कहाये। १ रणमल्ल, २ सत्तो, ३ रणधीर ४ भींव, ५ अजो,[2] ६ अरड़कमल, ७ पूनो, ८ कन्ह ९ सिवराज, १० लुंभो, ११ विजो, १२ रामदे, १३ सहसमल, १४ हरचंद।

---

१ इसी अवसर में राव चूंडाजी ने अजमेर पर भी अधिकार कर लिया हो। क्योंकि अजमेर प्रांत में चूंडावत राठौड़ भोमिया हैं। यदि चूंडाजी का अजमेर पर अधिकार न होता तो चूंडावत राठौड़ वहां के भोमिया नहीं हो सकते। किसी ख्यात में राणा लाखा को अजमेर दहेज में देना भी लिखा है।

२ 'तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़' नाम की पुस्तक में 'अजो' के स्थान में 'अरजनः' नाम है। और 'सिवराज' नाम न लिख कर 'मूलो नाम लिखा है। और प्राचीन दो ख्यातों में 'हरचंद' के स्थान में 'रावत' नाम है। चूंडाजी के पुत्रों की नाम गणना विषय का एक प्राचीन पद्य भी है जो निम्न प्रकार से है :—

"रिणमल[1] रावां राव, सातो[2] हरचन्द[3] पाटंतर,
रावत गुर रणधीर[4], भुजबल भींम[5] सीमसर।
कान्हो[6] अरणकमाल[7], पहिव पूनो[8] अरिगंजण,
सहसमाल[9] अजै[10] विजै[11], लाख दल लुंभो[12] भंजण।
सिवराज[13] रामदे[14] गोप कहि, वीरत नंद समंगला,
चवदै नरिंद चूंडा तणा, एक एक हूं आगला॥ १॥'

यह कवित्त भी चूंडाजी के १४ पुत्र बतलाता है, जिन के ऊपर अङ्क दे दिये गये हैं। और किंवदन्ती भी चौदह पुत्र की है। "चूंडै राव चवदै जाया और चवदै ही राव कहाया।"

उन से निम्न १२ शाखा हुई :—

१ सत्ता से सतावत
२ रणधीर से रणधीरोत
३ भीम से भीमोत
४ अर्जुन से अर्जुनोत
५ अड़कमाल से अड़कमालोत
६ पूना से पूनावत
७ कान्ह से कान्हावत
८ शिवराज से शिवराजोत
९ लुंभा से लुंभावत
१० विजा से विजावत
११ सहसमल से सहसमलोत
१२ हरचंद से हरचदोत

२१ राव रणमल्लजी—राव चूंडाजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल्लजी को कहा था कि मेरी इच्छा मण्डोवर का राज्य कान्हा को देने की है, यदि तुम स्वोकार करो तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो । मुहणोत नैणसी इस का कारण यह लिखता है कि "राव चूंडाजी की रानी मोहिलाणी के पुत्र हुआ । मोहिलाणी ने उसे घूंटी[1] नहीं दी । रावजी को खबर होने पर मोहिलाणी को कहलाया कि घूंटी क्यों नहीं देती हो ? तव मोहिलाणी ने उत्तर मे कहलाया कि रणमल्ल को निकाल दो तो घूंटी देऊँ । क्योंकि रणमल्ल पट्टाधिकारी है और बलवान् है इस के बैठे मेरा पुत्र राज्य से वञ्चित रहेगा । मोहिलाणी पर राव चूंडाजी का अत्यन्त ही अधिक प्रेम था, दूसरा घूंटी दिये विना जातमात्र वालक के प्राणों का संशय था; इन कारणो से चूंडाजी ने रणमल्ल को बुला कर कहा कि–'तुम सपूत हो, हमारी आज्ञा है कि तुम यहां से रवाना हो जाओ' । तव रणमल्लजी ने कहा, 'आप की आज्ञा शिरोधार्य है, आज ही से यह भूमि कान्हा की है, मुझे इस से कुछ भी प्रयोजन नहीं ।' तव रावजी ने कहा कि 'वेटा तुम सुपुत्र हो, तुम को ईश्वर इस का वदला देगा । रणमल्लजी पिता के चरणो मे प्रणाम कर, जैसे राम दशरथ के चरणो मे वन्दन कर चले थे, वैसे मनोमालिन्य के विना सहर्ष रवाना हो कर सोभत प्रान्त में गये । उस समय सोभत हुल राजपूतो के अधिकार में था । रणमल्लजी प्रथम गांव धणला में ठहरे ।

---

१ राजपूताना में यह रीति है कि वालक का जन्म होते ही उसे रेचन दिया जाता है जिस से गर्भाशय सवन्धी उदर का मल निकल जाता है । उस रेचन को 'घूंटी' अथवा 'जलमघूंटी' कहते हैं ।

वहां से राणा लाखाजी[1] के पास गये। उन्होंने रणमल्लजी को निवास

१ राणा लाखाजी का शिलालेख गोडवाड प्रान्त में गांव कोट सोलंकिया में संवत् १४७५ का मिला है। टेसीटरी साहब। जर्नल और प्रोसीडिंग्ज बंगाल एशियाटिक सोसाइटी सन् १९१६ पृ. १७५) सवत् को १४४५ पढ़ते है परतु उस को सदिग्ध भी समझते है और यह भी लिखते हैं कि "संवत् का तीसरा अङ्क ४ की अपेक्षा २ अथवा ७ दीखता है। परन्तु लाखा सवत् १४३९ में गद्दी बैठा था, और उस के पीछे मोकल सवत् १४५४ में गद्दीनशीन हुआ तो इस हिसाब से १४४५ पढना ठीक होगा।" यह उन की भूल है। संवत् का तीसरा अङ्क ७ ही है। जिस से १४७५ ही पढ़ना चाहिये। इस की पुष्टि इस से होती है कि चीतोड़ के विजय-स्तम्भ के शिलालेख में राणा खेतसिंह के वर्णन में यह पद्य है:—

"वीर श्रीरणमल्लमूर्जितशकक्ष्मापालगर्वान्तकं।
स्फूर्जद्गूर्जरमण्डलेश्वरमसौ कारागृहेऽवीवसत्॥ २३॥"

(आर्कियो सर्वे आव इण्डिया वो. २३ प्लेट २०)

भावार्थ—राणा लाखा ने गुजरात के शक (मुसलमान) राजा का गर्व गञ्जन करने वाले गुजरात के मण्डलेश्वर राजा रणमल्ल को कैद किया था। यह रण-मल्ल ईडर का राजा होना चाहिए। क्योंकि ईडर के रणमल्ल पर गुजरात के स्वामी मुजफ्फर प्रथम ने ई. सन् १३९३-१३९८-१४०१ (वि० संवत् १४५०-१४५५-१४५८) में चढ़ाइयां की थीं। उस रणमल्ल को राणा खेता ने कैद किया था। यह वार्ता विजय-स्तम्भ का शिलालेख कहता है। और राणा खेता का रणमल्ल को कैद करना मुजफ्फर के आक्रमणों के पश्चात् ही हो सकता है। क्योंकि उक्त पद्य में रणमल्ल को 'गूर्जरेश्वर का गर्व गञ्जन करने वाला' लिखा है। जिस से राणा खेता का ई. सन् १४०१ (वि० संवत् १४५८) तक जीवित रहना पाया जाता है। इस दशा में राणा लाखा के शिला लेख का संवत् १४४५ हो नही सकता। किंतु सवत् १४७५ ही हो सकता है। इस की पुष्टि पुनः इस से होती है कि मेवाड़ के इतिहास 'तुहफ़ए राजस्थान' के पृष्ठ ६० में लिखा है कि राणा लाखा के राज्य समय का ताम्रपत्र संवत् १४६२ का मिला है। जिस से जाना जाता है कि राणा खेता संवत् १४५८ और १४६२ के बीच में मरे हों। जब राणा खेता की मृत्यु का उक्त समय सिद्ध होता है तब उन के पुत्र राणा लाखा के शिलालेख का संवत् १४४५ सर्वथा नहीं हो सकता। टॉड साहिब राणा खेता का गद्दी बैठना वि० स० १४२१, राणा लाखा का संवत् १४३९ और मोकल का सं० १४५४ में लिखते है। परतु लाखा का ताम्रपत्र संवत् १४६२ का मिला है जिस से टॉड साहिब का लेख सत्य नहीं हो सकता जिस के आधार पर टेसीटरी साहब ने लाखा के शिलालेख का सं० १४४५ पढा है। और पंडित गौरीशंकरजी ओझा भी अपनी 'राजपूताने का इतिहास' नामक पुस्तक के द्वितीय खंड के पृष्ठ ५७१ में राणा लाखा (लक्षसिंह) का गद्दी बैठना वि० सं० १४३९ में लिखते है। परन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि राणा लाखा का पिता वि० स० १४५८ तक विद्यमान था, जिस की मृत्यु वि० स० १४५८ और १४६२ के मध्य में हुई थी, उस की विद्यमानता में राणा लाखा का गद्दी बैठना सर्वथा असंभव है।

के लिये ४० गवों के साथ धणला दिया । सोनगरे और हुल आदि राणा लाखा के मण्डलेश्वर थे।

रणमल्लजी तो मारवाड़ छोड़ कर मेवाड़ के राज्य में चले गये थे, और सत्ताजी को राव चूंडाजी ने अपने जीवित समय में ही मण्डोवर देकर कह दिया था कि तुम मण्डोवर में रहो और कान्हा हमारे पास रहेगा। हमारे पीछे नागोर का मालिक कान्हा होवेगा। जब राव चूंडाजी मुलतान के मुसलमान और भाटियों से लड़ कर मारे गये तब रणमल्लजी पिता के वैर का बदला लेने के लिये मेवाड़ से मारवाड़ को चले। उस समय खान तो चूंडाजी को मार कर मुलतान चला गया था। और केलण भाटी भी अपने घर को चले गये। थे क्योंकि उन को कह दिया गया था कि तुम अपने २ घरों को चले जाओ। जाते समय खान ने अपने एक सेनापति को रख दिया था। जिस का नाम सलीम था। वह अजमेर निकट आ जाने से ख्वाजाजी की यात्रा को अजमेर गया। रणमल्लजी उन का मार्ग रोक कर डट गये। अजमेर से पीछे आते रणमल्लजी ने उसे मार्ग में ललकारा। दोनो में महाघोर संग्राम हुआ। जिस में सलीम रणमल्लजी के हाथ मारा गया। रणमल्लजी कान्हा को लेकर नागोर में आये। और उस को राजगद्दी विठा कर अपने हाथ से राजतिलक कर पिता की आज्ञा का पालन करते पीछे मेवाड़ में राणा लाखा के पास चले गये।

कान्हा नागोर में निवास कर समस्त प्रान्तवर्ती भोमियों को अधीन करने के लिये बलात्कार कर रहा है। नागोर से २५ कोस के अन्तर पर जांगलू का स्वामी सांखला पुनपाल शासन करता है २५०० तथा ३००० राजपूत उस के पास हैं। वह मण्डोवर, जेसलमेर, नागोर और मुलतान के देशों में सदा विगाड़ करता रहता है। कान्हा छापर ओंद्रीट के स्वामी मोहिल माणकराव का दौहित्र है; और रणमल्लजी सांखलों के दौहित्र थे इस लिये कान्हा सांखलों पर कुदृष्टि रखता है। और उसी कारण सांखले भी कान्हा से विरक्त रहते हैं। राव चूँडाजी के समय होली, दिवाली, दसहरे के दिन सांखला राव चूँडाजो को जुहार करने के लिये दरबार में उपस्थित होते थे, परंतु कान्हा के गद्दी बैठने पर उन्होंने कभी उस का अनुसरण नहीं किया। जिस से कान्हा और भी कुपित हुआ, वह मन में यह जानता है कि सांखला रणमल्लजी के मामा हैं, इन को रणमल्लजी की सहायता है इस लिये ये ऐसा व्यवहार करते है। इन को निर्वल कर देना चाहिये। इस विचार से कान्हा ने जांगलू के स्वामी के साथ

प्रकट में वैर दिखाना शुरू कर दिया और हर प्रकार से उन्हे दवाने लगा। जोंगलू नागोर से केवल २५ कोस पर होने से कान्हा चाहता है कि इन को मार कर जोंगलू की भूमि नागोर के राज्य मे शामिल कर ली जाय। उधर पुनपाल भी अपने मन में स्वतन्त्रता का अभिमान रखता है; राणा कहलाता है। राव और राणा के परस्पर स्पर्द्धा बढने लगी। पुनपाल ने कान्हा के देश में बिगाड़ करना शुरू किया। तव कान्हा ने उस पर चढ़ाई करने का निश्चय कर सेना एकत्र की। पुनपाल को इस बात की ख़वर लगी तव उस ने भी अपने राजपूतों को इकट्ठा किया। पुनपाल भी सावधान हो गया है। राणा पुनपाल की अपेक्षा राव कान्हा का परिकर वहुत अधिक था। और वह फिर और भी सेना एकत्र करने लगा, तव पुनपाल ने अपने भानजे रण-मल्लजी के पास ओठी (उष्ट्रारोही-शुतुर सवार) भेज कर कहलाया कि राव कान्हा मुझ से स्पर्द्धा रखता है, उस की मुझ पर पूर्ण कुदृष्टि है, उसने मेरे ऊपर आक्रमण करने का ठान कर सेना एकत्र की है, इस लिये मैं सूचित करता हूं कि मेरे मर जाने पर शीघ्र आना। इस ख़वर को पाते ही रणमल्लजी ने अपने पुत्र जोधा जी और भाई भीमजी को १००० मनुष्य साथ में देकर रवाना किया। ये मेवाड़ से रवाना हो मारवाड़ में आये। उधर नागोर से सेना लेकर राव कान्हा जांगलू पर चला। दूसरे दिन राव कान्हा ने जांगलू से ८-१० कोस पर जा कर डेरा किया। इधर कुमार जोधा और भीमजी ने गांव सारूडा में आ कर डेरे किये। सांखलों ने राव कान्हा को निकट आया देख कर गांव सारूड़ा में जोधाजी के पास फिर शुतुर सवार भेज कर कहलाया कि राव कान्हा कल हमारे ऊपर आक्रमण करेगा, आप शीघ्र आकर हमारे शामिल हूजिये। शुतुर सवार ने आ कर जोधाजी और भीमजी से कहा, तव भीवजी ने अपने सग के लोगों को त्वरा की; और कहा कि वाटी जल्दी तैयार कराओ और घोड़ों को धान्य भी शीघ्र दे दो। आपन अफीम ले भोजन करके जल्दी चले चलेंगे। तव जो शुतुर सवार आये थे उन्होंने कहा कि उन पर तो कटक आता है और आप रोटे करवाते हैं, कव चलेंगे? तव कुमार जोधाजी ने भी चचा भीमजी से कहा कि अव रोटा करने का कौन सा समय? चलने की तैयारी करिये। तव भीमजी ने जोधाजी को अलग लेकर कहा कि वेटा! आपन रोटे खा कर चलेंगे। यदि कान्हा मर गया तव भी पाप कटा; और यदि राणा मरा तव भी पाप टला। तुम्हारा भाग्य वल करता है। जो मरने वाले हैं उन को मरने दो। यदि इस समय नहीं मरे तो पीछे आपन को मारने पडेंगे। यह सुन कर जोधाजी ने भी कहा कि आप का कहना दूरदर्शिता भरा है। जोधाजी ने उन का कहना मान लिया। फिर जोधाजी और भीमजी ने शुतुर-सवारों से

कहा कि तुम आगे चलो, जा कर राणा पुनपालजी से कहो कि हम शीघ्र आते है। भूखे है सो रोटे खा कर आते है। शुतुर-सवार वहां से चल कर जांगलू आया, राणा ने उस को देख कर कहा कि क्या ख़बर है? तब उस ने कहा कि मनुष्य तो एक हज़ार है, यदि आवें तो आप को बड़ी सहायता मिले; परंतु वे आप के युद्ध में शामिल नही होवेंगे। आप को जो कुछ तैयारी करनी हो कर लें। तब राणा ने अपने राजपूतों से कहा कि राठौड़ नहीं आये हैं, तथापि अपन को तो मरना ही होगा। उन्होंने ऐसा दृढ़ संकल्प कर युद्ध की तैयारी की। राव कान्हा भी वहां से रवाना हो कर आ रहा है, और ये भी सज्ज कर तैयार हो गये हैं। उस समय राणा पुनपाल ने अपने चचेरे भाई वरसिंह (आपमल के पुत्र) से कहा कि राठौड़ो की सेना प्रबल है; अपना बल उस से अति अल्प है; आपन सब के सब क्यों मरें? तुम अपने समस्त परिजन को ले कर चले जाओ, हम इन से युद्ध करते है। तब वरसिंह ने कहा कि आप पट्टधर है, आप क्यों मरें? मरने के लिये हम बहुत ही हैं, हमारे बैठे आप मर नहीं सकते। हम मरेंगे। तब पुनपाल ने वरसिंह से कहा कि कान्हा अपने पीछे पड़ा है; जांगलू जाय उस समय मुझे मरना चाहिये। तुम निकलने का उपाय करो। तब वरसिंह ने कहा कि मेरे निकलने में एक आपत्ति है। वह यह कि एक दिन चूँडा के दरबार में सींधल जेता बैठा हुआ था, जो राव जी के बड़े उमरावों में से है। वह मेरे साथ बोल उठा था, उस के और मेरे खटकी हुई है, यदि वह मुझे निकला सुनेगा तो अवश्य मेरा पीछा करेगा, इस लिये मैं कहता हूं कि मुझे मत निकालिये। परिजन के साथ किसी दूसरे को भेज दीजिये। तब पुनपाल ने कहा कि नहीं, तुम को ही निकलना होगा। तुम सच्चे राजपूत हो। ऐसे परस्पर वाद-विवाद हो रहा था इतने में कान्हा की सेना समीप आ पहुँची। सांखला आपमल के पुत्र वरसिंह को ज्यों त्यों समझा कर परिजन के साथ निकाल दिया। दोनो सेनाओं की अनियां मिली। सींधल जेता रावजी की सेना में हाथी पर बैठा हुआ था। उस ने सांखला वरसिंह को दूसरी ओर जाता देखा तब, दूसरी सेना तो आपस में लड़ रही है, सींधल जेता तुरंत हाथी से उतर घोड़े पर सवार हो एक खवास को साथ ले कटक में से घोड़ा टाल कर वरसिंह की तर्फ चला। और वरसिंह को ललकारा। जाता कहां है? तब वरसिंह पीछा लौटा। दोनो वीरों ने आमने सामने घोड़ों की खुरी कराई; वरसिंह ने सींधल जेता पर प्रहार किया; वह सफल हुआ जेता का काम तमाम हो गया। वरसिंह ने उस समय जेता के हाथ के सुवर्ण के हथसांकले खोल कर ले लिये और चल दिया। खवास

पाल में देखता ही रहा, उस से कुछ वन न पड़ा। खवास ने पीछे आकर रावजी से सर्व वृत्तान्त कहा। इधर राव कान्हा और पुनपाल की सेना कट मरी। सांखलों के मनुष्य बहुत मारे गये। राणा पुनपाल चार सरदारों के साथ मारा गया जिन के नाम ये हैं:— १ राणा पुनपाल, २ सांखला वीरा, ३ विजो, ४ भांवो, ५ ऊदो। राजपूत १५० तथा १७५ हताहत हुए। सांखलों के पैर उखड़ गये। कान्हा की विजय हुई। सांखले भाग कर कितने ही तो जोइयावाटी में गये, कितने हो मोहिलावाटी में, कितने ही बीकूंपुर और कितने ही वांगटी की तर्फ गये। राव कान्हा ने जांगलू पर अपना अधिकार कर लिया। दो तथा तीन मास जांगलू में रह कर कान्हा ने समग्र भूमि पर अपनी आज्ञा प्रचलित की। सांखला नाम को वहां नहीं रहने दिया, सब को निकाल दिया। फिर जांगलू में अपना थाना रख कर राव कान्हा नागौर आया।

जांगलू से पांच कोस पर रीटाई नाम ग्राम है। वहां वीठू जाति का चारण देवा निवास करता है। वह बड़ा प्रतिष्ठित है। सांखलों का याचक है। उस के साथ राव कान्हा के मनुष्य अत्यन्त दुर्व्यवहार करते हैं। सांखले लोग वाहिर से आकर उस भूमि में उपद्रव करते हैं। धाडे मारते हैं। लूट खसोट करते हैं। रावजी के पास इस के पुकारू गये तब किसी ने रावजी से कहा कि "सांखलों का जो उपद्रव है सब देया चारण के भेद से होता है। वे लोग आते जाते देया के घर पर ठहरते हैं।" तब रावजी ने उस को समझाने के लिये राठौड ऊदा के पुत्र विजा को चारण देया के पास भेज कर कहलाया कि "तुम सांखलों के स्वामिभक्त चारण हो, तुम्हारे स्वामी भूमि छोड कर वाहिर चले गये हैं तो तुम को चाहिये कि तुम भी उनके पास चले जाओ।" तब चारण देया ने कहा कि "यह भूमि हम को सांखलों ने दी है, उस में पड़े हम अपना गुजर करते हैं, पहले उन का धर्म बढाते थे, अब आप का बढ़ाते हैं। हम कहां जायें?" विजा ने उस को ज़्यादा तंग नहीं किया, और रावजी के पास जाकर सर्व वृत्तान्त कहा यह वार्ता रावजी की इच्छा के प्रतिकूल होने से रावजी उन से अप्रसन्न हुए। और विजा को कहा कि तुम ने उस को यहां से क्यों नहीं निकाल दिया? तुम को उस को निकाल कर मेरे पास आना चाहिये था। दूसरे ही दिन रावजी शिकार को चले। शिकार करते गप्पें मारते जांगलू के समीप आ निकले। जहां से जांगलू ८-१० कोस के अन्तर पर था। उस समय किसी ने रावजी से कहा कि महाराज! यहां से चारण देया का गांव निकट ही है। तब रावजी ने कहा कि चलो, उस चारण को हम ही निकाल देंगे। रावजी चला कर चारण देया के गांव गये। वहां देया के घर के आगे या तो पीपल या निम्ब का वृक्ष था, उस के

तले रावजी घोड़े पर चढ़े खडे रहे। और देया के पास मनुष्य भेज कर कहलाया कि तुम हमारी भूमि में से चले जाओ। तब देया और उस की स्त्री करणी दोनो रावजी के पास आये। आशिष दे कर कहा कि हम तो आप ही के हैं, हमें आप क्यों निकालते है ? हम यहां बैठे आप का धर्म बढ़ा रहे है और आशिष दे रहे हैं। इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी कान्हाजी ने उन को कहा कि तुम रांखलों के हो, हमारे नही हो। हमे तुम को रखना नही है, तुम हमारी भूमि छोड़ दो। उन दोनों स्त्री भर्ता ने बहुत कुछ विज्ञप्ति की और आर्तभाव प्रकट किया, परन्तु रावजी ने उन की आर्तता पर कुछ ध्यान नही दिया। 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।' रावजी ने उन से हठ पूर्वक कहा कि या तो तुम यहां से निकल जाओ, नही तो घिसवा कर निकाल दूंगा। देया की स्त्री करणी करामात वाली (सिद्ध) थी। उसने अपने पति से कहा कि हमारे जाने में क्या कठिनता है ? केवल एक गाड़ा है। जोत कर चल दो। फिर रावजी से कहा कि हम गाड़ा जोत कर लाते हैं, हमारे घर में एक माताजी की स्थापना है उसे हम तो अपने हाथ से गाड़े में रक्खेंगे नही, आप रखवा देना। रावजी ने उसे गाड़े मे रखवाने का यत्न किया, परन्तु रख न सके, तब लज्जित हुए। उस समय चारणी कारणी ने कान्हाजी को शाप दिया कि तुम्हारा राज्य छः महीने के भीतर भ्रष्ट हो जायगा। राव कान्हा वहां से खिन्न-चित्त हो नागोर आया। पांच सात दिन में रोग-ग्रस्त हो दो तीन मास में काल का कवल हुआ। नागोर का राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया। बन्धुवर्ग भी सब विमनस्क हो गये। स्वामी के न होने से नागोर अराजक हो कर महा दुर्दशा में पड़ा।

उसी अर्से में गुजरात के बादशाह का भाई शमशखां देहलो के बादशाह के लिये उपायन लेकर जाता हुआ मार्ग में नागोर ठहरा। उस ने उस स्थान को स्वामिहीन देख कर मन में विचार किया कि यह भूमि बहुत ही अच्छी है, नगर व किला भी बहुत उत्तम है और खाली पड़ा है ; यह निवास करने योग्य है। फिर देहली जा, बादशाह को उपहार दे, दो मास वहां ठहरा। पीछे आते उस ने बहुत से मनुष्य नौकर रख, बड़ी सेना तैयार की। आठ हज़ार तथा दस सहस्र घोड़े ले नागोर आय डेरा किया। क़िले में कुछ राठौड़ थे उन को मार कर अपना कब्ज़ा किया। इस प्रकार नागोर राठौड़ो के हाथ से निकल कर मुसलमानो के कब्ज़े में हो गया। तब उन्होने पास के गांवों में राठौड़ों की आबादी थी उन सब को वहाँ से निकाल दिया। राव चूंडाजी के पुत्रो मे से कुछ तो रणमल्लजी के पास चले गये। और कितने एक सत्ता के पास मण्डोवर में आये। वह तुरक खानजादा कहा जाता था। उस ने मारवाड़ की भूमि में अपना आधिपत्य पूर्ण

कर लिया था। बहुत से भूमिये आज्ञाकारी हो गये थे। मण्डोवर, जेसलमेर, खण्डेला, मोहलावटी, जांगलू और रूण का स्वामी, ये सब खानजादा से जाकर मिले और कुछ सालाना कर दी, देने लगे। होली दिवाली मुजरा करने जाते। जब नागोर का राज्य निष्कण्टक हो गया तब उस ने अजमेर भी ले लिया। शमशखां१ ने अपने चचा शमशेरखां को अजमेर में रक्खा। खानजादे का वैभव बढते २ इतना बढ गया था कि उस के पास २५००० तथा ३०००० हज़ार सवार हो गये थे।

कह आये हैं कि सत्ताजी मण्डोवर में थे। और राव रणमल्लजी मण्डोवर छोड़ राणा लाखा के पास मेवाड में चले गये थे। महाराणा ने उन को निवास के लिये सोझत परगने का गांव धणला दिया था, जो महाराणा के आधिपत्य में था। उस की सीमा सोनगरों की सीमा से सटी हुई थी। रावरणमल्लजी शरीर बहुत बड़ा और लम्बे क़द का था। वैसे ही वे वीर, साहसी तथा पराक्रमी थे। जब वे चूंडाजी से आज्ञा लेकर मण्डोवर से रवाना हुए, उन के साथ ५०० सवार थे। वे अपने राजपूतों के साथ गांव धणला में रहते हैं, वहाँ उन के तीन बेर भोजन की सामग्री तैयार होती है। अष्ट प्रहर शिकार खेलते हैं। सोनगरों ने उन का वृत्तान्त सुन कर एक चारण को उन के पास भेजा। उस को कहा गया, खबर करो रणमल्लजी का क्या ढंग है? और उन के साथ कितने राजपूत हैं? चारण ने रणमल्लजी के निकट जाकर उन को आशिष दी, रणमल्लजी ने उसे अपने पास बिठा कर सोनगरों के विषय में पूछ ताछ की। इतने में भोजन की सामग्री तैयार हुई। रणमल्लजी ने अपने सरदारों के साथ भोजन किया। चारण ने भी भोजन किया। जब चारण भोजन कर चुका, तब उस से कहा गया कि हम तुम को कल विदा देंगे। चारण रात्रि में वहीं सो रहा। दिन निकलते ही शिकारियों ने आकर खबर दी 'महाराज! सोरस्यां डूंगस्यां में पाँच बाराह रोके गये हैं। सुनते ही रणमल्लजी घोड़े पर सवार हो वहां पहुँचे और उन पांचों सूकरों को मार, ऊँटों में लद कर ले आये। भोजन की तैयारी हुई। पत्तों में भोजन परोसा गया, सब भोजन कर रहे हैं - इतने में एक खबरनवीश ने आकर कहा महाराज! पनोते के वहाले (क्षुद्र नदी) पर एक बहुत बडा सूअर आया है। सुनते ही रणमल्लजी उठ खडे हुए, घोड़े पर सवार हो उस के साथ हो लिये। चारण भी रावजी के साथ हैं। रवाना होते समय रसोईदारों (पाचकों) से कहा गया कि पनोते के वहाले पर भोजन

[१ ना]गोर नगर में शमशखां ने अपने नाम से एक तालाब करवाया था। वह वहां [शमस]ाश नाम से प्रसिद्ध है।

की सामग्री तैयार हो जावे। आज्ञानुसार वहीं भोजन की सामग्री बन गई। रावजी शूकर की शिकार कर पीछे लौटे इतने में उधर भोजन की भी सामग्री तैयार हो गई। रावजी भोजन करने बैठे। आधा भोजन किया होगा, एक दूत ने आकर अर्ज़ किया कि महाराज! कोलर के तालाव पर एक सिंहनी आई है। कहने की देरी थी, अध-खाये ही उठ खड़े हुये। चारण को साथ लिया। जाते समय कह दिया था कि कोलर के तालाव पर भोजन तैयार मिले। रावजी सिंह सिंहनी को मार कर कोलर के तालाव पर पहुंचे, वहाँ भोजन की सामग्री तैयार मिली। हलवा, पूरी व वाटी। सब ने साथ मिल कर भोजन किया, भोजन कर वहाँ से पीछे लौटते मार्ग में चारण को विदा दी गई। चारण विदा ले पीछा घर पर आता है।

जब वह चारण नाडूल के निकट पहुंचा, एक कोस रहा, उस समय वह उच्च स्वर से चिल्लाया 'वाह? रे! वाहरे!!' तब नाडूल से विना पलांण किये घोड़ों पर चढ़ सोनगरे दौड़े। आकर देखते हैं चारण चिल्लाता हुआ आ रहा है। उस से पूछा गया। क्या बात है? क्या किसी ने तुझ को लूट लिया है? तब चारण ने कहा 'मुझे नहीं लूटा है, आप को लूट लिया है। रणमल्ल ने नाडूल ले लिया?' उन्होंने पूछा, 'कब, चारण ने कहा, 'आज।' सरदारो! मैं आप से निवेदन करता हूँ, आप सचेत हो जाइये। राठौड़ रणमल्ल यहां आकर ठहरा है, वह ख़र्च बहुत करता है, वह किसी न किसी पर टूट पड़ेगा।' उन्होंने कहा 'किस पर?' तब चारण ने कहा 'सोनगरों पर।' या तो वह नाडूल लेगा, अथवा हुलों पर वज्रपात होगा; और वह सोझत लेवेगा। अन्य किसी पर नहीं. इसलिये मै चिल्ला चिल्ला कर कहता हूँ, कनकटो! सब कान लगा कर सुनो। मेरा कुछ नहीं लिया जाता है, तुम्हारी भूमि ली जाती है। यदि तुम इस बला से अपनी रक्षा करना चाहते हो तो वाहर करो।' सोनगरों पर उस का पूरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने आत्मरक्षा का उपाय यौन संबन्ध सर्वोत्तम समझ कर अपनी कन्या रणमल्लजी को व्याहने के लिये अपने प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ नारियल भेजा। और सोनगरा लोला की पुत्री रामी रणमल्लजी को व्याही गई। पुत्री व्याह देने पर भी सोनगरो के चित्त पर भय ज्यों का त्यो बना रहा। उन के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई कि ऐसे पराक्रमी पुरुष का यहां रहना भला नहीं। वास्तव मे उस का परिणाम वैसा ही हुआ। सोनगरो ने उस समय सोच कर यह निश्चय किया कि रणमल्लजी को किसी तरह या तो हटा देना चाहिये;

यह मरु भाषा का शब्द है। सेना एकत्र कर शत्रु का पीछा करने को 'वाहर कहते हैं।

नहीं तो मार डालना चाहिये। रणमल्लजी के मन में उन के जामाता हो जाने के कारण इस बात का संदेह बिलकुल नहा था, एक दिन वे सुसराल गये थे, रात्रि में अपनी प्रिया के साथ सुख से शयन किये हुए थे। उधर लोला अपनी स्त्री के साथ वार्तालाप कर रहा था, प्रसंग पर उस ने अपनी स्त्री से कहा कि आज रामी विधवा होवेगी। तब रणमल्लजी की सास ने उत्तर में कहा कि 'होने दो, एक कन्या इस दशा में हो गई तो क्या चिन्ता है? अपना शल्य तो निकल जायगा।' परन्तु वह मन में अत्यन्त दुःखित हुई। उस ने लोला को खूब मद्य पिलाया, लोला को नशे से निद्रा आ गई। तब लोला की स्त्री ने अपनी पुत्री रामी के पास जाकर कहा कि बाई! आज रणमल्ल-जी पर घात है, उन को कह दो वे अभी तुरन्त चले जायँ। रामी के कहने से रणमल्लजी वहां से उसी क्षण निकल गये। जाते समय सास ने रणमल्लजी से कहा कि हमारे जो बन्धु है उन के ऊपर (सहायता) करना। रणमल्लजी ने स्वीकार किया। फिर अपने स्थान में जाकर सोनगरों के साथ छेड़ छाड करना आरंभ किया। सोनगरों को दण्ड देने में महाराणा की भी इच्छा थी। क्योंकि वे राणाजी की आज्ञा पालन करने में कुछ पीछे पड़े हुए थे। इसलिये महाराणा चाहते थे कि सोनगरे सीधे बना दिये जायँ। जब महाराणा को ज्ञात हुआ कि रणमल्लजी के और सोनगरों के आपस में खटक गई है, तब राणाजी ने रणमल्लजी को सूचना भी कर दी। इधर ये भूमि उपार्जन करना चाहते ही थे। रणमल्लजी को यह अच्छा अवसर मिल गया। अब वे इस ताक में लगे कि कहीं ये लोग सब एकत्र समिलित हो जायँ और असावधान दशा में मिल जायँ तो इन को मार लिया जाय। कुछ दिनों में चरों द्वारा उन को ज्ञात हुआ कि सोमवार के दिन सोनगरे अपनी कुलदेवी आसापुरा के मन्दिर जाते हैं, गोठ करते हैं, मद्यपान कर के मस्त हो जाते हैं, और खटिया पर पड़े खूब निद्रा लेते हैं। रणमल्लजी ने इस बात का अपने मनुष्यों द्वारा पूरा पता लगाय, सब सोनगरों को उसी दशा में पा, मार कर नाडूलाई के एक कुए में जिस का पानी लोग पीते नहीं थे, डाल दिया। और अपने साले को सब के ऊपर[१] रक्खा। आप ने सोनगरों को कूए में डालते समय कहा कि अन्य सब को नीचे रक्खो, हमारे साले को ऊपर रक्खो। हम ने सास को वचन दिया है। इस तरह रणमल्लजी ने सोनगरों को मार कर उस प्रान्त को निष्कण्टक कर अपने परिजन को वहीं रग

१. रणमल्लजी ने यह वाक् छल किया। मरु भाषा में 'ऊपर करना' सहायता करने को कहते हैं। रणमल्लजी ने वैसा न कर ऊपर करने का अर्थ 'उपरि भाग' लेकर साले को सब से ऊपर रक्खा।

छोड़ा। और उस प्रान्त में कही कहीं सोनगरे आवाद थे उन को भी वहां से निकाल कर उस प्रान्त में अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। फिर हुलों को हटा कर सोभत भी ले लिया। अव उन का परिजन सोभत में रहता है और उन की वहिन हॉसा बाई भी वही है और आप राणा लाखा के पास निवास करते है।

एक दिन राणा लाखाजी अपने पुत्र चूंडा के साथ शिकार को गये थे। वे दरवाज़े के समीप पहुंचे, अकस्मात् एक कुम्हार विवाह कर वही आ पहुंचा। दूल्हा अगाड़ी है, दुलहन उस के साथ है। वह दरवाज़े के अन्दर घुसा, तब दीवान ठहर गये और कहा कि इसे आने दो। कुम्हार आगे वढ़ा। उस समय महाराणा ने उस की ओर देख कर निःश्वास डाला। कुमार चूंडा ने महाराणा को आह भरते देख लिया, परन्तु उस समय वह कुछ न वोला। उस के हृदय में वह चुभ गई थी कि महाराणा ने निःश्वास क्यो डाला? इस का क्या कारण है? जव महाराणा शिकार से पीछे लौटे और महलों में दाखिल हुए, सरदार सब आज्ञा ले लेकर अपने २ घर को चल दिये। परन्तु चूंडा वही महाराणा के समीप खड़ा है। तब महाराणा ने चूंडा को कहा कि 'वेटा! तुम भी जाओ, आराम करो।' तब चूंडा ने अञ्जलि वांध कर विनय पूर्वक निवेदन किया कि 'मुझे कुछ अर्ज करना है।' तव राणाजी ने कहा 'क्या कहना है? कहो।' तव चूंडा ने कहा कि दीवान ने शिकार जाते दरवाज़े से निकलते निःश्वास डाला था उस का क्या कारण था?' तब राणाजी ने कहा 'पुत्र! तुम इस का विचार मत करो। तुम्हारे विचार योग्य नही है। वह कोई और ही वात थी।' तव चूंडा ने कहा कि 'यदि आप न कहेंगे तो मुझे प्राण ही नही रखने हैं।' तव राणाजी ने कहा कि 'ऐसा नहीं। बात यह है कि कुम्हार को दुलहिन सहित देख कर हमारी इच्छा विवाह करने की हुई; परन्तु अव समान कक्षा का सवन्धी तो अपनी वेटी देवे नही, और साधारण राजपूत की पुत्री व्याही जाय तो आनन्द आवे नहीं; विवाह तो वही जो समान के साथ हो।' चूंडा वहां से चुपचाप रवाना हो अपने महल में गया। वहां सब सरदारो को एकत्र कर के चूंडा ने उन से निवेदन किया कि "ठाकुरो! किसी के बड़ो वेटी है?" तव किसी ने कहा, 'महाराज कुमार! राठौड़ रणमल्लजी के वहिन[1] है। यह सुन चूंडा ने दूसरा प्रसंग चला कर रणमल्लजी से

[1] मेवाड़ के इतिहास में रणमल्लजी की कन्या लिखा है। (तुहफ़ए राजस्थान पृ. ६१) और कर्नल टॉड साहिव भी उस का अनुसरण करते हैं (टॉड राजस्थान पृ. ६६ कलकत्ता में मुद्रित पुस्तक सन् १६०२)

कहा कि रणमल्लजी आप महमानी करें, आपने आज तक गोठ नहीं की है, आप को गोठ करना चाहिये, जिस मे हम भी शामिल हों।' रणमल्लजी ने कहा "वहुत अच्छा। आप जब कहे तब।' तब चूंडा ने कहा 'जल्दी दो चार दिन में हो जानी चाहिये।' रणमल्लजी ने दिन नियत कर गोठ की तैयारी कराई। ४०-५० मदारिया१ बकरे मँगाये गये। और भी अनेक प्रकार की भोजन की सामग्री तैयार हुई। जब भोजन, पान पुष्प, मद्य आदि सब वस्तु सज्ज हो गई तब रणमल्लजी ने महाराज-कुमार चूंडा को बुलाने के लिये अपना मनुष्य भेजा, उस ने जा कर चूंडा को कहा कि महाराज-कुमार! सब तैयारी हो गई है। सरदार सब आ गये हैं, आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं, आप पधारें।' चूंडाजी के देरी क्या थी? तुरंत वहां गये। दरबार जुड़ा है, मेवाड़ के सब सरदार बैठे हुए हैं, उस समय चूंडा ने रणमल्लजी को कहा कि "आप की बहिन विवाह योग्य है, महाराणा उसे चाहते हैं। कृपा करके वह महाराणा को दीजिये।" तब रणमल्लजी ने कहा कि 'वह हम आप को दे सकते हैं। महाराणा को नहीं। क्योंकि महाराणा की अवस्था अन्य है।' तब चूंडा ने कहा कि 'रणमल्लजी! आप हमारे वड़े संबन्धी हो, हमें आप राजपूत करो।' इस पर बहुत वादानुवाद हुआ। रणमल्लजी हठ चढ़ गये। उन्होंने किसी भाँति स्वीकार नहीं किया। और चूंडा भी अपनी बात पर आरूढ़ हो गया। वाद-विवाद होते २ अपराह्न हो गया। चूंडा ने विचार किया कि अब वाद का काम नहीं रहा, किसी तरह इन को समझाना चाहिये। इन के पास कोई चारण अथवा ब्राह्मण हो तो उस के द्वारा यह कार्य बन सकता है। जिज्ञासा करने पर ज्ञात हुआ कि रणमल्लजी के पास एक खिड़िया शाखा का चारण है, चानण उस का नाम है, वह उन का पूर्ण कृपा पात्र है। तब चूंडा ने चारण चानण को बुला कर कहा कि तुम अपने ठाकुर को समझाओ कि एक संतान मर भी जाती है, तुम ऐसा ही समझ लो: तुम कवि हो, यदि यही काम तुम से न बना तो तुम को कवि कौन कहेगा? ज्यों हो, यह काम बन जाना चाहिये, तब चानण ने कहा कि महाराज-कुमार! आप ने यह कहा सो ठीक ही है, परन्तु आप लोगों में यह रीति है कि जो वड़ा बेटा होता है, राज्य का अधिकारी वही होता है। अन्य सब डोलते फिरते हैं, इस लिये हम हमारी बाई दीवान२ को देना नहीं चाहते। यदि आप महाराणा के लिये हमारी बाई चाहते हैं तो आप इस बात को स्वीकार करें कि यदि हमारी बाई के पुत्र हो वो राज्य का अधिकारी वह होवे। इस

१ मेवाड में एक प्रांत है। २ उदयपुर के महाराणा दीवान कहलाते हैं। वे एकलिंगजी को राजा और अपने को दीवान मानते हैं।

शर्त पर तो कदाचित् रणमल्लजी मान जायँ। दूसरा उपाय तो मुझे कोई नही दीखता। तब चूंडा ने चानण को कहा कि यह कोई अशक्य नहीं है, मै राज्य का लोभी नही हूं, तुम रणमल्लजी से स्वीकार करा लो, मैं राज्य छोड़ने को तैयार हूं। वह पुत्र ही कैसा? जो पिता के अनुकूल न हो। आप रणमल्लजी को समझाइये। तब चानण ने चूंडा को फिर कहा कि 'महाराज-कुमार! चीतौड का राज्य कौन छोड़ सकता है?' तब चूंडा ने शपथ करके कहा कि 'यदि आप की बाई के पुत्र हो जायगा तो चीतौड़ का स्वामी वही होवेगा।' जब बात पक्की हो गई, चूँडा ने राज्य देने का शपथ कर लिया, तब चानण रणमल्लजी के पास गया। उस ने उन को एकान्त में ले जा कर कहा कि 'महाराज! आप क्या करते है? पुराना तो भी चन्दन, नया तब भी कु-काठ। आप के भानजे को चीतोड़ का राज्य मिलता है; फिर आप क्या चाहते हैं? ऐसा संयोग ईश्वर ही मिलाता है। आप इस अवसर को न चूकिये। फिर उस ने चूँडा की शपथ का समस्त वृत्तान्त कह कर रणमल्लजी को बड़ी कठिनाई से खड़ा किया। तुरंत दीवान को नारियल भेजा गया। दीवान बरात बना कर आये। बड़ी धूमधाम के साथ विवाह हुआ। दीवान के उस हाँस बाई के उदर से तेरहवें महीने में पुत्र हुआ। उस का नाम मोकल रखा गया।

यही वृत्तान्त मेवाड़ के इतिहास 'तुहफए राजस्थान' (पृ० ६१) में इस प्रकार लिखा गया है :—"लाखा-राणा की ज़ईफ़ी में मारवाड़ के राव रणमल्ल की बेटी की निस्बत मेवाड के वलीअहद चूँडा के वास्ते शादी का पैग़ाम आया। चूँडा की ग़ैरमौजूदगी मे राणा लाखा ने हँसी के तौर पर कहा कि 'अगर मै भी जवान होता, तो ऐसी बातें मेरे लिये करार पातीं।' चूँडा ने (उस ग़ैरत से जो ख़ानगी मुआमलात में राजपूतों को होती है) अपने बाप के ताने के सबब इस शादी से इन्कार किया। लेकिन पैग़ाम लाने वालों के नाकाम वापिस जाने में राव रणमल्ल का हतक[1] था, इस लिये लाचार हो, राणा लाखा ने यह शादी इस शर्त पर मंजूर की, कि अगर राठौड़ राणी से कोई

टाड साहिब के लेखानुसार उक्त लेखक भी राव चूँडाजी का स्वर्गवास वि० सं० १४६५ मे मान कर रणमलजी को राव कहता हुआ लिखता है कि "राव रणमल की बेटी की निस्बत मेवाड़ के वलीअहद चूँडा के वास्ते शादी का पैग़ाम आया" परन्तु नैणसी के लेखानुसार रणमलजी उस समय महाराणा लाखा के पास मेवाड़ में थे। और उन के पिता राव चूँडाजी विद्यमान थे। क्योंकि राव चूँडाजी का स्वर्गवास वि० सं० १४८० मे हुआ था। उस से पहले रणमल्लजी का निवास मेवाड़ में ही था। महाराणा लाखा के उक्त विवाह के समय वे राव नहीं, राजकुमार थे।

लड़का पैदा हो तो चूँडा राज से दावा छोड़ कर उस को गद्दी का हक़दार समझे। चूँडा ने बाप की मरज़ी के मुआफ़िक़ हमेशह वफ़ादार रहने की क़सम खाई और वह अव्वल दरजे का मातहत सरदार और फ़ौज का सिपहसालार क़रार पाया। सलूँवर का ठिकाना अब उस की औलाद के क़ब्ज़े में है और रियासत से बख़्शी हुई जागीर के पर्वाने पर उन के भाले का निशान तस्दीक के तौर पर किया जाता है।" टॉड साहिब ने भी यह वृत्तान्त उसी प्रकार से लिखा है।

रणमल्लजी राणा लाखाजी के पास रहते ही थे। एक दिन राणाजी ने रणमल्लजी से कहा कि 'किसी प्रकार अजमेर अपने हस्तगत हो जाना चाहिये।' तब रणमल्लजी ने कहा कि 'बहुत अच्छा।' फिर वे अवसर ताकने लगे। अजमेर में जो अधिकारी मुसलमान था वह राजकन्या व्याहना चाहता था। पचोली खीमसी ने रणमल्लजी से कहा कि इस समय अजमेर लेने का उत्तम उपाय है। वह यह कि अजमेर का अधिकारी राजपूत कन्या व्याहना चाहता है आप उस से बात चीत करा कर कन्या देने के बहाने अजमेर के किले में जा सकते हैं। खीमसी की यह बात सुन कर रणमल्लजी ने अजमेर के सूबहदार के पास अपना मनुष्य भेजा। उस ने सूबहदार से मिल कर बात चीत की। सूबहदार को घर बैठे गंगा मिली। बहुत प्रसन्न हुआ। और बोला कि 'लडकी को लेकर आ जाओ।' तब दूत ने कहा कि वे बहुत बड़े सरदार हैं। १००-२०० आदमी बिना लिये वे आ नहीं सकते। तुरक प्रेम-रस में भीगा हुआ था, उसने स्वीकार कर लिया। दूत ने आकर रणमल्लजी से कहा। रणमल्लजी चुने हुए १५० मनुष्य ले कर अजमेर गये। उन को उस समय कौन रोक सकता था? क़िले में दाख़िल हुए। एक जनाना डोली भी साथ में ले ली गई थी। ज्यों ही क़िले में प्रविष्ट हुए मुसलमानों पर टूट पडे। फिर तो रणमल्लजी के हाथों का क्या देखना था? देखते ही देखते मुसलमानों को मार कर अजमेर पर क़ब्ज़ा कर अजमेर राणा लाखाजी के अधीन किया। और पंचोली खींवसी को उस के इनाम में खाटू कायम खानियों से छीन कर जागीर में दे दिया। उस के वंशज इस समय जोधपुर में कानूनगो हैं।

महाराणा लाखाजी के स्वर्गवास करने पर उन की राठोड़ राणी हांस बाई जलने को तैयार हुई, उस समय चूँडा ने उन के पैरों में पड कर निवेदन किया कि माता! आप यह क्या करती हो? आप तो राजबाई[1] का पद पाओगी। तब राठौडजी ने कहा कि जहाँ चूँडा

---

१ मेवाड में राजमाता को राजबाई कहते हैं।

विद्यमान है, वहाँ मेरे पुत्र को राज्य कहाँ? तब चूँडा ने कहा कि 'माता! राज्य सिंहासन मोकल का है, मैं उस का सिपहसालार हूँ। मैं अपनी प्रतिज्ञा का भङ्ग कभी नहीं करूँगा, जो मैने पिता के समक्ष में की है। फिर चूँडा ने मोकल को बुला कर अपने मस्तक की पगड़ी मोकल के सिर पर रक्खी और मोकल की पगड़ी अपने ऊपर रक्खी। तदनन्तर मोकल को राज्यसिंहासन पर बिठला कर चूँडा ने मोकल को प्रणाम किया। तब समस्त सरदारों व उमरावों ने भी मोकल को अपना स्वामी समझ कर प्रणाम किया। मोकल की माता ने चूँडा को आशिष देकर कहा कि 'चूँडा! जैसा तुम ने किया है, वैसा अन्य कोई नही कर सकता। यह चीतोड़ का राज्य मोकल को तुम ने दिया है। मै प्राणपति के पीछे अवश्य सती होती मेरा वचन सत्य है तो मैं कहती हूँ कि मेवाड़ की भूमि तुम्हारे वंशजो के रहे'। यह वचन अब तक सत्य दीख रहा है।

महाराणा लाखाजी का ज्येष्ठ पुत्र चूँडा पट्टाधिकारी होने पर भी राणा लाखाजी को प्रसन्न रखने के लिये अपने छोटे भाई मोकलजी को पट्टाधिकारी मान कर उन का आज्ञाकारी बन गया था। तथापि राज्य का सर्व कार्य चूँडा करता था। जब महाराणा मोकलजी तरुण हुए, उन्होंने देखा कि मैं तो नाम का राजा हूँ, राज्य का कार्य तो सब चूँडा के हाथ है, मोकलजी से यह सहन नही हो सका। वे राज्य कार्य में हस्तक्षेप करने लगे, तब सीसोदिया चूँडा अप्रसन्न होकर मांडू के बादशाह के पास चला गया, बादशाह ने उसको सत्कार पूर्वक रख लिया और उसके निर्वाह के लिये हल्लार का परगना उसे जागीर में दिया। शत्रु का कर्तव्य है कि वह अपने शत्रु के घर मे फूट डाले। हिन्दू और मुसलमान राजों में स्वाभाविक वैर चला ही आता था। दूसरा कारण यह भी था कि मांडू और मेवाड़ के राज्यों की सीमा सटी हुई थी। चूँडा मांडू में रहने लगा। जब चूँडा चीतोड़ से चला गया तो वहाँ रणमल्लजी कार्यकर्त्ता नियत हुए।

कर्नल टॉड साहब इस विषय को इस प्रकार लिखते हैं। 'कुमार चूंडा पिता के पीछे अपने छोटे भाई मोकल और संपूर्ण मेवाड़ राज्य की भलाई व श्रीवृद्धि के लिये अति चतुरता के साथ समस्त राज्य भार को भली भांति से देखने लगे। परन्तु मोकलजी की माता उन के प्रबन्ध से अत्यन्त अप्रसन्न थी। वह चाहती थी कि मोकल के समर्थ होने तक मै स्वयं राज्य कार्य का प्रबन्ध करूंगी। परन्तु उन की वह आशा पूर्ण न हुई। इस कारण से मन में महादुःख हुआ। कुटिल हिंसा और विद्वेष के चलायमान करने से उस ने पवित्र कृतज्ञता को हृदय में स्थान न दिया। उस समय उन का हृदय पशु

के समान हो गया था। नहीं तो जिस चूंडा के स्वार्थ त्याग के बिन यह कभी भी मेवाड़ की राज-माता न हो सकती थी, हृदय पर पत्थर रखकर यथार्थ राक्षसी और पिशाचिनी की मूर्ति बनाय उस ही चूंड के अपूर्व गौरव को भूल गई। तथा उसी का बुरा चीतने के विचार मे लगी। वीर वर चूंडा के प्रत्येक कार्य को यह राजमाता डाह और घृणा के साथ देखने लगी। चूंडा के सीधे साधे कार्यो में भी दोष लगा कर कहने लगी कि 'राज कार्य के चलाने के बहाने से चूंडा स्वयं ही राणा बने जाते हैं। यद्यपि वे अपने को राणा नहीं कहते हैं परन्तु इस पद को केवल नाम मात्र रखना चाहते है।' धीरे धीरे ये समस्त बातें चूंडा ने सुनी। वे भली भाँति से अपने हृदय को पवित्र और सरल जानते थे, उन को दृढ़ विश्वास था कि छोटे भाई के मङ्गल के लिये और राज्य की संपत्ति-वृद्धि के लिये हम ने राज-सन्मान को न्योछावर कर दिया है, हा !! क्या इन बातों का यही बदला है ? चूंडा के उदार हृदय पर घोर घाव पहुंचा। वे समझ गये कि अब यहां कार्य करने का समय नहीं है। शत्रु की भयंकर छुरी को हृदय में ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु इस प्रकार का अन्याय और कलङ्क पल भर भी सहा नहीं जा सकता। इस अन्याय और दुर्नामता और संदेह के लिये उन्होंने माता का मधुर तिरस्कार करके कहा, "आप की समझ में फेर है। यदि मुझ को राजसिंहासन पर बैठने की अभिलाषा होती तो कौन आप को आज राजमाता कह कर पुकारता ? अच्छा, इस से मेरी कोई हानि नहीं है, केवल यह पछतावा रहा कि चीतोड के राज्य को छोड़ कर जाता हूं। चीतोड़ के भाग्य में तो गाढी स्याही से भयकर होनहार का होना लिखा है। उस ही का विचार करने से मुझे दुःख होता है। अच्छा, मैं जाता हूं। राज्य का समस्त प्रबन्ध आप ही करिये। अब केवल आप ही के ऊपर राज्य का सुख, दु ख, संपत्ति, विपत्ति इत्यादि समस्त विषय निर्भर करते हैं। देखिये, सीसोदिया कुल का गौरव कहीं नष्ट नहीं हो जाय।" चूंडा चीतोड को छोड़ कर मांडू की तर्फ़ चला गया। वहां के राजा ने भली भाँति से आदर मान करके अपने यहाँ रक्खा और हल्लार का परगना जागीर में दिया। चूंडा अपने पितृ-राज्य को छोड कर गये, उस समय दुष्ट राजमाता ने एक बार भी उनको ठहरने के लिये नहीं कहा। वरन् उलटी प्रसन्न हुई। इस बात से राजमाता के पिता, भ्राता और उन के कुटुम्बियों के आनन्द की सीमा न रही। मंडोर को छोड कर वे लोग क्रम क्रम से चित्तौड़ में आने लगे। पहले मोकलजी के मामा जोधा ने मारवाड़ की भूमि को छोड़ कर मेवाड़ की शीतल छाया में आ कर विश्राम लिया। कुछ दिन पीछे जोधा के पिता रणमल्लजी और उन के अगणित सेवकादि भी आ गये। ज्वार की रोटी खाते खाते

जिन के गले सूख गये थे आज वे लोग हरे भरे मेवाड़ की गेहूं की बनी रोटियें खा कर परम प्रसन्न बालक मोकलजी का जय जयकार करने लगे।' *

टॉड साहिब के इस लेख में बहुत सा अंश यथार्थ नही है। प्रथम तो चूंडा की असीम प्रशसा की गई है, परन्तु चूंडा का व्यवहार मोकलजी के साथ अच्छा नही था। यद्यपि चूंडा ने राणा लाखाजी के विवाह के निमित्त राज्य छोड़ने की उस समय प्रतिज्ञा कर ली थी, जिस से उन को मोकलजी को राज्य का स्वामी मानना पड़ा। परन्तु वे अपने मन में जानते थे कि मोकल नाम मात्र का राजा बना रहे; राज्य का कार्य करने वाला तो मैं ही हूं। ज्योंही उस ने राज्य का सर्व कार्य अपने ही हाथ में ले रक्खा था। जब मोकलजी तरुण हुए और उन्होने राज्य का कार्य अपने हाथ में लिया तो चूंडा के मन का अन्तर्गत द्वेष और ईर्षा तुरंत प्रकट हो आये। वह इस से स्पष्ट है कि वह मोकलजी को छोड़ कर उन के परम शत्रु मांडू के बादशाह से जा मिला। इधर सीसोदिया सरदारों को उकसा दिया, जिस का परिणाम यह हुआ कि चाचा मेरा के हाथ मोकलजी की हत्या हुई। इतना ही नहीं, किन्तु उन के पुत्र कुंभाजी का भी काम तमाम करने का प्रयत्न किया गया। परन्तु रणमल्लजी के पक्ष के सरदारो ने उन के प्राणों की रक्षा की। रणमल्लजी के पक्ष के सरदारो का कुंभाजी की रक्षा करना इस से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि कुंभाजी ने आत्मरक्षा और पितृ-घातक चाचा मेरा को मारने के लिये रणमल्लजी से सहायता मांगी, और उन्होंने उस को चरितार्थ किया। यदि चूंडा उस घृणित कार्य मे शामिल नही होता तो अवश्य उस से सहायता ली जाती। रणमल्लजी ने मारवाड़ से जाकर मोकलजी के घातक चाचा मेरा को मार कर मोकलजी के वैर का बदला लिया। यदि चूंडा स्वामिभक्त होता तो मोकलजी का वध होने पर चीतोड़ में आकर मोकलजी के घातकों को मारने का प्रयत्न करता और सहायता देता। परन्तु उस का अन्तर्गत भाग अन्य ही था। इसी से उस ने मेवाड़ के परम शत्रु मांडू के स्वामी का आश्रय लिया था।

मोकलजी के स्वर्गवास का समय मेवाड़ का इतिहास संवत् १४९० कहता है। और कुंभाजी का शिलालेख सं० १४९१ का मिला है जिस से मोकलजी के वध का समय १४९० यथार्थ जाना जाता है। उस समय उन के पुत्र कुंभाजी की वय अधिक से अधिक १० वर्ष की भी हो तो भी संवत् १४९० मे उन के पिता मोकलजी की अवस्था २५-२६ वर्ष की होनी चाहिये। और मोकलजी के पिता लाखाजी का स्वर्गवास-

* देखो टाड राजस्थान वेंकटेश्वर मुद्रित अनुवाद भाग १ पृ. १९४।

संवत् १४५५ और १४७८ के मध्य में होना निश्चित है। क्योंकि लाखाजी का शिलालेख १४७५ का और मोकलजी का १४७८ का मिला है। उस समय मोकलजी की अवस्था १०-११ वर्ष की होनी चाहिये। जिस अवस्था में मोकलजी चीतौड के स्वामी बनाए गये थे। मोकलजी बालक थे, हर्ता-धर्ता चूंडा ही था। जब मोकलजी तरुण हुए और उन्होंने अपने काम को सम्हाला तब चूंडा अप्रसन्न होकर मांडू चला गया। मोकलजी स्वतन्त्रता से राज्य करने लगे। उस समय राव रणमल्लजी वहीं मेवाड में थे। मोकलजी ने चूंडा के जाने पर उन को अपना सेनापति नियत किया था।

दूसरा टॉड साहिब यह लिखते हैं कि पहले मोकलजी के मामा जोधा ने मारवाड की भूमि को छोड़ कर मेवाड़ की शीतल छाया में आ कर विश्राम लिया, कुछ दिन पीछे जोधा के पिता रणमल्लजी और उन के सेवक आदि आये। यह भी असंगत है, क्योंकि रणमल्लजी राणा लाखाजी के समय मे ही मेवाड़ में चले गये थे। उस समय जोधाजी का जन्म भी नही हुआ[1] था।

तीसरा लिखते है कि बालक मोकलजी का जय जयकार करने लगे। यह भी भूल है। जिस समय मोकलजी बालक थे उस समय तो वहां चूंडा प्रधान था। जब मोकलजी तरुण हुए और चूंडा चला गया तब रणमल्लजी सेनापति नियत किये गये थे। राज्य का कार्य स्वय मोकलजी करते थे।

चौथा—'मेवाड़ की बनी गेहूं की रोटियें खा कर परम प्रसन्न हुए, यह भी ग़लत है। मेवाड़ में गेहूँ की रोटी नहीं, विशेषतया मक्की की रोटी खाते हैं।

पांचवां, राणा लाखाजी के अन्तकाल के समय में मोकलजी की वय ५ वर्ष की लिखते हैं। परन्तु सवत् १४९० में कुंभाजी की वय १० वर्ष की मानो जाय तो भी उस समय उन के पिता मोकलजी की वय २५-२६ वर्ष की होनी चाहिये। और कुंभाजी की वय १४९० में १० वर्ष की इसलिए अनुमित की जाती है कि संवत् १४९६ का राणपुर का शिलालेख कहता है कि कुंभाजी ने सारंगपुर (मालवे में का), नागोर (मारवाड में का), गागरूण (मालवे का), नराणा (मारवाड का), अजमेर, मडोर, मांडल (मेवाड़ का), बूंदी, खाटू (मारवाड का) चाटसू (जयपुर का) और नाना (मारवाड़ का) आदि बडे बड़े क़िले ले लिये थे। इतना बड़ा भारी काम करते समय कुंभाजी की

[1] ...ा जन्म वि० स० १४७२ का निश्चित है। और रणमल्लजी वि० सं० १४५५ ...ाड़ में राणा लाखा के पास चले गये थे।

अवस्था तरुण नहीं तो १४-१५ की तो अवश्य होनी चाहिये। यह विजय संवत् १४६४-६५ में हुई हो तो सवत् १४६० में कुंभाजी की अवस्था १० वर्ष की होनी चाहिये। इस हिसाव से राणा लाखाजी की मृत्यु के समय मोकलजी की वय ५ वर्ष की नहीं, किन्तु १०-१२ वर्ष की हो सकती है, अल्प नहीं हो सकती। पंडित गौरीशंकरजी ओझा भी १२ वर्ष की अवस्था होना वतलाते हैं।

जिस समय राव सत्ताजी को मंडोवर दिया गया था,[१] उस समय उसके छोटे भाई रणधीर ने वाधा डालनी चाही थी। तव सत्ताजी ने रणधीर से कहा कि तुम प्रतिकूल क्यों होते हो? तुम्हारी इच्छा पूर्ण की जायगी। हमें जो भूमि मिली है उस मे से आधी तुम्हारी और आधी हमारी है। रणधीर इस वात से संतुष्ट हो गया, और सत्ताजी के साथ रहने लगा। रणमल्लजी राणा लाखाजी के पास मेवाड़ में थे; लाखाजी के स्वर्गवास करने पर राणा मोकलजी मेवाड़ के मालिक हुए। जव मोकलजी चूंडा के चले जाने पर स्वतन्त्रता से राज्य करने लगे, तव उन्होंने रणमल्लजी को कहा कि मंडोवर के दायी तुम हो, हमारे साथ चलो, हम सत्ता को निकाल कर मंडोवर तुम को दिला देंगे। रणमल्लजी ने महाराणा की मनशा देख कर स्वीकार कर लिया। महाराणा अपनी सेना को सझ, रणमल्लजी को साथ ले, मंडोवर पर चले। सत्ताजी को इस वात की ख़वर लगी; तव उन्होंने सहायतार्थ रणधीर को नागोरी खान के पास भेजा। खानजादा रणधीर के साथ आया। उधर से महाराणा और रणमल्लजी आये। सीमा पर दोनों ओर की सेना का मुक़ावला हुआ। खानजादा के सामने तो रणमल्लजी गये, सत्ता और रणधीर के सामने महाराणा मोकलजी चले। महाघोर संग्राम हुआ। जिस में सत्ता और रणधीर के पराक्रम को महाराणा मोकलजी की सेना सहन न कर सकी। महाराणा पीछे हट गये। दूसरी तर्फ़ रणमल्लजी ने नागोरी खान पर हमला किया, जिस में खानजादा के पैर उखड़ गये। तव सत्ता के लोगों ने कहा कि 'विजय सत्ता की हुई।' और रणमल्लजी के लोगों ने कहा कि 'विजय रणमल्लजी की हुई।' तदनन्तर दोनों भाइयो ने 'राम राम' किया (मिले)। परस्पर वार्तालाप हुआ। रणमल्लजी ने कहा 'नागोरी खान को फिर ले आना।' और सत्ताजी ने कहा 'आप

---

[१] राव सत्ताजी को मंडोवर राव चूंडाजी ने दे दिया था और नागोर कान्हा के हिस्से में रखा गया था। ज्येष्ठ पुत्र रणमलजी पिता की आज्ञा से राज्य छोड़ कर मेवाड़ में चले गए थे।

भी राणाजी को पूछ लेना।' रणमल्लजी वहाँ से पीछे राणाजी के साथ मेवाड़ गये। और सत्ताजी मंडोवर में शासन करते रहे।

नागोरी खानजादा के और महाराणा मोकलजी के एक तो वैर का कारण यह हुआ। दूसरा खानजादा ने अजमेर मे कब्ज़ा कर लिया था। उस के मनुष्य मेवाड़ की सीमा मे जाकर उपद्रव करने लगे। तब महाराणा मोकलजी ने खानजादा पर अजमेर जा जाकर दो वेर आक्रमण किया था, परंतु उस मे खानजादा की विजय हुई। तीसरी वेर महाराणा ने फिर अजमेर पर चढ़ाई की। उस समय महाराणा के सेनापति राव रणमल्लजी थे। उधर खानजादा की तर्फ़ से दो सेनापति फीरोज और महम्मद थे। परस्पर महाघोर संग्राम हुआ। उस में फीरोज और महम्मद राव रणमल्लजी के हाथ मारे गए। महाराणा की विजय हुई। उस विषय का पद्य महाराणा मोकलजी के वर्णन में कुंभलगढ़ की संवत् १५१७ की मामादेव की प्रशस्ति मे यह है:—

"पीरोजं समहंमदं शरशतैरापात्य यः प्रोल्लासत्।
कुन्तमात निपातदीर्णहृदयांस्तस्यावधीद्दन्तिनः[१]॥ २२१॥"

इसी विषय का वांर्डिक में राव रणमल्लजी के वर्णन का यह पद्य है:—

छप्पय

"जुटे राघ कमधज्ज निहस भांजे घड़ निसहर,
सारीखां महमंद मुँहे ऊडाड़ि असिंमर।
इम कहतौ ऊठियो समै रावतां सहस्सां,
सेन तणा पेरोज दिसा ऊधरणा दस्सां।
मारिया मेछ गज मारिया मलिक महंमद मारियौ,
रिणमल्ल विगट्टौ सांफलौ मौकल तणौ सुधारियौ॥ १॥"
"महमंद जिसा मच्छर वडै वूहां ज्यां रिणमल्ल वर।
नागौर नारि रोवै निंतूं थिउ वसंत अवसंत घर[२]॥"

---

१. महंमद सहित पीरोज को सैकड़ों बाणों से गिरा कर, तीक्ष्ण भालों से उस के हाथियों के हृदय विदीर्ण कर के हाथियों को मारा।

२ राठोड़ राव युद्ध में जुटा। उस ने सेना का विध्वंस कर तलवार से महंमद जैसे धीरों को मारा। राव हज़ार रावतों के वीच में ऐसे कहता उठा कि फीरोज की सेना को मारने का यह समय है, ऐसे कह कर फीरोज की सेना को दशों दिशाओं में भगा दिया। म्लेच्छों को मार, हाथियों का संहार कर, फिर मलिक महमद को मारा। इस तरह रणमल्लजी ने मोकलजी के विगडे हुए मामले को सुधारा॥१॥ महमद जैसे शत्रु को, जिस के पास वडा व्यूह था, मारा। जिस से नागोर की स्त्रियां नित्य रोती हैं कि जो घर बसते थे उजड़ हो गये।

यह युद्ध अजमेर के समीप जैत्राई नामक ग्राम में हुआ था। शिलालेख का पद्य कहता है कि फीरोज और महंमद को महाराणा मोकलजी ने मारा था। और वार्डिक का प्राचीन पद्य यह बतलाता है कि फीरोज और महम्मद राठौड़ राव रणमल्लजी के हाथ से मारे गये थे। जिस से ऐसा जाना जाता है कि वे मारे गए राव रणमल्लजी के हाथ से। क्योंकि राव रणमल्लजी मोकलजी के सेनापति थे। चाहे मारे कोई। परन्तु नाम स्वामी का ही होता है। कहावत है 'लड़ै सिपाही और नाम मालिक का।'

सत्ताजी और रणधीरजी दोनों मंडोवर में निवास करते हैं। दोनों भाइयों के पुत्र हुए। सत्ता के नरवद और रणधीर के नापा। नरवद महापराक्रमी, वीर और अत्यन्त बुद्धिमान् था, परन्तु कुटिलता में कम नहीं था। एक दिन उस ने विचार किया कि रणधीर भूमि की आय में से आध लेता है, वह क्यों दिया जाय? अब रणधीर को आध नहीं देंगे, यहाँ से निकाल देंगे। नरवद इस विचार में है। एक दिन रु० ४००) आये। नरवद ने उन में से रणधीर को आध का हिस्सा नहीं दिया। इकल्ला ले बैठा। कुछ दिन हुए एक दिन कहीं से एक कमान (धनुष) उपहार में आई। नापा ने उस कमान को खींच कर तोड़ डाला। तब नरवद ने कहा कि भाई! यह क्या किया? तुम से भी गई और हम से भी गई। तब नापा ने कहा कि भूमि का कर जो आता है उस में से आधा हिस्सा मेरा है। आप को स्मरण है ४००) रुपये आये थे उस में से आधे रुपये २००) मुझे क्यों नहीं दिये गये? तब नरवद ने रु० ४००) की थैली मँगा कर उस में से रु० २००) नापा को दिये। परंतु उसी क्षण उस के मन में यह लगी कि किसी तरह यह मरवा दिया जाय। यही सोचता हुआ वह उठ कर घर पर गया। नरवद पाली के सोनगरों का भानजा और नापा जँवाई था। नरवद ने अपनी मामी से कहा कि 'मामीजी! आप को वल्लभ मैं किंवा नापा?' उस ने उत्तर में कहा कि मेरे तुम दोनो समान हो। परन्तु तुम कुछ विशेष। कारण यह कि हम तुम्हारे देश में निवास करते हैं। तब नरवद ने कहा कि नापा को विष होना चाहिये। उस ने कहा कि यह कार्य मुझ से कैसे हो सकता है? तब नरबद ने एक दासी को लोभ देकर उस के द्वारा विष दिलवा कर नापा का काम तमाम किया। अब नरबद ने रणधीर को मारने के लिये सेना सग्रह करना शुरू किया। रणधीर ने अपने मनुष्यों से पूछा कि नरबद सेना इकट्ठी क्यों करता है? तब रणधीर के मनुष्यों ने नरबद के मुत्सद्दी कामदारों से पूछा कि यह कटक किस के लिये एकत्र किया जाता है? उन्होंने कहा कि हमें तो ख़बर नहीं, नरवद जानें। वहां कुछ पता नहीं लगा। तब वे मनुष्य दयाल नामक मोदी के यहां जा बैठे; क्योंकि

दयाल मोदी के साथ नरबद के कुछ सलाह हुआ करती थी और रणधीर ने दयाल का बाल्यावस्था में भरण पोषण किया था। रणधीर के मनुष्यो ने दयाल के यहां से सामान तुलाया। दयाल ने रणधीर के मनुष्यों को अन्य सब सामग्री दे दी परन्तु घी नही दिया। तब उन्होंने मोदी से कहा कि 'दयाल! घृत क्यों नहीं देता है?' तब दयाल ने "काले के पीला बहुत ही है।" इतना कह कर घृत तोल दिया। वे सामग्री ले भोजन कर पीछे रणधीर के पास गये तब रणधीर ने पूछा, 'तुम को ज्ञात हुआ कि कटक का संग्रह किस के लिये होता है?' तब उन्होंने कहा कि हमें तो कुछ पता नही लगा। तब रणधीर ने कहा कि दयाल मोदी ने भी कुछ कहा है? उन्होंने कहा कि महाराज! और तो उस ने कुछ भी नहीं कहा 'काले के पीला बहुत ही है' इतना कह कर हम को घृत दिया था। तब रणधीर ने कहा कि विचारा दयाला और क्या कहता, काला मैं पीला मेरे सुवर्ण। उस पर यह कटक है। अर्थात् मेरे ऊपर कटक है। तब रणधीर ने भी सेना एकत्र की। समस्त राजपूतों का वेतन पूरा दे दिया गया। समस्त राजपूतों ने कहा कि हम आप के साथ हैं। पश्चात् रणधीर महाराणा मोकलजी के पास मेवाड में गया। प्रथम वह रणमल्लजी से मिला और उन से कहा कि चलो आप को मंडोवर दिलाऊं। आप को शपथ राव चूंडाजी ने कान्हा से भूमि लेने का लिवाया था न कि सत्ता से। सत्ता का भूमि पर क्या अधिकार है? आप चलिये। फिर महाराणा से मिला। महाराणा ने कहा कि मामा! आप कैसे आये? तब रणमल्लजी ने कहा कि ये हमें मंडोवर दिलाने को आये हैं। तब राणाजी ने पूर्व पराजय का स्मरण कर के रणमल्लजी को कहा कि हम भी चलेंगे। अब महाराणा मोकलजी अपनी सेना ले रणमल्लजी और रणधीरजी को संग लिये मंडोवर आये। तब सत्ता ने नरबद से कहा कि तुम भी नागोरी खान को ले आओ। नरबद रवाना हो एक कोस गया, इतने में रात्रि हो गई, तब वहां से पीछे लौट आया। सत्ताजी को नरबद के आ जाने की खबर नहीं थी, नरबद अपने माता पिता की वार्ता सुनने को गुप्त रीति से एकान्त में जा बैठा। सत्ताजी सोनगरी रानी को कहने लगे। 'सोनगरी! नरबद जानता है कि पिता कु-पिता हो गया है जो रणधीर को आध देता है; परन्तु यह निश्चित जानो कि रणधीर के विना मंडोवर रहने का नहीं है। अब नागोरी खान को लेने को गया है; परन्तु खान अब आवेगा नहीं। वह रणमल्लजी के हाथ देख गया है। अच्छा हुआ। मैं काम आऊंगा, इतने में नरबद बोल उठा कि मुझे नागोरी खान के वास्ते क्यों भेजते हैं? मैं युद्ध लडूंगा। मैंने भी प्रतिज्ञा कर ली है, मैं काम आऊंगा। तब सत्ताजी

ने कहा कि मैं यही कहता था, तब नरवद ने नक्कारा बजवा कर युद्ध[१] का आरम्भ किया। नरवद रण भूमि में घायल हो कर गिरा। एक आंख फूटी, और उस के अच्छे अच्छे बहुत से राजपूत मारे गये। नरवद के योधों में एक ईंदा जाति का क्षत्रिय ऊदा उगमणोत बड़ा वीर, धर्म कर्म वाला बड़ा ठाकुर था, ऊदा के ६० प्रण थे, जिन में ५९ तो और थे और एक प्रण यह था कि स्वामी के अगाड़ी युद्ध करना और प्रहारों से शरीर जर्जरित हो जाने पर भी स्वामी को आज्ञा बिना भूमि पर न गिरना। समरांगण में परस्पर युद्ध हो रहा है, दोनों ओर की सेना युद्ध करते छक गई है, जिस मे नरवद की बहुत सी सेना मर चुकी है, कुमार नरवद भी प्रहारों से पूर्ण होकर पृथ्वी पर पड़ा

---

[१] एक ख्याति में यही विषय इस प्रकार लिखा है। नरवद और रणधीर के पटती नहीं थी। तब रणधीर रणमल्लजी के पास चला गया। रणमल्लजी ने उन का अत्यन्त आदर सत्कार किया और उन को महाराणा को कह कर ४५ गांवो का पट्टा दिलवा दिया। रणधीर जिस अभिप्राय से रणमल्लजी के पास गया था, अवसर पा कर उस ने रणमल्लजी से कहा कि सत्ता मंडोवर का मालिक बना बैठा है, आप सोझत में पड़े हैं; यहां क्या खायंगे? आप चलिये। सत्ता की क्या सामर्थ्य है कि वह आप के साम्हने ठहर सकै? मंडोवर आप के योग्य है। तब रणमल्लजी ने कहा कि हम वहां से पिता की आज्ञा से आये थे तब हमने कहा था कि हमारे तुम्हारे पृथ्वी से कुछ सरोकार नही। हमारा यह वचन हमारे स्मृति पथ में है। तब रणधीर ने कहा कि जिस कान्हा के लिये आप ने कहा था वह कान्हा तो अब है नही, वचन उस के लिये था। सत्ता के वास्ते आप के कोई प्रतिज्ञा की हुई नही है। मंडोवर सत्ता से लेकर जोधा को क्यों नही दे देते हो? वहाँ का सर्व वृत्तान्त मैं जानता हूँ। तब रणमल्लजी ने कहा आप कहेंगे वैसा करेंगे। फिर रणमल्लजी, रणधीरजी और कुमार जोधाजी तीनों ने मिल कर सलाह करके यह निर्धारित किया कि आपन छल से मंडोवर लेंगे। फिर सत्ताजी के पास मनुष्य भेज कर विज्ञप्ति की; आज्ञा हो तो हम आप के चरणों में उपस्थित होवें। आप से मिलें बहुत समय हो गया है। सत्ताजी भले मनुष्य थे। उन्होने पीछा कहलाया, जब तुम्हारी इच्छा हो मिल सकते हो। तुम्हारा घर है। तब रणमल्लजी ने गोडवाड़ में जो राणाजी के अच्छे २ आदमी थे उन में से कुछ लिये, कुछ अपने मनुष्य एकत्र किये। वहां से रवाना हो गांव बिराही मे डेरा किया। वहाँ से सत्ताजी के पास ख़बर भेजी। तब सत्ताजी ने कुमार नरबद को कहा कि तुम्हारा चचा हम से मिलने को आता है, तुम साम्हने जाकर उन्हें ले आओ। नरवद ५००-६०० मनुष्य लेकर साम्हने गया। रणमल्लजी गांव बिराही से कूच कर गांव सांगी आये, जो मंडोवर से ३-४ कोस पर है। रणमल्लजी ने नरबद को देखते ही उस पर हमला कर दिया। इस युद्ध में नरबद घायल हो कर गिरा और उस के बहुत से राजपूत मारे गये।

है ; जब तक नरवद खड़ा रहा तब तक राजपूतों ने पैर नहीं छोड़े, परन्तु नरवद के गिरने पर उस के राजपूतो के पैर उखड़ गये। रण मल्लजी की विजय हुई। रणमल्लजी, रणधीर और जोधाजी ने रणखेत को सम्हाला, जिस मे नरवद के २७५-३०० मनुष्य और रणमल्लजी के ६० ७० पड़े मिले। रण के मध्य मे कुमार नरवद पड़ा है उस से १० कदम पर ईंदा उगमणोत ऊदा घावों से पूर्ण तलवार की नोक पृथ्वी पर टिकाये तलवार के सहारे खड़ा घूम रहा है। उस के पास ही पडे हुए नरवद के ऊपर एक गृद्ध बैठा है और नरवद की आंख निकालने में लगा है। इतने में ऊदा की दृष्टि नरवद के ऊपर पड़ी। ऊदा ने देखा कि मेरे स्वामी की आँख मेरे देखते गृध्र निकाले, यह मैं कैसे सहन करूं ? ऊदा तलवार के सहारे खड़ा है। नीचा हो नहीं सकता। और तलवार के फेंकने में उस ने यह सोचा कि शायद तलवार नरवद के न लग जाय, और मै भी तलवार छोड़ने से गिर पड़ूंगा, ऐसा विचार कर के उस ने अपने शरीर के मांस के पिण्ड, जो कटे हुए दोनों ओर लटक रहे थे उन में से एक पिण्ड, दाहिने हाथ से तोड़ कर गृध्र के ऊपर फेंका ; और कहा कि मेरे स्वामी की आंख क्यों निकालता है! आज तो मेरे स्वामी ने तुम्हारे वास्ते बड़ा ही सुभिक्ष कर दिया है ऊदा ने मांस का पिण्ड फेंक कर नरवद की आंख बचा दी, और एक आंख पहले फूट चुकी थी। कोई कहता है, तीर से फूटी थी कोई कहता है, गृध्र ने ऊदा के देखने से पहले निकाल ली थी। कुछ भी हो, एक आंख फूट चुकी थी। ऊदा उसी तरह खड़ा है, उस को रणमल्लजी ने देख कर कहा कि 'धन्य है मारवाड़' जिस में ऊदाजी जैसे रत्न उत्पन्न होवें। रणमल्लजी ने ऊदाजी की और भी बहुत प्रशंसा की। ऊदा के प्रण था कि वह स्वामी की आज्ञा बिना गिरता नहीं, और उस का स्वामी नरवद अचेत पड़ा है, तब रणमल्लजी ने ऊदा का कष्ट देख कर ऊदा को कहा कि ऊदाजी आप का स्वामी नरवद अब अचेत पडा है, और हम भी आप के स्वामी ही हैं। आप स्वर्ग को सिधारिये। नरवद रणमल्लजी का शब्द सुन कर पडा हुआ ही बोल उठा कि इस काले ने मेरा पीजा बहुत खाया है, और आप मालिकी करते हैं। इतना कह कर नरवद ने ऊदा से कहा कि ऊदाजी! आप स्वर्ग को सिधारिये। कष्ट बहुत होता है। नरवद का वाक्य सुनते ही ऊदाजी तुरन्त गिर पडे। रणमल्लजी अपने भाई रणधीर और पुत्र जोधा के साथ रणभूमि को सम्हाल, घोडों पर सवार हो, मंडोवर को चले। मंडोवर में जा, राजभवन के आगे खडे रह, अपने दो मनुष्य भेज कर सत्ताजी को कहलाया कि कोट छोड़ कर आप चले जाइये। सत्ताजी और नरवद आसोप चले गये। कोई लिखता है, महाराणा के मनुष्य नरवद को मेवाड़ ले गये और सत्ताजी भी मेवाड़ चले गये

थे। नैणसी लिखता है कि नरबद को तो मेवाड़ वाले ले गये और सत्ताजी को रणमल्लजी ने मंडोवर के किले मे रहने का कह दिया था। जिस से सत्ताजी मंडोवर में रहे। और नैणसी एक ठौड़ सत्ताजी का मेवाड़ में जाना और वही उन की मृत्यु होना लिखता है, जिस से जाना जाता है कि सत्ताजी प्रथम रणमल्लजी के कहने से मंडोवर में रहे हों; फिर नरबद के बुलाने से मेवाड़ चले गये हों और सत्ताजी का आसोप जाना लिखा है सो सत्ताजी शायद मंडोवर से निकल कर मेवाड़ जाने से पहले आसोप गये हों और वहां से मेवाड़ गये हों तो संभव है। इस तरह रणमल्लजी ने मंडोवर सत्ताजी से छीन कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। तदनन्तर मंडोवर मे पांच चार मास रह कर रणमल्लजी पीछे महाराणा मोकलजी के पास चीतौड़ गये। वहां रह कर रणमल्लजी ने मेवाड़ के राज्य का पूर्ण प्रबन्ध कर, उसे बलिष्ठ और वैभवशाली बना कर उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया था। और मुसलमानों को परास्त करके अजमेर आदि मेवाड़ के राज्य में शामिल कर दिये गये थे। परन्तु सीसोदियों को यह सहन नहीं होता था। वे सदा घात में ही लगे रहते थे।

महाराणा मोकलजी के चाचा व मेरा नाम के दो पासवानिये चचा थे सीसोदिया चूंडा मांडू चला गया था, तब से ये दोनों महाराणा मोकलजी के पास रहते थे। मोकलजी उन पर शुभ दृष्टि रखते थे, इन की और सीसोदिया चूंडा की सलाह एक थी। मेवाड़ के राज्य में राव रणमल्लजी का दखल होने से चूंडा और चाचा मेरा आदि प्रायः समस्त सीसोदिया मोकलजी से संतुष्ट थे। मन में बड़ा द्वेष रखते थे। उन का व्यवहार देख कर रणमल्लजी ने मोकलजी से कहा कि आप बड़े हैं, आप किसी बात का ध्यान नही रखते है, परन्तु मैं आप को सावधान कर देता हूँ कि आप इन चाचा मेरा का ख़याल रखियेगा। ये दरबार में आते है तब इन की दृष्टि हम बुरी देखते हैं। आप इन का विश्वास कदापि न करिये, सावधान रहियेगा। यदि ग़ाफ़िल रहेंगे तो हानि की संभावना है। तिस पर महाराणा ने कहा 'ये क्या कर सकते है? इन के हाथ ही क्या है? आप निश्चिन्त रहिये।' ऐसे कह कर उन के कथन को टाल दिया। कुछ ध्यान नहीं दिया। तब रणमल्लजी ने फिर भी कहा, तिस पर मोकलजी मन में अप्रसन्न हुए, बुरा माना, रणमल्लजी लख गये; तथापि कुछ दिन चित्तौड़ मे ठहर कर मंडोवर चले आये।

रणमल्लजी ने मेवाड़ से पीछे आकर नागोर लेने का प्रयत्न किया। उस समय नागोर के मुसलमान असावधान थे। क्योंकि रणमल्लजी तो अधिकतर मेवाड़ में रहते थे; और दूसरा कोई प्रबल पड़ोसी था

ही नहीं , इसलिये वे लोग सदा भोग भोगने में लीन रहते थे। रणमल्ल जी के वे आदि वैरी थे, रणमल्लजी ने उन की वह दशा देख कर नागोर जा, उन्हें मार कर नागोर ले लिया। रणमल्लजी तब से नागोर रहने लगे , और जोधाजी को मंडोवर मे रख दिया।

राणा खेता के बढ़इन के पेट से जन्मे हुए चाचा और मेरा नाम के दो लड़के थे। एक समय महाराणा मोकलजी शिकार खेलने गये थे, चाचा मेरा भी उन के साथ थे, मार्ग में जाते किसी अपरिचित वृक्ष को देख कर महाराणा ने अपने किसी सामन्त को पूछा कि यह कौन सा वृक्ष है ? तो उस ने महाराणा से कहा कि इस बात को चाचा मेरा अधिक जानते हैं, इन से पूछिये। महाराणा ने उन को साधारण भाव से पूछ लिया। इस बात से चाचा मेरा को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने मन में यह समझा कि महाराणा हमें बढ़इन के पुत्र समझ कर दिल्लगी करते हैं। फिर क्या था? उन के हृदय में क्रोधाग्नि धधकने लगी। क्रोध एक ऐसी वस्तु है कि उस से आक्रान्त हो जाने पर मनुष्य को फिर भला बुरा कुछ नहीं दीखता। उस के वश हो जाने से मनुष्य अधम से अधम काम कर बैठता है। चाचा मेरा ने सहायता के लिये पँवार महपा को, जो चूंडा सीसोदिया का पक्षवाला था, अपने शामिल लेकर सलाह की कि किसी प्रकार महाराणा मोकलजी को मार देना चाहिये। ये तीनों उस कुकर्म में सहमत हो गये। जैसे चाचा मेरा ने महिपा पँवार को अपने पक्षे में ले लिया था, वैसे डोडिया मलेसी को भी, जो महाराणा मोकलजी के सदा सर्वदा समीप में रहता था, अपने शामिल करना चाहा। और उस को अपने शामिल करने के लिये उन्होंने यहां तक प्रयत्न किया कि वे उस के घर पर गये, और उस को अनेक प्रकार का लोभ दिखाया, परन्तु वह किसी प्रकार उन के सम्मिलित नहीं हुआ। राव रणमल्लजी को जासूसों द्वारा इस बात की ख़बर मिल गई थी इसलिये उन्होंने महाराणा मोकलजी को इस बात से सचेत भी कर दिया था कि चाचा मेरा आप पर घात करेंगे, आप सावधान रहना। फिर रणमल्लजी तो अपने देश मारवाड़ चले गये थे।

महाराणा मोकलजी की बहिन, जिस का नाम लाल बाई था, गागुरण के अधिपति खीची अचलदासजी को व्याही थी। राजपूताने में विवाह के समय यह रीति है कि जिस समय कन्या दान किया जाता है उस समय कन्या का दाहिना हाथ वर के दाहिने हाथ में पकडा दिया जाता है। उसे 'हथलेवा जोड़ना' कहते हैं। फिर जब तक विवाह की रीति रश्म होकर समाप्ति होती है तब तक उसी तरह दूल्हा दुलहन के हाथ परस्पर पकडे हुए रहते हैं। विवाह विधि के

अन्त में वर के हाथ से कन्या का हाथ छुड़ाया जाता है उस को 'हथलेवा छोड़ना' कहते हैं। राजपूतों मे यह रीति है कि हथलेवा छोड़ने के समय वर जो कुछ मांगता है श्रद्धानुसार वर को दिया जाता है। उस रीत्यनुसार अचलदासजी से कहा गया तो उन्होंने अन्य कुछ भी वस्तु न मांग कर यह याचना की कि मुझ में कभी विपत् पड़े उस समय आप मुझे सहायता प्रदान करें। महाराणा ने स्वीकार किया। फिर जब गागुरण पर मुसलमानों ने आक्रमण किया तब उन्होने याचनानुसार प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये महाराणा मोकलजी के पास अपने पुत्र को भेज कर कहलाया। महाराणा मोकलजी 'प्राण जाहिं वरु वचन न जाहिं' के अनुसार सेना ले उन की सहायतार्थ गागुरण को चले। महाराणा का डेरा मदारिया गांव में था। कोई लिखता है वाघोरिया गांव में था, वहां अवसर देख कर चाचा मेरा ने सेवा करते हुए महाराणा मोकलजी को मार डाला। उस समय महाराणा के पास हाडी रानी और डोडिया मलैसी के अतिरिक्त दूसरा कोई नही था। चाचा मेरा एकदम महाराणा के समीप आने लगे, उस समय महाराणा ने मलेसी से कहा कि ये यहां क्यों आते हैं? तो मलेसी ने महाराणा से कहा कि पहले ही रणमल्लजी ने आप को कह दिया था कि आप इन से सचेत रहना। और मैं भी इन की कुत्सित दृष्टि को देख चुका था, परन्तु आप का उस ओर ध्यान न देख कर अर्ज़ नही कर सका। अब तो आप अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस प्रकार महाराणा और मलेसी परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, इतने में चाचा, मेरा अपने सझे हुए राजपूतों के साथ टूट पड़े। बड़ी लड़ाई हुई। वहां महाराणा के हाथ से ६, हाडीराणी के हाथ से ५ और डोडिया मलेसी के हाथ से ५, कुल १६ राजपूत मारे गये। परन्तु महाराणा भी इस युद्ध में बच न सके। चाचा और महिपा कुछ जखमी हुए। ये लोग तो महाराणा के साथ उनके पुत्र कुंभा का भी काम तमाम करना चाहते थे, परन्तु राजपूतो ने उन को बचा लिया।

मुहणोत नैणसी लिखता है कि कुंभा वहां से भाग कर एक पटेल के घर पर आया। उस पटेल के यहां दो घोड़ियां थी। कुंभा ने पटेल से घोड़ी मांगी तो पटेल ने कहा कि घोड़ी तैयार है, परन्तु आप ऐसा करें। एक घोड़ी पर तो आप सवार हो जाइये, और एक को काट डालिये। नही तो पीछे शत्रु आवेंगे, यह घोड़ी उन के हाथ पड़ गई तो शत्रु आप को पहुंच जायँगे। कुंभा ने वैसा ही किया। घोड़ी पर सवार हो कुंभा सीधा पहाड़ों में होता हुआ चीतोड़ चला गया। पीछे

से शत्रु-सेना आई। उस ने पटेल से पूछा कि कुंभा कहां है? तो पटेल ने कहा कि मेरे यहां दो घोड़ियों थीं उन मे से एक पर सवार हो कर चला गया। तव उन्होंने दूसरी घोड़ी तलाश की। क्योंकि उन के घोड़े थक गये थे। देखते हैं तो घोड़ी कटी हुई पडी है। तव शत्रु-सेना निराश हो पीछे लौट गई। चाचा राणा वन गया। और पँवार महपा उस का प्रधान हुआ।

कुंभा ने चीतोड़ में जाकर राव रणमल्लजी के पास अपना मनुष्य भेज कर कहलाया कि यहां तो आप के कहने पर ध्यान न रखने से यह दशा हुई है। अव आप कुछ कर सके तो सहायता करें। उस समय राव रणमल्लजी नागोर में थे। उन को अपने भानजे मोकलजी का सदा वहुत ही अधिक ध्यान रहा करता था। एक दिन राव रणमल्लजी ने अपने सरदारों से कहा कि आज कल चीतोड़ के समाचार नहीं आये। क्या वात है? रणमल्लजी इस ध्यान में थे: इतने में कुंभाजी का पत्र लेकर चीतौड़ से एक मनुष्य आया। उस ने पत्र देकर कहा कि महाराज! मोकलजी मारे गये। मोकलजी को मार कर चाचा मेवाड़ का मालिक वन गया है। फिर आपने कुंभा का पत्र पढ़ा। उस में भी वही वृत्तान्त लिखा हुआ था। रणमल्लजी अपने भानजे की मृत्यु के समाचार पढ़ कर अत्यन्त शोकाकुल हुए। फिर स्नान कर जलाञ्जलि दे कर कहा कि मेरा जीना जगत् में तभी सफल है, जव मैं शत्रु को मार कर वैर का वदला लूं। तदनन्तर सिर से पगड़ी उतार पोतिया वांध कर कहा कि मैं पगड़ी तभी वांधूंगा कि जव शत्रु का समूल उन्मूल करुंगा। फिर रणमल्लजी अपनी राठौड़ सेना को सज्ज कर मेवाड को चले। रणमल्लजी का ताप उन से कव सहा जा सकता था? रणमल्लजी के आने के समाचार सुनते ही उन का गला सूख गया, और भाग कर पई के पहाड़ों में चले गये। जहां उन्होंने अपने निवास के लिये किला वनाया था। जिसे राताकोट कहते हैं। रणमल्लजी ने वालक कुंभा को चीतौड़ के राजसिंहासन पर विठलाया। फिर वहां से जाकर उन पहाड़ों को घेरा जहां चाचा व मेरा चले गये थे। रावजी ने जाते ही उस पहाड़ के सव रास्ते रोक दिये। रणमल्लजी को शत्रु-संहार का उद्योग करते छः महीने हो गये हैं परतु पहाड़ों में कुछ दाव नहीं लगता है। रणमल्लजी वडे विचार में पड़े हुए हैं, इतने में अकस्मात् एक मेर आया, जिसे रणमल्लजी ने वहां से निकाल दिया था। उस ने आकर रणमल्लजी से कहा कि 'यदि मेरे नाम दीवान का परवाना हो जावे तो मैं आप को पहाड़ पर जाने का मार्ग वतला सकता हूं।' रणमल्लजी और क्या चाहते थे? उन्हें तो इसी वात की अपेक्षा थी। रावजी ने तुरंत उस मेर को महाराणा

की ओर से परवाना कर दिया। तब मेर ने रावजी से कहा कि आप एक मास और ठहर जाइये। सिंहनी के बच्चा हुआ है, जिस से अभी मार्ग वन्द है। नैणसी इसी प्रसंग को इस प्रकार लिखता हैं।" पई के पहाड़ों में उरली तर्फ एक भील रहता था। उस के पिता को राव रणमल्लजी ने मार दिया था। इस लिये चाचा सदा उस का पक्ष किया करता था। एक दिन रणमल्लजी इकल्ले घोड़े पर चढ़ कर शत्रु की शोध में निकले थे। दैव-वश उसी भील के घर पर जा पहुँचे, भील तो उस समय घर मे नही था। उस की माता थी। रणमल्लजो 'वहन' ऐसा संवोधन कर के उस के पास जा वैठे। भीलणी ने कहा 'वीरा! तुम ने हमारे साथ वहुत वुरा वर्ताव किया है. परन्तु तुम घर पर चले आये हो; अव क्या? अस्तु। अव आप घर मे आ जाइये और सो जाइये। उस के कथन से रणमल्लजी घर में जा कर सो रहे। थोड़ी देर मे पाँचों भाई भील आये। माता को भोजन के लिये कहा। माता ने भोजन की तैयारी करी। उस समय भीलों की माता ने अपने पुत्रो को पूछा कि "यदि इस समय राठौड रणमल्ल यहां चला आवे तो तुम क्या करो? तव भीलों ने यह कहा कि और क्या करे? उसे मारें।" तव भीलणी के वड़े बेटे ने कहा कि "यदि रणमल्ल घर पर आ जाय तो हम उसे नही मारें।" तव माता ने कहा कि शावास! धन्य है तू। शत्रु घर पर आ जाय तो उसे कभी न मारना चाहिये। फिर रणमल्लजी को आवाज़ दी। वीरा! आव। तव रणमल्लजी वाहिर आये। भीलो से मिले। भीलों ने उनका अत्यन्त आदर सत्कार किया, और यथोचित सेवा की। फिर भीलों ने रणमल्लजी से कहा कि आप यहां मरने के लिये क्यों आये हैं? तव रणमल्लजो ने कहा कि मैने प्रतिज्ञा की है कि मै अन्न तव खाऊँगा जव चाचा, मेरा को मार लूंगा। तव भीलों ने कहा कि अव हम आप को कुछ नही कह सकते। रणमल्लजी वहां से पीछे अपने डेरे पर आये और सेना लेकर पई पहाड़ के नीचे ठहरे। तव भीलो ने कहा कि पई के पहाड में एक सिहनी है, वह मनुष्यो को देख कर गर्जना करेगी, जिस से शत्रु सावधान हो जायँगे। आप कुछ विलम्ब करें, हम उपाय सोचेंगे। परन्तु रणमल्लजी को अत्यन्त त्वरा लग रही थी। पहाड मे एक पगडंडी हो कर चढ़े। पीछे उन की सेना चली। जब सिहनी के स्थान के समीप पहुंचे तव सिंहनी ने शब्द किया। रावजी ने अपने पुत्र अड़माल को आज्ञा दी कि मार्ग साफ करो। अड़माल ने जाते ही तलवार के एक ही प्रहार से सिंहनी के दो टूक कर दिये। इतने में ऊपर के शत्रुओं ने परस्पर कहा कि सावधान हो जाना चाहिये। सुनते हो, सिंहनी गर्जना करती है। परन्तु सिहनी एक ही वेर वोली थी, दूसरी वेर तो अड़माल ने उसे वोलने ही नही दिया। जिस से शत्रु ओं को विश्वास

हो गया था कि कोई जानवर उस के पास चला गया है जिस से बोल उठी है। इतने में रणमल्लजी घोड़ों को नीचे रख कर स्वयं पहाड के ऊपर चढ़े और सीधे दरवाजे पर गये। दरवाजे के बरछी का प्रहार किया। तब उन लोगों ने कहा कि यह बरछी तो रणमल्लजी की हो जैसा प्रहार प्रतीत होता है। फिर ज्ञात हुआ कि स्वयं रणमल्लजी ही है। वहां चाचा, मेरा से युद्ध हुआ उस में वे दोनों मारे गये। और महपा पँवार स्त्री के वस्त्र पहन कोट कूद कर निकल गया। वह वहाँ से भागा हुआ मांडू के बादशाह के पास पहुँचा; जहां मोकलजी का बडा भाई चूंडा गया था। रणमल्लजी शत्रु को मार चीतोड़ आये। चीतोड़ का स्वामी महाराणा कुंभा बालक था इसलिये मेवाड़ का प्रबन्ध राव रणमल्लजी को करना पडा। महाराणा मोकलजी की मृत्यु सवत् १४९० में होना मेवाड़ के इतिहास में लिखा है। वह यथार्थ है। क्योंकि महाराणा कुंभा का शिलालेख[1] संवत् १४९१ का देलवाड़ा मे मिल गया है।

दूसरी ख्याति पुस्तक में यह वृत्तान्त इस भांति लिखा है:-'महाराणा मोकलजी के निकट पँवार महपा प्रधान था। उस के और चाचा, मेरा के परस्पर प्रीति थी। चाचा, मेरा और महपा इन तीनों ने सहमत होकर महाराणा मोकलजी और कुमार कुंभा को मारने का विचार किया। इन के परस्पर यह सलाह हुई कि महाराणा को महाराजकुमार सहित शिकार के मिस ले जाकर मार दिया जाय। तब चाचा मेरा ने कहा कि बहुत अच्छा . हम पिता पुत्र दोनों को शिकार ले जाते हैं; वहीं एक तालाब खोदा जाता है; तालाब में एक लाखोटा (मिट्टी का पहाड सा ऊँचा टीला होता है उसे लाखोटा कहते हैं) है. उस पर हम दोनों पिता पुत्र को बिठलाते हैं तब महपा ने कहा कि जब दीवान और महाराजकुमार लाखोटे पर बैठ कर इधर उधर देखने लगें, और उन का मन उस में आसक्त हो जाय, तब मैं नक्कारा बजा दूंगा आप नक्कारे का शब्द सुनते ही आकर अपना काम कर लेना। यह सलाह ठहरी। दूसरे दिन महपा ने महाराणा से निवेदन किया कि लाखोटा तालाब की खुदाई होती है, वहां शकरों की अच्छी शिकार है। आज आप पधारें तालाब भी देख आवें और शिकार भी करते आवें। दीवान तैयार हो गये। दीवान के साथ कुमार कुंभा भी चला। दीवान और कुमार दोनों तालाब देखने चले। बहुत से राजपूतों को शिकार की सुविधा के लिये चारों ओर बिठा दिया। दीवान पुत्र सहित लाखोटे पर चढ बैठे। इतने में महपा ने घोडे पर का नक्कारा बजवाया। नक्कारे का शब्द सुनते ही चाचा व मेरा

---

[1] जो भावनगर आनन्द प्रिंटिंग प्रेस में छपा हुआ 'देवकुल पाटक' पुस्तक, शिलालेख नं २६।

१००-२०० सावरों से महाराणा की तर्फ चले। महाराणा ने लाखोटे की तर्फ सवार दौड़ते आते देख कर महपा को कहा यह क्या बात है? कौन आते है? इन का आना भयंकर प्रतीत होता है। तब महपा ने कहा कि भय की कौन सी बात है? शिकारी हों जैसा प्रतीत होता है। इतने में तो सवार निकट आ पहुंचे। तब कुंभा तो घोड़े पर सवार हो १०-१५ सवारों से भाग कर चीतोड़ चला गया। चाचा, मेरा ने तुरंत ही मोकलजी को घेर कर मार लिया। मोकलजी को मार कर कुंभा के पीछे गये परन्तु कुंभा तो चीतोड़ पहुंच कर किले के दरवाजे बंद कर बैठ गया था। घड़ी एक पीछे चाचा मेरा आये, सब सेना एकत्र की, चीतौड़ को घेरा; मेवाड़ पर अपना अधिकार कर लिया। राजकीय कोष जहां जहां था। सब मँगवा लिया। मेवाड़ के स्वामी बन गये। कुमार कुंभा गढ़ में बैठा है, अत्यन्त चिन्ताग्रस्त है, उस समय कुंभा ने पत्र लिख कर रणमल्लजी के पास एक ओठी [उष्ट्रारोही शुतर सवार] भेजा। रावजी नागोर के महल के झरोखे में बैठे बाहिर का दृश्य देख रहे थे। देखते है तो एक ओठी दौड़ता हुआ चला आता है; उसे देखते ही रावजी के मन में खटका पड़ा, मोकल का कुशल नही। इतने में ओठी आ उपस्थित हुआ। रावजी ने पूछा कुशल है? तब उसने कहा, कुशल कहां? पँवार महपा की सलाह से चाचा, मेरा ने महाराणा मोकल को मार दिया है। कुंभा चीतौड़ में है। चाचा मेरा ने उन को घेर रखा है। वे दरवाजे बन्द किये अन्दर बैठे है। कुमार कुंभा ने कहा है हमारी सहायता शीघ्र करिये। आप की मदद से हमारा उद्धार होगा। यह सुन रावजी अत्यन्त शोकाकुल हुए। कहा 'हम तो पहले ही जानते थे' ये दुष्ट है, कुछ न कुछ कर बैठेंगे। दीवान को भी हम ने कह दिया था। परन्तु उन्हों ने परवाह नही की। अस्तु, अब शत्रु को मार कर पगडी बाँधेगे, यह प्रतिज्ञा कर मण्डोवर से सेना ले सोझत आये, वहां से फिर सेना ले चीतोड़ गये। चाचा मेरा को खबर लगी कि रणमल्लजी आ गये है तब वे चीतोड छोड़ कर छपन के पहाड़ो मे पई के पहाड़ मे चले गये। रावजी चीतोड़ की ओर अपनी सारी सेना ले कर छपन के पहाड़ो में गये; वहां दो सिंहनी प्रसूता थी उन्हें मार चाचा मेरा को मारा। फिर सीसोदियों के मस्तकों की वेह व्यनाय, बरछियों की चँवरियां कर, धडों के पट्टे बना कर सीसोदियों की तरुण कारी कन्याओ को अपने बन्धु राठौडो को व्याहा। चाचा, मेरा ने राजकीय खजानो से जो द्रव्य मंगा लिया था, वह ले कर रणमल्लजी ने पीछे चित्तौड़ में आ, कुंभा को गद्दी बिठा कर राज्य का प्रवन्ध किया। और दुष्टों को दण्ड दिया।

टॉड साहिब यह वृत्तान्त दूसरी तरह लिखते है—'कुंभा ने घोर

संकट में पड कर मारवाड के राजपुत्र से सहायता मांगी थी। राठौड राजा दुराचारियो का दमन करने के लिये सेना ले कर आया, उस ने अपनी और मेवाड की सेना लेकर उन दुष्टों को घेरा तव वे भाग कर पई के पहाडों में चले गये। चाचा, मेरा ने वहीं पर अपने निवास के लिये एक किला वना रखा था, जिसे रातोकोट कहते हैं। उदयपुर के चारो ओर जो विशाल गिरिव्रज गोलाकार से विराजमान हैं, उस के शिखर पर रातोकोट का टूटा फूटा भाग आज तक भी दिखाई देता है। रातोकोट मे जाकर वे दुष्ट निर्भय रहने लगे। और पाप पर पाप करने लगे। उन्हीं पापो से उन का सत्यानाश हुआ। सूजा नामक एक चौहान की अनूठा कन्या को पकड कर ये दोनों वलात्कार उस दुर्ग में ले आये थे। सूजा वदला लेने के लिये मजदूरों के साथ गुप्त रीति से रातोकोट में गया। और वहां के जाने आने के समस्त मार्ग देख आया था। वह अपना प्रचराड क्रोध शान्त करने के लिये अपने राजा के पास आ रहा था, इतने मे राव रणमल्लजी और कुंभाजी दृष्टिगोचर हुए। उस की आशा लहराने लगीं। दोनों हाथों से मुंह को ढक कर रोने लगा। और अपने वंश की कलङ्क कहानी महाराज से स्पष्ट कह डाली। उस की कहानी सुन कर सब का हृदय क्रोध से भर गया। उस रातोकोट से थोडी ही दूरी पर केलवाडा नाम ग्राम है। सेना ने दिन का समय वहीं व्यतीत किया। रात्रि के होते ही सैनिक रातोकोट के किले की ओर चले, और सावधानी से किले पर चढने का विचार करने लगे। शीघ्र ही पर्वत पर लवी लंवी कीलें ठोकी जाने लगीं। उन का और वृक्षों की शाखाओं का सहारा ले लेकर वीरगण ऊपर चढने लगे। रात्रि घोर अधियारी है, तथापि कुछ टिमटिमाते हुये तारागण के प्रकाश में क्रोध और उत्साह के साथ एक दूसरे के अंगरखे का सहारा पा ऊपर चढ़े। शत्रु का वदला लेने के लिये सूजा अत्यन्त मतवाला और उतावला हो गया था। इस लिये वह मार्ग दिखाता हुआ सव के आगे चलता था। सूजा जव पर्वत के ऊँचे स्थान पर चढ गया था, तव किरण की दो तीव्र रेखाओं ने उस की दृष्टि को अपनी ओर खींचा। उस ने चकित हो ध्यान से देखा तो ज्ञात हो गया कि एक वाघिनी के प्रकाशमान नेत्रों से वे किरणें सी निकल रही थीं। सूजा घवराया और अपने निकट खडे हुये राजकुमार को इशारे से वह वाघिनी दिखा कर पीछे हटने लगा। राजकुमार ने उस के भय का कारण देख कर तत्काल उस वाघिनी को तलवार से मार डाला। राजपूत लोग ऐसी वातों का होना शकुन समझते हैं। इस शकुन के होने से दूना उत्साह वढा। धीरे धीरे समस्त वीरगण रातोकोट के शिखर पर पहुँच गये। कोई वीर तो दुर्ग की भीत पर चढ गया था और कोई चढ रहा था कि इतने में

ही सब से आगे चढ़े हुये भाट का पांव फिसलने से वह भीत के नीचे गिरा। गिरते ही उस का ढोल बज उठा। उस शब्द से चाचा की बेटी, जो कि सो रही थी, जग उठी। कन्या को फिर सुलाने के लिये चाचा ने कहा 'क्यो, क्या डर है ? किस का भय है ? केवल ईश्वर का भय कर के सुख से सोओ। भादों मास का मेघ गर्ज रहा है। साथ मे वर्षा भी हो रही है। इसी कारण से ऐसा शब्द होता है। और कुछ भी नहीं है। हमारे शत्रु इस समय केलवाड़े मे हैं, उन की कोई चिन्ता नहीं।' चाचा इस प्रकार कह रहा था कि किले मे महाकोलाहल होने लगा। राठौड़ और सीसोदिया वीरगण किले में जाकर महा भयंकर सिंहनाद करने लगे। उस सिंहनाद को सुन कर चाचा का हृदय कम्पायमान होने लगा। वह बिस्तर से शीघ्रता पूर्वक उठा और शस्त्र लेकर बाहिर आया ही चाहता था कि इतने में चन्दानह सरदार ने उसे घेर लिया और दो टुकड़े कर डाला। भाई को गिरता हुआ देख कर मेरा भागना चाहता था परन्तु राठौड़ राजकुमार ने उस को भी पकड़ कर ज़मीन पर गिरा दिया। इस प्रकार उन दोनो पापियो को उन के पाप का फल प्राणदण्ड दिया गया। राठौड़ और सीसोदिये धन रत्न लेकर जयध्वनि करते हुए अपने स्थान को गये।'

ऊपर के वृत्तान्त में टॉड साहिब मारवाड़ का राजकुमार लिखते है परन्तु राजकुमार नहीं, राव रणमल्लजी ने पई के पहाड़ो में जा कर चाचा मेरा को मारा था। राजकुमार उन के साथ मे अवश्य थे।

और कर्नल टॉड साहिब का लेख यह है—"मालवा और गुजरात के नवाबों ने मेवाड़ पर चढ़ाई की तो महाराणा कुंभा एक लाख घोड़े व पैदल और १४०० चौदह सौ हाथी लेकर साम्हने गए। महाघोर संग्राम हुआ। अंत में महाराणा कुंभा मालवी बादशाह महमूदखिलजी को बांध कर चीतौड़ में ले आये।"

और तुहफ़ए राजस्थान नामक पुस्तक में भी ऐसा ही लिखा है। उस में यह लेख है—"इन महाराणा (कुंभा) के वक्त मे गुजराज व मालवे के हाकिमो से, जो खुद मुख्तार बादशाह कहलाने लगे, अक्सर लड़ाइयां रही है। बाज देशी किताबो में लिखा है कि संवत्[1] १४९६

[1] तुहफ़ए राजस्थान का कर्ता संवत् १४९६ में महमूद खिलजी की कैद करने की घटना होना लिखता है परन्तु कविराजा श्यामलदास रणमलजी का महमूद खिलजी को क़ैद करना लिखता है यथा—"महमूद खिलजी को क़ैद करने से रणमल का अख़्तियार दिनोदिन बढ़ता ही गया" और रणमलजी संवत् १४९५ में मारे गए थे तब महमूद खिलजी को क़ैद करने की घटना संवत् १४९५ से पूर्व ही होनी चाहिए। संवत् १४९६ मे फिर कुंभा के और महमूद खिलजी के दूसरी लड़ाई हुई हो।

में महमूद मालवी कुंभा के मुक़ाविले पर किसी जगह शिकस्त खा क
भागा था इसी की यादगार में किये चित्तौड़ पर बड़ा कीर्तिस्त
याने सितून नामवरी वनाया गया जो अव तक दुरुस्त क़ायम है।

और उक्त वार्ता की पुष्टि करता हुआ गाडण शाखा का चार
पसायन, जो रणमल्लजी और जोधाजी के समकालीन था, जिस
रणमल्लजी और जोधाजी के विषय मे कविता लिखी है, अपनी कवित
मे इस तरह लिखता है—

दोहा।

"मालव राव विगोवियौ, खिलचौं खेत चड़ेह।
रिणमल हूं ढोवा रचै, ढिल्ली पाटण वेह ॥ १ ॥"

भावार्थ—राव रणमल्लजी ने चढ़ाई कर के आये हुए मालवे
राव (वादशाह) खिलजी (महमूद) को रणांगण में पराजित क
के बुरा दिखाया जिस से दिल्ली और पाटण (गुजरात) के दो
वादशाह रणमल्लजी के ऊपर धावे करने लगे।

और शिलालेखों में भी महमूद खिलजी की मृत्यु नहीं, कि
पराजित होना लिखा है। कुंभलगढ़ के वि० सं० १५१७ के शिलाले
में इस विषय के ये श्लोक हैं—

"महामदो युक्ततरो न वैष,
स्वस्वामि घातेन धनार्जनस्ते।
इतीव सारङ्गपुरं विलोड्य,
महम्मद त्याजितवान्महम्म (हाम) दम् ॥ २६६ ॥"

भावार्थ—महमूद पर आक्षेप है कि तूने अपने स्वामी२ (मोहम्म
गोरी) को मार कर धन उपार्जन किया है इसलिए तुझे इतना म
(अभिमान) रखना उचित नहीं है। मानों इसी कारण महाराण
ने सारंगपुर को विलोड़न करते महम्मद (महमूद) के महामद क
छुडा दिया है।

मोहम्मद (महमूद) को सारंगपुर में पराजित करके यहां यवन
की असख्य स्त्रियों को पकड़ कर वंदी किया था यह भी उसी शिला
लेख से जाना जाता है।

---

२. महमूद खिलजी से प्रथम मालवे का वादशाह होशंग गोरी था। वह हि सन् ८३८
(वि० सं० १४९१) में मर गया तव उस का पुत्र मोहम्मद गोरी हि. सन् ८३८
(वि० सं० १४९१) में गद्दी वैठा। वह एक वर्ष भी राज्य करने न पाया था कि
प्रस्तुत महमूद खिलजी ने, जो होशंग का भानजा था, मद्य में विष दिलवा कर
उसे मार डाला और स्वयं वादशाह हो गया। वह प्रथम उस का वज़ीर था।

राव रणमल्लजी ने चाचा, मेरा को मार, चीतोड़ में आ कर वहां के राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। क्योंकि महाराणा कुंभाजी की अवस्था उस समय अल्प थी। जो राजद्रोही थे उन को दंडित कर के सीधा बनाया। जो देश में रहने योग्य नही थे उन को देश से बाहिर निकाल दिया। जो सरल स्वभाव वाले थे उन की ख़ातिर की गई। और जो राजभक्त थे उन को आदर सत्कार पूर्वक अधिकारों पर नियत करके संतुष्ट किया। अब मेवाड़ का राज्य सर्व प्रकार से शांतिमय हो गया है, किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है। महाराणा कुंभाजी सुख से राज्य करते हैं, राजा प्रजा दोनों सुखी हैं।

लिख आए हैं कि पँवार महपा स्त्री का वेष धारण करके पई के पहाड़ से निकल गया था। वह वहां से भाग कर मालवे के बादशाह के पास गया, जहां सीसोदिया चूंडा था। चूंडा और महपा का तंत्र एक था। चूडा ने बादशाह के पास शिफ़ारिस करके महपा को वहां नौकर करा दिया।

राव रणमल्लजी को ख़बर लगी कि पँवार महपा मांडू गया है और वहां नौकर हो गया है। रावजी ने महाराणा कुंभाजी से कहा कि महाराणा मोकलजी की मृत्यु का मुख्य कारण महपा है, उसी की सलाह से यह कुकर्म हुआ है इसलिये उसे अवश्य दंड देना चाहिए। और वह अभी मांडू में है इसलिए मांडू पर चढ़ाई करनी चाहिए। इस चढ़ाई से अपने को दो लाभ हैं। एक तो हत्यारे महपा को दंड मिल जायगा। दूसरा अपने निसर्ग वैरी महमूद को पराजित करने से उस का गर्व गंजन होवेगा। महाराणा ने रावजी का कथन मान कर मांडू पर चढ़ाई की।

उस समय मालवे का बादशाह महमूद खिलजी था। जो अपने मामा होशंग के पुत्र मोहम्मद गोरी को मार कर मालवे का बादशाह हुआ था। नैणसी लिखता है कि महाराणा और राव रणमल्लजी ने मांडू को घेरा और बादशाह को कहलाया कि हमारा अपराधी तुम्हारे पास है उसे हमें दे दो, नहीं तो युद्ध करो। तब बादशाह ने महपा से कहा कि महपा! अब तुम हमारे पास मांडू मे नहीं रह सकते। तब महपा ने बादशाह से विनय पूर्वक निवेदन किया कि मुझ को आप बांध कर मत देना। बादशाह ने कहा कि तुम कहते हो तो तुम्हें हम उन के सुपुर्द नहीं करेंगे। तुम चले जाओ। तब महपा घोड़े पर सवार हो कर निकला। दरवाजे के समीप आया तब घोड़े सहित कोट को कूद गया। घोड़ा तो पडते ही मर गया और महपा वहां से भाग कर गुजरात के बादशाह के पास चला गया।

महाराणा और रावरणमल्लजी देश को लूटते हुए सारंगपुर में आए। वहां इन्होने लूटपाट करनी शुरू की। यह सुन महमूद अपनी सेना लेकर सारगपुर में आया। दोनो मे संग्राम हुआ उस मे महमूद की पराजय और महाराणा की विजय हुई। नैणसी तो रणमल्लजी और महमूद की लडाई में महमूद का मारा जाना लिखता है। और मूंदियाड ठिकाने की ख्याति मे ऊहड मेडे के हाथ से महमूद की मृत्यु होना लिखा है। परन्तु अन्य प्रमाणो से महमूद की मृत्यु नही, किन्तु पराजित होना पाया जाता है।

कर्नल टॉड साहिब और उदयपुर के कविराजा श्यामलदास महाराणा कुंभा का मालवे के बादशाह महमूद खिलजी को क़ैद करना लिखते हैं। कविराजा श्यामलदास ने अपने इतिहास वीर-विनोद में लिखा है कि "चाचा, मेरा को मारने और महमूद को क़ैद करने से रणमल्ल का अख़्तियार दिनोंदिन बढ़ता ही गया।"

त्यक्त्वा दीना दीनदीनाधिनाथा
दीना बद्धा येन सारङ्गपुर्याम्।
येषा. प्रौढाः पारसीकाधिपानां
ताः सख्यातु नैव शक्नोति कोऽपि ॥ २६८ ॥"

भावार्थ—जिस (महाराणा कुंभा) ने सारंगपुर में यवनों के अधिपतियों की इतनी तरुण स्त्रियो को पकड कर कैद किया कि जिन की सख्या नहीं हो सकती। परन्तु जो स्त्रियां दीन थीं, और जिन के स्वामी दीन थे उन को नहीं पकडा ॥

इस वर्णन में अतिशयोक्ति अवश्य दीख पडती है परन्तु यवनो की स्त्रियां पकडी गईं उस में कुछ भी सदेह नहीं। और वह पुर जला दिया गया था यह भी उसी में लिखा मिलता है। उस में लिखा है कि मदोन्मत्त मालवे के स्वामी के मस्तक पर पैर रख कर पुर के लोको के साथ महाराणा कुंभा ने सारंगपुर को जला दिया था—

माद्यन्मालवनाथमूर्ध्नि चरणं दत्त्वा रणेऽदीदह-
च्छ्रीसारङ्गपुरं सपौरनिकरं कुम्भो धराधीश्वरः ॥ ५४ ॥"

इन प्रमाणों से जाना जाता है कि महमूद खिलजी मालवी के और महाराणा कुंभाजी के युद्ध हुआ था। और कविराजा श्यामलदास के लेख से प्रकट होता है कि उस युद्ध में राव रणमल्लजी सेनापति थे। और उन्होंने ही उसे पकडा था। और कर्नल टॉड साहिब ने उस में इतना विशेष लिखा है कि महाराणा कुंभा मालवी बादशाह महमूद खिलजी को बांध कर चीतोड़ में ले आए। उक्त दोनों लेखक महमूद खिलजी को कैद करना लिखते हैं। उन मे से टॉड साहिब तो केवल

महाराणा कुंभा का ही नाम लिखते हैं । परन्तु कविराजा श्यामलदास जो महाराणा सज्जनसिंहजी का मुख्य मंत्री था, रणमल्लजी का नाम बतलाता है कि "महमूद को कैद करने से रणमल्ल का अखियार दिनोदिन बढ़ता ही गया" । दोनों का लिखना युक्तियुक्त और संभावित है । उस समय मेवाड के मालिक महाराणा कुंभाजी थे । उन की उस समय बाल अवस्था होने से मेवाड़ का सब प्रबन्ध राव रणमल्लजी के हस्तगत था । और सेनानायक भी वे ही थे जिस से स्पष्ट है कि महमूद खिलजी को राव रणमल्लजी ने ही परास्त किया था । परन्तु महाराणा मालिक थे । जय पराजय मालिक की ही गिनी जाती है जिस से टॉड साहिब ने महाराणा का महमूद को पकड़ना लिख दिया है । और कविराजा श्यामलदास ने जैसा हुआ था वैसा लिखा है ।

पारसी इतिहास पुस्तकों में इस विषय का कहीं भी उल्लेख तक नहीं किया गया है । इतिहास पुस्तकों से यह प्रकट है कि महाराणा कुंभा जी के और महमूद खिलजी मालवी के परस्पर झगड़ा चलता ही रहता था । उस को उक्त लेखकों ने कहीं लिखा भी है तो पक्षपात करके लिखा है । तारीख फरिस्ता के लेखक ने उक्त युद्ध की चर्चा बिलकुल नहीं की है जो राव रणमल्लजी के समय में हुआ था । किन्तु उस के अनंतर हि० सन् ८४६ (वि० सं० १४९९) मे महाराणा कुंभाजी और महमूद खिलजी के जो युद्ध हुआ था वह वृत्तांत लिखा है । किन्तु जिस युद्ध मे महमूद खिलजी राव रणमल्लजी और कुंभाजी से सारंगपुर में पराजित हुआ था उस वृत्तांत को छोड़ दिया है ।

महमूद खिलजी मालवा में दो हुए है । एक तो महाराणा कुंभाजी के समकालीन जिस को मेवाड का इतिहास राव रणमल्लजी के हाथ से पकडा जाना बतलाता है । और दूसरा महाराणा सांगा के समकालीन , जिस को महाराणा सांगा ने पकड़ कर कैद किया था । और फिर अपनी हिन्दु जाति की उदारता दिखलाते हुए हजार १००० सवार साथ मे देकर उसे अमन से मांडू को पहुंचा दिया था । यह महमूद खिलजी प्रथम महमूद से चौथा पुरुष था । फरिस्ता के लेखक ने केवल महाराणा सांगा के समकालीन द्वितीय महमूद का ही पकड़ा जाना लिखा है परन्तु मेवाड़ का इतिहास महाराणा कुंभा के समकालीन प्रथम महमूद का रणमल्लजी के हाथ पकड़ा जाना कहता है । और उस समय के शिलालेख उक्त महमूद की पराजय लिखते हुए उस की पुष्टि करते है । परन्तु पारसी पुस्तकों मे इस का उल्लेख नहीं है । प्राय. पारसी पुस्तकों मे देखा जाता है कि हिन्दुओं के उत्कर्ष की बातें बहुधा छोड़ दी जाती है ।

महाराणा कुंभाजी की अवस्था अल्प होने से राज्य का प्रबन्ध सब राव रणमल्लजी के हाथ में है । उन के प्रबन्ध से मेवाड़ राज्य का

प्रभाव प्रतिदिन बढ़ा जा रहा है। गुजरात और मालवा के बादशाह मन में जलते हैं परन्तु रणमल्लजी के अगाड़ी उन का कुछ वश नहीं चलता है। और सीसोदिया लोग भी मन ही मन कुढ़ते हैं परन्तु रणमल्लजी के अगाड़ी वे भी कुछ कर नहीं सकते। उन के मन में द्वेषानल भभक रहा है जिस से सीसोदिया चूँडा का भाई राघवदेव महाराणा कुंभा के राज्य में उपद्रव करने लगा। उस का कारण कोई तो यह कहते हैं कि रणमल्लजी ने धरछियों की चँवरियें बना कर सीसोदियों की कन्याएँ राठौड़ों को व्याही थीं। और महाराणा कुंभा ने उन्हीं को अपना प्रधान नियत किया जिस से वह क्रुद्ध हो कर उपद्रव करने लगा। कोई कहते हैं कि उसे उस के भाई चूँडा का इशारा था। दोनों कारण बन सकते हैं। उस के उपद्रव करने पर महाराणा ने उसे अपने दरवार में बुलाया। वह उद्धतता के कारण दरवार में आस्तीनें चढ़ाये आया। उसे देख कर उस की उद्धतता के कारण महाराणा ने उसे वहीं मार डाला। उस का एक हाथ तो महाराणा ने पकड़ा और एक हाथ राव रणमल्लजी ने पकड़ा और कटारी से उस का काम तमाम कर दिया। उक्त वृत्तांत मूहणोत नैणसी ने लिखा है।

कर्नल टॉड साहिब राघवदेव का मारा जाना अन्य प्रकार से लिखते हैं। वे कहते हैं कि राघवदेव को केलवाडा और कोवाड़िया ये दो गांव जागीर में मिले थे। परन्तु उन का निवास केलवाडा में ही हुआ करता था। एक समय रणमल्लजी ने उन के पास सिरोपाव (सन्मान सूचक पहरावा) भेजा। पहरावा प्राप्त करते ही राजपूत लोग पहर लिया करते हैं। यह उन में एक विशेष शिष्टाचार समझा जाता है। राघवदेव जैसे ही उस पहरावे को धारण कर रहे थे कि वैसे ही उस दुराचारी के गुप्तचर ने उन को छुरी से मार डाला। इस गुप्त घातक को रणमल्ल ने ही भेजा था। राघवदेव अत्यन्त धर्मपरायण और साहसी युवा पुरुष था। उन की मृत्यु से सर्व मेवाड निवासियों को अत्यन्त शोक हुआ। मृत्यु के पीछे वे देव सन्मान को प्राप्त हो कर पितृदेवताओं में गिने गए। ये पूजनीय माने जाते हैं। और वर्ष में दो वेर बड़ी धूमधाम से मेवाड़ में उन की पूजा होती है।

कह आए हैं कि महपा पंवार को मांडू से निकाल दिया तब वह इधर उधर भटकता चीतोड़ में आया। महपा के एक पुत्र था। उस की माता को महपा ने दुहाग दे रखा था। परन्तु जब वह उस दशा में चीतोड़ में आया तब उस को उसी के यहां आश्रय लेना पड़ा। महपा घर में बैठा रहता है और सूत की मोहरी आदि वस्तु बट कर तैयार करता है। राजपूत लोग मोहरी आदि वस्तु बट कर अत्यंत ही उत्तम

बनाते थे उन के हाथ की जैसी उत्तम होती थी; बाजार में मूल्य से नहीं मिल सकती थी, महपा ने एक मोहरी तैयार करके अपने पुत्र को देकर कहा कि यह मोहरी ले जा कर महाराणा के नज़र कर आव, यदि तुझ को पूछें कि महपा कहां है ? तो कह देना कि यहीं है, महपा का पुत्र मोहरी ले कर दरबार में गया, मोहरी नज़र करी, तब महाराणा ने मोहरी को पहचान कर उस से पूछा कि महपा कहां है ? तब उस ने निवेदन किया कि महाराज ! यहीं है, चरणों का दर्शन करना चाहता है। महाराणा ने आज्ञा दी, महपा दीवान के दरबार में उपस्थित हुआ, एक दिन एकांत का अवसर देख कर महापा ने महाराणा से निवेदन किया कि महाराज ! आप निःशंक बैठे हैं; आप को आगे पीछे का ध्यान नहीं है, मैं देखता हूं तो मालुम होता है कि मेवाड़ की भूमि राठौड़ों ने ले ली। आज आप इस भूमि को अपनी समझते हैं; परन्तु कल राठौडों की हो जायगी। यह सुन कर महाराणा के मन में भय उत्पन्न हुआ, मन में शंका हुई कि कहीं राठौड़ मुझे मार कर राज्य न छीन लें।

उधर तो महपा ने महाराणा के मन में शंका उत्पन्न कर दी थी; इधर चाचा के पुत्र आका ने उस शंका को अवसर पा कर पुष्ट कर दिया, एक दिन आका महाराणा के पैर दाब रहा था, उसने ऐसा बनाव बनाया कि आँखों से आंसू बहाने लगा, नेत्रों से बह कर गर्म गर्म अश्रुबिंदु महाराणा के पैरों पर पड़े, महाराणा एकदम जागृत हुए, उठ कर देखते हैं तो आका के नेत्रों से अश्रु बह रहे हैं, आका को रुदन करता देख कर महाराणा ने आकर से पूछा कि रुदन क्यों करता है ? तब आका ने कहा कि महाराज ! क्या कहूँ मेवाड़ की भूमि सीसोदियों से गई, राठौड़ों ने ली। जिस का दुःख आता है। तब महाराणा ने कहा कि आका ! रणमल्लजी को मार सकते हो ? तब आका ने कहा कि महाराणा की मदद हो तो मार सकते हैं। तब महाराणा ने आज्ञा की कि अच्छा, रणमल्लजी को मारो, महाराणा सदा अब इस विचार में रहते हैं, एक दिन राव रणमल्लजी तलहटी गये थे वहां अपने समस्त बंधुवर्ग राजपूत और भृत्यजन से मिले। जब सब के साथ मिलना हो चुका उस समय रावजी के डूम ने रावजी से निवेदन किया कि एक दो दिन में दीवांण की ओर से आप पर घात होने वाली है, आप सावधान रहिये, जोधाजी को तलहटी में ही रखिये। आप गढ़ पर रहते हैं तो रहिये, आप की इच्छा, परन्तु कुमारों को तो आप तलहटी में ही रक्खें। रावजी बड़े वीर पुरुष थे, उन को डर किस का था ? जो भय मानैं वो उन का मानै, वे किस का मानैं ? रावजी गढ़ पर गये, और कुमारों को तलहटी मे ही रहने दिया।

एक दिन महाराणा कुंभा ने राव रणमल्लजी से कहा कि आज कल जोधाजी को नहीं देखते हैं, कहां है? तब रावजी ने कहा कि वह तलहटी में है, घोडों को चराता है। महाराणा ने कहा उन को ऊपर बुलाना चाहिये, तब रावजी ने कहा, बुला लिया जायगा। फिर रणमल्लजी ने जोधाजी को अपने अंतरंग मनुष्य के साथ कहला भेजा कि, हम किसी समय तुम को ऊपर आने के लिये कहला भी दें तब भी तुम ऊपर मत आना, महाराणा के कहने पर रावजी ने जोधाजी को गढ़ पर आने का एकाध वेर कहलाया भी, परन्तु जोधाजी नहीं गये।

एक दिन महाराणा कुंभा, पवार महपा और सीसोदिया आका चाचावत इन्होंने मिल कर सलाह की कि रणमल्लजी को मारना चाहिये, परन्तु यह हिम्मत किस को थी कि कोई उन के साम्हने जावे, तब उन्होंने विचार करके यह निश्चय किया कि रात्रि में सोते हुए को मार देना चाहिये, कुंभाजी ने जिस रात्रि को मारने का निश्चय किया था वह रात्रि आई, कर्नल टॉड साहिब लिखते हैं कि वह अँधियारी अमावास्या की रात्रि थी कुंभाजी उस रात्रि की राह देख ही रहे थे, रात्रि होने पर उन का चित्त डावांडोल हो गया, अधीरता के कारण वे महल से बाहिर जाते हैं, फिर अंदर आते हैं, उन का चित्त स्थिर नहीं है, उच्चाट सा लग रहा है। नैणसी लिखता है कि राणी ने महाराणा की यह दशा देख कर पूछा कि 'दीवानजी! आज क्या है? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप का किसी को मारने का विचार है। तब महाराणा ने कहा कि हां, तब राणी ने कहा कि 'कहीं आपने दुर्जनों के कहे रणमल्लजी को मारने का विचार तो नहीं किया है? तब महाराणा ने कहा कि हमने तो उन को मरवाने का ही प्रबंध किया है। तब राणी ने कहा कि आप ने यह क्या किया? जिन्होंने आप के पितृघाती दुष्टों को मार कर पिता के वैर का बदला लिया, जिन्ह ने आप को चीतोड के राजसिंहासन पर बिठाया, जिन्होंने नष्ट भ्रष्ट हुए मेवाड देश को पुनः समृद्ध किया, जिन्होंने आप के महा-बलवान शत्रुओं को पराजित करके आप के राज्य की रक्षा की, क्या उन उपकारों के बदले में आप उन को मरवाते हैं? रणमल्लजी ने आप का क्या बुरा किया है? यह सुन कर दीवान का हृदय संकुचित हुआ, और रानी के कहने से दासी को भेज कर महपा को कहलाया कि तुम को जिस काम के लिये कहा गया था वह मत करो। जल्दी एक वेर हमारे पास चले आओ। दासी ने महपा के पास जाकर कहा कि महाराणा आप को बुलाते हैं, और कहलाया है कि हमने कहा था वह काम मत करो, तब महपा ने विचार किया कि यदि रणमल्ल जीता रह गया तो हम सब मारे जायँगे। उस ने दासी को सुवर्ण की माला

देकर पीछे लौटा दिया, और कहा, महाराणा से अर्ज करो कि आप ने जिस काम के लिये फरमाया था वह हो चुका। दासी ने पीछे जाकर महाराणा से जैसा महपा ने कहा था कह दिया। तब महाराणा शांत हो बैठे महाराणा ने महपा और आका के साथ १७ घातक भेजे थे, उन्होंने गाढ़ निद्रा में शयन करते हुए राव रणमल्लजी पर आक्रमण किया, और जाते ही एक लबी रेजी की पछेवड़ी से बांध दिया, फिर एक साथ प्रहार किया। रणमल्लजी ने सोते हुए ही एक को तो कटारी से मार डाला, एक को लोटे से, और एक को लात से मार गिराया, परन्तु वे आदमी बहुत थे, शस्त्रों से रूझे हुए थे, और सावधान थे, रणमल्लजी असावधान और निरस्त्र थे तथापि तीन को मार गिराया और अन्य सब को घायल किया। वहां राठौड रणधीर चूंडावत, भाटी सत्रुसाल लूणकरणोत और रणधीर सूजावत ये भी लड़ कर मारे गये। और भी बहुत से मनुष्य मारे गये जो गढ़ मे थे, महाराणा कुंभाजी ने रणमल्लजी के उपकारो का स्मरण न रखकर जो कर्म किया उस विषय का नैणसी की ख्यात मे यह कवित्त है :—

"जे¹ वरतावी आंण वेहू सिंघां वीचालै,
हिन्दू अनै हमीर मीर जे लुलिया भालै।
जे भग्गो पेरोज खेत्र जैत्राई खेड़ै,
जे मारे महमद गंज मारे संभेड़ै।
रिणमल्ल राव विसरांमियै कूंभा की मन विकसै,
छलियौ छद्म्म तै कूड़ कर जेम सीह आगै ससै॥"

यह दुर्घटना संवत् १४९५ में महाराणा कुंभा के समय में हुई थी। जिस का होना टॉड साहिब महाराणा मोकलजी के समय मे लिखते है और मेवाड का प्रवन्ध करने के कारण उन पर अनेक दोषारोपण करते है। वे सब भ्रमपूर्ण है।

टॉड साहिब ने रणमल्लजी का वृत्तान्त सुना सुनाया लिख दिया है। उस में बहुत सा अंश सत्य नहीं है, प्रथम तो रणमल्लजी का बध महाराणा मोकलजी के समय मे लिखा गया है, वह सुतरां असत्य है, क्योंकि मोकलजी को मारने वाले चाचा मेरा को रणमल्लजी ने मारा

जिस (रणमल्ल) ने दोनों सिंहों के बीच मे (मोकलजी की) आज्ञा प्रवृत्त की, जिस को हिन्दू और मुसलमान अमीर नम्र होकर देखते है, जिस ने जैत्राई गांव के युद्ध मे फीरोज को भगा दिया था, जिस ने महम्मद को युद्ध में जुट कर मारा था, उस राव रणमल्ल के मारने से हे कुंभा! तू मन मे क्यो प्रफुल्लित होता है? तू ने कपट करके छल से उसे मारा है, जैसे पहले ससा ने सिंह को कपट से मारा था।

था . देखो नैणसी की ख्यात, उस में लिखा है कि मोकलजी मारे गये तब रणमल्लजी ने नागोर से जाकर चाचा मेरा को मार कर कुंभा को गद्दी बिठाया था। दूसरा, मारवाड़ के जितने इतिहास ग्रन्थ हैं सब महाराणा कुंभाजी के समय में रणमल्लजी का वध होना लिखते हैं। तीसरा केवल मारवाड़ के इतिहास ग्रन्थ ही नहीं, मेवाड़ के इतिहास ग्रन्थ तुहफए राजस्थान में भी रणमल्लजी का वध होना संवत् १५०० में लिखा है। (पृ० १६६) "संवत् १५०० मुताबिक सन् १४४४ ई० में चूंडा ने आते ही एक बार रात के वक्त किले पर दखल कर लिया। तब रणमल नशे की हालत में कई दुश्मनों को मार कर कत्ल हुआ।" संवत् १५०० में मोकलजी नहीं थे मोकलजी का स्वर्गवास सं० १४९० में ही हो गया था। उस समय महाराणा कुंभा थे, महाराणा कुंभा के शिलालेख सं० १५०० से पूर्व के चार मिल चुके हैं। सं० १४९१, १४९२, १४९४ और १४९६ चौथा वार्डिक कविता में भी जो रणमल्लजी के समकालीन पसाइत कवि की कृति है, रणमल्लजी के हाथ चाचा मेरा का मारा जाना लिखा है :—

"मोकल मुआरी ख़बर आयांरा कवित्त। पसाइत कहे :—

कवित्त।

"हिन्दूकार तिलक सत्र सुरिनांणां मोटां
गाहट्टण गिरवगां ढोअ पल्लट्टण कोटां।
पायार बंध ऊधरि सलिल कुल इकोतरि तारियौ
रिणमल्ल ऊठ चूंडा गुरू मोकल चाचे मारियौ।
जे स चडे आकास ताम ओपास उतारूं
जे पैसे पायाल काढि पायालां मारूं।
जेथे जाई तेथ जाइ खित खेलूं साचौ॥

"आप नागोर पधारिया, उठै एक दिन बैठा छै. राव रिणमलजी बोलिया, ठाकुरे ! चीतोड रा समाचार आज काल न आवै, कासूं छै ? यु करतां एक दिन आदमी आयो, कागद दीयो नै कह्यौ 'मोकल मारियो। ताहरां रावजी बोलिया, कह्यौ रे मोकल मारियो. पछै कागल वाचाया, रिणमलजी मोकल नुं पांणी दीयो। नै आप चीतोड नुं मतो कीयो, ताहरां २१ सोपान (जीना) हुता, पावड़ साणे २ ऊभा रहनै कह्यौ भाई ! मोकल रो वैर लिये पछै काई बात करस्यां ; सीसोदियां री बी कस्यां हुं वैर मैं रा ठवडां नु परणाऊँ तो हूँ रिणमल." चाचो मेरो मारिया. बीजा ही सीसोदिया घणा मारिया.—रिणमलजी कुंभै नुं टीको दीयो. बीजा ही जिके सीसोदिया फिरिया हुंता तियांनु मार देस मांहि सुं काढि सावल कीया. रिणमल कूंभैनु धरती साझ दीनी. कुंभो सुख सैं राज करै छै।

कुंभाजी के भेजे हुए दूतों का रणमल्लजी प्रति यह वाक्य है. हे हिन्दुओं के तिलक ! बादशाहों के बड़े शत्रु ! पर्वतों को चूर्ण करने वाले ! आक्रमण करके

जाये किम जीवतो अती आंगारी साचौ ।
बावन्न वीर वीरम्महर कोप ज जुध मंडै कया
मालवै वीर मोकल तणा रिड़मल लई प्रतगया ॥

दूसरा यह लिखते हैं कि राघवदेव को मारने के समाचार सुन कर राजमाता की शंका दृढ़ हो गई, परन्तु राघवदेव भी राणा कुंभा के समय में मारे गये थे। नैणसी लिखता है कि राघवदेव[1] कुंभाजी के राज्य में बिगाड़ करने लगा तब कुंभाजी ने उन को मारने का विचार किया। राघवदेव दरबार में आ रहा था उस समय उस की एक बांहु महाराणा कुंभाजी ने पकड़ी, तब दूसरी भुजा राव रणमल्लजी ने पकड़ी, और उसे कटारी भोंक कर मार डाला, नैणसी के लेखानुसार दरबार मे उसे मारने का कारण यह पाया जाता है कि आधी आस्तीन उघाड़े हाथ दरबार में आना अपमान सूचक होने से अपराध समझा जा कर उसी बहाने वह मारा गया था।

तीसरा लिखते है कि रणमल्ल ने अपनी कन्या की दासी से बलात्कार किया था, यदि टॉड साहिब के लेखानुसार क्षण भर मान

क़िलों को जीतनेवाले! पाताल में से पानी निकालने वाले! इकहत्तर कुल को तारनेवाले! चूंडा के पुत्र रणमल्ल! उठ चाचा ने मोकल को मार डाला है। इस के उत्तर मे मोकलजी के लिये रणमल्लजी ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि शत्रु आकाश में चढ़ जाय तो वहां से नीचे उतारू, जो पाताल मे प्रविष्ट हो जाय तो पाताल से निकाल कर मारू। वह जहां जाय वही जा कर पृथ्वी में सच्ची क्रीड़ा करू। वह महाअपराधी जीता कैसे जा सकता है ? वीरम के वंशज रणमल्ल के कोप करने पर क्या बावन वीर भी युद्ध कर सकते हैं ? मल्लिनाथजी के वीर रणमल्लजी ने मोकल के लिये ऐसी प्रतिज्ञा की।

[1] राणो कुंभो मोकलोत चीतौड़ राज करै नै राघवदे धरती मांहे क्युं उजाड़ बिगाड़ करै, तरै कुंभै राघवदे नुं मारणो तेवड़ियो पछै एक दिन राघवदे दरबार मांहे आवतो थो, पैहरण नु आंगी हुती, तिण री बांह ढीली हुती सु आधी काढी थी, तरै आपनै एक बांह राणै कुंभै पकड़ी नै एक पाखती राव रिणमल पकड़ी नै दोनां बगलां राघवदे रै कटारी लगाई सूं राघवदे कटारी लागतां आप री कटारी दांतां सु काढी तरै इणां बांह छोड़ दी। तरै ओ जलेबखाना नु नीसरियौ। इणां हाथ छोड़ दीया, जांणियो, कटारी सबली लागी छै आपे हेठो पड़सी, नै तितरै प्रोल रै बारणै आयौ तरै एकण रजपूत झटका री दीनी सु माथो तूट पड़ियौ"। (हस्तलिखित पुस्तक पत्र १५ पृष्ठ २)

भी लिया जाय तो भी वह रणमल्लजी की बेटी[1] की दासी नहीं, किन्तु रणमल्लजी की बहिन की दासी कहना चाहिये. क्योंकि मोकलजी की माता रणमल्लजी की बहिन थी· यह पहले लिख आये हैं।

चौथा, दासी कह कर फिर उसी के विषय में अबला का सतीत्व नष्ट करना लिखना परस्पर विरुद्ध है। क्योंकि दासिएँ राजा लोगों के सामान्यभोग्या होती है। जो टॉड साहिब के खुद के लेख से सिद्ध होता है। उन का यह लेख है कि "रणमल्ल को पापाचार का बदला लेने के लिए वह अवसर ढूंढ रही थी। आज वह अवसर आप से आप आ गया' इस लेख से स्पष्ट प्रकट होता है कि रणमल्लजी के साथ उस दासी का अर्से से संबंध था जो 'आज' शब्द से प्रकट होता है कि इतने दिन उस को अवसर नहीं मिला. आज मिला। वास्तव में यह वार्ता कल्पित है । क्योंकि नैणसी लिखता है कि रणमलजी महाराणा कुंभाजी के महल के द्वार पर उन के प्राण त्राण के लिए सोया करते थे। वहां दासी के समागम का संभव ही कैसा ? और मूहणोत नैणसी के लेखानुसार एक दासी का रणमल्लजी के समीपवर्ती महपा के पास जाना अवश्य पाया जाता है· परन्तु वह मोकलजी की माता की दासी नहीं. किन्तु कुंभाजी की रानी की दासी थी, जो महपा पंवार के पास रणमल्लजी के वध का प्रतिषेध करने को भेजी गई थी। नैणसी का लेख इस प्रकार है "महाराणा कुंभा ने अपनी रानी की दासी को महपा के पास समाचार कहलाने को भेजा था कि रणमल्लजी की हत्या मत करो।"

टॉड साहिब ने रणमल्लजी के विषय में जो कुछ लिखा है सब मनघड़ंत है, रणमल्लजी का वध होना मारवाड़ के इतिहास के लेखानुसार संवत् १४९५ में, और मेवाड के इतिहास के लेखानुसार संवत् १५०० में कहा जा सकता है, शिलालेखों के अनुकूल शोध करने से सिद्ध होता है कि उन का वध संवत् १४९५ में ही हुआ था, उस समय महाराणा कुंभाजी तरुण थे, इस की पुष्टि इस से होती है कि संवत् १४९६ से प्रथम वे मंडोर, अजमेर, बूंदी, सारंगपुर, नागोर आदि विजय कर चुके थे. इस से स्पष्टतया जाना जाता है कि रणमल्लजी के वध समय में कुंभाजी युवा थे, और राज्य कार्य का निर्भर उन्हीं पर था उस दशा में राज्यकार्य का मोकलजी की माता के हाथ में होना सर्वथा असंभव जान पड़ता है. जब राज्यकार्य से उस

---

[1] टॉड साहिब ने बेटी भूल से लिखा है वह बहिन थी, हांस बाई उस का नाम था, राव चूंडाजी की कन्या थी, हांस बाई और रणमल्लजी समातृक थे, इसी से वह रणमल्लजी के अंतःपुर के साथ ही रहती थी।

के कुछ संबंध नहीं था, तब बूढ़ी धात्री का मेवाड़ के राज्य के विषय में उस से निवेदन करना कि रणमल्ल मोकल को मार कर मेवाड़ का राज्य लेना चाहता है किसी प्रकार से नहीं संभवता, क्योंकि मोकल संवत् १४९५ मे था ही नहीं, वह तो उस से पांच वर्ष पहले ही मर चुका था, इस से भी बढ कर एक और लीजिये, वे लिखते हैं कि मोकल की माता ने चूंडा को मांडू से बुलाया, वह ४० सवार ले कर मांडू से आया, और मोकल का राजोचित सन्मान कर रणमल्ल को मारने चला, परन्तु संवत् १४९५ में मोकल कहां था? जिस का राजोचित सन्मान किया गया। विचारने की बात है, संवत् १४९५ में कहां बालक मोकल, जिस को गोद में ले कर रणमल्ल चीतौड़ के राजसिंहासन पर बैठे। कहां उस की माता, जिस के मन में इस बात की चिंता हुई कि उस का पिता रणमल मोकल को मार कर मेवाड़ का राज्य लेना चाहता है। कहां राघवदेव, जिस को रणमल्ल के मार देने से राजमाता की शंका दृढ हुई, कहां बूढ़ी धात्री, जिस ने मोकल की माता को सचेत किया, कहां चूंडा का रणमल्ल को मार कर बालक मोकल को गद्दी बिठाना, सब कल्पना ही कल्पना, जिस में सत्यता का अंश भी नही, परन्तु जहां पक्षपात होता है वहां सब कुछ कहा जा सकता है, कर्नल टॉड साहिब इतना लिख कर ही संतुष्ट नहीं हुए कि रणमल्ल ने मोकल को मार कर मेवाड़ का राज्य लेना चाहा। किन्तु उन पर यह दोष भी लगाना चाहा कि अपनी बेटी की दासी से बलात्कार किया, परन्तु उन्होंने इस बात को लिखते इस पर ध्यान नहीं दिया कि संवत् १४९५ में कुंभाजी की दादी की दासी बुढ़िया होनी चाहिये।

अब मेवाड़ के इतिहास में लिखे हुए संवत् १५०० के रणमल्लजी के वध संबन्धी संवत् का विचार करना है। मारवाड़ राज्य के अंतर्गत गोडवाड़ परगना के गांव सादड़ी के समीपवर्ती राणपुर के जैन मंदिर में महाराणा कुंभाजी का संवत् १४९६ का शिलालेख[1] है, उस में महाराणा कुंभा के वर्णन में यह लिखा है कि "महाराणा मोकलजी (संख्या ४०) के कुल में सिंहरूप और सर्व भूमिवालो के चक्रवर्ती राणा कुंभकर्ण ने अत्यन्त विकट और न टूटने वाले जो सारङ्गपुर (मालवे मे) नागोर (मारवाड़ में)—गागरण (खीचीवाड़े में)—नराणा (जैपुर

"श्री मोकल महीपति ४० कुलकानन पञ्चाननस्य विषमतराभङ्गसारङ्गपुर-नागपुर-गागरण नराण का-जयमेरु-मण्डोर-मण्डलकर-बुन्दी-खाटू (टू) चाटसूजा-नाऽऽदिनानामहादुर्गलीलामात्रग्रहण प्रमाणितजितकाशित्वाभिमानस्य—राणा श्री कुम्भकर्ण सर्वोर्वीपति सार्वभौमस्य विजयमानराज्ये"।

राज्य मे)—अजमेर मण्डोर (मारवाड में)—माण्डल (मेवाड में)—बूंदी-खाटू (मारवाड़ नागोर परगने में) चाटसू (जैपुर राज्य मे) और जाना (   ) आदि अनेक बडे २ किले लीला मात्र से ही ले लिये थे और उसी से उन को विजयीपन का अभिमान सदा बना रहता था उन के विजय राज्य मे इसमे कुंभाजी का मंडोर जीत कर ले लेना लिखा है, और यह शिलालेख सवत् १४९६ का है , जिस से जाना जाता है कि महाराणा कुंभा ने सवत् १४९६ से पूर्व मंडोर राठौडों से छीन लिया था। परन्तु यह भी विचारणीय है कि राव रणमल्लजी की वियमानता में महाराणा कुंभा का मडोर लेना सर्वथा नही संभवता, क्योंकि राव रणमल्लजी महाराणा कुंभा की अध्यक्षता में मेवाड के हर्ता धर्ता थे। यही तो सीसोदियों को सहन नही होता था, तव उन्होंने महपा और चाचा के पुत्र आका को अग्रणी करके महाराणा को वहका कर रणमल्लजी को कपट से मरवा डाला। जब रणमल्लजी मारे गये तव सीसोदिया चुंडा महाराणा की आज्ञा ले कर मडोवर पर आया, और उस ने मडोर पर महाराणा की आज्ञा प्रवृत्त की। संवत् १४९६ के उक्त शिलालेख में महाराणा कुंभाजी का मंडोर ले लेना लिखा हुआ है, तो इस से जाना जाता है कि सवत् १४९६ से पूर्व राव रणमल्लजी का वध हो चुका था। जैसा कि मारवाड के इतिहास ग्रंथों में स० १४९५ में लिखा है। यदि सवत् १४९६ मे रणमल्लजी वियमान होते तो महाराणा मडोवर किसी तरह नही ले सकते थे। क्योंकि रणमल्लजी ने अपना समग्र जीवन मेवाड में ही व्यतीत किया था। जव रणमल्लजी सवत् १४९५ मे मारे गये ; महाराणा की सेना राठौड़ों के पीछे गई उस ने जा कर मडोर ले लिया , इसी से संवत् १४९६ के शिलालेख में मंडोर नागार और खाटू का लेना लिखा है , ये तीनों किले रणमल्लजी के अधिकार में थे , रणमल्लजी के मरने पर महाराणा ने ले लिये। किसी ख्याति में सवत् १५०० में उक्त घटना का होना लिखा है , परन्तु वह विश्वास योग्य नहीं, शिलालेख ख्याति की अपेक्षा अधिक आदरणीय है।

राणाजी ने राव रणमल्लजी का शव दग्ध करने के लिये प्रतिषेध कर दिया था कि कोई इन की दाहक्रिया नही करे। शव को वैसे ही पडा रहने दिया। तव गांव सूराचंद (परगना जालोर में) के खिडिया शाखा के चारण लखु के पुत्र चानण ने, जिस को मेवाड में वहुत कुछ जागीर मिली थी, राणाजी के कोप की अवहेलना करके रणमल्लजी के शव का अग्नि संस्कार किया और उन के अस्थि ले जा कर गंगाजी में प्रविष्ट किये। तदनन्तर वह मेवाड़ में नहीं गया , इस सेवा से सतुष्ट हो कर राव जोधाजी ने मण्डोवर हस्तगत होने पर उसे संवत् १५१७ में सोभत परगने का गांव सांवडा शासन दिया, जो

ठिकाणा खेरवा से २ कोस पर है। कहा जाता है कि बारहठ दूदा का पुत्र अमरा भी उस के शामिल था, उस को संवत् १५१६ में गांव पथाणिया दिया गया था। रात्रि का समय था, गढ़ के द्वार बन्द थे, जोधाजी को इस दुर्घटना के समाचार एक दासी ने गढ़ की बुर्ज पर खड़ी हो कर चिल्ला कर कह सुनाया[1]। उस ने कहा "जोधा तेरा रणमल्ल मारा गया है, भाग सकै तो भाग।" जोधाजी को इस दुर्घटना के समाचार विदित होते ही वे वहीं पिता के वैर का बदला लेने का विचार कर लड़ने को तैयार हुए, तब राठौड़ भीम के पुत्र वरजांग, ईंदा राजसिंह के पुत्र पीथा और भाई पाताजी ने जोधाजी से कहा कि अपने निकट केवल ७०० मनुष्य हैं, इस बल से चीतौड़ पर हल्ला करना सर्वथा निष्फल है। केवल निष्फल ही नहीं, किन्तु हानिकारक है। इस समय तो आपन को जैसे तैसे यहां से निकल कर मारवाड़ को चल देना चाहिये। यह बड़ा विकट समय है, मनुष्य को परिणामदर्शी होना चाहिये। जोधाजी ने उन का कथन मान लिया। चलने की तैयारी हुई, सब जागृत हो अपने अपने शस्त्र ले घोड़ों पर सवार होने लगे। देखते हैं तो चचा भीमजी नहीं। जिज्ञासा करने पर ज्ञात हुआ कि वे तो मदिरा के नशे के विवश हो सोये पड़े हैं। उन को जगाने का बहुत कुछ यत्न किया गया, परन्तु सब निष्फल हुआ। अन्त में भीमजी को वहीं निद्रा में छोड़ कर सब के सब वहाँ से निकले।

जोधाजी चीतौड़ से रवाना हो कर चीतरोड़ी पहुंचे होंगे, जो चीतोड़ के निकट ही है, इतने में सीसोदिया चूंडाजी तीन चार हज़ार सवार ले कर आ पहुंचे। उस समय जोधाजी के सरदारो व भाइयों ने जोधाजी से कहा कि आप इस समय यहां से निकल जॉय, हम यहां डटे रहेंगे और शत्रुओं को रोकेंगे; आप जीते रहेंगे तो सब कुछ हो सकेगा। वैर का बदला लिया जा सकेगा, अन्यथा राठौड़ो का सर्व नाश हो जायगा। बुद्धिमानी इसी मे है कि देश हाथ से न जाय और बदला भी ले लिया जाय। वह आप के जीवित रहने से ही हो सकेगा। इस लिये आप को निकल जाना ही उचित है। जोधाजी ने बहुत हठ किया, परन्तु दूरदर्शी सरदारो ने उन को बलात्कार पूर्वक वहां से निकाल दिया, वे सात सवारो से सोझत आये। सोझत मे रणमल्लजो का अन्तःपुर था, जोधाजी के जाते ही रणमल्लजी की हत्या के कुसमाचार ज्ञात हो गये। नगर में सन्नाटा छा गया। लोक अवाक् हो गये। रणमल्लजी की रानियों ने प्राणप्रिय पति का परलोकवास सुनते ही इस लोक को त्याग कर पतिलोक प्रयाण को अपना कर्तव्य

---

१. वह दासी जोधाजी के एक मनुष्य से प्रेम रखती थी।

समझ कर जोधाजी से कहा कि अब हम एक क्षण भर भी इस असार संसार में रहना नहीं चाहतीं, हमारे लिये तुरंत चिता की तैयारी कराई जाय। जोधाजी ने मातृस्नेह से उन को कुछ निवेदन भी किया, परन्तु सतीत्व के प्रबल प्रताप के आगे जोधाजी क्या कर सकते थे, उन को माताओं की आज्ञा मान कर अपने मनुष्यों को चिता के लिये आज्ञा देनी पड़ी। चिता तैयार हो जाने पर नव ९ नारियों ने अपने इस समल शरीर को अग्नि में प्रज्वलित कर नवीन निर्मल देह को देवलोक में पाया। जोधाजी वहां से अपने साथ चल सकै वैसी वस्तु और घोड़े ऊंट आदि सवारी और राजपूतों को ले कर चले। प्रथम मडोवर मे जाने का विचार किया था, परन्तु वहां पीछे से शत्रुओं के आगमन की सम्भावना करके मडोवर के निकट हो कर थल में गांव काहूनी में चले गये। वहां जाने का कारण यह था कि वह भूमि कुछ इन के राज्य के अतर्गत होने से वहां पर इन का अधिकार वना हुआ था, दूसरा उस प्रान्त में उन का भाटियों और सांखलों के साथ सम्बन्ध था, तीसरा उन का ननिहार भी उसी प्रदेश में था। इस के सिवा अन्य कारण यह भी था कि उस प्रदेश में जल नही है, केवल रेतीला जंगल है, इसलिये शत्रु अधिक सेना ले कर उधर की तर्फ़ जा नही सकते थे। बहुधा ऐसी विषम दशावाले पुरुष विपत् के दिनो में वैसे जगल का, जहां सिवा वालू के अन्य कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता, शरण लेते है, जोधाजी इन्हीं कारणों से उस प्रदेश में गये।

राव रणमल्लजी का शरीर वड़ा प्रचड था जैसा शरीर प्रचंड था वैसे ही उन में वल, वीर्य, पराक्रम साहस, धैर्य आदि गुण थे। वहादुरी का तो उन को आदर्श ही कहना चाहिये, इन रावजी ने पिता को प्रसन्न रखने के लिये उन की आज्ञा से मारवाड़ का राज्य त्याग कर अपने छोटे भाई कान्हा को दे दिया था जब आप महाराणा लाखाजी के पास चीतौड गये तव आप ने वहां रह कर महाराणा लाखाजी का इतना वडा उपकार किया कि अजमेर मुसलमानों से छीन कर महाराणा के अधीन किया। और लाखाजी के अनन्तर उन के पुत्र महाराणा मोकलजी के शत्रु मुसलमानों को मार कर उन का राज्य अटल वना दिया। जब महाराणा मोकलजी को लाखाजी के पासवानिये पुत्र चाचा मेरा ने मार डाला तो, उन के घातक चाचा मेरा को मार कर उन के पुत्र महाराणा कुंभाजी को चीतौड के राजसिंहासन पर विठाया। कुंभाजी वालक थे इसलिये राज्य का कार्य सम्हाल नहीं सकते थे, तव आपने अपने पितृ परपरागत मारवाड़ के राज्य से अलग रह कर चीतोड़ में निवास करके महाराणा कुंभाजी के राज्य को दृढ किया। परन्तु उस का वदला रावजी को महाराणा-

की ओर से यह मिला कि रावजी के प्राण उसी उपकार के बदले में हरण किये गये और उन का राज्य छीन लिया गया।

रणमल्लजी के समय मे मेवाड़ में चीतौड़ पर तीन महाराणा हुए। उन के राज्याधिकार का समय टॉड साहिब तो यों लिखते हैं :—

महाराणा खेताजी अथवा क्षेत्रसिंह संवत्	१४२१–१४३९
„ लाखाजी	१४३९–१४५४
„ मोकलजी	१४५४–१४७५
„ कुंभाजी	१४७५–१५२५

परन्तु उन में से एक भी संवत् सही नहीं है।

महाराणा कुंभाजी के राज्याधिकार का समय संवत् १४९१ होना चाहिये, मेवाड़ का इतिहास मोकलजी का स्वर्गवास संवत् १४९० में कहता है, वह यथार्थ है। संवत् १४७५ नही। क्योंकि मोकलजी के शिलालेख दो मिले है। एक तो संवत् १४७८ का, जो देलवाड़े के जैन मन्दिर में है और दूसरा समाधीश्वर महादेव के मन्दिर में, जो संवत् १४८५ का है तो, संवत्१४९० में मोकलजी का स्वर्गवास हो सकता है। उस की पुष्टि इस से होती है कि महाराणा कुंभा का शिलालेख संवत् १४९१ का देलवाड़ा में मिल गया है।

महाराणा मोकलजी के राजगद्दी का समय संवत् १४७५ से १४७८ का मध्य होना चाहिये। महाराणा लाखाजी का ताम्रपत्र संवत् १४६२ का मिल है; उस का उल्लेख मेवाड़ के इतिहास 'तुहफए राजस्थान' पुस्तक के पृ० ६०-६२ में है। और दूसरा शिलालेख संवत् १४७५ का जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ प्रान्त में गांव कोट सोलंकिया में मिला है और लाखाजी के पिता खेता ने मुसलमानों का गर्वगञ्जन करने वाले गुजरात के राजा रणमल्ल[1] को कैद किया था। 'मुसलमानों का गर्वगञ्जन करने वाले, इस विशेषण से जाना जाता है कि मुसलमानों ने उस पर चढ़ाई पहले की थी, राणा खेता ने उसे कैद पीछे किया था। और रणमल्लजी पर मुजफ्फर की दूसरी चढ़ाई संवत् १४५५ में हुई थी जिसे स्पष्ट विदित होता है कि राणा खेताजी सवत् १४५५ तक बल्कि उस से कुछ पीछे तक विद्यमान थे। और लाखाजी का ताम्रपत्र संवत् १४६२ का मिला है जिस से राणा खेताजी के स्वर्गवास का समय सवत् १४५५ से १४६२ का मध्य होना चाहिये।

---

[1] वीर श्रीरणमल्ल मूर्जितशकक्ष्मापालगर्वान्तकं
स्फूर्ज्जद्दुर्गूर्ज्जरमण्डलेश्वरमसौ कारागृहेऽवीवसत्॥ १९३॥
कुम्भलगढ़ प्रशस्ति चतुर्थपट्टिका (अप्रकाशित)।

ये रावजी वड़े ही भाग्यशाली हुए। इस से बढ़कर भाग्यशालिता क्या होगी कि इन के २७ पुत्र हुए। और वे भी एक से एक बढकर। और उन से फिर शाखाओ का प्रसार हो कर वंश की वृद्धि दूर्वा की तरह विस्तार पाई।

राव रणमल्लजी के २७ पुत्रों से २८ शाखाओ का प्रसार हुआ। इतना शाखा प्रसार इस वश में अन्य किसी के वश में देखने में नही आता। उन का व्यौरा इस प्रकार है—

१ अखैराजी—इन से पांच शाखा फटी।

(अ) जैतावत—अखैराजजी के पुत्र पंचायणजी, उन के पुत्र जैताजी से जैतावत शाखा हुई। इन के बगडी आदि १३ ठिकाने है।

(आ) कूंपावत—अखैराजजी के पुत्र मेहराजजी, उन के पुत्र कूंपाजी से कूंपावत शाखा हुई। इन के आसोप, चडावल आदि ५४ ठिकाने हैं।

(इ) भदावत—अखैराजजी के पुत्र पंचायणजी, उन के पुत्र भदाजी से भदावत शाखा हुई। इन के भदावतों का गुडा आदि ४ ठिकाने हैं।

(ई) कलावत—अखैराजजी के पुत्र रावलजी, उन के पुत्र जोगीदासजी, उन के पुत्र कलाजी से कलावत शाखा हुई। इन के जारण आदि २ ठिकाने है।

(उ) राणावत—अखैराजजी के पुत्र राणाजी से राणावत शाखा हुई। इन का स्थान पालड़ी राणावतों की है।

२ जोधाजी—इन से जोधा शाखा हुई। इन के वंशज जोधपुर राज्य के महाराजा है। और इन के ठिकाने लाडणू, भाद्राजण आदि १५२ हैं।

३ कांधलजी—इन से कांधलोत शाखा हुई। इन का स्थान गांव लांवो जाटां है। ये बीकानेर राज्य में अधिक ह।

४ चांपोजी—इन से चांपावत शाखा हुई। इस की आईदानोत वीठलदासोत आदि ८ उपशाखा हैं। इन के ठिकाने पोकरण, आउवा आदि १०६ है।

५ लाखाजी—इन से लाखावत शाखा हुई। ये बीकानेर राज्य में हैं।

६ भाखरसी—इन के पुत्र बाला से बाला शाखा हुई। इन के ठिकाने नींबलाणा, मोकलसर आदि ४० हैं।

७ डूंगरसी—इन से डूंगरोत खांप फटी। पहले इन को भाद्राजण जागीर में मिला था। इस समय भाद्राजण में जोधा राठोड है।

८ जैतमालजी—इन के पुत्र भोजराज से भोजराजोत ने शाखा हुई। पहले इन की जागीर में गांव पालासणी था। पालासड़ी के तालाव पर जो जोगियों का आसन (स्थान) है वह भोजराज ने कराया था।

९ मंडलाजी—इन से मंडला शाखा हुई। इन के चोडां, भॅवराणी आदि ९ ठिकाने है। पहले मंडलाजी को जागीर में गांव सारूड़ा मिला था।

१० पाताजी—इन से पातावत शाखा हुई। इन के आऊ आदि ४१ ठिकाने है।

११ रूपाजी—इन से रूपावत शाखा चली। इन के ऊदट आदि ९ ठिकाने हैं।

१२ करणोजी—इन से करणोत शाखा फटी। इन के काणांणो, वाघावास आदि १८ ठिकाने हैं। पहले करणजी को जागीर मे गांव चवां मिला था।

१३ सांडाजी—इन से सांडा शाखा हुई।

१४ मांडणजी—इन से मांडणोत शाखा हुई। इन के अलाय आदि ७ ठिकाने है। पहले इन को जागीर मे गांव गुड़ो, मोगड़ो और भॅवर मिले थे।

१५ वणवीरजी—इन से वणवीरोत शाखा हुई।

१६—ऊदोजी—इन से ऊदावत शाखा हुई। इन के वशज बीकानेर राज्य के ऊदासर गांव मे हैं।

१७—इन से वैरावत शाखा फटी। पहले दूदोड इन का ठिकाना था।

१८—हापोजी—इन के वशज पिता के नाम से रिड़मलोत प्रसिद्ध हुए। कोई हापावत भी लिखता है।

१९ अडवालजी—इन से अडवालोत शाखा हुई। ये मेड़ते के गॉव आछीजाई में है।

२० जगमालजी—इन से दो शाखा चलीं।

(अ) जगमालजी से जगमालोत शाखा हुई।

(आ) जगमालजी के पुत्र खेतसी से खेतसीपोत शाखा हुई। ये गांव नेतड़ां में हैं।

२१ नाथोजी—इन से नाथोत शाखा हुई। इन्होंने बीकानेर राज्य में अपने नाम से गांव नाथूसर बसाया था।

२२ करमचंद—इन से करमचंदोत शाखा हुई। ये शीतला रोग से मरे।

२३ सीधोजी—इन के वंशज पिता के नाम से रिड़मलोत कहलाते है।

२४ तेजसी—इन से तेजसीपोत शाखा चली।

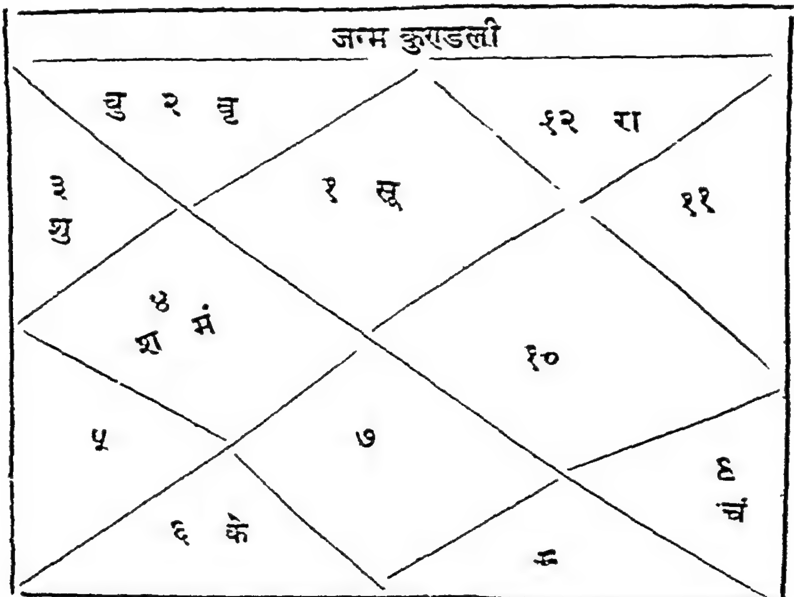
२५ सायरजी—ये गांव धणला के तालाब में डूब कर मरे। ऐसा माना जाता है कि ये पितर हुए।

२६ सगतोजी—

२७ गोयंदजी—बाल्यावस्था मे ओरी की बीमारी से इन की मृत्यु हुई।

राव जोधाजी—महाराव जोधाजी का जन्म विक्रम संवत् १४७२ वैशाख वदि ४ बुधवार राव रणमल्लजी की धर्मपत्नी भटियानी कोड़मदे के उदर से गाँव धड़ला में हुआ। उन की जन्मकुण्डली[1] नीचे दी जाती है:—

उस समय के किसी कवि का कहा हुआ दोहा का पूर्वार्द्ध इस प्रकार है :—



"धड़ले गुड्डी ऊछली, जनम्यौ जोधो राव।'

कर्नल टॉड साहिब संवत् १४८४ में उन का जन्म होना कहते हैं; परन्तु मारवाड की समस्त इतिहास पुस्तकों में संवत् १४७२ लिखा मिलता है वह सही है। क्योंकि संवत् १४८५ के आस पास रणमल्लजी ने सत्ताजी से मण्डोर लिया था उस समय के युद्ध में सत्ताजी के पुत्र नरबद के साथ जोधाजी का युद्ध करना लिखा मिलता है: जिस से जन्म संवत् १४८४ नहीं किन्तु १४७२ शुद्ध जाना जाता है।

महाराज कुमार ६-७ वर्ष के हुए तब उन की शिक्षा के लिये राव चूंडाजी के पुत्र भीमजी, भाटी लूणकर्ण के पुत्र शत्रुसालजी और ईंदा राजसिंह के पुत्र पृथ्वीराजजी नियत किये गये, जो राजपूतों की रीति रिवाज से पूर्ण परिचित और महाबुद्धिमान् थे। इन लोगों ने जोधाजी को पढाना और घोडे की सवारी सिखाना शुरू किया। कहावत है "पूत के पैर पलने में ही पहचान लिये जाते हैं"। जोधाजी बाल्यावस्था में ही उन के शरीर के सगठन और चतुरता के कारण करतूती वाले दिखलाई देने लगे जिस से उक्त संरक्षकों का ध्यान उन की ओर अत्यन्त ही अधिक था।

---

१. जन्मपत्री संग्रह के लेख की प्रतिलिपि-"संवत् १४७२ वैशाख वदि ४ बुधे घटी १। १० समये राव जोधाजी जन्म। रवि ०। ६ मूल प्रथम चरणे जन्म।"

जब जोधाजी की अवस्था ११ वर्ष की हुई तो उन के व्यवहार से स्पष्ट ज्ञात हो गया था कि उन की रुचि निकम्मे, झूठे, गप्पी, कुबुद्धि बालकों की ओर बिलकुल नही थी, वे हर समय उत्तम आचरण वाले अच्छे ढग के सुबुद्धि बालको के साथ बैठना, बातचीत करना और उन की सगति करना पसंद करते थे। यह स्वाभाविक धर्म है कि जिस की जैसी प्रकृति होती है उसे वैसे ही स्वभाव के मनुष्य आ मिलते हैं। और उन की संगति से बचपन मे जो सस्कार जम जाते हैं वे फिर दूर नही होते। कहा है—

"यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।

इसी लिये राव रणमल्लजी ने जोधाजी के पास वैसे ही सरक्षक छोड रक्खे थे कि जिन को सगति करने से किसी दुर्व्यसन का संसर्ग नहीं होवे। राजपूतो को उस समय लिखना पढ़ना भी सिखलाया जाता था परन्तु उस की अपेक्षा शस्त्रविद्या के अभ्यास पर अधिक ध्यान दिया जाता था। यद्यपि तादृश पुरुष का स्वभाव बहुधा तीक्ष्ण होता है, परतु इन का स्वभाव अत्यन्त सरल होने से इन की प्रकृति मे किसी प्रकार की उद्दण्डता, गर्व करना, चिढ़ना, झुंझलाना आदि कोई दोष नही था। तभी तो समस्त कर्मचारीगण, भाई बन्धु व संबन्धी आदि ने जोधाजी के साम्हने उन की प्रशंसा न कर के परस्पर मे कहा कि यह बालक होनहार है इस के लिये रावजी से अर्ज करना चाहिये। फिर सब ने एकमत होकर रावजी से प्रार्थना की कि महाराज! महाराजकुमार जोधाजी आप के ध्यान देने योग्य है। जब ये चौदह पन्द्रह वर्ष के हुए तब तो अठारह वर्ष के हों वैसे दिखाई देने लगे। राजपूतों में कहावत है।

"बारां बुद्ध नीपजे, सोलां कला न होय।
बीसां बजबजियो नहीं, (तो) भलपण बाट न जोय॥"

जब जोधाजी चौदह पन्द्रह वर्ष के हुए उसी अर्से में रावरणमल्ल जी ने मडोर लेने के लिये सत्ताजी पर चढ़ाई की, उस समय जोधा-जी को भी अपने साथ में लिया। इस घराने का यह दस्तूर आदि से अब तक चला आता है। अभी सोलह वर्ष की उम्र मे महाराजा सुमेरसिंहजी को महाराजा सर प्रतापसिंहजी फ्रांस की लड़ाई में ले गये थे। इन के मडोर के निकट पहुँचते ही सत्ताजी का पुत्र नरबद सेना लेकर साम्हने आया तो रावजी ने उसे किशोर वय का लड़का देख कर स्वयं लड़ना उचित नही समझा और उस के समान अवस्था वाले जोधाजी को अपने युद्ध विशारद बहुत से सेनापतियो को साथ देकर नरबद के साम्हने भेजा। इस लड़ाई मे नरबद का पराजय हुआ जिस से जोधाजी की प्रशंसा हुई। जोधाजी की विजय होने का

मुख्य कारण यह था कि उन्होंने युद्ध का कार्य बहुत से रणनिपुण बुद्धिमान् वीरों की सलाह से किया था।

दूसरे दिन रणमलजी किले में दाखिल हुये तो सत्ताजी अंधे थे इस लिये दो मनुष्यों का सहारा लिये साम्हने आये। सत्ताजी प्रणाम करके बैठे उस समय रणमलजी ने जोधाजी को प्रणाम करने के लिये संकेत किया। जोधाजी सत्ताजी के पैरों में पड़े और चरण छू कर पास ही खड़े हो गये। सत्ताजी ने नाम जानने के लिये पूछा कि यह कौन है? तब रावजी ने कहा कि यह आप का भतीजा जोधा है। तब तो सत्ताजी ने उन को समीप में ले, उन के शरीर व सिर पर हाथ फेर कर बहुत सी बातें पूछीं। जोधाजी ने जो उत्तर दिया उस से प्रसन्न हो कर सत्ताजी ने अपने ज्येष्ठ भ्राता रणमलजी से कहा कि यह राजकुमार जोधा इस उम्र में ही इस तरह शस्त्रों से सझा हुआ है और इस की बोल चाल से मालूम हुआ है कि यह बालक बड़ा ही बुद्धिमान्, चतुर व होनहार होवेगा। इस के शरीर का स्पर्श करने से यह भी प्रतीत हुआ है कि इस का शरीर इस की अवस्था देखते बहुत ही बलिष्ठ है। यह दृढ़ता और बलवत्ता में आप के समान होवेगा।

जोधाजी जब २१-२२ वर्ष के हुए तब सब प्रकार से योग्य देख कर रावजी ने उन को अपना पट्टाधिकारी नियत कर दिया। इन राठौडों के कन्नौज छूट कर निर्बल होने पर भी फिर बल पकड़ कर उन्नत दशा को पहुंचने के तीन कारण प्रतीत होते है।

प्रथम तो यह कि राठौड़ों से कनौज का संवत् १२५० में छूट कर उन का अधिकार खोर पर, जिसे इस समय शमसाबाद कहते हैं, रह गया। और २० वर्ष के पश्चात् संवत् १२७१ में राठौड़ वहां से हटाये गये तब सीहाजी फर्रुखाबाद ज़िले में गांव महुई में जा जमे। वहां भी मुसलमानों का उपद्रव हो जाने से सीहाजी मारवाड़ की तर्फ आये। सीहाजी का इधर आने का समय संवत् १२६६ के आस पास पाया जाता है। उसी अर्से मे वे और उस के वंशज मारवाड में राज्य संपादन कर के उस को बढाने की कोशिश में पीढी दर पीढ़ी लगे रहे। उन्होंने अपना कार्य साधने के लिये २५० वर्ष पर्यन्त अपने प्रयत्न को सदा प्रवृत्त रक्खा। कभी ढीला न छोड़ा। अन्त में तेरहवें पुरुष राव जोधाजी ने उस प्रयत्न का फल चक्खा। जोधाजी भी अपने पूर्वजों की भांति मस्तक को हाथ में लिये फिरते रहे परन्तु सर्वशक्तिमान् की अद्भुत लीला है कि उस की कृपा से उन्होंने सब घातों से बच कर अपने पूर्व पुरुषों की इच्छा को पूर्ण किया।

दूसरा, राव चूंडाजी ने भूमि सम्हालने के लिये राजकुमारों में

से चुन कर राजा बनाने का दस्तूर शुरू कर दिया था। यदि उन में ज्येष्ठ पुत्र सब प्रकार से पट्ट योग्य होता तो वह, और यदि छोटा उस से अधिक गुणवान् और योग्य होता तो वह, पट्टाधिकारी किया जाता। उस का फल यह निकला कि उन के तीसरे पुरुष जोधाजी ने गये हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर के बहुत अधिक बढ़ाया और राठौड़ों के राज्य की नीव पाताल में पहुँचाई।

तीसरा, महाराव जोधाजी के समय में एकता और संपत्ति ने मुकाम ही कर दिया था। वैसे ही उन के भाई बेटों ने देशोन्नति व सुधार के लिये तन मन धन से सहायता करते और सहानुभूति दिखाते उन की आज्ञा को कभी नीचे नही गिरने दिया। इन के राज्य का सर्व कार्य सब की सलाह और संमति से होता था।

अब कँवरपदे का वृत्तान्त समाप्त कर के राव जोधाजी के विपत् समय का वर्णन किया जाता है, जो दशा पन्द्रह वर्ष पर्यन्त रही थी।

संवत् १४९५ (ई० सन् १४३८) के कार्तिक वदि अमावास्या दीपमालिका के दिन महाराणा कुंभाजी ने शत्रुओं के बहकाने से राव रणमलजी को मरवा डाला जिस का सविस्तर वृत्तान्त राव रणमलजी के इतिहास मे लिखा जा चुका है। रावरणमलजी मारे गये थे उस समय राव जोधाजी चीतोड़ के किले की तलहटी में घोड़ों के तबेले की छत पर सोये हुये थे। तबेले में शयन करने का कारण यह प्रतीत होता है कि इन राठौड़ों को घोड़ों का शौक आदि से था। राठौड़ घोड़ों को प्रिय वस्तु समझते है। देखा जाता है तो राठौड़ों ने जब तब लड़ाइयों मे घोड़ों से ही विजय पा कर अपनी कीर्ति पताका को फहराया और नामवरी संपादन की है। जोधाजी को तबेले में सोते राव रणमलजी के मारे जाने की ख़बर मिली उस विषय का यह दोहा है.—

"सीसोद्या किण रा सगा, यां रौ किसौ वेसास।
थोरो रणमल मारियो, (जोधा) नास सकै तो नास॥"

जोधाजी ने ख़बर होते ही अपने भाई और सरदार उमराव सब को एकदम जगाया। चूंडाजी के पुत्र भीमजी मदिरा के नशे मे प्रमत्त थे, वे नही जागे। उन्हे छोड़ कर सब के सब घोडों पर सवार हो कर चीतौड़ से निकले। मदिरा के विषय में प्राचीन पद्य है।

दोहा—दिल्ली नैं दोखा लग्या, रंडी दारू राग।
निण कारण सूं तुरकड़ा, खांच न सकिया खाग॥

जोधाजी चीतोड़ से रवाना हो कर चीतरोड़ी पहुंचे होंगे इतने

मे सीसोदिया चूंडा तीन चार हज़ार सवार ले कर आ पहुँचा लड़ाई शुरू हो गई। उस समय जोधाजी के सरदार व उमरावों ने जोधाजी को कुछ सवार दे कर निकाल दिया। और राठौड़ जी तोड़ कर बड़ी बहादुरी से लड़े जिस से सीसोदियों की सेना वहां रुक रही और जोधाजी को आगे जाने का अवकाश मिल गया। इस युद्ध मे राठोड़ों के ५० और सीसोदियों के १५० मनुष्य मारे गये और जोधाजी के ७ सरदार काम आये। वहां से चल कर राठौड़ सतखभा और रावतो की कनौज होते हुए कपासण पहुंचे। यहां महाघोर संग्राम हुआ। इस युद्ध मे राठौड़ों के २०० और सीसोदियो के ५०० मनुष्य मारे गये और जोधाजी के ३ सरदार काम आए। और राठौड़ भीमजी का पुत्र वरजांग घावों से पूर्ण होने से मूर्छित हो कर गिर गया। चूंडा के मनुष्य उसे चीतोड़ ले गये और चिकित्सा की गई।

गांव कपासण से राठौड़ गांव मोही होते हुए गांव केलवा में आये। वहां से लड़ते भिड़ते गांव जीलवाड़े में आये। वहां से सोमेश्वर की घाटी में आये। यह पर्वत श्रेणी का मार्ग अति तंग था, राठौड़ वहां घोड़ों से उतर पैदल हो कर शत्रु से लडे। यहां चैाहाण वेलण का पुत्र समरा ३०० मनुष्यों से राठौड़ों के शामिल हो गया जिस से राठौड़ों की सेना में ६०० मनुष्य हो गये थे, परन्तु इस युद्ध में सब के सब मारे गये। समरा का पुत्र नरा ५० सवारों के साथ जोधाजी के सग सोझत गया था, जिस से जोधाजी ने मंडोवर का राज्य प्राप्त होने पर उस को अपना महामंत्री नियत किया था। सीसोदिया चूंडा रणविजयी हो कर मारवाड़ की सीमा में प्रविष्ट हुआ। दो चार दिन में मण्डोर पहुंचा। आगे मण्डोर ख़ाली मिला। वहाँ उस समय सताजी का पुत्र नरवद सम्हाल पर था और वह राणाजी की पक्ष का होने से चूंडा का मण्डोर पर विना हत्याकाण्ड के कब्जा हो गया।

जोधाजी चीतरोड़ी से रवाना हो माण्डल के तलावर आए। वहां उन को कांधलजी मिले· वहां से दोनों भाई सोझत आए। राव रणमलजी के स्वर्गवास की खबर होने पर रावजी की नौ स्त्रियां सती हुईं। जोधाजी सोझत से मण्डोर आये परन्तु आगे चूंडा सीसोदिया का कब्जा हो गया था, जोधाजी जागलू की तर्फ चल दिये। गांव काहूनी में मुक़ाम किया। और वहां कोडमदेसर तालाब पर रणमलजी की और्ध्वदैहिक क्रिया की गई। जोधाजी का उस प्रान्त में जाना उन की दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता को प्रकट करता है। क्योंकि प्रथम तो यह उन्हीं का देश था। दूसरा अपने बहुत से संबन्धियों के समूह में आ शामिल हुए थे। इस विषय में प्राचीन दोहा है।—

"देखे जोधै दाव, सहवर लघु वेसां सह्व।
रजधानी तज राव, कमधज थल पैठो कहर ॥"

तदनन्तर मेवाड़ से खिड़िया शाखा का चारण चानण और धारहठ अमरा जोधाजी के पास आए। इन्होने रणमलजी की दाह-क्रिया की थी जिस से अप्रसन्न हो कर राणा कुंभा ने इन्हे मेवाड़ से निकाल दिया था। जोधाजी ने उन से भीमजी और वरजांगजी के विषय में पूछा कि वे कैसे हे? उस ने कहा कि वे क़ैद हैं, परन्तु आराम से हैं। वरजांगजी के घाव वहुत लगे थे जिस से प्रथम तो उन के जीवन की आशा कम थी परन्तु अब अच्छी दशा में हैं और चिकित्सा हो रही है। यह सुन कर जोधाजी ने राजगुरु पुरोहित दामा को वुला कर कहा कि तुम चीतोड़ जा कर भीमजी और वरजांग को छुडा लाने का प्रयत्न करो। दामा चीतोड़ गया। दामा को भेजने का प्रयोजन यह था कि राजपूत लोग ब्राह्मण और चारण को जहां तक वन पड़े नहीं मारते हैं।

सीसोदिया चूंडा ने मण्डोर पर कब्जा कर के महाराणा को लिखा कि मण्डोर की तर्फ का मैंने दृढ़ प्रवन्ध कर लिया है, सोझत की तर्फ भी एक सेना नायक भेज कर प्रवन्ध करना चाहिये। महाराणा ने चूंडाजी के पौत्र सहंसमल के पुत्र राठौड़ राघवदेव को राव पदवी दे कर सोझत का हाकिम वना कर भेज दिया। उस ने उधर का प्रवन्ध किया।

रणमलजी के इतिहास में लिख आये हैं कि राव सताजी से मण्डोर छूट जाने पर सताजी और नरवद कुछ दिन आसोप में रहे, और वहां से महाराणा के पास चीतौड़ चले गये। सताजी का वहीं स्वर्गवास हुआ। नरवद पर महाराणा की पूर्ण कृपा है, उन को निर्वाह के लिये मण्डोर के समीप कायलाणा जागीर में दिया गया है। नरवद वड़ा वीर और उदार पुरुष है। मेवाड़ के समस्त सरदार उन का मान करते हे।

एक दिन महाराणा के दरवार में उदार और दानी पुरुषों की वार्ता का प्रसंग चला, उस समय किसी मेवाड़ के सरदार ने कहा कि आज दिन तो राठौड़ नरवद की तुलना करने वाला दानी पुरुष कोई नही है। उस से जो वस्तु मांगी जाती है वह दे ही देता है, नाही नही करता। महाराणा ने कहा कि देखें हम उन से एक वस्तु मांगते हैं, क्या वे दे देंगे? सभा स्थित लोगों ने कहा कि निःसदेह, वह कभी नांही नही करेगा।

महाराणा ने अपने एक खवास (कृपा पात्र) को भेज कर नरवद को कहलाया कि हम ने आप को दान वीरता की बड़ी प्रशंसा सुनी

है। हम आप की आंख मांगते हैं। खवास के कहने की देरी थी, नरवद ने खवास की दृष्टि बचा कर भाले का फल पास पड़ा था, उस से अपनी आंख निकाल रूमाल में लपेट कर खवास को दे कर कहा कि महाराणा के नज़र कर देना। नरवद पहले युद्ध में एक आंख फूट जाने से काना तो था ही, इस आंख के निकालने से अंधा हो गया।

खवास ने ले जा कर आंख अर्पण की, उसे देख कर महाराणा अत्यन्त संकुचित हुए और खवास पर कोप कर के बोले कि हम ने तुझ को कह दिया था कि आंख निकालने मत देना, खवास ने अर्ज़ किया कि मैं तो उन से कह रहा था इतने में उन्होंने मेरी आंख बचा कर अपनी आंख निकाल कर दे ही दी। अब आप की इच्छा हो वह करिये। नरवद को इस बात की ख़बर लगी तब उस ने महाराणा से कहलवाया कि इस में विचारे अनुचर का क्या दोष है? मैं कुराजपूत कहलाना नहीं चाहता था; मैंने अपनी आंख आप के भेट की है। महाराणा नरवद का साहस और दानवीरता को देख कर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए और प्रसन्न हो कर ड्योढ़ी दुगुनी जागीर दी।

जोधाजी को काहूनी में निवास करते तीन चार मास हुए होंगे, नरवदजी सेना ले कर जोधाजी के ऊपर चढ़ कर गये। जोधाजी के मनुष्य चारों दिशा में निरीक्षणार्थ नियत थे। उन्होंने आ कर जोधाजी को ख़बर दी कि नरवदजी सेना ले कर आते हैं, जोधाजी ने अपने बन्धुवर्ग से सलाह की कि अब इस समय क्या करना चाहिये? सब ने एक मत हो कर यह सलाह दी कि इस समय तो इस स्थान को छोड़ कर निकल जाना उचित है; क्योंकि इन के पास सीसोदियों की सेना अधिक है। हमारी समझ में ऐसा किया जाय कि जो सामान अपने साथ निभ सके वह तो ले लिया जाय और यहां से निकल कर डांजी में चले चलें; जहां शत्रु भूख प्यास के मारे दुःखित हो कर आप ही पराजय पा कर पीछे लौट जांयगे। जोधाजी वहां से निकल डांजी (महामरुस्थल) की तर्फ़ चले गये। नरवद जी ने आ कर देखा तो कुछ सामान तो पड़ा है जो जोधाजी छोड़ गये थे, मनुष्य एक भी नहीं है। नरवद जोधाजी के पीछे गये परन्तु जल और अन्न के अभाव के कारण महाक्लेश पा कर पीछे लौट गये।

नरवद के लौट जाने पर जोधाजी ने पुनः काहूनी में निवास किया। उस समय दूतों ने आ कर जोधाजी को ख़बर दी कि सीसोदियों ने तीन ठौर अत्यन्त कठिन प्रबन्ध कर रक्खा है। चौकडी के थाने में तो नीचे लिखे सुभट रहते हैं और कभी कभी राघवदेव भी निरीक्षणार्थ आ जाते हैं.—

१ सींधल हरभाम २ भाटी वणवीर ३ रावल दूदो

डोर में निम्नलिखित सेनाध्यक्ष हैं:—

१ सीसोदिया रावत चूंडा २ सीसोदिया कुंतल (रावत चूंडा का पुत्र)

३ सीसोदिया आका ४ „ सूआ „

५ आहड़ा हींगोला ६ हाजा धोरणिया

सोभत में ये लोग हैं:—

१ राव राघवदेव (राव चूंडाजी का पुत्र) २ झाला विक्रमादित्य

३ साचोरा चौहान जेसा ४ शेख सदू (फीरोजखां का पुत्र)

४ वीसलदे पंवार

गोडवाड़ में भी जैसा चाहिये पक्का प्रबन्ध है। मेवाड़ से पाली तक पहले की सेना पड़ी हुई है और अभी जो पीछे से सेना भेजी गई है वह पाली से रोहिट तक मुकाम किये है।

रोहिट में ये सेना नायक हैं:—

१ सीसोदिया मांजा (रावत चूंडा का पुत्र) २ आसथान ३ नरा

इस अवसर पर चीतौड़ से पुरोहित दामा आया जिसे भीमजी और वरजांगजी को कैद से छुड़ाने के लिये भेजा था। दामा ने कहा कि भीमजी को तो छुड़ा लाया हूं और वरजांगजी वही कैद में हैं। प्रथम तो उन के बचने की आशा नही थी, अब आशा की जाती है। फिर दामा ने भीमजी को मुक्त कराने का सब वृत्तान्त कहा, जिस प्रकार वे लाख रुपया देने की शर्त करके लाये थे। जोधाजी ने दामा से कहा कि वरजांगजी को छुड़ा कर नही लाये यह अच्छा नहीं किया। इस समय यदि वरजांगजी होते तो बड़ी सहायता मिलती। अस्तु, फिर विचार करेंगे।

अब जोधाजी अवसर देख कर जहां तहां धावे मारते हैं, गांव जलाते हैं, लूट खसोट करते है, परन्तु उस के साथ वे इस बात का भी सदा पूर्ण विचार रखते है कि जिस जगह के मनुष्य जोधाजी से द्वेष न रख कर उन के कार्य में बाधा नहीं डालते थे उन्हें वे लूट खसोट कर नही सताते थे। किन्तु मारवाड़ की सीमा पर के बहुत से लोग जोधाजी से अप्रसन्न नही, बल्कि उन की सहायता करने में उद्यत रहते थे। जब सरहद के लोगों के साथ मेल जोल हो गया, तब वे उन को छोड़ दूसरों की हद में घुस कर लूट खसोट करने लगे। और कही

कभी दोनों ओर से उदासीन साधारण निष्पक्ष लोगों का विगाड हो जाता तो उन को इस तरह समझाते कि आप हमारे उपद्रव करने से अवश्य अप्रसन्न हुए होंगे परन्तु प्रति पक्षियो के भरोसे यह विगाड हुआ है। इस तरह लूट खसोट करते इन को दस ग्यारह वर्ष होने आये। इतना समय व्यतीत होने पर भी उन का इच्छित कार्य सिद्ध नहीं हुआ। तथापि हिम्मत को न छोडा।

अब रावजी ने यह विचार किया कि देखें हरभूजी सांखला से भी तो मिलै, ये भी अपने सबन्धी हैं। आशा है कि उन से सहायता मिलेगी। हरभूजी हमेशा सदाव्रत बांटते है। उन के घर से कोई भी भूखा प्यासा नही जाता। हरभूजी जैसे अतिथि सत्कार करने में पक्के थे वैसे वाणी के भी बड़े सच्चे थें, तिस पर भी मधुरभाषी थे। वह मानों एक देवमूर्ति पूजनीय पुरुष थे। जोधाजी गांव लोडता मे जो जोधपुर से २२ कोस की दूरी पर है, हरभूजी से मिले। अन्य वार्ता के अनन्तर जोधाजी ने हरभूजी से पूछा कि मेरी भूमि व राज्य पीछे मिलने का भी कोई उपाय है ? हरभूजी ने कहा कि मैं तो अन्तःकरण से चाहता हूं कि आप का राज्य आप को मिल जाय। और अभी तो नहीं पर समय आने पर मैं आप को सहायता दूंगा। और आशा है कि आप की भूमि आप को मिल जायगी।

राव जोधाजी ने फिर वही कार्यवाही करनी शुरू की। अवसर देखते है तव धावा करते हैं और लूट खसोट करके पुनः रक्षित स्थान में आ जाते हैं। ऐसे करते जोधाजी ने कुछ समय व्यतीत किया है। इतने में खवर लगी कि वरजांगजी चीतौड़ से निकल गये है। वरजांगजी को पकडने के लिये महाराणा ने पांच हज़ार की जागीर देने का सूचना पत्र प्रकाशित किया था, और उन के मनुष्य मारवाड और अजमेर की तर्फ तलाश करते रहे और वरजांगजी खीचीवाड़े की ओर गये थे जिस से महाराणा का यत्न निष्फल हुआ।

काहूनी में जोधाजी का सदर मुकाम है, परन्तु वहां शत्रुओं का उपद्रव होने से जोधाजी कभी कहीं और कभी कहीं रहते हैं; उस में भी विशेष कर जहां वालू के टीवे अधिक हैं उस भूमि का आश्रय लेते हैं। उधर की तर्फ एक चारण चला आया। उस का नाम जालप था। गुप्त दूत ने जोधाजी को ख़वर दी कि जालप चारण आया है, वह आप का दर्शन करना चाहता है। रावजी ने उसे वुला कर पूछा कि तुम कैसे आए ? वह महाराणा का भेजा हुआ यहां का वृत्तान्त जानने के लिये आया था परन्तु उस ने अपना भेद प्रकट नहीं किया, तथापि जोधाजी उसे जान गये। जब भोजन का समय हुआ वालू के टीवे पर पांतिया लग कर आक के पत्तों में भोजन की सामग्री परोसी

गई। सब सरदार भोजन कर रहे थे, अकस्मात् दो जंगली भैंसे लड़ते हुए उधर की ओर चले। रावजी ने कांधलजी की ओर आंख उठा कर देखा, संकेत होते ही कांधलजी ने पंक्ति में से उठ कर उसी क्षण भैंसो को हटा दिया और पीछे आ कर भोजन करने लगे। जालप यह देख कर चकित हो गया। और रावजी से विदा हो कर महाराणा के पास गया। महाराणा के पूछने पर उस ने कहा कि उन के पास निर्वाह योग्य सब वस्तु हैं, घोड़े और मनुष्य भी हैं। वे अच्छी दशा में हैं।

एक दिन महाराणा के यहां भी वैसा ही प्रसंग बन पड़ा। महाराणा सरदारों सहित भोजन कर रहे थे। अकस्मात् दो कुत्ते लड़ते लड़ते आ पड़े। सब भोजन छोड़ कर उठ खड़े हुए। जालप मुसकराया। तब महाराणा ने पूछा कि बारहठजी क्यो हँसे? बारहठ ने कहा कि यों ही हँसी आ गई। महाराणा ने कहा, सच कहो, क्या बात है? बारहठ ने जोधाजी के यहां का भैंसों का वृत्तान्त कह कर कहा कि आप यदि जोधाजी की तरह इस का प्रबन्ध पहले कर देते तो भोजन छोड कर उठना नहीं पड़ता। महाराणा ने कुपित हो कर जालप को अपने यहां से निकाल दिया। तब वह जोधाजी के पास चला आया। जोधाजी ने उसे बड़े आदर के साथ अपने यहां रख लिया।

इधर जोधाजी धावे मार कर लूट खसोट करते हैं जिस से सीसोदिये तंग आ गए परन्तु उस का परिणाम यह नहीं हुआ कि देश उन के हस्तगत हो जाय। उधर बरजांगजी चीतौड़ के किले से रज्जु के सहारे उतर कर एक दास को संग ले खीचीवाड़े की तर्फ रवाना हुए। आगे जाते एक बैल खरीद उस पर सवार हो आम रास्ता को छोड़ कर उजड़ चले। तीन चार दिन में खीचीवाड़े पहुंचे। वहां एक तालाव के तट पर एक वृक्ष का आश्रय ले बैठ गये और दास को भोजन की सामग्री लाने के लिये नगर में भेजा। दासियां पानी भरने को आई। वे परस्पर वार्तालाप कर रही थी कि बडी बाई का विवाह परसों है, छोटी बाई के योग्य वर नहीं मिला, यदि मिल जाता तो दोनों का विवाह साथ ही हो जाता। बरजांग ने सुन कर कहा कि यदि हमें व्याह दें तो हम पाणिग्रहण कर लें। यह सुन कर दासियां गालियां देने लगी। और गाली गलोच देती राजभवन में गईं। उन का कोलाहल सुन गागरून के अधिपति खीची चाचगदेव ने कहा कि दर्याफ्त किया जाय कि यह कोई राजपूत सरदार तो नहीं है? क्योंकि दूसरा ऐसा कह नहीं सकता। शोध करने पर निश्चय हुआ कि वह भीमजी का पुत्र राठौड़ बरजांग है। फिर वह कन्या बरजांग को व्याह दी गई। राजपूतों में यह रीति है कि हथलेवा छूटता है तब

जामाता को मांगने पर मनोवाञ्छित वस्तु दी जाती है। वरजांग को मनोवाञ्छित वस्तु मांगने के लिए कहा गया तब उस ने यह मांगा कि हम को विपद् में मदद दी जाय। चाचगदेव ने स्वीकार किया। और अपने मनुष्यों से कहा कि ये वरजांग बड़े वीर पुरुष है। इन को "लाख पाखर एक पाखर" कहते है।

इधर राव जोधाजी एक दिन मण्डोर के समीप एक चौकी पर, जहां सीसोदियों के घोड़े रहते थे, उन्हें ले जाने का विचार कर गांव कांकाणी की सीमा मे पहुंचे। सूर्यास्त होने पर अन्धकार छा गया। तब जोधाजी ने अपने संग के मनुष्यों से कहा कि अपन कल के भूखे है, भोजन का उद्योग किया जाय। मनुष्यों ने निवेदन किया कि यहां एक जाट की ठाणी है उस के यहां अतिथि सत्कार हुआ करता है वहां चलें। जोधाजी वहां गये। पूछा कि ठानी किस की है? जाट ने उत्तर दिया कि शोभा जाट की है। रावजी के एक मनुष्य ने कहा कि हमारे कुछ भोजन ला दे। जाट ने जाटनी से कहा कि जो भोजन तैयार हो, शीघ्र ले आ। वह सेंगटी की थाली भर कर ले आई। जोधाजी भूखे थे, थाली के बीच में हाथ मारा, हाथ जल गया। तब जाटनी ने कहा कि तू मुझे जोधा के जैसा मूर्ख दीखता है। जोधाजी ने शान्त स्वभाव होने के कारण कुपित न हो कर कहा जोधा मूर्ख कैसे? उस ने कहा कि जोधा मूर्ख इस लिये है कि वह सीमा की भूमि को न दबा कर प्रथम ही केन्द्र स्थान मण्डोर पर आक्रमण करता है। इसी से सदा हानि उठाता है। यदि सीमा प्रान्त को दबाता रहता तो आज तक समस्त भूमि उस के अधिकार में हो जाती। तू भी यदि किनारे २ की सेंगटी खाता तो हाथ क्यों जलता?

कह आए है कि वरजांगजी खीचीवाड़े में गागरून व्याहे थे। उन्होंने मारवाड़ में राव जोधाजी के पास जाना आवश्यक समझ कर राव चाचगदेव से कहा कि अब मुझ को मारवाड़ जाने के लिये आज्ञा मिलनी चाहिये, जिस से मैं भी अपने बन्धुओं के शामिल हो कर अपने भाई और स्वामी जोधाजी की सहायता और सेवा कर सकूं। दूसरे यहां निवास करते मुझे कुछ समय व्यतीत हो गया है। यदि महाराणा को मेरी ख़बर मिल जाय तो मै पकड़ा जाऊं और फिर विपद् में पड़ूँ।

वरजांग के वचन सुन चाचगदेव ने कहा कि आप दहेज ले कर बाई को ले प्रसन्नता पूर्वक घर जाइय। तब वरजांगजी ने कहा कि हमारा घर कौन सा? हम को तो जगलों में गोते खाने पड़ेंगे और घर बगल में या घोड़े की पीठ होगा। आप दहेज में जो कुछ सामग्री

देते हैं ले जा कर किस घर में रक्खे जावें ? आप ने जो कुछ देने का विचार किया है उस की एवज में द्रव्य और घोडो की सहायता करेंगे तो हमारे लिये बहुत उत्तम होगा चाचगदेव ने उस को स्वीकृत किया। वरजांगजी दो घोड़े और दो सवार ले खीचीवाड़े से रवाना हो जोधा जी के समीप आए।

उस समय जोधाजी इस विचार में पड़े हुए थे कि हमारे बहुत से नामी नामी मनुष्य मारे गये हैं और वरजांगजी चीतौड़ के कारागार से निकल तो गये हैं परन्तु पीछे का कुछ पता नही है। अब दो बातों की आवश्यकता है, एक तो द्रव्य और दूसरे मनुष्य। वर्तमान समय में शत्रुओं का बल मण्डोर का राज्य उन के हस्तगत हो जाने से बहुत बढ़ गया है और हमारे हाथ से मण्डोर चला जाने से अपना बल बहुत घट गया है। इस समय आपन निर्बल हैं, शत्रु का साम्हना कैसे कर सकते है ? रावजी के ऐसे निरुत्साह के वचन सुन कर सबों ने अर्ज किया कि आप का विचार वास्तव में यथार्थ है। और हम लोगों को इस का उपाय करने के लिये समय चाहिये। यह सुन कर रावजी ने कहा कि दो चार महीने लगे तो कुछ हर्ज नहीं। मैं भी इस बात का विचार करता हूं। इस प्रकार परस्पर परामर्श हो रहा था। दो चार दिन के अनन्तर किसी ने आ कर कहा कि वरजांगजी आ गये है। सुनते ही सब का मन आल्हादित हुआ। वरजांगजी से सब बांह पसार २ कर और छाती से लगा लगा कर मिले। वरजांगजी ने डेरे में जा कर आराम किया। फिर एकान्त स्थान में बैठ कर वरजांगजी से पिछले समय का वृत्तान्त पूछा। उन्होंने अपना समस्त वृत्तान्त कहा। तदनन्तर रावजी ने दो तीन दिन पहले द्रव्य और मनुष्य संग्रह के विषय में जो परामर्श हुआ था। उस विषय में वरजांगजी से पूछा, तब वरजांगजी ने कहा कि इस बात का मैं पहले ही विचार कर चुका हूं। मैंने गागरून मे निवास करते खीची जाति के चौहानों के साथ ऐसा प्रबन्ध किया है कि उन से अपने को रुपये, मनुष्य और घोड़ों की मदद मिले। इस समय इन ही की आवश्यकता है। अब आपन को यहां यह करना चाहिये कि भाई और सबन्धियो के समीप जा कर उन से मदद मांगी जा कर सेना एकत्र की जावे। जैसा मैंने गागरून के खीचियों के यहां प्रबन्ध किया है वैसा आप यहां करे। जैसे मेरे संबन्धी गागरून मे है वैसे यहां भी सब के संबन्धी है। आप (रावजी) का बीकमपुर के भाटियां के यहां ननिहार है। और पूंगल के भाटियो से भी संबन्ध है। दूसरा सांखला जाति के राजपूतों के साथ भी विवाह संबन्ध है। तीसरा हरभूजी सांखला के कथन मे मारवाड़ और जैसलमेर के बहुत से मनुष्य है। चौथा ईंदावाटी के ईंदे, सेखाला के गोगादे और सेतरावे के देवराजोत आप को अवश्य मदद देवेंगे। इन की

सहायता से अपन अवश्य शत्रु को विजय कर सकेंगे। आप शीघ्र इस कार्य में प्रवृत्त होवे। और मै भी खीचीवाड़े जा कर वहां से सहायक सेना ले आता हूं। और मांगलिया कोला, जिस के करगत नगर का प्रबन्ध है, उस से आपन को बहुत सहायता मिलेगी।

राव जोधाजी के कहने पर राठौड, सांखला, भाटी आदि समस्त सहायतार्थ उद्यत हुए। भाटियो में भाटी जेसा और अर्जुन प्रबल शक्ति शाली थे। इन्होने भी सांखला हरभू के कहने से सहायता देना स्वीकार किया। और जेसा को तो रावजी ने एक स्वीकार पत्र भी लिख दिया था कि हमे मंडोर का राज्य मिल जायगा तब मण्डोर के सिवा समस्त राज्य में से चतुर्थांश आप को दिया जायगा।

इस प्रकार सब ओर से सेना का संग्रह करते हुए राव जोधाजी मोढी मूलवाणी के यहां गये। यह राठौड जोपसा के पुत्र मूली के वंश मे उत्पन्न होने से मूलवाणी कहलाती थी। यह स्त्री बडी पतिव्रता और उदार चित्त थी। इस के घर पर आये अतिथि का रोटी पानी से पूर्ण सत्कार होता था। उस ने जोधाजी के भोजन के लिये लापसी तैयार करवाई, जिस को मारवाड में मांगलिक शुभ भोजन मानते हैं। रात्रि का समय था, लापसी के अदर भूल से मजीठ गिरा दी गई, जो चूडा रंगने के काम मे आती थी। जोधाजी और उन के समस्त सरदार भोजन करके सो गये। प्रातःकाल में सब लोग उठे तो उन की लवी २ मूछों में थोड़ा बहुत मजीठ का रग आ गया। मूछों में रग आया देख कर सब समझ गये कि लापसी मे मजीठ थी। मोढ़ी ने रावजी की मूछों के रंग चढ़ा देख कर कहा कि परमेश्वर ने आप को रंग दिया है, आप की विजय होवेगी।

मोढी से रवाना हो कर रावजी सांखला हरभू जी के पास गये। उन्होंने इन के पहुंचते ही भोजन करने के लिये कहा। जोधाजी चकित हुए कि हम इतने बहुसंख्य मनुष्यो के लिये सिद्धान्त कैसे तैयार मिला ? तब किसी ने जोधाजी से कहा कि ये करामाती सिद्ध पुरुष हैं। इन को आप के आगमन का प्रथम ही ज्ञान हो गया था कि जोधाजी आते हैं। भोजन के लिये आसन बिछाये गये, पांतिया लगा, उस समय भाटी जेसा, हरभूजी का भानजा, पास ही खडा था, रावजी ने उस को भोजन में शामिल होने के लिये कहा कि आ जाइये। जेसा प्रणाम करके शामिल भोजन करने को बैठ गया। पास ही हरभूजी का पुत्र खड़ा था उसे कहा गया तो उस ने शामिल भोजन करने से अस्वीकार किया। तब हरभूजी ने कहा कि इस अवसर पर इसने अस्वीकार किया है इस लिये इस के वंशज राज्यभाग से सदा वञ्चित रहेंगे।

भोजनोत्तर जोधाजी ने हरभूजी से कहा कि अब आप हम को

क्या सहायता देते हैं, जिस के लिये आप ने स्वीकार किया था। हरभूजी ने कहा कि मेरा भानजा जेसा आप की सेवा में उपस्थित है, इस के पास घोड़े और मनुष्य बहुत हैं, आप चाहोगे वैसी सहायता यह देगा। तब जोधाजी ने हरभूजी से भँवर ढोल माँगा, उन्होंने प्रीति पूर्वक वह ढोल देते यह कहा कि अब तुम यहीं से शत्रु विजय के लिये रवाना हो जाओ। अब तुम जिस पर आक्रमण करोगे उस को विजय करोगे।

जोधाजी वहाँ से सेतरावे के स्वामी रावत लूणकर्ण के यहाँ गये। उन के पास घोडे अधिक थे। रावजी ने उन से घोडे देने के लिये कहा परतु रावत ने देने से अस्वीकार किया। इस विषय में यह प्राचीन पद्यार्द्ध है:—

"ज्यों ज्यों कहिये रावत लूणो[1], त्यों त्यों लेड[2] घणेरो सूणो[3]।"

रावजी हताश हो उन की स्त्री से मिलने गये जो जोधाजी की मौसी होती थी। उस से जोधाजी ने रावत की वार्ता कही तो रावतजी की स्त्री ने कहा कि आप बाहिर ठहरें, मैं अभी प्रबन्ध कर देती हूं। उस ने अपने पति को जनाने में बुलाया और रावतजी को किसी बहाने तोशाखाना मे बंद करके घोड़े जोधाजी को दे दिये। जोधाजी घोड़े ले कर काहूनी गये और वहाँ सेना एकत्र की।

उसी अर्से में बरजांगजी खीचीवाड़े से मदद ले कर जोधाजी के पास आ गये। जोधाजी काहूनी से रवाना हो कर फलोधी के समीप कुण्डल में आए। वहाँ से देवराजोतों के गाँव लोडला में आये, जहाँ सांखला हरभूजी का निवास था। हरभूजी ने भोजन करने के लिये कहा। रावजी ने भोजन किया और हरभूजी से विजय की प्रार्थना की। तब हरभूजी ने रावजी को आशिष देते कहा कि तुम विजय के लिये प्रयाण करो, जब तक तुम्हारे पेट में मेरा अन्न है तब तक जिस पर आक्रमण करोगे उसे विजय करोगे और जितनी भूमि दबाओगे वह भूमि सदा तुम्हारे कब्जे में रहेगी। रावजी लोडता से गांगांणी आये और गांगांणी से राठौड बरजांगजी को तो मण्डोवर की तर्फ़ भेजा और आप सेना ले कर चौकडी के थाने पर गये, वहाँ सेना के दो तुंग कर एक को कोसाणे पर भेजा और स्वयं रावजी ने चौकड़ी पर आक्रमण किया। चौकड़ी और कोसाणा को विजय करके मण्डोवर की तर्फ़ चले। मण्डोवर के समीप में बरजांगजी और

---

[1] लूणा = रावत लूणकर्ण। [2] लेड = बनिये को कहते है। यह रावत कृपण होने से ... गया है। [3] सूणो = फूला हुआ।

जोधाजी दोनों शामिल हो गये। वहाँ मांगलिया कोला से मिले। कोला ने रावजी से कहा कि आप ठीक समय पर आये, अभी मैं दरवाज़ा खुलवाने का प्रबन्ध करता हूं। आप संकेत होते ही आ जावे। सकेतानुसार जोधाजी किले के पास पहुँचे। कोला ने दरवाजा खुलवाया, दरवाज़ा खुलते ही जोधाजी किले में प्रविष्ट हुए। किले में जो मनुष्य थे वे लड़े, उन में से कुछ बचे होगे, बाकी सब मारे गये। जो बचे वे पकड़ लिये गये और कुछ भाग भी गये। महाराणा के नीचे लिखे सरदार काम आये.—

१ सीसोदिया कूंतल (सीसोदिया चूंडा का बेटा)
१ „ सूआ „
१ „ आका „
१ आहाड़ा हींगोला

मेवाड़ की ख्याति में लिखा है कि महाराणा लाखाजी की रानी दादी राठौड़जी के इशारे से जोधाजी ने मण्डोवर का किला लिया था। चाहे दादाजी राठौड़जी का इशारा भी हो, परन्तु जोधाजी ने तो किला अपनी तलवार के बल ही लिया था।

मण्डोवर का किला ले कर जोधाजी ने बरजांगजी को रोहिट की तर्फ़ भेजा उन्होंने रोहिट, पाली, चूलेलाई और खेखा में जो महाराणा की सेना थी उसे मार भगा कर गोडवाड़ में जाते सीसोदिया चूड़ा के पुत्र मांजा को मार कर राठौड़ों की आज्ञा प्रवृत्त की। जोधाजी ने मण्डोवर का पक्का प्रबन्ध करके सोझत की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। उस समय अखैराजजी ने कहा कि आप सोझत जाइये परंतु प्रथम राजतिलक हो जाना चाहिये। सब की संमति से अखैराजजी ने कुंकुम न होने से अपना अंगुठा चीर कर रुधिर से राजतिलक किया। अखैराजजी राव रणमल्लजी के ज्येष्ठ पुत्र होने से राज्य के अधिकारी थे, परन्तु जोधाजी को सब प्रकार से योग्य समझ कर रणमल्लजी जोधाजी को पट्टाधिकारी नियत कर चुके थे।

जोधाजी मण्डोवर विजय कर चौकड़ी हो वहां से कुछ सेना ले सोझत की ओर चले और कांधलजी को मेडते की तर्फ भेजा। श्रीमाली ब्राह्मण मुगर ने आ कर मार्ग में जाते जोधाजी से कहा कि मूता रैणायर, महाराणा का मनुष्य, बीलाड़ा लाट कर धन ले कर भावी जाता है, उसे पकड़ लिया जाय तो द्रव्य की प्राप्ति हो सकती है। रावजी तुरंत वहां पहुंचे और मूता रैणायर से द्रव्य ले कर उसे छोड़ दिया। फिर जोधाजी सोझत पहुंचे। राठौड़ राघवदे सोझत में डटा हुआ था, उस से युद्ध हुआ; जोधाजी की विजय हुई और राघवदे

माल असबाब छोड़ कर भाग गया। जोधाजी का सोभत में अमल हो गया, और जोधाजी ने वहाँ कुछ समय पर्यन्त निवास कर दिया।

सोभत में जमाव कर के रावजी ने घाटों का बन्दोवस्त किया, उधर वरजांगजी ने नाडोल और नारलाई की ओर प्रयाण किया। वहां सीसोदियों की सेना के साथ महाविकट संग्राम हुआ जिस में वरजांगजी की गर्दन पर कठिन प्रहार हुआ जिस से उन की गर्दन बहुत अधिक कट गई थी। वे रोहिट लाये गये और चिकित्सक ने गर्दन की हड्डी के स्थान में कैर की लकड़ी लगा कर चिकित्सा की, और वे चंगे हो गये। जिस कैर की लकड़ी वरजांगजी की गर्दन में लगाई गई वह कैर भी मोतों का कैर कहा जाता है और पूजा जाता है।

राव जोधाजी ने घाटे रोक कर ऐसा प्रबन्ध किया कि अजमेर से ले कर सीरोही की सीमा पर्यन्त रावजी का सब ठौर कब्जा हो गया, इस विषय का यह प्राचीन पद्य है:—

कवित्त।

"अजमेर अनै आबू विचे माणस दीसे चाडिया
कमधज्ज राव कुंभै तणा जोधे देस उजाडिया"

उस समय महाराणा कुंभाजी की तर्फ से सेना नहीं आई, शायद वे उस समय मांडू और गुजरात के मुसलमानों के बखेड़े में फँसे हुए होंगे।

राव जोधाजी के घोडे और घोड़ियां, जो बचत में रहतीं, रोहिट के जोड़ में चरा करती थीं। वे तलवाड़े चली गईं और रावल वीदाजी के पुत्र ने उन्हें रख ली। वरजांगजी को खबर लगी तब वरजांगजी चढ़ कर गये और लड़ाई हुई जिस में रावल वीदाजी का पुत्र और स्वयं वीदाजी मारे गये। वरजांगजी अपने घोड़े घोड़ियां ले आये।

राव सत्ताजी के पुत्र नरबद मेवाड़ से गुजरात के बादशाह के पास चले गये थे। वहां से द्रव्य सग्रह करके मारवाड़में आये। उस समय जोधाजी का निवास सोभत में था। नरबद ने द्रव्य का लोभ देकर मण्डोवर के किले में रहने वाले राजपूतों को अपने पक्ष में कर मण्डोवर में अपना अधिकार कर लिया। जोधाजी को यह खबर लगी तब जोधाजी ने अपना मनुष्य भेज कर उन राजपूतों को समझाया कि नरबद अंधा है तुम इस का आश्रय ले कर मण्डोवर में कितने दिन

टिक सकोगे। हम सेना ले कर आते हैं, हमारे रवाना होने से पहले नरवद् को मण्डोवर के किले में से निकाल दो, नहीं तो तुम्हारी दुर्दशा होवेगी। जोधाजी का मनुष्य मण्डोवर पहुंचा और हकीकत कही उसे सुनते ही सब चौकन्ने हो गये। और बोले कि यह बात सत्य है। जिन्होंने कुंभाजी से मण्डोवर ले लिया है उन के अगाड़ी नरवद् क्या वस्तु है? इस विचार से राजपूतों ने नरवद् को किले में से निकाल दिया। वह पीछा गुजरात जाता मर गया।

अब जोधाजी ने अपनी सेना तैयार कर के वरजांगजी को पीछोले की ओर और कांधलजी और जैताजी को चीतोड़ की तर्फ भेजा। उन्होंने मेवाड़ लूट कर अत्यन्त आकुल कर दिया। तत्पश्चात् जोधाजी भी स्वयं सेना ले कर गये। और मेवाड़ के थाने चौकियों को विध्वस्त करके देश को दुःखित कर दिया। कांधलजी ने चीतोड़ तक पहुंच कर चीतोड़ के कॅवाड़ों को जला दिया। इस विषय का प्राचीन पद्य यह है:—

"चीतोड़ तणा चूंडा हरै किंमाड़ह परजालिये।
जुवहार जाय जोधे कियो राव रिणमल पालिये॥"

और वरजांगजी ने पीछोले तालाब तक पहुंच कर पीछोले में अपने घोड़ों को पिलाया। इस विषय की नीशांणी यह है:—

"जोधै जंगम आपरा पीछौले पाया।"

महाराणा कुंभा इस वार अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और सांखला नापा से पूछा कि कहो इस समय क्या करना चाहिये? तब नापा ने कहा कि मेरी समझ में तो उन से संधि कर लेना उचित है। और राव जोधाजी भी अब पहले वाला नहीं है, उन के पास बहुत सी सेना एकत्र हो गई है और वे बाप का वैर भूल नहीं गये हैं। फिर आप अपने सरदारों से परामर्श कर लें। महाराणा ने सरदारों को एकत्र कर के सलाह की। उस समय सरदारों ने महाराणा को उत्तेजित किया और कहा कि जोधा क्या वस्तु है? आप यात्रा के लिये आज्ञा कीजिये, हम उन को परास्त कर के आप की विजय पताका फहरावेंगे। सांखला नापा ने राव जोधाजी को इस बात की सूचना कर दी। जोधाजी ने भी अपनी सेना एकत्र की। उधर महाराणा चीतौड़ से रवाना हो कर नारलाई पहुंचे; इधर से जोधाजी ने अपनी सेना पाली में एकत्र होने की आज्ञा दे दी। पाली में सेना एकत्र हुई, उस में घोड़े और ऊंट तो थे ही, परन्तु सैनिक अधिक एकत्र होने से पर्याप्त घोड़े और ऊंट नहीं मिल सके; तब गाड़े तैयार करवाय उन में सैनिक बिठाये गये। कहते हैं कि सैनिकों के पांच हज़ार शकट थे, जिन में बीस सहस्र सेना थी।

महाराणा का मुकाम नारलाई में है और जोधाजी की सेना पाली में एकत्र हो गई है। जोधाजी पाली से रवाना हो कर नाडोल पहुंचे उस समय महाराणा का मुकाम नारलाई से एक कोस उरली तर्फ़ था। दोनों सेनाओं के मध्य केवल २ दो कोस का अन्तर है, उस समय जोधाजी के घोड़ों के खुरों से और गाड़ों के पहियों से जो रज उड़ी उस से आकाश आच्छादित हो गया है। महाराणा ने ऐसी गगन-स्पर्शी रज को देख कर पूछा कि यह इतनी रज कैसे उड़ी? तब खबरनवीसों ने कहा कि जोधाजी की सेना में घोड़े ऊंट तो हैं ही, परन्तु गाड़े अधिक हैं, जिन में २०००० राठौड़ बैठे हैं। उन गाड़ों की रज से आकाश आच्छादित है। यह सुन कर महाराणा ने नापा सांखला से पूछा कि जोधाजी की सेना में गाड़े क्यों हैं? तब नापा ने अर्ज किया कि दीवान साहिब! ये राठौड़ मरना ठान कर गाड़ों में बैठ कर आये हैं। पीछे जाने का इन का विचार नहीं है। यदि आप के परस्पर युद्ध हुआ तो हज़ारों वीर मारे जायँगे और आप दोनों निर्बल हो जायंगे। इस समय मुसलमानों के भाग्य ने बल किया है। आप दोनों के निर्बल होने से मुसलमानों को राज्य बढ़ाने का अवसर मिल जायगा। आप दोनों में भी आप की हानि अधिक है; क्योंकि मुसलमान आप के ऊपर दांत लगाये हैं। मेरी समझ में युद्ध न हो कर संधि हो जाने में दोनों का श्रेय है, फिर आप अपने उमरावों से परामर्श कर लें। महाराणा ने अपने उमरावों से पूछा तो उन्होंने युद्ध के लिये सलाह दी और कहा कि आप युद्ध की घोषणा कर दीजिये, अपनी विजय होवेगी। इतने में बहुत से बुद्धिमान लोगों ने कहा कि यदि आपन जीत भी जायँगे तो भी अपनी विजय हार के बराबर होवेगी। क्योंकि इस युद्ध में बहुत से मनुष्य मारे जायगे। और कुछ बचेंगे उन थोड़े से मनुष्यों से मुसलमानों के आगे अपनी रक्षा करनी भी कठिन हो जायगी। यह सुन कर महाराणा ने नापा से कहा कि यदि उत्तमता से संधि का उपाय हो तो करना चाहिये। तब नापा ने कहा कि मैं जोधाजी के पास जा कर उपाय करूँगा। ईश्वर अनुकूल होवेंगे तो अवश्य सफलता प्राप्त होवेगी।

नापाजी जोधाजी के पास गये और उन से प्रार्थना की कि महाराणा संधि करना चाहते हैं, इस में दोनों का श्रेय है, मेरी राय में तो संधि कर लेना उचित है। जोधाजी ने कहा कि आप की ऐसी इच्छा है तो हम आप के कथन से बाहिर नहीं हैं, परन्तु हमारे पिता के वैर का बदला शेष न रह जाय। नापा ने कहा कि संधि आप की इच्छानुकूल होवेगी। फिर महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंहजी जोधाजी के पास गये और संधि के विषय में वार्तालाप हुआ। उस अवसर

में नापा ने कहा कि मेरी समझ में जय पराजय के विषय में यह सूरत की जाय कि एक योधा तो महाराणा की ओर का और एक रावजी की तर्फ़ का तैयार करके उन को लड़ाया जाय और उन के जय पराजय से निश्चय कर लिया जाय। इस बात के दोनों ओर से स्वीकार हो जाने पर महाराणा की तर्फ़ से झाला विक्रमादित्य और रावजी की तर्फ़ से वठेवासिया ऊदावत राठौड विजा तैयार किया गया। झाला ढाल तलवार ले कर युद्धभूमि मे आ उपस्थित हुआ। विजा राठौड़ रंगभूमि मे गया उस समय उस के पास ढाल नहीं थी। विजा को ढाल लाने के लिये कहा गया तो वह शत्रु को पीठ दिखाना अनुचित समझ कर पीछे नहीं लौटा और एक रहँकला (छोटा शकट) पास में खड़ा था उस का पहिया निकाल कर ढाल की एवज में ले लिया। यह इस के ढाल से भी अधिक उपयोगी हुआ, क्योंकि पहिये की ताडियों में से शत्रु दीखता रहा और तलवार का वार भी उस से बचाया गया। दोनों वीर भीम और जरासंध के समान परस्पर प्रहार करते रहे, अन्त में विजा राठौड़ ने झाला विक्रमादित्य को मार लिया। जय पराजय का निश्चय इसी पर निर्भर था, रावजी की विजय समझी गई और राव रणमल्लजी के वैर के बदले में महाराणा ने पुत्री न होने से अपने समीपी बन्धु की पुत्री को अपनी पुत्री मान कर जोधाजी को व्याह कर सोझत का प्रांत दिया और आँवल बाँवल दोनों राज्यों की सीमा नियत हुई। आंवल वाली भूमि महाराणा की और बांवल वाली जोधाजी की, यह फैसला हुआ। अब तो परस्पर ऐसी प्रीति हो गई कि मानों इन के आपस में विरोध था ही नहीं। इस प्रकार महाराणा के साथ संधि हो जाने पर रावजी नाडोल के डेरों से महाराणा के डेरों पर गांव नारलाई गये और परस्पर का वैमनस्य मिटाया। महाराणा पीछे चीतौड़ गये। ढाढी रामचन्द्र की नीशानी में महाराणा कुंभाजी के पीछे जाने को भागना मान कर इस भांति लिखा है:—

नीशानी

"राणा कुंभा भज्जिगा घीर खेत चलाया
नाडूलाई निहसिया दम्मामा वाया।"

इस विषय का प्राचीन गीत भी है —

गीत

"महरांण किसू मन धारे गाढो,
कुंभ कर वह कटक किया।
जोधा तणे सांमुहे जातां,
गाडां भै हाथिया गया।"

जोधाजी नारलाई से लौट कर नाडोल आये और खेवा से रावजी ने सींधलों पर सेना भेजी। सींधलों ने रावजी को सहायता देने में त्रुटि की थी। उस समय सींधलों का मुखिया जेसा सींधल बीसलपुर (परगना गोडवाड़) का स्वामी था। उस के अधिकार में पाली परगने के ३० गांव थे। वे सींधलों को पराजित करके मण्डोवर राज्य के शामिल कर लिये गये। महाराणा के साथ विजय के साथ संधि होने पर खेवा में बड़े समारोह के साथ प्रीतिभोज (गोठ) किया। वहां से सोझत आये।

संवत् १५१५ में रावजी सोझत से मण्डोवर आये। यहां दुबारा विधिपूर्वक राज्याभिषेक हुआ। मण्डोवर में स्थिति होने पर सरदार, उमराव, भाई, बेटे, और सेठ साहूकारों को, जिन्होंने विपत् के समय सहायता दी थी, कुरब कायदे दे कर सन्मानित किया। भाटी शत्रु-शालजी के पुत्र अर्जुन को भाद्राजण के समीप कई गांव जागीर में दिये। और कलकरण के पुत्र जेसा को थालरवा पट्ट स्थान दे कर उधर का फलोधी तक का प्रान्त दिया गया, जो मण्डोवर के राज्य से अनुमान चतुर्थांश था। खीची सारंग और मेलाजी को चौबीस चौबीस गावों के साथ गांव गांघाणी और नारवा दिये गये। सारंग-जी ने सारंगवासणी और मेलाजी ने मेलाव वसाया। इस समय सारंगवासणी घड़ाय नाम से पुकारा जाता है।

भाटी जेसा की बहिन लक्ष्मी जोधाजी के पुत्र सूजाजी को व्याही गई थी। विवाह में हथलेवा छूटने के समय सूजाजी ने जेसाजी से वह लिखत मांगा जो जोधाजी ने राज्य का चतुर्थांश देने का स्वीकार पत्र लिख दिया था। जेसा जी ने वह लिखित दे तो दिया, परन्तु अप्रसन्न हो कर मेवाड़ में चले गये और यह प्रतिज्ञा की कि अब हम जोधपुर के अधिपति को बेटी नहीं व्याहेंगे। तो भी रावजी ने उन के उपकार का स्मरण रख कर उन की जागीर बहाल रक्खी। मुहणोत नैणसी लिखता है कि खींवा राठौड़ पोकरण में राज्य करता है, वहां बालनाथ योगी का आश्रम है। बालनाथ तुंवर रामदेवजी और सांखला हरभूजी का गुरु था। हरभूजी गांव बेंगटी में शासन करते है। उन की कन्या जेसलमेर के रावल केहर के पुत्र कलकरण को व्याही थी। कलकरण की स्त्री और हरभूजी की कन्या के पुत्री जनमी। वह क्रूर नक्षत्र में उत्पन्न होने से जंगल में छोड़ दी गई। परन्तु दयालु हरभूजी दया के वशीभूत हो कर उसे घर पर ले आये और उस का नाम लक्ष्मी दिया गया। हरभूजी ने पोकरण के स्वामी खींवा के पास लक्ष्मी के संबन्ध के निमित्त नारियल भेजा, परन्तु उस ने नारियल पीछा फिरा दिया और उस के साथ यह भी कहा कि उस के दांत

बड़े हैं इस लिये मैं नही चाहता। उस लक्ष्मी का विवाह राव सूजाजी के साथ हुआ। लक्ष्मी के उदर से नरा का जन्म हुआ। नरा बड़ा हुआ और सातलजी के गोद गया और उसे फलोधी मिली। तब उस ने खींका से पोकरण छीन कर अपनी माता लक्ष्मी को संतुष्ट किया।

संवत् १५१२ में जोधेलाव तालाब का निर्माण हुआ, जो बालसमंद से मण्डोवर जाते बाएँ हाथ की तर्फ है।

संवत् १५१५ में रावजी ने नवीन गढ़ निर्माण करने का विचार किया। प्रथम मसूरिया के पहाड़ को पसंद किया। परन्तु तत्पश्चात् चिड़िया ट्रूक पर किला बनाने का निश्चय हो कर किले की नींव दी गई। किले की नींव देने से पहले गणपतिदत्त ज्योतिषी को मुहूर्त्त पूछा गया। तो उस ने अर्ज किया कि सवत् १५१५ ज्येष्ठ सुदि ८ सोमवार को वलिदान दिया जा कर ज्येष्ठ सुदि ११ गुरुवार के दिन नीव खोद कर गढ़ का आरम्भ किया जाय। और ज्येष्ठ सुदि १३ शनिवार को दरवाजे का फलसा बनाया जावे। नींव खोदने और उसे पूरने का मुहूर्त्त प्रातःकाल में है, उस से पूर्व दो मनुष्य जो अपनी रुचि से नींव में गड़ने के लिये तैयार हों, वलिदान के निमित्त नींव में गाड़े जायं। तदनन्तर खात पूरण के कार्य प्रारम्भ होना चाहिये। इस के लिये ढ्योंडी पिटवाई गई तो दो बांभी रतना* और कलिया नींव में गड़ने को राज़ी हुए उन को रावजी ने मनवाञ्छित देकर प्रसन्न किया उन के वंशजों की इज्जत अन्य यांभियों की अपेक्षा अधिक है।

नींव खोदने का कार्य आरम्भ किया गया, करमसी और रायपाल नींव खुदवा रहे थे। आगे जाते चिड़ियानाथजी का स्थान था। दोनों भाई देखते हैं तो नींव खोदी आ रही थी उसी सीध में योगी का चिमटा, खड़ाऊँ और झोली आदि वस्तु दीख पड़ी। परन्तु योगी वहां नहीं था। आवाज़ देने पर योगी आया। वह पहले रातुंगा में रहता था, वहां से आ कर यहां रहने लगा, तब से उस पर्वत शृंग का नाम चिड़िया ट्रूंक कहलाने लगा था। रायपालजी ने चिड़िया-नाथजी से कहा कि आप अपना झोली झंडा उठा लो, क्योंकि आप का आसन कोट के बीच में आने से कोट टेढ़ा होता है। योगी ने कहा कोट किले तो टेढ़े ही भले। परन्तु रायपालजी ने उस से जाने का कहा तब योगी ने शाप दिया कि तुम जिस झरने के आधार पर किला बनाते हो वह सूख जायगा। तुम योगियों को क्यों सताते हो! हम चले जायंगे। फिर वह पालासणी चला गया, अभी उन का

---

* किसी तवारीख़ में बांभी का नाम राजिया लिखा मिलता है। उस के नाम से [लगा]या हुआ राजबाग कहलाता है।

आसान पालासणी में है, जो जोधपुर से ६ कोस है। जोधाजी ने उस योगी को पीछा बुलाने को पड़िहार मेघा को भेजा, परन्तु योगी पीछा नही आया। मेघा के अत्यन्त आग्रह करने पर योगी ने कहा कि हम तो कभी इच्छा होवेगी तब आवेंगे। योगी ने जोधपुर आने का कहा था इस लिये वे जोधपुर आये। राव जोधाजी के विभूति तिलक करके हाथ में जुहाने दिये और जोधाजी ने उन के लिये मठ बनवाया था जो गिरदी कोट के साम्हने है, वहां ठहरे। योगी ने रावजी से कहा कि योगी को एक रोटी रोज़ दे दिया करें। रावजी ने रोटी के एवज़ में रोट करवाने की आज्ञा की। उसे देख कर योगी ने आशीर्वाद दिया कि "जब तक रोट तब तक कोट"। योगी सात दिन ठहरा। फिर पालासणी चला गया।

गढ़ का फलसा एक राइके की ठाणी से लाया गया, जो रानीसर तालाब की जगह थी, वह भी उसी मुहूर्त्त में खड़ा किया गया जो गणपतिदत्त ने बतलाया था। यह जोधाजी का फलसा अद्यावधि अपने नाम से प्रसिद्ध है। जहां किले पर जाने वाले सवारी से उतर आते हैं। फलसे का कार्य हो जाने पर आषाढ़ सुदि २ को किले की प्रतिष्ठा की गई और किले का नाम 'मोरधज (मयूरध्वज)' रक्खा गया। किसी ख्याति में 'महराण' नाम भी पाया जाता है। किसी ख्याति में किले के निर्माण समय करणी को बुलाना भी लिखा है। करणी शक्ति का अवतार मानी जाती है और उस का जन्म १४४४ में और स्वर्गवास १५९५ में होना कहा जाता है। इस का मन्दिर बीकानेर के महाराज जैतसिंहजी ने बीकानेरी के गांव देसणाके में करवाया।

इसी वर्ष में जोधाजी के पुत्र सातलजी का विवाह कुण्डल के अधिपति भाटी देवीदासजी की कन्या कलादे से हुआ था। जो देवीदासजी पश्चात् जेसलमेर के रावल हो गये थे। जेसलमेर का राज्य मिलने पर देवीदासजी ने कुण्डल, जो फलोदी के समीप में है, सातलजी को दे दिया था और सातलजी के दत्तक-पुत्र नरा ने आबाद किया।

उसी वर्ष ज्येष्ठ पुत्र नींबाजी सोझत का अधिकार दे कर सोझत भेजे गये।

संवत् १५१६ में बलोचों ने जांगलू के स्वामी सांखला नापा और मांडा को अत्यन्त पीड़ित किया तब वे दोनों राव जोधाजी के पास आये। जोधाजी को अपने साथ में ले जांगलू गये, उस समय उन का पुत्र बीका और भाई कांधल उन के साथ थे। जोधाजी ने उन (बलूचों) को सज़ावार कर के सांखलों का दुःख दूर किया।

रावजी उस प्रान्त से लौटते गांव काहूनी में आये। वहां कोडम देसर तालाव को देख कर, जहां उन्होंने अपने पिता रणमल्लजी की और्ध्वदेहिक क्रिया की थी और उन की माता कोड़मदे सती हुई थी, माता कोड़मदे का स्मरण हो आया जिस से रावजी ने अपनी जननी कोड़मदे के चिरस्मरणार्थ कोड़मदेसर तालाब पर कीर्तिस्तम्भ स्थापित किया, उस कीर्तिस्तम्भ में शिलालेख खुदा हुआ है, उस में लिखा है कि संवत् १५१६ शाके १३८१ भाद्रवा सुदि [२] सोमवार हस्त नक्षत्र में महाधिराय राय श्री जोधा रणमल के पुत्र ने तालाव की प्रतिष्ठा कराई और कोड़मदे के निमित्त कीर्तिस्तम्भ स्थापित किया[१]। जोधाजी की माता कोड़मदे वीकूपुर के स्वामी भाटी केल्हण की कन्या थी। और केल्हण जेसलमेर के रावल केहर का पुत्र था। यही केल्हण लखमसी के पुत्र पूगल के अधिपति राणंगदे के गोद चला गया था, जो मण्डोवर के राजा राव चूंडाजी के हाथ मारा गया था।

संवत् १५१६ में जोधाजी ने श्रीपति के पुत्र रिषभदेव को, जो जाति का सारस्वत ब्राह्मण था और जिस का अवटंक लहोड़ ओझा था, पुरोहितपन का ताम्रपत्र कर दिया था। उस में लिखा है कि "सेवग लूंब रिसी (ऋषि), जाति के सारस्वत ब्राह्मण, लहोड़ ओझा कन्नोज से सेवा ले कर आया था, इस लिये राठौड़ वंश के सेवग ये हैं। पहले इस वश की कुल देवी श्री आदि पंखणी चक्रेश्वरी, पश्चात् राव धूहड़ जी को वर दिया और नाग के रूप से दर्शन दिया जिस से नागणेचियां कहलाई और रिषभदेव के पास राव धूहडजी का ताम्रपत्र था, जो धूहड़जी ने उस के पूर्वज लूंब ऋषि को कर दिया था उसे देख कर हम (जोधाजी) ने नवीन ताम्रपत्र कर दिया है। उस के अनुसार जन्म और विवाह संवन्धी नेग और राजलोक जो प्रेत आदि करे उस के लेने के अधिकारी ये हे।" इस के साथ यह भी लिखा है कि "राठौड़ों का गोत्र गौतम और अक्रूर शाखा है"। इन के पीछे सेवड़ पुरोहित, सेवग लहोड़ ओझा और मथरेण रुद्रदेवा लगे हुए हैं।

यह ताम्रपत्र संवत् १५१६ मार्गशीर्ष सुदि २ का लिखा हुआ है। इस के अन्त में लिखा है कि दुवौ (आज्ञा) श्रीमुख, परवानगी राठौड़ करमसी (राव जोधाजी का पुत्र, सुखवास जोधपुर[२]।

---

१. संवत् १५१६ वर्षे शाके १३८१ प्रवर्त्तमाने महामाङ्गल्य भाद्रवा सुदि सोमदिने हस्त-नक्षत्रे शुक्र योगे कौलवकरणे..........राठड महाधिराय श्रीराम श्री जोधाराय श्रीरिणमलसुत तडाग प्रतिष्ठा कारिता। श्रीकोडमदे निमित्तं कीर्तिस्तम्भः स्थापितः। शुभं भवतु। कल्याणमस्तु।

२. राव जोधाजी के ताम्रपत्र की प्रतिलिपि।

यद्यपि ऊपर के ताम्रपत्र की प्रतिलिप मिली है। परन्तु उस का उल्लेख मोटा राजा उदयसिंहजी की सनद में किया गया है। जो मुद्रा सहित असली विद्यमान है। उस में लिखा है कि सेवग हरा हरा राठौड़ वंश का कदीम से नेग लेने का अधिकारी है। संवत् १५१६ का तांबापत्र देख कर हमने सनद कर दी है। यह सनद? सवत् १६३५ माघ सुदि ५ की लिखी हुई है। इस सनद से जोधाजी के ताम्रपत्र की प्रतिलिपि यथार्थ प्रमाणित होती है।

संवत् १५१६ में राव जोधाजी की हाडी राणी जसमादेजी ने राणीसर तालाब करवाया। इस विषय में प्राचीन पद्य है :—

श्रीरामजी

ी महामायाजी
श्री नागणेचियाँजी
श्री किसनजी



महारावजी श्री जोधाजी वचनायते तथा कनोज सूं सेवग लूंब रिसी जातऐ सारसुत श्रोजो व्होड़ सेवा लेनै आयो सु राठौड वंसरा सेवग श्रै है। ठेट्ठ कदीम सूं मुलगायांरो सेवग पणो इणां रो है। पहली वंस रै माताजी श्री आद पंखणीजी चक्रेश्वरीजी पछैराव श्री धूहड़जी नूं वर दीधो नै नाग रारूप सूं दरसण दीधो तरै नागणेचियां कहांणी सु धूहड़जी रो तांबापत्र ओझा रिषभदेव श्रीपत रा बेटा कनैथो सु वाचनै मै ही तांबा-पत्र करदीधो इण मुजब राठौड़ वंसरो सेवगपणो रो लवाजमो जाया परणियो नेग दापो राजलोक रावलै करै सु वरत वह्नलियो सरबेत रणां रो नेग है नै राठौड़ वंस गोतमस गोत्र अकरूर साखा री लार इनरा जणा छै पीरोत सेवड़ ओजा सेवग लोड मथरेण रुदर देवा। सो देस परदेस मांहरी आल ओलाद पीढी दर पीढी ओजा रिषभदेव री

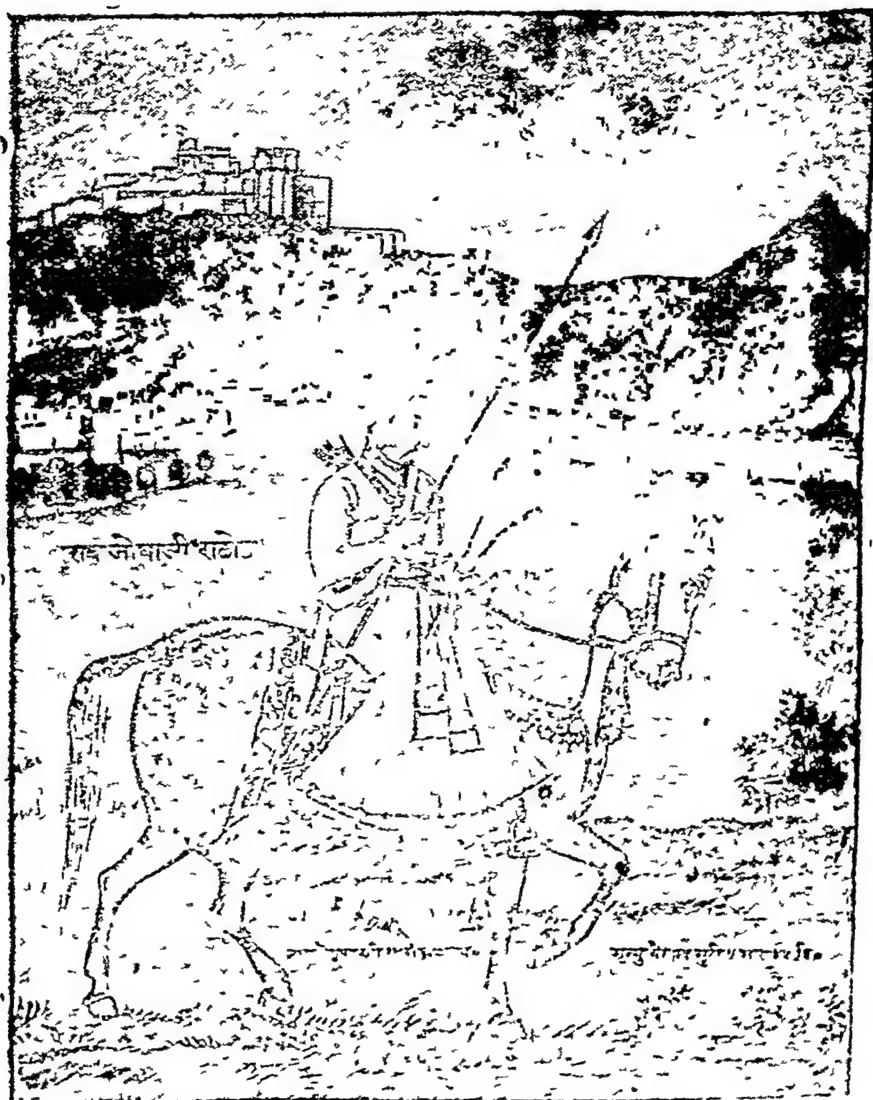
१. महाराजा उदैसिंहजी की सनद की प्रतिलिपि

माहाराजाधीराज श्री उदैसिंघजी वचनायतं सेवग हरो सदावंद कदीम सूं छै राठौड़ वंस रो सेवगपणो कदीम सूं इणरै छै तीणरो हथरेण सांमत १५१६ रो तांवा पतर मुजब परवांणो कर दीनो छै। गऊतमस गोतर अकुर साष तीन परवर कुलदेवी ······र छै राठौड़ वंस गोत्र रा लार इतरा जण छै प्रो। सेवड़ सेवग ओजा लोड़ जात रा सारसुत भीरामण द ॥ प ॥ राठौड़ वासरा पुज पुंजापारा श्रीदेव कारज रा पीत्र कारज लोड ओजारे हाथ विना उपजे नहीं सु इणरै हाथ सु हुसी सं०॥ १६३५ रा माहा सुद ५

दोहा

"समत पनर सो लो तरे, समपे माल असंख ।
हाडी राणी सर कियो, जांणे लोक खलक' ॥१॥

और माली-वेरा भी उक्त राने ही करवाया । सोनगरी रानी चांद कँवर ने चांद वावड़ी करवाई । सोनगरा चौहानों को एक शाखा है इसी से पुराने पट्टो मे यह वावड़ी चौहान वावड़ी लिखी गई है ।



संवत् १५१७ में राव जोधाजी ने चामुण्डा माता की मूर्ति मण्डोवर से ला कर एक बुर्ज वनवा कर स्थापित की जिस बुर्ज को चामुण्ड बुर्ज कहते हैं । वहां प्रथम चामुण्डा का स्थान था ।

इसी वर्ष में सोझत प्रान्त के मेर लोग बिगाड़ करने लगे। एक दिन वे बगड़ी मे आ गये ; राठौड़ अखैराजजी ने उन का पीछा किया; रवाना होते समय उन के पुत्र पचायणजी ने, जिन की उम्र १२-१२ वर्ष की होगी, नंगे सिर आ कर कहा कि मै भी आपके साथ चलूंगा। अखैराजजी ने निषेध किया। परन्तु वे भी अपनी बछेरी पर सवार हो भाला ले उन के पीछे चल पड़े। अखैराजजी मेरों के सरदार चोलिया भँवर बंवाल को पहुंचे, और उस का ढग देख कर उन्होंने रात्रि में उस पर आक्रमण करने का ठाना। पंचायण पहुंचते ही उस शत्रु के ऊपर टूट पड़ा, तब राजपूत भी उस के साथ हो गये और पचायण के एकदम जाने से शत्रु घबरा गया और पंचायण के हाथ वह मारा गया। पंचायण ने शत्रु को मार पिता के पास आ कर प्रणाम किया, उसे देख कर पिता को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और नेत्रों में प्रेम के अश्रु भर आए।

उक्त वर्ष में रावजोधाजी को पुत्री राजबाई का विवाह मोहित शाखा के चौहान राणा सांवतसिह के पुत्र छापर द्रोणपुर के अधिपति अजीतसिंह के साथ हुआ था। इन का स्वभाव अत्यन्त विलक्षण था, इस लिये रावजी ने अपने मनुष्यों को सचेत कर दिया था कि कोई उन से हँसी ठट्ठा अथवा और किसी प्रकार के अभिमान को वार्ता नही करै। तदनुसार व्यवहार रहने से विवाह निर्विघ्न हो गया।

संवत् १५१८ में राव जोधाजी ने अपने पुत्र वरसिंह और दूदा को सेना साथ में दे कर मेड़ते को तर्फ़ भेजा। मेड़ते में अपने निवास का सूचक निशान खड़ा किया गया। और पुरातन मेड़ता नगर में कुछ दक्षिण की ओर मेड़ता नगर को आबाद किया।

संवत् १५१८ में सब प्रकार की सुविधा हो जाने पर जोधाजी ने तीर्थयात्रा का विचार किया। उसी अर्से मे भाद्राजण के अधिपति सीधल आपमल ने कुमार शिवराजजी को भूमि दिलाने के निमित्त सिवाना के अधिपति राव विजाजी का वध करके उन के पुत्र देवीदास को भी मारना चाहा था परन्तु उस मे आपमल को मार करके अपने पिता के वैर का बदला लिया और शिवराजजी सिवाना से वञ्चित रह कर गांव दूनाड़ा में पड़े रहे।

राव जोधाजी तीर्थयात्रा के निमित्त रवाना हुए। मार्गमें आगरा नगर मे मुकाम हुआ। कनौजिया राठौड़ राजा करण आगरा नगर में थे, जो दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी की तर्फ से शमसाबाद (जिस का प्राचीन नाम खोर था) मे सूबहदार थे। राजा करण को जोधाजी के आने की ख़बर लगी तब वे मिलने आये। और रावजी

को परिचय कराते हुए कहा कि मैं आप का समीपी बन्धु हूं। राव सीहाजी तो मारवाड़ की तर्फ चले गये और उन के भाई (हमारे पूर्वज) अजपाल के वंशज हम हैं। आप हमारे समीपी बन्धु हैं। राव जोधाजी ने कहा कि मैं आप को भूल नहीं गया हूं; मैं आप से भली भाँति परिचित हूं। मैं आप से मिलना चाहता ही था, अच्छा हुआ कि आप स्वयं आ कर मिले। मैंने सुना है कि तीर्थों पर बादशाही कर लगता है। यदि वह किसी प्रकार से उठ जाय तो संसार को बहुत बड़ा लाभ पहुंचे। मुझे बादशाह की परवाह नहीं है, परन्तु जगत् के हित और लाभ के लिये मेरा प्रयत्न है।

राजा करण ने बादशाह के आगे प्रसंग पाकर राव जोधाजी की वीरता की प्रशंसा की. बादशाह ऐसे वीर पुरुषों को चाहता ही था घर बैठे गंगा मिलने का प्रसंग बन गया। बादशाह ने रावजी से मिलने का समय नियत कर के मुलाकात की। रावजी को सन्मान सूचक, मेघाडम्बर, छत्र, चमर, हाथी और बहुत से रत्न जटित आभूषण दिये। बादशाह ने अन्य वार्तालाप के अनन्तर कहा कि हमारा विचार गुजरात पर चढ़ाई करने का है; क्या आप उस में सहायक होवेंगे? रावजी ने कहा कि आप का मनोरथ सिद्ध होगा, मैं सहायतार्थ सब प्रकार से सज्ज हूं। परन्तु मुझे १ एक मास पहिले सूचना हो जानी चाहिये कि मैं भी तैयार हो जाऊं, इस प्रकार परस्पर प्रेमानुबन्धन बंध जाने पर रावजी ने बादशाह से कहा कि एक कार्य के लिये मैं भी आप से निवेदन करता हूं, जिस के करने से जगत् को आप की कृपा का फल विदित हो जायगा। वह कार्य यह है कि आप के राज्य में समस्त तीर्थों पर राज्य का कर लगता है। यदि मुझ पर कृपा कर के छोड़ दिया जाय तो जगत् में आप की बड़ी कीर्ति होगी और सब हिन्दुओं का मन आप की ओर रजु हो जावेगा। बादशाह ने रावजी की अर्ज मंजूर कर के तीर्थ कर लेना बंद कर दिया। फिर रावजी ने करण के यहां भोजन किया और वहां से रवाना हो कर गया पहुंचेः जिस निमित्त से आप की यात्रा थी।

उस समय गया तीर्थ जौनपुर के बादशाह हुसेनशाह के अधिकार में था। रावजी उस से मिले। उस ने भी रावजी का परिकर और रंग ढंग देख कर उन का अत्यन्त सन्मान किया। अन्य वार्ता लाप के अनन्तर रावजी ने कहा कि मैं गया तीर्थ पर पिता को पिण्ड देने के लिये आया हूं, और आप का यहां कर लगता है। मेरा देश राजपूताने में है और राजपूताना वाले इस कर के देने से मुझ को राजाओं की गणना में अधम समझेंगे। इस अपमान को सहन करता

अति अशक्य है। इस लिये प्रार्थना है कि यदि यह कर मुआफ़ कर दिया जाय तो बड़ी कृपा होगी। बादशाह ने कहा कि आप को कर नहीं लगेगा। तब रावजी ने फिर कहा कि यदि आप अपनी नामवरी चाहते हैं तो सब का ही कर छोड़ देना चाहिये। बादशाह ने इस प्रार्थना को भी स्वीकार करके आज्ञा दे दी कि आज से गया पर कर किसी से नहीं लिया जाय। रावजी के विदा होते समय बादशाह ने रावजी से कहा कि एक कार्य हमारा भी आप करते जाइये। वह यह है कि ग्वालियर के प्रान्त में भोमिये की दो गढ़िया अत्यन्त विकट हैं उन का आश्रय ले कर भोमियें तंग करते हैं। आप उन्हें विध्वंस कर दें तो बहुत उत्तम होगा, रावजी ने स्वीकार किया और पीछे लौटते उन को तोड़ फोड़ कर भोमियों को सरल बना दिया।

गया का कर छुडाने के विषय में मेवाड़ प्रान्त के गांव घोसुंडी का शिलालेख प्रमाण है। उस में लिखा है कि "जोधाजी[1] ने गया का कर छुड़ा कर पित्रीश्वरों को तृप्त किया और अपने खड्ग बल से कई मुसलमानों को मार कर विजय प्राप्त किया था।

कह आये हैं कि रावजी के पदाधिकारी पुत्र नींबाजी रावजी की आज्ञा से सोझत में निवास करते थे। संवत् १५२१ में बीसलपुर के स्वामी सींधल जेसा ने पाली की गैयों को घेरा। राठौड़ गौ ब्राह्मण के प्रतिपालक हैं सुनते ही उस पर चढ़ गये। परस्पर युद्ध हुआ जिस में सींधल जेसा मारा गया। नींबाजी की विजय हुई। परन्तु उन के घाव बहुत लगे थे। दूसरे घाव तो चंगे हो गये परन्तु एक पुनः फट गया जिस से उन का स्वर्गवास हो गया। नींबाजी ने सोझत का कोट करवाया था।

इसी वर्ष में रावजी के चित्त को दुखाने वाली एक घटना और हो गई। वह यह थी कि छापर द्रोणपुर के अधिपति रावजी के जामाता मोहिल राणा अजीतसिंजी जोधपुर आये। उन का स्वभाव अत्यन्त चक्र, तीक्ष्ण और हठीला था। उन को ससुराल मे निवास करते बहुत समय हो गया है, उधर घर का कार्य बिगड़ता है। तब उन के कार्यकर्ताओं ने परस्पर परामर्श किया कि राणाजी तो यहां ससुराल के सुख में निमग्न हैं और उधर घर का काम बिगड़ता है, इसलिये निवेदन किया जाय। परन्तु किसी का हियाव नही कि उन से कोई इस बात की अर्ज करे। तब दीवान ने कहा कि मै यह

---

[1] ोधक्षितिपतिरुग्रखड्गधारानिर्घातप्रहतपठानपारशीकः ॥ ५ ॥
ातार्प्सीद्गूयया विमुक्तया काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः ॥"

उपाय रचता हूँ कि जिस से राणाजी घर को लौट जायँगे। वा
यह है कि आप के भतीज वछराजजी का मनुष्य आया है, वह कहत
है कि छापर द्रोणपुर पर जाट चढ़ आये हैं, मैं तो इस समय म
मिटूंगा परन्तु ठिकाना हाथ से चला जायगा। आप शीघ्र आ क
घर सम्हालें। दीवान ने वैसा ही किया जिस से अजीतसिंहजो राव
जोधाजी से विदा न ले कर शीघ्र रवाना हो गये। छापर द्रोणपुर के
समीप पहुंचे तब दीवान ने कहा कि राठौड़ों ने आप को मारने का
षड्यन्त्र रचा था और आप के प्रतिज्ञा है कि कोई कपट अथवा
साम्हना करना चाहे और आप को विदित हो जावै तो आप लड़े
विना नहो रहैं इस लिये हम यह बहाना कर के आप को ले आये हैं।
अजीतसिंहजी ने दीवान को कहा कि तुमने तो हमारे हितैषी होने
से अच्छा ही किया है परन्तु मैं अपना प्रण कैसे छोड़ सकता हूं।
ऐसे कह कर वे वहीं डट गये और मारवाड़ में उपद्रव करने लगे।
जब वे उच्छृङ्खल हो कर मर्यादा से बाहिर हो चले और मारवाड़
की प्रजा अत्यन्त दुःखित हो कर रावजी के पास पुकारू आई तब
रावजी ने अपने देश की रक्षा के निमित्त सेना भेजी और सेनापति को
कह भी दिया था कि अजीतसिंहजी का वध न होना चाहिये। गांव
गगराणा में मुकाबला हुआ जिस में अजीतसिंहजी मारे गये। रावजी
को इस घटना से महादुःख हुआ, परन्तु भावी प्रबल है उसे कौन टाल
सकता है? नैणसी लिखता है कि जोधाजी की इच्छा जामाता को मार
कर मोहिलावाटी लेने की थी, परन्तु यह उस का लिखना असत्य
है। क्योंकि यदि जोधाजी की इच्छा वैसी होती तो वहीं (जोधपुर में
ही) मार देते। जाने क्यों देते? दूसरा अजीतसिंहजी के मरने पर
मोहिलावाटी पर अपना अधिकार कर लेते। वह नहीं किया जिस से
उन का जामाता को मारने का विचार बिलकुल नहीं था। वे अपने
ही हटीले स्वभाव के कारण मारे गये। उस के पश्चात् वछराज ने भी
मारवाड़ के गांव लूटने शुरू किये। तब उन का भी वध करना पड़ा।
तत्पश्चात् वछराज के पुत्र मेघा ने विनीत हो कर नम्रता धारण की
तब वह प्रान्त मेघा को पुनः दे दिया गया। मेघा के मरने के पश्चात्
उस का पुत्र वैरसाल राज्याधिकारी हुआ, उस ने फिर बखेड़ा किया
तब उसे पराजित कर के संवत् १५३१ में मोहिलावाटी पर अपना
अधिकार किया।

संवत् १५२२ में बीकाजी के वास्ते सांखला नापा और गोदारा
जाति के जाट निकोदर ने जोधाजी से अर्ज करी कि हमारे यहां जाटों
का अत्यन्त उपद्रव है आप कृपा कर के बीकाजी को हमारे साथ भेजें
तो हम इन को अपना स्वामी समझेंगे। हमारा तो दुःख दूर हो
जायगा और आप का पुत्र देश का स्वामी हो जायगा। इन को ले जाने

का मुख्य कारण यह है कि हम से उसे भूमि का शासन किया जाना दुष्कर हो गया है और आप का वहां पूर्ण प्रभाव पड़ रहा है। मुझे विश्वास है कि आप का नाम सुनते ही शान्त हो जायंगे और आप के आज्ञाकारी वन जायंगे। जाटों में से जो कोई आज्ञा का पालन नहीं करेगा उस की भूमि छीन कर हम उस पर इन का कब्जा करा देंगे। शनैः शनैः सब भूमि आप के अधिकार में आ कर एक अच्छा राज्य वन जाना कुछ कठिन नहीं है। नापाजी के वचन पर रावजी का पूर्ण विश्वास था। रावजी ने वीकाजी को जाने की आज्ञा दे कर उन के साथ भाई कांधल को भेजा। रवाना होते समय कांधल ने रावजी से कहा कि यदि मैं किसी युद्ध में किसी के हाथ मारा जाऊँ तो बदला कौन लेगा? यह मैं जानना चाहता हूं। कांधल के वचन सुन रावजी ने कहा कि यदि तुम वीर गति को प्राप्त हो जाओगे तो वदला मैं लूंगा।

अब वीकाजी जोधपुर से रवाना हो मंडोर में आये। वहां अपने इष्ट देव भैरव की मूर्ति थी उसे वीकाजी ने अपने तांगे में रख लिया और नापा के साथ रवाना हुए। गांव देसणोक में करणी से मिले, जो शक्ति का अवतार मानी जाती थी। उस ने वीकाजी का उत्साह बढ़ाते कहा कि तुम को यहां सफलता प्राप्त होवेगी। करनी के कहने से वीकाजी ने प्रथम गांव चूंडासर में तीन वर्ष निवास किया। वहां से देसणोक और वहां से कोड़मदेसर में निवास किया और वहीं गोरा भैरव की मूर्ति स्थापित की।

संवत् १५२४ के आस पास राव जोधाजी के पुत्र करमसी, रायपाल और वणवीर पिता से आज्ञा ले कर भूमि प्राप्त करने के लिये वाहिर निकले। उन को नागोर के स्वामी फतनखां ने बुला लिया। करमसी को खीवसर और रायपाल को आसोप दी। वणवीर बड़े भाई करमसी के शामिल रहने लगा। राव जोधाजी को इस बात की ख़बर हुई तब उन्होंने उन को अपने पास बुला लिया।

फिर रावजी ने फतनखां पर चढ़ाई की, दोनों में परस्पर युद्ध हुआ। फतनखां पराजित हो कर भाग गया तब रावजी ने नागोर के बहुत से गांव अपने राज्य में मिला लिये। इस समय खीवसर और आसोप पर भी रावजी का अधिकार हो गया था। रावजी ने तीनों भाइयों को, जो वीकाजी के पास चले गये थे। बुला कर वही भूमि दे दी। करमसी और रायपाल वीकानेर के राव लूणकर्ण के साथ नारनोल में मारे गये और वणवीर सीरोही में मारा गया।

संवत् १५२५ में मेड़ता नगर आबाद हो गया, वरसिंघजी मेड़ते में शासन करते थे और दूदाजी बीकाजी के पास चले गये थे। वर-

सिंहजी से मुसलमानों ने मेड़ता छुड़ा लिया तब वरसिंहजी सांगण (अजमेर) चले गये। अवसर पा कर दूदाजी बीकानेर से ड़ते आये और उसे राजधानी बना कर शासन करने लगे, जिन के शज मेड़तिया राठौड़ है।

संवत् १५२५ में महाराणा कुंभा का पुत्र उदयसिंह पिता को मार कर राज्याधिकारी बन गया। जोधाजी ने इस बात से रुष्ट हो कर उन पर आक्रमण करने का निश्चय किया। महाराणा उदयसिंह को इस वात की ख़बर लगी तब उस ने रावजी को अजमेर दे कर अपना पीछा छुड़ाया। उस समय सांभर पर चौहानों का अधिकार था, वे अजमेर के आधीन होने से सांभर पर भी जोधाजी का अधिकार हो गया।

संवत् १५२७ के आस पास बीकाजी को जांगलू की ओर निवास करते अनुमान पांच छः वर्ष हो गये हैं। उस समय उस प्रांत में अधिकतर सांखलों और जाटों का बड़ा परिकर था। कुछ भूमि सांखलों के अधिकार में थी और कितनी ही भूमि पर जाट अपना आधिपत्य जमाये थे। एक एक का मातहत नहीं था। सब अपनी भूमि के स्वतन्त्र स्वामी वने हुए थे। इसी हेतु राठौड़ों को भूमि प्राप्त कर राज्य जमाने का अवसर मिला।

मूता नैणसी लिखता है कि साहरण जाति के जाट पांडों की स्त्री मलकी पति से रुष्ट हो कर चौधरी निकोदर के पास जाना चाहती थी। उसे निकोदर उड़ा कर ले गया। यह निकोदर वही है जो सांखला नापा के साथ बीकाजी को लेने के लिये जोधाजी के निकट गया था और उन्हीं के अधिकृत देश में निवास करता था। बीकाजी का उस पर पूर्ण अनुग्रह था। इस वात को सोच कर पांडो ने गांव सिचाणी के जाट नरसिंह के समीप जा कर अपना दुःख निवेदन किया और उस से कहा कि तुम निकोदर को नीचा दिखा दो तो मैं अपनी भूमि तुम्हें दे दूं। नरसिंह ने भूमि के लोभ से स्वीकार किया और अपनी सेना को सझ कर साथ हो लिया। ये दोनों निकोदर के गांव लगड़िया में पहुंचे। निकोदर भी सझ कर सामने आया। दोनों में युद्ध हुआ। निकोदर के १४० मनुष्य मारे गये। निकोदर का पुत्र भाग कर बीकाजी के पास गया और समस्त वृत्तान्त कहा। सुनते ही बीकाजी अपनी सेना ले कर नरसिंह पर गये, युद्ध हुआ उस में नरसिंह कांधलजी के हाथ मारा गया और सब सामान बीकाजी के हाथ आया और नरसिंह की अधिकृत भूमि बीकाजी के हाथ लगी।

ऐसे ही वेणीवाल जाति के जाट दासू ने आ कर कहा कि आप राणी खेड़े के जाटों को विध्वस्त करें तो उन की भूमि तो आप के हाथ

आवेगी ही, परन्तु मैं भी अपनी भूमि आप के आत्मसात् कर सकता हूं। वीकाजी और क्या चाहते थे, इन दोनों के परस्पर द्वेष के कारण दोनों की भूमि वीकाजी के हस्तगत हुई।

भाटी लोग भी उद्दण्ड हो कर चलते थे उन को दण्डित करने के लिये कांधलजी के पुत्र अड़कमाल को भेजा। उस ने भाटियों को दण्डित कर के नम्र बना दिया। अब तो वीकाजी का राज्य बहुत बढ़ गया है, शत्रु शान्त हो गये हैं। कितने ही जाटों की भूमि तो वीकाजी ने उन को परास्त कर के ले ली और कितनों ही ने उन के आश्रित हो कर दे दी, जिस से राज्य की सीमा दूर दूर तक पहुंच गई।

संवत् १५३० में छापर द्रोणपुर का स्वामी मोहिल मेघा मर गया तब उस का पुत्र वैरसल मालिक हुआ।

संवत् १५३१ में सांखलों की भी इच्छा राज्य बढ़ाने की हुई, वे इधर उधर की भूमि दबाने लगे और धन के लालच से चोरी धाड़े करने में उन की प्रवृत्ति हुई। रावजी ने उन को मना किया तो वे दूसरों के नाम बतला देते और कहते कि आप जिस का उपद्रव देखें उसे दण्ड देवें। रावजी ने उन को शान्त कर के मोहिलों पर चढ़ाई की। मोहिल वैरसल और नरबद दोनो भाई भाग कर क्यामखानी फतनखां के पास जूंझणू चले गये। रावजी ने जूंझणू फतहपुर पर चढ़ाई की। क्यामखानी साम्हने आ कर लड़े, भीषण युद्ध हुआ। उस में रावजी की विजय हुई।

अब तो वैरसल और नरबद चीतोड़ गये और उन्होंने महाराणा रायमल्लजी से सहायता मांगी परन्तु रायमल्लजी ने उन को आश्रय नही दिया। तब वैरसल देहली के बादशाह बहलोल लोदी के पास गया और नरबद जौनपुर के बादशाह हुसेन शाह के पास गया। दोनों बादशाहों ने उन की सहायता के लिये सेना भेजी। वह जूंझणू के पास पहुंची उस समय रावजी की सेना भी वहां पहुंच गई। शत्रु-सेना निकट आ जाने पर रावजी ने आज्ञा की कि कांधल के पुत्र वाघा के कथन से ज्ञात हुआ है कि मोहिल बाईं ओर हैं इस लिये जिन के घोड़े दुर्बल और सवार अधिक अवस्था वाले होवें वे बाईं तर्फ़ कर दिये जावें और इन से अन्य दाहिनी ओर रहें। फिर पैदल सेना का भी उसी तरह विभाग कर के वह साम्हने फैला दी जावे। और अच्छा दृढ़ स्थान देख कर मोरचे कायम किये जावें। इसी तरह प्रबन्ध हुआ। फिर दोनो सेनाओं का मुकाबला हुआ। जोधाजी की तर्फ से हल्लो पर

हल्ले हुए। राठौड़ो का यह युद्ध का दृश्य देखने योग्य था। राठौडोंकी तलवार और भाले अत्यन्त प्रसिद्ध है। देहली का सेनानायक सारंग-खान और जौनपुर का जानदीखान दोनों वुरी तरह पराजित हो कर भागे। और मोहिल तो ऐसे पिटे कि अपना माल असवाब और शस्त्र तक नही सँभाल सके। जोधाजी ने शत्रु सेना के पुनरागमन की शंका से वहां मुकाम रक्खा। उस के न आने का निश्चय हो जाने पर रावजी छापर द्रोणपुर गये और वहां अपनी आज्ञा प्रवृत्त की। और अपने पुत्र जोगा को वहां का अधिकार दे कर आप जोधपुर आ गये। कुमर जोगा प्रवन्ध करने के योग्य नही था। वह भोला सा मनुष्य था। उस से वहां का प्रवन्ध न हो सका। और शत्रु भूमि दवाने लगे तव उस की स्त्री ने जोधाजी को लिखा कि आप के पुत्र से इस भूमि का प्रवन्ध नही होगा। विजय की हुई भूमि हाथ से निकल जायगी। आप दूसरा प्रवन्ध करें। तव जोधाजी ने जोगा के स्थान पर कुमर वीदा को भेजा जो वीकाजी का सहोदर था। उस ने उस प्रान्त का वहुत उत्तम प्रवन्ध किया, जिस से उस प्रान्त का नाम वीदावाटी कहलाने लगा।

मूता नैणसी लिखता है कि कौरव पाण्डवों के समय में भारद्वाज का पुत्र द्रोणाचार्य छापर के परगने में आया और उस ने छापर नगर से दो कोस के अन्तर पर काला डूंगर के समीप अपने नाम से द्रोणपुर नगर वसाया। इस प्रान्त में छापर और लाडणू दो वड़े नगर गिने जाते थे। करणावटी और किरतावटी इसी प्रान्त के शामिल थी। चौहान शाखा के मोहिलों ने इस प्रान्त को अपने अधिकार में किया तव से इस प्रान्त का नाम मोहिलावाटी कहलाने लगा। इस प्रान्त पर प्रथम परमार वशी डाहलिया शाखा के राजपूतों का अधिकार था। वागड़िया चौहान नागोर प्रान्त में थे। उन्होंने डाहलियों को विजय कर के अपना अधिकार कर लिया और राज्य वैभव वढ़ जाने से गर्व में चकनाचूर हो गये तव उस गर्वगञ्जन परमात्मा ने मोहिलों को खडा किया। उन्होंने वागड़ियों को विजय कर के यह प्रान्त ले लिया। उन से राठौड़ों के हाथ में आया।

संवत् १५३५ में जालोर के पठान और सिरोही देवड़ों ने मार-वाड में लूट खसोट कर के देश को विगाड़ना शुरू किया। रावजी ने प्रथम जालोर की तर्फ वरजांगजी को भेजा। उन्होंने जालोर को घेर शत्रु पर आक्रमण किया। जालोर के मुसलमानों ने भी युद्ध किया परन्तु राठौड़ों की तलवार के आगे उन को झुकना पड़ा और सधि कर के आत्मरक्षा की।

इस विषय का यह प्राचीन पद्य हैः—

"जालोरा जोखम खिवै मिल मौजां लाया"

जालोर को सीधा कर के वरजांगजी सीधे सीरोही पर गये। उस समय सीरोही का राव लाखा था। वह भी बड़ा वीर पुरुष था, अपनी सेना ले कर मुकाबले में आया, कई दिनों तक युद्ध होता रहा, अन्त में सामग्री का अभाव हो जाने से सीरोही छोड कर पहाड़ में चला गया। और वरजांगजी के पास सधि के निमित्त प्रतिष्ठित पुरुष भेजे। वरजांगजी ने फौज खर्च के एक लाख रुपये ले कर सधि कर ली। इस विषय का प्राचीन पद्य यह है —

"सतरेसां सीरोहियां सिर बोल सहाया"

संवत् १५३८ की साल राव जोधाजी के पुत्र वणवीर ससुराल सीरोही गये थे। उस समय सीरोही के राव लाखाजी पर शत्रुओं का आक्रमण हुआ, लाखाजी युद्धार्थ साम्हने गया। लाखाजी के अगाड़ी लड़ कर वणवीर स्वर्ग को सिधारा। वणवीर के स्वर्गवास के समय का शिलालेख संवत् १५३८ का खीवसर मे मिला है।

संवत् १५४२ मे वीकाजी के मन मे किला बनाने का विचार हुआ, उन का मन कोड़मदेसर में किला बनाने का था परन्तु उस के वदल जाने से भाटी सेखाजी से, जो उन के श्वसुर थे, पूछा कि हम किला वनाना चाहते हैं, कहां बनाया जाय ? उन्होंने दूर की भूमि वतलाई। परन्तु कांधलजी और नापाजी की सलाह से उस स्थान पर किले की नीव दी गई जहां इस समय किला बना हुआ है।

संवत् १५४३ मे आमेर के महाराणा चन्द्रसेणजी ने सांभर पर अपनी सेना भेजी। उन्होंने यह सोचा कि सांभर आमेर से निकट है और जोधपुर से दूर पड़ता है इस लिये मारवाड़ की मदद मुश्किल से पहुंच सकती है। आंबेर की सेना सांभर पहुँची। सांभर मे जो रावजी के मनुष्य थे उन्होंने उसे रोका और रावजी को ख़बर भेजी। रावजी ने तुरंत सेना भेजी। राठौड और कछवाहों के परस्पर पांच दिन तक शाश्वत युद्ध हुआ। अन्त मे कछवाहे परास्त हो कर चले गये और रावजी को विजय हुई।

संवत् १५४४ में रावजी को सीधल नरसिंह का स्मरण हो आया जिस ने नरवद के भाई आसकरण को मार डाला था। इधर उधर देख कर रावजी ने दूदाजी के सामने देख कर कहा कि सताजी के पुत्र आसकरण को जैतारण के स्वामी सीधल नरसिंह ने मारा था, वह नरसिंह तो मर गया है परन्तु उस का पुत्र मेघा जैतारण का स्वामी है, उसे दण्ड दे कर वैर का वदला लेना है। इतना सुनते ही दूदाजी ने अञ्जलि बांध कर निवेदन किया कि आज्ञा होवे, मैं उसे

दण्ड दे कर बदला लूंगा। रावजी ने कहा कि तुम सपूत हो जावो। फिर दूदाजी के साथ अपनी सेना दे कर कहा कि मेघा बड़ा वीर है, सावधान रहना। दूदाजी रवाना हो कर जैतारण गये। खबरनवीश ने मेघा को खबर दी कि जोधपुर की सेना आप पर आई है। मेघा ने यह सुन कर उच्च स्वर से कहा कि अपने घोड़े घोड़ियाँ उधर न जाने पावें, नहीं तो शत्रु के हाथ पड़ जांयगे। एक कोस का अन्तर था, उस शब्द को सुन कर दूदाजी ने पूछा कि यह गंभीर स्वर से कौन बोल रहा है? दूदाजी के सरदारों में से एक ने कहा कि यह उसी मेघा सींधल का शब्द है। यह महाबलवान् और पराक्रमी पुरुष है। यह सुन कर दूदाजी का उत्साह और जोश द्विगुणित हो गया और कहलाया कि मैं घोड़े घोड़ियाँ चुराने नहीं आया हूं। मैं नरबद के भाई आसकरण को मांगता हूं मेघा ने कहा कि मेरे सुभट तो मेरे पुत्र की बरात में गये हुए हैं, मैं जैसा हूं, आता हूं। वह थोड़े से मनुष्यों से दूदाजी के डेरे के निकट चला आया। उस का धैर्य और साहस देख कर दूदाजी ने कहा कि मैं आप के साहस को देख कर बहुत प्रसन्न हूं। अब मेरा कहना है कि अपना द्वन्द्व युद्ध हो जावे। दूसरों को वृथा नहीं मराया जावे। दोनों वीर रणाङ्गण में आ उपस्थित हुए। इन दोनों की जोडी ऐसी दिखाई देती थी मानों सुग्रीव और बाली ही खड़े हुए हैं। कुछ समय तक अति विचित्र युद्ध होता रहा। उन के विचित्र समर कौशल को देख कर दोनों दल के सुभट चित्र कढ़े से खड़े रहे। अन्त में दूदाजी के हाथ से मेघा मारा गया। मेघा के मनुष्य वैर को न बढ़ा कर अपने स्वामी के शव को ले कर अपने घर चले गये। राव जोधाजी के निकट जा कर दूदाजी ने प्रणाम किया। जोधाजी धर्म युद्ध की वार्ता को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

संवत् १५४४ में राव बीकाजी ने चचा कांधलजी से निवेदन किया कि अब आप अपना मुकाम हिसार की तर्फ ही कर लीजिये; जहां सारंगखान का अत्यन्त उपद्रव है। आप के स्थिति किये बिना यह उपद्रव शान्त होना अशक्य है। कांधलजी बड़ी सेना ले कर उधर गये। और गांव सेरड़ा में मुकाम किया, जो हिसार के समीप था। हिसार में सारंगखान सूबहदार है। उस ने कांधलजी का आना सुन कर मन में विचार किया कि इन की यहां स्थिति हमारे लिये हितकर नहीं है। इस से अवश्य हानि की संभावना है। सारंगखान की तर्फ से उन के प्रदेश में उपद्रव होने लगा और कांधलजी ने उस भूमि को युद्ध के योग्य न समझ कर गांव रोजासर में मुकाम किया। जब वहां उन की स्थिति दृढ हो गई तब सारंगखान के अधिकृत प्रान्त में इन्होंने लूट पाट करनी शुरू की। सारंगखान ने उस के लिये यह प्रबन्ध किया कि गुप्त दूत उधर लगा दिये और अपनी सेना

-में यह आज्ञा दे दी कि घोड़े अष्ट प्रहर जीन कसे रहें और सिपाही हर समय शिलह किये तैयार रहें। एक समय खबरनवीशों ने सूबहदार को आ कर कहा कि इस समय कांधल को मारने का मौका है। वे थोड़े से सवारों से धाड़ा मार कर गांव साहवा के तालाब पर ठहरे हुए हैं। सारगखान तुरत वहां पहुंचा। घोड़ों के खुरों से रज उड़ी, वह उन के दृष्टिगोचर हुई। कांधलजी तुरंत समझ कर तैयार हो गये और सामने चले। दोनों ओर से तलवार चली। काट वाढ़ शुरू हुई। झड़ाझड़ तलवारें बजती हैं, वीर रणखेत मे गिरते हैं। उस समय कांधलजी एक नये घोड़े पर सवार थे। वह घोड़ा ठेके बहुत दिया करता था। कांधलजी को ऐसा तेज़ घोड़ा पसंद था। कांधलजी बहुत फुर्ती से उस पर सवार हुए, सवार होते ही उस ने तीन चार ठेके भरे जिस से जीन के तंग टूट गये। कांधलजी जीन समेत ज़मीन पर गिर पड़े। कांधलजी को गिरते सारंगखान ने देख लिया। देखते ही अपने सवारों को आज्ञा की कि देखते क्या हो? शत्रु हाथ पड़ गया है। ख़ुदा ने अच्छा मौका दिया है। इधर कांधलजी ने अपने पुत्र नीवा, सूरा, राजसिंह को कहा कि ये सवार मुझ पर आ रहे हैं, तुम इन को रोको जितने में मै तंग दुरुस्त कर के घोड़े पर सवार हो जाऊं। उन से शत्रु सेना रुक न सकी और शत्रु शिर पर आ पहुंचे। कांधलजी घोड़े को छोड़ तलवार ले कर शत्रु-सेना के साम्हने चले। अभिमन्यु के समान बहुत से सवारों से घिरे हुए कांधलजी ने अपनी तलवार से काम लेना शुरू किया और कई सवारों को मार गिराया। परन्तु अपने शरीर पर इतने प्रहार हुए कि तमाम शरीर घावों से पूर्ण हो गया; अन्त में अचेत हो कर उन्होंने पृथिवी का आलिङ्गन किया। राठौड़ वीर कांधलजी के पृथ्वी पर पड़ने पर भी जी तोड़ कर लड़े जिस से शत्रु-सेना आगे न बढ़ सकी, और कांधलजी का मृत शरीर ले कर रोजासर में चले आये। कांधलजी की और्ध्वदेहिक क्रिया कर के वीकाजी के पास खबर भेजी।

वीकाजी ने भीष्म पितामह के सदृश अपने चचा कांधलजी की मृत्यु के दुःखप्रद समाचार सुनते ही कहा कि मै अपने चचा के मारने वाले शत्रु को न मारूँ तब तक मेरा जीना न जीना समान है। या तो मैं शत्रु को मार कृतकृत्य होऊं, या मैं शत्रु के हाथ से मर कर अपने कर्तव्य का पालन करूँ। जिन कांधलजी ने इस राज्य को स्थापित करने और बढ़ाने के लिये कैसे २ कष्ट सहन करते तन मन से लड़ कर शत्रुओं का दमन किया था, मैं नही चाहता कि मैं उन को जीतेजी भूल जाऊं। ऐसा कह कर वीकाजी ने सारंगखान पर चढ़ाई करने की आज्ञा की। उस समय सांखला नापा ने वीकाजी से निवेदन किया कि आप इतनी त्वरा नही करें, प्रथम राव जोधाजी को ख़बर

देनी चाहिये, क्योंकि उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारे मारने वाले को मार कर मैं वैर का वदला लूंगा। वीकाजी ने जोधाजी के पास मनुष्य भेज कर कहलाया कि आप ने कांधलजी को रवाना करते समय जो प्रतिज्ञा की थी उसे पूर्ण करने का समय आ उपस्थित हुआ है। सुनते ही जोधाजी अत्यन्त संतप्त हुए, परन्तु वह समय संताप में व्यतीत करने का नहीं था। तुरन्त सेना सजने की आज्ञा की और सीधे वीकानेर पहुंचे। इतने में वीकाजी भी सज कर तैयार हो गये थे और वीदाजी भी आ कर हाज़िर हुए।

हिसार की तर्फ़ कूच हुआ। थोड़े दिनों में हिसार के समीप पहुंचे। सारंगखान को ख़बर लगी, वह भी सेना सज कर साम्हने आया। गांव जासल में दोनों की मुठभेड़ हुई। ये दोनों पहले सतरंज के खेल की नाईं दुतर्फा अपने अपने दाव देखते हल की लड़ाइयां लड़ने लगे। इस युद्ध में सेनापति वीकाजी और सलाह देने वाले सहायक वरजांग और वीदाजी थे। होते होते थोड़े ही दिनो में हत्याकाण्ड वहुत अधिक वढ़ गया। उस समय रावजी की सेना का वल इतना वढ़ गया कि सारंगखान को विजय तो दूर रहा, आत्मरक्षा का विचार पड़ गया। सारंगखान अपनी सेना को पीछी हटती देख कर खुद आप अगाड़ी आया और अपनी सेना का उत्साह वढाने लगा। रावजी को ज्ञान हो गया कि शत्रु-सेना निर्वल हो चली है, तुरन्त सेना-नायक वीकाजी को आज्ञा दी कि अव हल्ला करने का समय है, चूकना न चाहिये। रावजी की आज्ञा की देरी थी, हल्लों पर हल्ले होने लगे। मुसलमानों की सेना के पैर उखड़ गये। सारंगखान ने अपने सिपाहियों को वहुत समझाया कि सिपाही का यह धर्म नहीं है कि शत्रु को पीठ दिखावे। परन्तु उन्होंने उस के कहने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और सेना भाग निकली। सारंगखान असहाय मारा गया।

रावजी की सेना गांव जासल से पीछे लौट कर इधर आती थी, मार्ग में एक वांभी चमड़ा रंगने के लिये भुंई वांवली का मूल खोद रहा था। उस से रावजी ने पूछा कि यहाँ राज्य किस का है? वांभी ने कहा कि पहले तो इस भूमि पर अधिकार सारंगखान का था, परन्तु जव मैं ने जोधाजी को पुत्रों सहित सारंगखान पर जाते देखा तव समझ लिया कि अव यह भूमि जोधाजी की हुई। क्या आप राव जोधाजी हैं? रावजी ने इन वचनों से प्रसन्न हो कर वह गांव उसी वांभी को इनायत कर दिया। उस ने उस गांव का नाम जोधावास रक्खा अव तक वह गांव उसी के वंशजों के अधिकार में है।

राव जोधाजी समरभूमि से पीछे लौटते वीकानेर पधारे। वहां आप ने वीकाजी को राव की पदवी प्रदान की और वीकानेर का राज्य

जोधपुर राज्य से पृथक् स्वतन्त्र कर दिया। फिर वीदाजी को भी छापर द्रोणपुर का स्वतन्त्र राजा वना दिया। उस प्रान्त मे से जोधाजी ने केवल लाडनू रक्खा। इस भांति सव का यथोचित करने के अनन्तर रावजी के जोधपुर को रवाना होते समय रावजी के आज्ञाकारी पुत्र वीकाजी और वीदाजी ने पिता के चरणों को छू कर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया। रावजी ने वीकाजी की योग्यता से प्रसन्न हो कर रवाना होते समय यह फ़रमाया कि "हम जोधपुर जाते ही तुम्हारे वास्ते राव पदवी संवन्धी छत्र, चमर आदि राज चिन्ह भेज देंगे। तुम मेरे वड़े वहादुर, महावुद्धिमान और अत्यन्त दूरदर्शी सुपुत्र हो।" ऐसे फ़रमा कर रावजी वहां से जोधपुर रवाना हुए।

सारंगखान को मार कर महारावजी जोधपुर पधारे उस को कुछ दिन हुए होंगे कि जेसलमेर के रावल देवीदास ने सेना भेज कर शिवगिराव पर क़ब्ज़ा कर लिया। रावजी ने सेना दे कर राठौड़ वरजांग को भेजा। दोनो का मुकावला हो कर युद्ध हुआ जिस में दुतर्फा वहुत से मनुष्य मारे गये। अन्त में रावजी ने ३५०००) रुपये फ़ौज ख़र्च के दे कर संधि कर ली।

उधर जांगलू की तर्फ तो राव वीकाजी स्वतन्त्रता से राज्य कर रहे हैं, इधर राव जोधाजी जोधपुर में सुख से निवास करते मारवाड़ देश का शासन करते है। राव जोधाजी जैसे परिश्रमी, वीर और दूरदर्शी पुरुष संसार में कम ही हुए हैं। उन्होंने अपनी राठौड़ जाति के लिये कितना परिश्रम उठाया और कैसे २ कार्य किये वह उन के इतिहास से भली भांति ज्ञात हो सकता है। ये रावजी राठौड़ और मारवाड़ियों के लिये एक माननीय पूज्य पुरुष हुए है। जिन्हों ने वारह तेरह वर्ष के हो कर तेईस वर्ष की उम्र तक अपने पिता की सेवा की और कई लड़ाइयों में शामिल रह कर पिता को समय समय पर मदद दी। और पिता की मृत्यु के पश्चात् पन्द्रह वर्ष महा-कठिन विपति को सहन कर अपना मण्डोवर का राज्य पीछा लिया। मण्डोवर प्राप्त करने के अनन्तर अपने पिता रणमल्लजी के वैर के वदले में दो वर्ष पर्यन्त चीतोड़ से लड़ते रहे। इतना ही नही, किन्तु जोध-पुर जैसा नामी नगर वसाया और किला करवाया। आप ७३ वर्ष की उम्र में हुए तव तक एक घड़ी भी उन को फ़ुर्सत नही रही। जितना समय निकालते थे शत्रुओ से लड़ कर अपने पिछले पुरुष और आज्ञाकारी सेवकों को लाभ पहुंचे, ऐसे ही कामो में व्यतीत करते थे। क्या कोई दूसरा ऐसा हुआ है कि जिस ने राठौड़ों के राज्य की जड़ जमा कर मरुवासियों को इतना लाभ पहुंचाया हो? रावजी ने अपने भाई वेटे सव को जीविका दे कर भूमि के स्वामी वना दिया,

जिन के वंशज आज तक पृथ्वीपति बने हुए हैं। केवल भाई बेटों को ही नहीं, किन्तु जिन्होंने आप की सेवा की थी उन को भी वैसे ही भूमिपति बना दिया। रावजी में सब से बढ़कर यह विशेषता थी कि उन की हार कभी नहीं हुई।

राव जोधाजी ने राज्य को बढ़ाया ही नही, किन्तु अपने देश को समृद्ध भी किया। उन के राज्य में प्रजा पूर्ण सुखी थी। कृषि व वनिज व्यौपार भी अधिकता से होता था। यवन जो उन के स्वाभाविक शत्रु थे प्रति दिन निर्वल होते जाते थे। जिस सूबह का जो अधिकारी था वही बल पकड कर उस सूबह का स्वतन्त्र राज्य स्थापन कर मालिक बन बैठा था। और परस्पर लड़ाई झगड़े कर के अपना बल क्षीण कर रहे थे। कभी २ हिन्दू राजाओं पर भी आक्रमण करते थे।

उस समय हिन्दु राजाओं में चीतौड़ के महाराणा महाबली और पराक्रमी थे। उनके प्रताप के आगे सब निस्तेज रहते थे। महाराणा कुंभा का बल उस समय इतना बढ़ा हुआ था कि एक वेर महाराणा ने रणाङ्गण में मांडू और गुजरात के अधिपतियों की सेनाओं को परास्त कर के मालवा के बादशाह महमूद को पकड लिया था। फिर शरणागत वत्सल महाराणा ने मुख में तृण लेने पर उस को प्राणदान दे कर छोड़ दिया था। वह बादशाह महाराणा के यहां छः मास कैद में रहा। उस समय महाराणा ने उस के साथ ऐसा उत्तम व्यवहार वरता और उस को ऐसी उत्तम रीति से रक्खा था कि जैसे अपने घर में निवास करे। और छः महीने के अनन्तर कारागार से मुक्त किया उस समय उस को अपने प्रतिष्ठित पुरुष साथ में दे कर उस के घर ऐसी रीति से पहुंचाया कि जैसे बादशाह अपने घर लौटता है। वह महाराणा कुंभा इतना बलशाली होने पर भी महाराव जोधाजी से सदा शंकित रहता था। क्योंकि महाराणा के जोधाजी से जब २ काम पड़ा महारावजी सदा जीत में रहे। महारावजी ने महाराणा से अपने देश तो पीछे लिये ही थे, उस के सिवा और भी बहुत सा प्रदेश उन से छीन कर अपने राज्य में मिला लिया था। जैसे जैतारण, गोडवाड, सोझत रामपुर, चाणोद और सींधलों के बहुत से ठिकाने, जो महाराणा के मातहत थे।

रावजी केवल वीर, बली और भाग्यशाली ही नहीं थे, किन्तु दानी पुरुषों में भी उन की गणना हो सकती है। उन्होंने अपने कर-कमल से २५ ग्राम शासन दे कर स्वर्ग के मार्ग को सुलभ व सुगम बना लिया था।

राव जोधाजी के मनोवाञ्छित समस्त मनोरथ सिद्ध हो गये थे, किसी बात की मन में नहीं रही थी। उस दशा में ७३ वर्ष की

उम्र पा कर जोधपुर नगर में इस असार संसार को छोड़ संवत् १५४५ में स्वर्गवास किया था।

रावजी के ११ रानियां और १६ पुत्र थे। उन में से राव सातलजी उन के पट्टाधिकारी हुए।

राव जोधाजी के पुत्र पौत्रों से १२ शाखा हुईः—

१ राव सातलजी, इन के पुत्र न होने से राव सूजाजी के पुत्र नरा को गोद लिया था, उस से नरावत शाखा हुई। इन के भडाणा और वूह आदि ६ ठिकानों में भोम है।

२. राव सूजाजी, इन से नौ शाखा फटी, उन का विवरण सूजाजी के इतिहास में किया जावेगा।

३. नीबाजी

४. वनवीर से वनवीरोत शाखा चली

५. वीदाजी से वीदावत शाखा हुई। इस के बीकानेर राज्य में वीदासर और मारवाड़ कुसियो और सांगू २ ठिकाने है।

६. बीकाजी, इन से बीका शाखा चली। बीकाजी के वंशज बीकानेर राज्य के स्वामी है। मारवाड़ में जांवो और कानासर २ ठिकाने है।

बीकाजी के पुत्र नराजी से नारणोत शाखा हुई। इस शाखा में बोसूरी ठिकाना है।

७. करमसीजी से करमसोत शाखा चली, इस के अधिकार में खीवसर आदि ४१ ठिकाने है।

८. भारमल से भारमलोत शाखा चली।

९. शिवराज से शिवराजोत शाखा फटी

१० रायपाल से रायपालोत शाखा हुई। इस के मालगू, ईसरनावड़ो आदि ६ ठिकाने है।

११. दूदाजी[1] से मेड़तिया शाखा हुई। इस शाखा के माधोदासोत, रघुनाथ सिंघोत, चांदावत, आदि अनेक अवान्तर भेद है। इस शाखा के रीयां, कुचामन, आलणियावास, जावलो, गूलर, भखरी, बूड़सू, मनांणो, चाणोद, घाणेराव आदि २२७ ठिकाने है।

१२. वरसिंघ से वरसिंघोत शाखा चली।

१३. जोगाजी के पुत्र खंगारजी से खंगारोत शाखा चली, इस के जालसू आदि ४ ठिकाने है।

---

[1] दूदाजी और उन के वंशजों ने बहुत समय तक मेड़ता में राज्य किया जिस से दूदाजी के वंशज मेड़तिया राठौड़ कहलाते है।

१४. सांवतसी।
१५. जसवंतसिंह
१६. कूंपो
१७. चांद राव
१८. लक्ष्मण
१९. रूपसिंह

राव जोधाजी के वंशजों से जोधा शाखा हुई, उस के अवान्त
भेद २१ है। यथा—१ केसरी सिंघोत, २ रतन सिघोत, ३ रतनोत
४ गोयंदासोत, ५ जगनाथोत, ६ अभेराजोत, ७ महेशदासोत
८ विहारीदासोत, ९ रामोत, १० चन्द्रसेनोत, ११ भोजराजोत, १
तिलोकसीयोत, १३ गांगावत, १४ वाघावत, १५ खंगारोत, १६ अजी
सिघोत, १७ सगतसिंघोत, १८ नरावत, १९ अमरसिंघोत, २० ग
पालदासोत, २१ कल्यांणोत। इन के कुल ठिकाने खेरवा, भादराजू
लाडणू, आदि १५२ हैं। इन सब का विवरण नीचे दिया जाता है।

१ केसरीसिंघ के वशज केसरी सिंघोत जोधा है। राव ज
धाजी १, सूजाजी २, वाघाजी ३ गांगाजी ४, मालदेयजी ५, रा
मलजी ६, कल्याणदासजी ७, नरसिंहदासजी ८, तत्पुत्र केस
सिंघजी ९। केसरीसिंघ से केसरी सिंघोत शाखा हुई। केस
सिंघोतों के ठिकाने लाडणू आदि ६४ है।

२ राव मालदेवजी के पुत्र रतनसिंह से रतनसिंघोत शा
चली। इस के भाद्राजण आदि १२ ठिकाने हैं।

३ राव मालदेवजी से पचम पुरुष (राव मालदेवजी १, मो
राजा उदयसिंहजी २, जैतसिहजी ३, हरिसिंहजी ४, रतनसिंहजी ५
से रतनोत शाखा हुई। इस के नोखा, लोटोली, आदि २० ठिकाने है

४ मोटा राजा उदयसिहजी के पौत्र (भगवानदास, गोविन
दास) से गोविदासोत शाखा चली, इस के खेरवा आदि १
ठिकाने है।

५ मोटा राजा उदयसिंहजी के पौत्र जगन्नाथ (नरहरदा
जगन्नाथ) से जगनाथोत शाखा हुई। इस के अधिकार में एक गां
मोररां है।

६ राव मालदेवजी के प्रपौत्र अभैराज (रायमल, कान्हसिं
अभैराज) से अभैराजोत शाखा चली। इस के अधिकार में नीं
डुडास आदि ११ ठिकाने हैं।

७ राव मालदेवजी के पुत्र महेशदास से महेशदासोत शा
फटी। इस के अधिकार में केलाणो आदि १३ ठिकाने हैं।

८ राव मालदेवजी के पांचवें पुरुष विहारीदास (रायमल, कल्याणदास, ईसरीसिह, विहारीदास) से विहारीदासोत शाखा चली। इस के अधिकार में रोईसी और मींडासरी २ गांव हैं।

९ राव मालदेवजी के पुत्र राम से रामोत शाखा चली। इस के वंशज मालवा में अमझेरा के राजा थे। संवत् १९१४ में गवर्नमेंट के विरुद्ध आचरण करने से राज्य भङ्ग हुआ। मारवाड़ में पाटवो १ ठिकाना है।

१०. राव मालदेवजी के पुत्र चन्द्रसेणजी से चन्द्रसेणोत शाखा चली। इस का वंशज अजमेर प्रान्त में भिणाय का राजा है। और मारवाड़ में पालड़ी आदि ४ ठिकाने हैं।

११. राव मालदेवजी के पुत्र भोजराज से भोजराजोत शाखा फटी। इस के अधिकार में रावड़ियो और लूणावो २ गांव हैं।

१२. राव मालदेवजी के पुत्र तिलोकसी से तिलोकसीयोत शाखा चली। इस के अधिकार में रावड़ियो और लूणा वो २ गांव हैं।

१३. राव गांगाजी से गांगावत शाखा फटी। इस के अधिकार में कालीजाल, साली २ गांव हैं।

१४. राव सूजाजी के पुत्र वाघाजी से वाघावत शाखा चली। इस के सिकार पुगे आदि ४ गांव हैं।

१५. राव जोधाजी के पौत्र खगार (जोगो, खंगार) से खंगारोत शाखा फटी। इस के अधिकार में जालसू आदि ५ ठिकाने है।

१६. महाराजा गजसिंहजी के पौत्र अजीतसिंहजी (जसवन्तसिंहजी, अजीतसिंहजी) से उस नाम की शाखा चली। इस के अधिकार में जलवाणो गांव है।

१७. मोटा राजा उदयसिंहजी के पुत्र सकतसिंहजी से सकतसिंहोत शाखा फटी। इस वश के अजमेर प्रान्त में खरवा आदि के स्वामी हैं। मारवाड़ में भैरूँदा आदि ग्रामों में भोम है।

१८. नरावत शाखा का विवरण सातलजी के नाम के साथ लिखा गया है।

१९. महाराजा गजसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंहजी से अमरसिंघोत शाखा हुई। इस के अधिकार मे १ सेवो नामक ग्राम है।

२०. मोटा राजा भगवानदास के पुत्र गोपालदास से गोपालदासोत शाखा फटी। इस के अधिकार मे खातोलाई ग्राम है।

२१. मोटा राजा उदयसिंह के प्रपौत्र कल्याणसिंह (जैतसिंह, हरिसिंह, कल्याणसिंह) से कल्याणोत शाखा फटी। इस के अधिकार में आकोडो आदि ४ गांव है।)

राव सातलजी का जन्म राव जोधाजी की धर्मपत्नी हाडी जसमादे के उदर से वि० सं० १४६२ मे हुआ था। वि० स० १५४५ में राव जोधाजी के स्वर्गवास करने पर सातलजी ज्येष्ठ सुदि ३ को गद्दी बैठे। राव जोधाजी के १६ पुत्र थे। उन मे नीबा सब से बड़ा था, जो जोधाजी की विद्यमानता में ही स्वर्गवासी हो गया। उस से छोटा जोगा पदाधिकारी होने पर भी राज्य से वचित रह गया। उस का कारण पहले जोधाजी के इतिहास मे लिखा जा चुका है कि वह योग्य नही था। पहले राव जोधाजी ने छापर द्रोणपुर का प्रबंध करने के लिए जोगा को उस प्रांत मे भेजा था। परन्तु उस से वहां का प्रबध न हो सका तब उसे वापिस बुला लिया और उस के स्थान में वीका के सहोदर भाई वीदा को वहां भेजा। उस ने उत्तम रीति से प्रबध किया जिस से उस प्रांत का नाम वादावटी प्रसिद्ध हुआ। जो आज भी वीदावटी नाम से पुकारा जाता है। इस समय भी जोगा ने वैसी ही कार्यवाही की कि जिस राज्य से वचित रहा। वास्तव में उस के भाग्य में जोधपुर का राज्य नही वदा था। कहा जाता है कि उस को गद्दी बिठाने की तजवीज हुई और राज्याभिषेक का तिलक करने के लिए उसे बुलाया तव उस ने प्रत्युत्तर मे कहा कि मैंने अभी स्नान किया है ललाट सूखने पर आता हूं। सरदारों ने इस उत्तर से समझ लिया कि यह अभागा इस महान् राज्य के योग्य नही है जो तिलक के समय ललाट को हटाता है, तुरन्त सातलजी को बुला कर राजतिलक कर दिया गया और सातलजी राज्य के स्वामी हो गए[1]।

---

[1] भंडारी फौज चंदजी के घर की ख्याति पुस्तक में लिखा है कि राव जोधाजी के स्वर्गवासी होने के समाचार राव वीका ज्ञात हुए। जब वह जांगलू प्रांत के कोडमदेसर ग्राम में था। वीका वड़ा प्रतापी और बलशाली था। और उस का मित्र राठोड वैरसल भीम का पुत्र वडा प्रपंची पुरुष था। वीका के और उस के परस्पर पूर्ण प्रेम था। राठोड़ वैरसल ने अवसर देख कर वीका को कहलाया कि यदि जोधपुर का राज्य लेना चाहते हो तो यह अवसर है शीघ्र चले आओ। वीका को ऐसा अवसर कव मिल सकता था? उस ने तुरन्त अपने सैन्य को ले कर जोधपुर को प्रयाण कर दिया। जोधपुर के समीप पहुंचा उस अवसर में वीका के अफ़ीम खाने का समय था, उस ने अफीम खाया, और उस के पश्चात् वह कुछ लेटा करता था इस लिए लेटा और निद्रा आ गई। इधर हाडी जसमादे को यह खबर लगी कि राव वीका कोडमदेसर से चल कर जोधपुर के पास आ पहुंचा है, और यह प्रपंच वैरसल का है तुरन्त गढ़ से उतर कर तलहटी आई, और राठोड वैरसल के डेरे पर गई। और उस ने वैरसल से कहा कि राजतिलक का मुहूर्त आ उपस्थित हुआ है आप शीघ्र चलें और अपने हाथ से सातल को गद्दी बिठावें, सब आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यद्यपि वैरसल ने राव वीका को तिलक के लिए बुलाया था परन्तु उस के आने में

जोगाजी को जागीर में कितने एक गांवों के साथ गांव खारिया दिया गया[१]।

राव सातलजी का विवाह कुंडल के अधिपति भाटी देवीदासजी[२] की पुत्री के साथ हुआ था। उन्होंने जेसलमेर का राज्य मिल जाने पर कुंडल सातलजी को दे दिया था। सातलजी का शिलालेख संवत् १५१५ का फलोधी प्रांत के गांव कोलू में मिला है। उस में लिखा है कि महाराय जोधाजी के पुत्र राय सातल के विजय राज्य में पावूजी के मंदिर का जीर्णोद्धार धांधल सोहड़ ने करवाया। इस से पाया जाता है कि गांव कोलू का प्रांत उस समय उन के अधिकार में था। और सातलजी का विशेषण राव, लिखा गया है जिस से यह भी जाना जाता है कि रावजोधाजी ने उन को राव की पदवी दे दी थी[३]।

राव सातलजी ने पोकरण के समीप अपनी अधिकृत भूमि में पहाड़ का आश्रय ले कर सातलमेर नामक नगर निर्माण किया[४] था।

कुछ विलंब हुआ इतने में हाडी जसमादे वैरसल को समझा बुझा बांह पकड़ कर गढ़ पर ले गई और सातल के राजतिलक करवा दिया। वीका ४ घड़ी पीछे आया और उस ने आते ही गढ़ को घेर लिया परन्तु सातल के तिलक हो चुका था इस लिए सरदारों ने सातल को हटाना उचित न समझ कर वीका को समझा बुझा कर पीछा जांगलू को लौटा दिया। वीका के रवाना होते समय हाडी रानी गढ़ से उतर तलहटी आई, वीका ने उसे प्रणाम किया, रानी ने उसे आशिष दी और भोजन करा कर विदा किया। वीका जोधपुर से पीछा कोड़मदेसर गया।

१. जोगाजी का शिलालेख वि० सं० १५७० का गांव खारिया में और इस के पुत्र खंगार का शिलालेख वि० सं० १५८५ का गांव कूंपावतों की वासणी में मिला है। इस से ज्ञात होता है कि जोगा वि० सं० १५७० तक जीवित रहा जिस समय उस का छोटा भाई राव सूजा मारवाड़ का शासक था।

२. इन का नाम शिलालेखो में देवकर्ण भी लिखा मिलता है। पूर्णचंद्र नाहर संपादित जैन लेख सग्रह के जैसलमेर नामक तृतीय खंड मे इस राजा के समय के ६ शिलालेख छपे हैं। जो सब वि० सं० १५३६ के हैं।

३. कोलू के स्तंभ शिलालेख की प्रतिलिपि—और संवत् १५१५ वर्ष भाद्रवा सुदि-११ वुधवासरे महाराय राठड धांधल सुत महाराउत पावू प्र (प्रा) साद मूर्ति कीर्ति स्थ (स्त) भ करयित। धांधल खींमड सुत सोभा पुत्र सोहड कमा महराज चांदा गीदा हाजा सहितेन प्रासाद उधरित ॥ (स्तभ के द्वितीय पार्श्व मे) महाराय जोधा सुत राय श्री "सातल विजय राज्ये।" ऐसा खुदा हुआ है।

४ किसी ख्याति पुस्तक मे सातल के दत्तक पुत्र नरा का सातल के नाम से सातलमेर बसाना लिखा गया है। इस समय सातलमेर के स्थान पर एक भी घर नहीं है। निर्जन भूमि है। पहाड़ पर एक पुरातन मंदिर है। वह भी अत्यत शीर्णावस्था में है। उस का बहुत सा भाग गिर गया है और गिरने वाला है।

उस समय पोकरण पर रावल मल्लिनाथजी के वंशज पोकरण राठौड़ों का अधिकार था। तुवर रामदेवजी ने, जिन्हें रामसापीर भी कहते हैं, तुंवरावटी के पाटण (जयपुर राज्य में) से आ कर चाचाग नानग को पराजित करके पोकरण पर अधिकार कर लिया। उन का देहांत रुणीजा ग्राम मे हुआ था वहां इस समय उन की समाधि विद्यमान है जिसे रामदेवरा कहते हैं। वह पोकरण से पांच मील उत्तर की ओर है। वहां भादों सुदि ११ को बड़ा मेला लगता है। देश देशान्तरो से हज़ारों यात्री आते हैं। अधिकतर मारवाड, मेवाड और मालवे के लोग आते हैं। उन में भी विशेषतया नीच कौम अधिक आती है जिस से यह कहावत चल पड़ी है कि "रामदेवजी नें मिले सो ढेढ ही ढेढ।"

रामदेवजी की भतीजी का विवाह रावल मल्लिनाथजी के पौत्र, जगपाल के पुत्र हम्मीर के साथ हुआ था। रामदेवजी ने दहेज में पोकरण हम्मीर को दे दिया और आप वहां से निकल रुणीजा गांव में चले गये। हम्मीर के वंशज पोकरण के सबंध से पोकरण राठौड कहलाए।

सातलजी के समय मे पोकरण का स्वामी पोकरणा राठौड़ खींवा था, जो उक्त हम्मीर का प्रपौत्र, दुर्जनसाल का पौत्र और वरजांग का पुत्र था राव सातलजी के पुत्र न होने से उन्होंने राव सातलजी के पुत्र नरा को अपना दत्तकपुत्र मान कर उसे फलोधी में रख दिया और आप अपने निर्माण किये हुए सातलमेर में रहने लगे[1]।

नरा ने फलोधी नगर को आबाद किया। फलौधी नगर में कल्याणरायजी के मदिर में निज मंदिर के द्वार से दक्षिण बाजू में वि० सं० १२३६ का शिलालेख खुदा हुआ है वह पृथ्वीदेव के समय का है। उस में पृथ्वीदेव का वंश नही लिखा है परंतु अनुमान से यह चाहमान पृथ्वीराज होना चाहिये, जो अजमेर का शासक था। इस शिलालेख के लेख[2] से प्रतीत होता है विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में यह फलोधी नगर उत्तम स्थिति में था और बड़ा नगर था। पश्चात् इस की स्थिति कब बिगडी उस का पता नही चलता।

---

१. सातलमेर के खडहर पोकरण से दो २ मील पर हैं। इस समय वहां पहाडी पर केवल एक मदिर अत्यत शीर्णावस्था में विद्यमान है। शिल्प उस का प्राचीन है। मदिर में उस समय का कोई शिलालेख नहीं है। कहीं २ स्तंभों में खुदे हुए शिलालेख हैं परन्तु वे इतिहासोपयोगी नहीं है।

२. डाकूर टेलोटरी साहिब ने यह शिलालेख बंगाल एशियाटिक सोसाईटी के सन् १९१६ के नं० ३ जरनल और प्रोसीडिग में छाप दिया है। इस लेख की पंक्तियां २८ हे परंतु उक्त साहिब ने उस की १५ पक्तियां ही मुद्रित की हैं हमारे इतिहास में अनुपयोगी होने से हम भी उसे छोड़ते हैं।

नरा ने इस नगर को पुनः आबाद किया और किले का दरवाज़ा करवाया। उस दरवाजे के वामभाग में नरा का संवत् १५३२ का शिलालेख खुदा हुआ है उस मे लिखा है कि सवत् १५३२ के वैशाख वदि २ सोमवार को राठौड़ राव स्तुरिजमल के पुत्र नरसिंघदे के राज्य में पोल (दरवाज़ा) प्रासाद (महल) और शस्त्रागार चाहमान देवराज ने करवाए[1]। और इसी किले का बाहिर का दरवाज़ा संवत् १५७३ में नरा (नरसिंघ) के पुत्र हम्मीर ने करवाया था। उस विषय का शिलालेख उसी दरवाज़े में प्रवेश करते वामभाग में भित्ति मे लगा हुआ है। उस में लिखा है कि "विक्रमी सवत् १५७३ के मार्गशीर्ष शुक्ला १० गुरुवार को जिस दिन अश्विनी नक्षत्र और शिवयोग था, राष्ट्रकूट वंशोत्पन्न महाराज श्री नरसिंघ के पुत्र महाराय श्री हमीर के कराये हुए दरवाज़े का स्तंभ खड़ा किया गया। इस शिलालेख में हमीर को महाप्रतापी, दाता, भोक्ता, सौभाग्य सुंदर भोगपुरंदर (इंद्र के समान भोग भोगने वाला), प्रजा पालक, सेवक पोषक, वैरिवर्ग को दमन करने वाला स्वकीय वर्ग की पालना करने वाला और महाराय लिखा है[2]। हमीर की ओर से इस कार्य में ये पुरुष नियत थे— पुरोहित दिवाकर, चाहमान सेलहथ (हवालदार) ऊधा और भाटी नीवा, मंत्रीश्वर गंगू व देवा और सूत्रधार लाखा का पुत्र धन्ना। वज़ीर (दीवान) का नाम गोवल था।

---

१. संवत् १५३२ वर्षे वैशाख वदि २ (?) सोमदिने राठवड़ राय श्रीसूरिजमल सुत नरसीघदे राज्य प्रोलि प्रसाद मस्त (शस्त्र) ग (घ) र श्री वड आसा चाहवाण देवरा करिणाइत। भर (भाटी) महणा सुत भोजा गढ उधरितं।"

इस शिलालेख में नरा का नाम नरसिंघदे और राव सूजाजी को सूरिजमल लिखा है।

२ "श्रीरामायनमः स्वस्ति श्रीविक्रमार्कसमयातीत संवत् १५७३ व्रर्षेः (वर्षे) मागसिर (मार्गशीर्ष) मासे सुकल (शुक्ल) पक्षे १० तिथौ गुरुवारे अश्विनी नक्षत्रे रवियोगे दिनाई (दि) सि (शि) वयोगे इ (ई) दृशे महामांगल्यमये शुभमुहूर्त्ते राष्ट्रकूटवंशे महाराज श्री नरसिंघ पुत्र महाप्रतापी (पि) क-दाता भोक्ता-सौभाग्य सुंदर-भोग-पुरंदर-प्रजापालक-सेवकपोषक-वयरी (वैरि) वर्गदमन (:) स्वकीयवर्गापालन (:) महाराय श्री हमीर (:) कारित प्रतोली स्तंभ ऊभरितां: (उद्धृतः)। पुरोहित दिवाकर चहवाण सेलहथ ऊधा ( ) भाटी नीवा (.) मंत्रीश्वर गंगू (:) मंत्रीश्वर देवा (:) घटित (:) सूत्रधार लाखा पुत्र सर्ववास्तु शास्त्र निपुण सूत्रधार धन्नाकेन ॥ शुभं भवतु (:) वजीर गोवल ॥"

इस शिलालेख में यह बड़े महत्व की बात है कि मारवाड़ के शिलालेखों में राठौड़ वंश के लिये राष्ट्रकूट शब्द का प्रयोग या तो इस में देखा गया है। किंवा खींवसर के शिलालेख में राव तोधाजी के पुत्र वणवीर के साथ राष्ट्रकूट शब्द देखने में आता है।

इस नरा को सातलजी ने दत्तकपुत्र किया था परंतु ऊपर के संवत् १५३२ के शिलालेख में राय सूरिजमल सुत लिखा है जिस से पाया जाता है कि वह सातलजी का दत्तकपुत्र संवत् १५३२ के अनंतर हुआ होगा।

सातलजी का सहोदर भाई वरजांग मेड़ता नगर का शासन करता था। संवत् १५४७ में वरजांग ने सांभर नगर पर आक्रमण कर के उसे लूट लिया। उस समय सांभर में चौहान शासक थे। जिन्होंने मेडता प्रांत के गांवों मे विगाड़ किया था। सांभर अजमेर के अंतर्गत था जिस से चौहान शासक अजमेर के सूवहदार के पास गए और उन्होंने अपना दुःख निवेदन किया। अजमेर के सूवहदार ने चौहानों को सांत्वना दे कर कहा कि हम इस का प्रबंध करते हैं तुम अपने स्थान पर चलो। फिर सूवहदार ने संधि करने के बहाने वरजांग को अजमेर में बुला कर कैद कर लिया उस समय वरजांग का सहोदर भाई दूदा वीकानेर में था। वरजांग को कैद करने की ख़बर होते ही दूदा और वीकाजी अत्यंत क्रुद्ध हुए और तुरन्त दूदा और वीकाजी दोनों अपनी २ सेना ले कर अजमेर जाने को तैयार हुए। इधर जोधपुर से राव सातलजी ने चढ़ाई की तैयारी की। मल्लूखां को ज्ञात हुआ कि अजमेर पर दो राव चढ़ कर आते हैं, भयभीत हो कर वरसिंह (वरजांग) को छोड़ दिया, परन्तु उसे वह बहुत बुरा लगा।

मल्लूखां राठौड़ों पर अत्यंत रुष्ट है उस ने राठौड़ों पर चढाई करने के लिए अपनी सेना तैयार की। वि० संवत् १५४८ के चैत्र मास मे वह सेना ले कर मेड़ते की ओर चला। वरसिंह को ज्ञात हुआ कि मल्लूखां सेना ले कर मेड़ते पर आता है। वरसिंह ने राव सातलजी के पास अपना दूत भेज कर कहलाया कि मल्लूखां सेना ले कर मेडते पर आता है आप अपनी सेना लेकर जल्दी पधारें। इस के उत्तर में सातलजी ने वरसिंह को कहलाया कि आप अभी मेरे पास आ जावें, आपन अवसर देख लेंगे। वरसिंह सातलजी के पास जोधपुर चला आया। उधर से मल्लूखां मेड़ते के गांवों को लूटता हुआ मेड़ते में आया, उस समय वरसिंह राव सातलजी के पास जोधपुर में था, मल्लूखां मेड़ते को लूट कर आगे जोधपुर की तर्फ वढ़ा।

सातलजी को ख़बर लगी कि मल्लूखां मेड़ता लूट कर जोधपुर की तर्फ आता है सातलजी अपनी सेना ले कर उस के साम्हने चले। उधर दूदा के पास वीकानेर में सातलजी का दूत पहुंचा और उस ने जा कर दूदा से कहा कि "महाराज! अजमेर का सूवहदार मल्लूखां चढ़ कर मारवाड़ पर आया है उस ने मेडता तो लूट लिया है और जोधपुर पर आ रहा है।" यह सुनते ही दूदा सभ्भ कर वीकानेर से

चला। उधर से मल्लूखां, सिरियाखां और मीर घडूला मेड़ता नगर को लूट कर पीपाड़ गांव में आए। यहां तीज का त्यौहार था। सौभाग्यवती स्त्रियां उत्तम वस्त्रालंकार धारण किये गौरी की पूजा के निमित्त एकत्र हो मंगल गीत गा रही थी[1]। मुसलमानो को यह अच्छा अवसर मिल गया अलकार सहित स्त्रियां हाथ लग गई। वहां से वे गांव कोसाणा में आए। वहां भी तीजणियो को पकड़ा।

इसी अर्से में जोधपुर से सेना ले कर राव सातलजी वरसिंह मेड़तिया, दूदा, राव सूजा और राठोड भारमल इन को साथ में लिये वहां जा पहुंचे। उस समय राठौड़ो की सेना अच्छी सजी हुई थी, भीम का पुत्र वरजांग सेनानायक था। जब राठौड़ो की सेना गांव कोसाणे की सीमा में पहुंची उस समय वरजांग (वज्रांग) ने राव सातलजी से कहा कि "आप यहां मुकाम करें, मैं जा कर देख आता हूं कि शत्रुओ की कैसी परिस्थिति है? राव सातलजी ने कहा कि बहुत अच्छा, आप जाइये और वहां का समस्त दृश्य देख आइये कि वैसा ही प्रबंध किया जाय। वरजांग मजदूर का वेष बना, सिर पर काठ की भारी रख, समग्र सेना में भ्रमण कर वहां का सब ढंग देख आया। आ कर रावजी से कहा कि मैं सब दृश्य देख आया हूँ, शत्रु की सेना बहुत अधिक है अपने पास मनुष्य कम हैं इसलिए मेरी समझ में तो इन से दिवा युद्ध न करके रात्रि युद्ध करना चाहिए। आपन ऐसा करें कि अर्धरात्रि के समय शत्रु सेना निद्रावश हो जाय सहसा उस पर टूट पड़े। शत्रु असावधान और निद्राकुल होने से आपन उन्हें इस तरह विजय कर सकते है। वरजांग बड़ा रणकुशल था, उस ने युद्ध के अनेक दृश्य देखे थे, रावजी ने वरजांग की सलाह तत्कालानुसार उत्तम समझ कर मान ली और शत्रु पर आक्रमण करने का वैसा ही प्रबंध किया गया।

रावजी ने अपनी सेना के तीन विभाग किये। एक विभाग मे तो अग्रणी स्वयं राव सातलजी, दूसरे मे राव दूदा और तीसरे में राठौड़ वरजांग था। दूदा ने सिरियाखान पर आक्रमण किया और ऐसी

---

१ गौरी पूजा का आरंभ होली के दूसरे दिन से किया जाता है। जुहारे (यव बोये) उगाये जाते हैं और कज्जल व कुंकुम के बिंदुओ से गौरी की प्रतिमा बना कर प्रति दिन पूजा की जाती है। और चैत्र सुदि ३ को गौरी की मूर्ति स्थापित कर उस की पूजा की जाती है। फिर पांच चार दिन मे शुभ दिन देख कर गौरी की उत्थापना की जाती है उसे बोहलावणी कहते हैं।

तलवार बजाई कि बहुत से मुसलमान रणभूमि छोड़ कर भाग गए और कितने एक मारे गए। इस युद्ध में मुसलमानों की सेना के बहुत से हाथी राठौड़ों के हाथ लगे।

वरजांग ने उड़दाबेगनियो पर हमला किया। वे भी बड़ी वीरता से लड़ी परन्तु वरजांग के आगे वे क्या वस्तु थी। कई वरजांग के हाथ से मारी गईं और कितनी एक पकडी गईं और उन के सिर मूड़े गए।

राव सातलजी ने सूबहदार मल्लूखां और घडूले पर आक्रमण किया, इन के साथ इन का छोटा भाई सूजा और राठौड भारमल थे। मल्लूखां असावधान था इसलिए उस की बडी हानि हुई और अन्त में वह भाग कर अजमेर जा कर ठहरा। मल्लूखां के साथ मीर घडूला था वह बड़ी वीरता से लड़ा। उस की युद्ध करते २ यह दशा हो गई थी कि शरीर में घाव के बिना एक अंगुल प्रदेश भी शेष नहीं रहा था। तदनंतर वह रणशय्या मे दीर्घनिद्रा के वश हो कर सो गया[1]। इस युद्ध में राव सातलजी भी पूर्ण घायल हुए थे। यद्यपि इस युद्ध में राव सातलजी की विजय हुई परन्तु विजय का अनुभव नहीं कर सके। क्योंकि घावों की व्यथा से उसी रात्रि में रावजी का स्वर्गवास हो गया था। यह युद्ध संवत् १५४८ की चैत्र सुदि तृतोया को हुआ था और उसी दिन रावजी का स्वर्गवास हुआ[2]।

---

१. इस मीर घडूला के उद्देश से जोधपुर नगर में चैत्र वदि अष्टमी को मेला लगता है। उक्त तिथि को मेला लगने से पाया जाता है कि इस युद्ध का आरंभ उस दिन हुआ हो। यह मेला संध्योत्तर रात्रि में होता है। राजकीय दासियां घडूला लेने को कुंभकार के घर पर जाती है। राजकीय लवाजमा नकारा निशान पलटन वेश्यागण आदि साथ में रहती है। मीर घडूले के स्थानापन्न मिट्टी का घड़ा बनाया जाता है। उस घट के समस्त प्रदेशो मे छिद्र होते है। उस के अन्दर दीपक रखा जाता है। दीपक तो जीवस्थानापन्न और छिद्र बाणवेध का अनुकरण और शरीर के स्था में घट माना जाता है। उस घट को राजकीय दासियों में से प्रधान दासी सि पर रख कर कुंभकार के घर से लौट कर राजकीय भवन को उसी लवाजमे साथ जाती है। यह दृश्य एक बड़ा अनोखा है इस लिए नगर के बहुत से दर्श उसे देखने को जाते हैं और बड़ी भीड़ हो जाती है। वह घट अष्टमी की रात्रि के राजकीय भवन में ले जाया जाता है। और अष्टमी से चैत्र शुक्ला तृतीय तक उसी प्रकार सिर पर उठाया जा कर घुमाया जाता है। उस विषय के गीत का यह वाक्य है "घूड्लो घुमेला जी घूमेला" फिर चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन महाराजा साहिब उसे अपने खड्ग से खंडित करते है। इस से पाया जाता है कि घडूला इतने दिन लड़ता रहा, तृतीया को मारा गया।

२. राजपूताना में यह प्रथा है कि बड़े त्यौहार के दिन यदि प्रधान पुरुष की मृत्यु हो जावै तो उस की संतान उस त्यौहार का उत्सव नहीं मनाती। राव सातल की मृत्यु

इस युद्ध में सात सरदार मारे गए और सोलह घायल हुए१।

चैत्र शुक्ला तृतीया ३ गनगोर के दिन हुई थी जिस से उसी समय से जोधपुर के राज्य में गनगोर के दिन राजकीय गौरी के साथ ईसर (ईश्वर) की मूर्ति निकालना बंद किया गया। आज तक वही रीति चली आती है। केवल गौरी की मूर्ति ही राज्य से निकाली जाती है, ईश्वर की मूर्ति नहीं निकाली जाती। उक्त प्रथा का प्रतिवाद यह कहा जाता है कि यदि उसी खानदान मे उसी त्यौहार को पुत्र प्रकट हो जाय तो उस त्यौहार की रोक मिट जाती है।

—ख्याति पुस्तकों मे उन का विवरण इस प्रकार दिया है—

१ चांपावत रत्नसिंह हमीर का पुत्र गांव चोटीला (परगना पाली) का स्वामी
२ धवेचा हरभम गांव आकेवा (परगना जालोर) का ठाकुर
३ खीची जवानसिंह सारगोत
४ खीची भैरूंदास मेलावत
५ खीची भानीदास सारंगोत
६ खीची वाघसिंघ सारगोत
७ खीची जसवंत मेलावत

ये सात मारे गए और निम्नलिखित घायल हुए—

१ पातावत पर्वत हमीरोत गांव मांडेली (परगना नागोर) का ठाकुर
२ राठोड़ रूपा राव रिडमल का पुत्र गांव भेड़ (परगना फलोधी) का स्वामी
३ राठोड़ पंचायण अखैराज का पुत्र गांव खोखरा (परगना सोझत) का स्वामी
४ महेचा राठोड़ गंगादास गांव भीचरलाई (परगना जोधपुर) का ठाकुर
५ ऊहड़ खरहत देवी दासोत गांव कोरणा (परगना पचपदरा) का ठाकुर
६ जैतमाल राजसिंह* करणसिंहोत गांव पाल (परगना जोधपुर) का ठाकुर
७ राठोड़ भारमल जोधावत।
८ राठोड़ वरजांग भीवोत
९ राठोड़ पूनावत मघसिंह गांव खूंदियावस (परगना परवतसर) का ठाकुर
१० गोगादे वीसा खेतसिंहोत गांव खिरजां (परगना शेरगढ़) का स्वामी
११ भाटी जोधसिंह जेसावत गांव बीलारवा (परगना जोधपुर) का ठाकुर
१२ करणोत लूणकरण ठिकाना काणाणा (परगना पचपदरा) का स्वामी
१३ „ माणकराव गांव मोडी (परगना जालोर) का स्वामी
१४ राठोड़ रणजीतसिंह लूणकरणोत गांव सेतरावा का स्वामी
१५ चांपावत देईदास गांव दाखाणिया (परगना शेरगढ़) का स्वामी
१६ " भैरूंदास गांव पुनासा (परगना जसवंतपुरा) का स्वामी

* इस के वंशज सोभावत राठौड़ कहलाते है।

कर्नल टॉड साहिब राव सातल का सराइयों के खान के हाथ मारा जाना लिखते है वह ठीक नहीं है। क्योंकि मारवाड़ की समस्त ख्याति पुस्तकों में राव सातल का स्वर्गवास अजमेर के सूबहदार की लड़ाई में होना लिखा मिलता है। और एल पी. टैसीटरी साहिब भी सातल का अजमेर के मुसलमानों की सेना से लड़ कर काम आना लिखते है, जो ख्याति पुस्तकों के लेख को पुष्ट करता है। एल पी टैसीटरी साहिब का यह लेख है "राव सातल ने अजमेर के खान से व जेसलमेर के रावल से, व पूगल के राव से मिलावट करके बीकानेर पर चढ़ाई की उस से राव बीका को दबाना चाहा परन्तु उस का वह प्रयत्न निष्फल हुआ। सातल ने राज्य बहुत अल्प किया। संवत् १५४८ में अजमेर से मुसलमानों की सेना ने मेड़ता और पीपाड़ पर आक्रमण किया सातल ने उन का साम्हना किया, कोसाणा की रणभूमि में वह मारा गया।

मारवाड़ की ख्याति पुस्तकों से सातलजी का जोधपुर पर तीन वर्ष राज्य करना पाया जाता है और बीकानेर की ख्याति पुस्तक में सातलजी का जोधपुर पर राज्य करना कुछ दिन ही लिखा है और उस की पुष्टि के लिए जोधाजी का स्वर्गवास संवत् १५४७ में लिखा गया है यथा "संवत् १५४७ में राव जोधाजी स्वर्गवासी हुए तो उन का वेटा सातल मसनद रिसायत पर जलूस फ़रमा हुआ लेकिन थोडे ही दिनों वाद मुल्क अदम को सिधार गया।" यह लेख यथार्थ नहीं है। क्योंकि मारवाड़ की समस्त ख्याति पुस्तकों में जोधाजी का स्वर्गवास करना संवत् १५४५ में लिखा है जिस से सातलजी का जोधपुर पर राज्य करना तीन वर्ष से न्यून नहीं हो सकता।

राव सातलजी के सात रानियाँ थीं वे सातों ही सती हुईं।

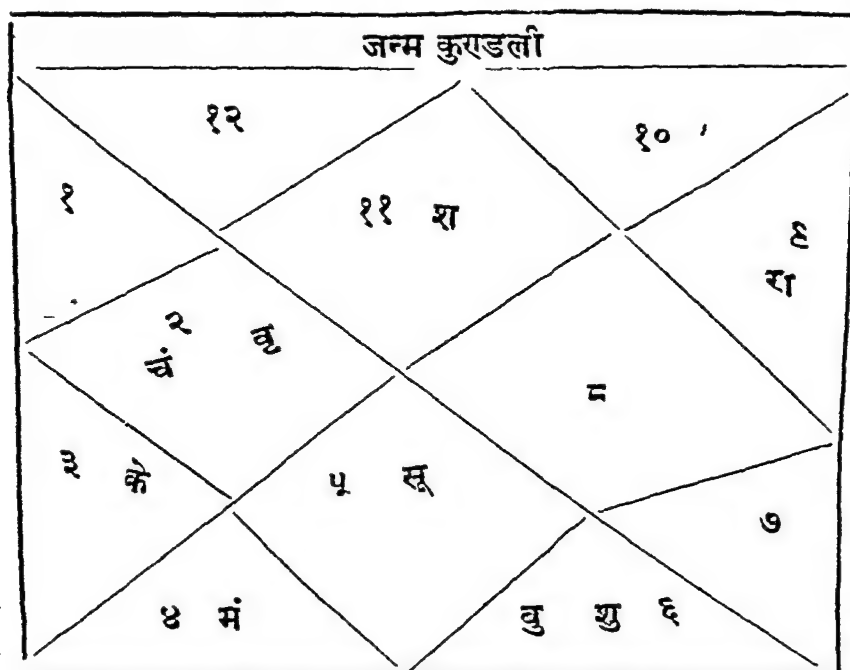
१ रानी हरखबाई। वह नागणेचियां कुलदेवी के साथ पूजी जाती है।

२ भटियाणी फूलां। इस ने फूलेलाव तालाव करवाया, जो चांदपोल दरवाज़े के पास है। इस तालाव की प्रतिष्ठा संवत् १५४७ में हुई थी।

३-७ इन के अतिरिक्त ५ रानियों के चबूतरे मंडोवर में खेत्रपालजी के समीप गोडियों की वाड़ी में है, जो पति के साथ सतियां हुई थीं।

लिख आए है कि राव सूजाजी का पुत्र नरा सातलजी का दत्तक पुत्र था। उस के वंशज नरावत राठौड़ है। नरावतों के भडाणो, खुद आदि ६ ठिकाने हैं।

२४ राव सूजाजी—इन का जन्म संवत् १४९६ भाद्रपद वदि अष्टमी ८ (ई० सन् १४३९ की ३ अगस्त) गुरुवार को हुआ था। प्राचीन संग्रह में इन की जन्म कुंडली मिली है उस मे लिखा है—"सं० १४९६ भाद्रवा वदि ८ गुरौ उ० घटी ३४ । १५ समये राव जोधाजी सुत सूजाजी जन्म"



इनके बड़े भाई सातलजी के स्वर्गवास करने पर राव सूजाजी वि० संवत् १५४८ वैशाख सुदि ३ (ई० सन् १४९१ अप्रेल मास की १२ तारीख़) मंगलवार को जोधपुर की गद्दी बैठे।

यद्यपि इन के पुत्र नराजी को राव-सातलजी का दत्तक पुत्र कर दिया गया था, इस लिए जोधपुर की गद्दी के हकदार नराजी थे। परन्तु नराजी की माता लक्ष्मी ने नराजी को समझा बुझा कर फलोदी भेज दिया और राव सूजाजी जोधपुर के मालिक हुए[१]।

लिख आए है कि जोधाजी ने नीवाजी के अनंतर सूजाजी को सोजत भेज दिया था। वहाँ इन के मुसलमानों की सेना के साथ युद्ध हुआ उस में विजय सूजाजी की हुई और यवन सेना परास्त हुई परंतु ये भी प्रहारों से जर्जरित हो गए थे जिस से इन के चित्त पर कुछ दिनों तक उस का असर रहा और कभी २ चमक उठते थे।

इस के पश्चात् संवत् १५४८ मे राव सातलजी के गाँव कोसाणा में अजमेर के सूबहदार मल्लूखाँ और मीर घड्डूले के साथ युद्ध हुआ उस में ये अपने बड़े भाई सातलजी के साथ थे।

कर्नल टॉड साहिब ने उक्त युद्ध में राव सूजाजी का मारा जाना लिख दिया है। और इस घटना का समय वि० सं० १५७२

१. एक ख्याति पुस्तक में लिखा है कि नराजी ने छोटे भाई ऊदाजी के वेत मार दी थी जिससे सूजाजी इन से अप्रसन्न हो गए थे इसी से सूजाजी ने इन को फलोधी भेज दिया जहां वे पहले से रहा करते,थे।

लिखा है वह ठीक प्रतीत नही होता। क्योंकि मारवाड़ की समस्त ख्याति पुस्तकों में उक्त युद्ध में इन के बड़े भाई सातलजी का संवत् १५४८ में लड़ाई में घायल हो कर उसी चैत्र सुदि ३ की रात्रि में स्वर्गवासी होना लिखा है। जिस के पश्चात् सूजाजी राज्याधिकारी हुए और २४ वर्ष अटल राज्य किया।

बीकानेर के इतिहास में लिखा है कि (पृ० ४०) "राव जोधाजी की मृत्यु के पश्चात् जब कि राव सूजाजी जोधपुर के सिंहासन पर सुशोभित थे तो राव बीकाजी ने बेला पड़िहार को राजचिह्न[1] लाने के लिए जोधपुर को भेजा, परन्तु वहाँ से साफ़ इनकार कर दिया गया। तब राव बीकाजी ने स्वय जोधपुर पर चढ़ाई की, इस मुहिम में बीदाजी भी तीन हज़ार फ़ौज के साथ राव बीकाजी की सेवा में हाज़िर थे। बीकाजी ने एक भारी लश्कर के साथ जोधपुर आक्रमण करके पहले तो छः घटे तक शहर को ख़ूब लूटा इस के बाद किले का घेरा डाल कर पड़े रहे। किले की फ़ौज ने साहस पूर्वक मुक़ाबला किया अंत में सूजाजी की माता ने संधि करवा कर बीकाजी को राजचिह्न दे कर वापिस लौटा दिया[2]।

लिख आए है कि नरा राव सातलजी के गोद था। वह फलोधी में रहता था। उस की माता लक्ष्मी उसी के साथ रहती थी। यह जेसलमेर के महारावल केहर के पुत्र कलकर्ण की कन्या और हरभू सांखले की दौहिती थी। जब यह विवाह योग्य हुई तब हरभू सांखले ने अपनी दौहिती लक्ष्मी के संबध के लिए पोहकरण के स्वामी पोकरण राठोड़ खीवा के पास अपने पुरोहित को संबंध करने का नारियल दे कर भेजा कि खीवा से बाई लक्ष्मी का संबंध कर आओ। पुरोहित पोकरण जा कर खीवा से मिला उस ने आदर सत्कार करके पुरोहित से पूछा कि आप कैसे आए? पुरोहित ने कहा कि मैं सम्बन्ध करने को आया हूं सांखला हरभू ने आप के पास भेजा है।

---

[1] उक्त राजचिह्न जोधाजी ने बीकाजी को देने का उस समय कहा था जब बीकाजी ने हांसी हिसार के सूबहदार सारंगखान को मारने में साथ दिया था। जोधाजी ने प्रसन्न हो कर उस समय उन को राव की पदवी दे कर राजचिह्न देने का कहा था कि हम वहीं से भेज देंगे परंतु जोधाजी का स्वर्गवास हो गया और राजचिह्न देने का कार्य रह गया।

[2] जोधपुर की ख्याति में लिखा है कि यह कार्यवाही राठोड भीम के पुत्र बरजांग की थी। उस ने यह खेल रचा था। जब बरजांग से कहा गया कि यह आप ने क्या किया? तो उस ने कहा कि मैं तो जोधाजी के बच्चों को खिलाता हूं। और और बरजांग का संकेत होने पर बीकाजी पीछे लौट गए।

उस ने कहा है कि मेरी दौहिती और भाटी कलिकर्ण की कन्या लक्ष्मी मैं आप की सेवा के निमित्त देता हूं और यह संबंध का नारियल भेजा है। खींवा ने इनकार किया और कहा, हम ने सुना है कि उस के दांत बड़े है। आप क्षमा करिए। पुरोहित विचारा खिन्न हो पीछा हरभू के पास आया और वहां का वृत्तांत कह सुनाया। उस समय सातलजी जोधाजी के दिये हुए फलोधी के परगने मे शासक थे और सूजाजी मृगया में मग्न इधर उधर शिकार खेला करते थे। शिकार खेलते २ वैंहगटी गांव की तर्फ जा निकले जहाँ हरभू सांखले का निवास था। हरभू ने सूजाजी को अपनी दौहित्री लक्ष्मी व्याह दी। उस के उदर से सूजाजी के दो पुत्र हुए। वाघा और नरा।

नरा फलोधी में राज्य करता है परंतु उस समय फलोधी आवाद नही थी पोकरण नगर, जो फलोधी से १६ कोस की दूरी पर है, बहुत आवाद था। नराजी की इच्छा पोकरण लेने की सदा रहती है परतु अपनी माता का संबंध होने से वह पीछे हट जाता है और विचार मन का मन में ही रह जाता है।

एक दिन लक्ष्मी फलोधी के कोट के गोख में वैठी देख रही है, वर्षा ऋतु है, पांच चार घड़ी रात्रि गई है, नराजी भोजनार्थ माता के पास आ कर वैठे है। इतने मे एक दासी ने आ कर कहा, आज तो पोकरण की ओर दामिनी दमक रही है, और श्याम घटा छा रही है, मानों इंद्र महाराज अपनी प्रजा के सुख दु ख को निरीक्षण करने के लिए आंखें उघाड़ कर देख रहे हैं। यह सुनते ही महारानी लक्ष्मी ने आह भरी और निश्वास डाला। नराजी ने माता से कहा कि माता ! यह अत्यत दुःख भरा निश्वास क्यों ? ऐसा आप को क्या दुःख है ? तव लक्ष्मी ने कहा कि वेटा ! पूछे मत, यह मामला ऐसा ही है। तब नराजी ने हठ पूर्वक माता से पूछा तो माता ने कहा कि पोकरण के स्वामी खींवा ने मेरे संबंध की प्रार्थना पर मेरी निंदा की थी उस का मुझे स्मरण हो आया। जगत् में विवाह के पश्चात् तो उहाग देना देखने में आया है, परंतु इस ने मेरी कुमारी अवस्था में निंदा की। यह सुन कर नराजी ने माता से कहा कि मेरी पोकरण पर कई दिनो से दृष्टि थी कि पोकरण ले लिया जाय, परतु आप के लिहाज से मैंने पोकरण नही लिया कि इस घर में आप की मौसी (मातृत्वसा) है। तब लक्ष्मी ने नराजी से कहा कि इस वात का तुम तनिक भी विचार न करो, पोकरण लेने में ज़रा देरी न करो।

नरा ने माता की आज्ञा पा कर अपने पुरोहित से कहा कि पुरोहितजी आप मदद करो तो पोकरण ले ले। पुरोहित ने कहा जैसी आज्ञा हो करने को तैयार हूं। तब नराजी ने पुरोहित से कहा कि मैं

तुम को कटुवचन और तुच्छ वाक्य कहूंगा, और तुम भी मुझे क्षुद्र वचन कह देना कि जिस से लोगो को यह दीख जाय कि इन में विगाड़ हो गया है। और कल सवेरे ही ऊँट पर सवार हो, नाराजगी दिखला कर पोकरण को चल देना। फिर वैसा ही किया गया। पुरोहित दरवार में आया उसे देखते ही नराजी ने कहा कि पापी अपना मुख मत दिखावै, यहां से चला जा। पुरोहित ने पीछा कहा कि तुम क्या कहते हो, तुम कौन वस्तु हो अभी तो रावजी विद्यमान ह, आप को कौन पूछता है? तुम्हारे जैसे कुँवर वहुत हैं, तुम कौन से वाग की मूली हो? पहले का सकेत तो था ही, पुरोहित दीवड़ी (पानी-पीने का चर्मपात्र) ले, वाहिर जा ऊँट पर पिलाण रख जाने को उद्यत हुआ और शस्त्र ले कर ऊँट पर सवार हुआ। दासों ने जाकर नराजी से कहा कि महाराज पुरोहित तो आप की सवारी का खासा ऊँट और सामान ले कर जाता है। नराजी ने कहा कि उस वदमाश को जाने दो, छेड़ो मत।

पुरोहित ऊँट पर सवार हो कर सीधा पोहकरण पहुचा। वहां उस की ससुराल थी, वहीं जा कर ठहरा। अव वह वहां घर के अंदर ही रहता है, वाहिर विलकुल नहीं जाता है। रात्रि दिवस घर में ही वैठा रहता है। तव ससुर और साले ने कहा कि यह क्या वात है? आप रात दिन घर मे ही वैठे रहते हो, वाहिर नहीं जाते? तव पुरोहित ने उन से कहा कि मैं राठोड़ नराजी को अप्रसन्न करके आया हूं इस लिये मुझे गुप्त रहना पड़ता है। उन्हों ने यही वार्ता रावत खींवा से कही कि हमारा जामाता राव नराजी से किसी वात पर लड़ कर यहां चला आया है, यदि आज्ञा हो तो दरवार में उपस्थित होवै। खींवा सरल प्रकृति का था उसे उस छल कपट से क्या प्रयोजन? उस ने उन से कहा कि ले आना। पुरोहित खींवा के चरणों में उपस्थित हुआ। उस ने उस से पूछा कि तुम्हारे नराजी के साथ विगाड़ क्यों हुआ? यदि किसी वात पर वैमनस्य हो गया है और कहने योग्य न हो तो कुछ नहीं, तुम यहां रहो और कुँवर के साथ खेलो। तुम्हारे खर्च का प्रवध कर दिया जायगा।

तव पुरोहित ने कहा कि मेरे पास जो खर्ची है वह आप ही की है, आवश्यकता होगी तव ले ली जायगी। पुरोहित नरा के पास से ज्येष्ठ मास में पोकरण आया था[1]। वह सदा इस विचार में रहता है

---

१ नैणसी लिखता है कि पोकरण में वालनाथ योगी रहता था। उस के आश्रम में इमली के पेड़ वहुत थे। ज्येष्ठ मास में इमली फली। कुंवर आता है और इमली तोड़ २ कर खाता है। शिष्यवर्ग मना करते हैं परतु राजकुमार ठहरा, कुछ

कि कोई ऐसा अवसर मिले कि पोकरण में कोई न हो, शून्य हो तो नराजी को संकेत कर दिया जाय कि विना हत्याकांड के पोकरण उन के हाथ लग जाय। ग्रीष्म ऋतु बीत गई, कोई ऐसा अवसर नहीं मिला, चातुर्मास्य भी चला गया। पुरोहित बड़ी चिंता में पड़ा हुआ है, हर घड़ी उसी ताक में लगा रहता है परंतु अभी तक उस का चिंतित कार्य सफल होने की कोई सूरत नहीं है। अब शीतकाल आया, अन्न पका, ठौर ठौर गोठें होने लगीं। रावल खींवे को भी ठौर ठौर से निमंत्रण आने लगे। वह कभी कभी गोठ में जाता है परंतु पिछला पूरा ध्यान रखता है।

एक समय गाँव ओगरास में गोठ थी। वहाँ से रावल खींवा को वुलाने के लिए मनुष्य आए और कहा कि आज तो आप सब गोठ में चलें। खींवा के राजपूत भी गोठ मे जाने के उत्सुक हुए। खींवा ने उन की गोठ में जाने की पूर्ण अभिलाषा देख कर उन से कहा कि

परवाह नही करता है। शिष्यों ने गुरु से कहा, योगी ने भी मना किया परन्तु कुँवर की वही चेष्टा रही, तव योगी ने शाप दिया यह इमली निष्फल होगी, तुम्हारा राज्य भ्रष्ट होगा, चेले गृहस्थी वन बैठेंगे। योगी वहाँ से चल दिया। लोगों ने रहने के लिए वहुत आग्रह किया परन्तु योगी ने एक न मानी। खींवा की स्त्री ईंदी उस योगी की परम भक्ति थी। योगी के लिए भोजन भेज कर भोजन किया करती थी। उस ने भोजन परोस कर मनुष्य के साथ योगी के आश्रम पर भेजा। वहाँ योगी कहाँ? योगी तो कभी का चला गया था, पूछने से पता लगा कि कुँवरों ने कष्ट दिया जिस से वह चला गया। ईंदी को योगी का वड़ा भाव था, मनुष्य के पीछे आने पर ईंदी विना भोजन किए योगी को ढूंढने चली। सात कोस पर जाते ईंदी योगी को पहुँची। ईंदी देखती है तो योगी जाल के वृक्ष के तले सोया है ईंदी ने योगी के चरण स्पर्श किया। और योगी निद्रा में से उठा और ईंदी को पैरों मे पड़ी देख कर कहा कि माता तू क्यों आई? तव ईंदी ने कहा कि नाथजी! आप तो हम को डुबो कर चले। योगी ने कहा कि माता मेरे वचन टल नहीं सकते। जो होना है वह तो होगा ही। कहा है—

"लाख जतन क्रोड उपाय, कर देखो सब कोय।
अणहोणी होणी नहीं, होणी है सो होय॥

तव ईंदी ने कहा, हम कहाँ रहें? हमारी क्या दशा होगी? तव योगी ने कहा, वेटी तेरे गर्भ है, तेरे पुत्र होगा, वह बड़ा सामंत होगा उस का नाम लूंका रखना, जव वह बारह वर्ष का होगा तव तेरी पृथ्वी तुझे पुनः मिल जायगी। अव मैं जाता हूँ, मेरे वचन को याद रखना। योगी आगे बढ़ा और ईंदी पीछे अपने घर पर आई।

चलिए। सब राजपूत तैयार हो गए ८० सवारों के साथ खीवा गोठ जेउने को जाने लगा उस समय पुरोहित से कहा कि क्या आप भी चलेंगे ? तब पुरोहित ने कहा कि हम ब्राह्मण है, हमारा वहां क्या काम आप सर्दार हैं, वहां तो सरदारो का काम है, आप जाइये। खीवा राजपूतो के साथ रवाना हुआ। उसी अर्से मे दरवान कटोरा लिए खडा था और इधर उधर देख रहा था कि कोई जाने वाला हो तो उसे कटोरा दे दूँ कि परोस लावै। पुरोहित ने उसे प्रसन्न रखने का उत्तम अवसर देख कर कहा कि मुझे दे दो मै परोसा लाऊँगा। मै ब्राह्मण हूँ, मेरा चाकर ले आवेगा। तुम से हमारे हज़ार काम हैं।

दरवान का कटोरा ले कर उस ने चाकर से कहा कि मेरा ऊँट ला, और ओढने की रजाई ले आ। चाकर ऊँट और रजाई लाया। पुरोहित ऊँट पर सवार हो कर उस रास्ते चला जिस मार्ग खीवा गया था। आगे जा कर फलोधी का मार्ग लिया। अगाड़ा जाते एक पल्लीवाल ब्राह्मण मिला। उस से पुरोहित ने कहा कि जल्दी फलोधी जा, और वाहर[१] ले आ। पहले संकेत किया हुआ था ही, ब्राह्मण जा कर पुकारा "वाहर करो, वाहर करो" आगे नरा के जासूस बैठे ही थे, तुरन्त सज्ज हुए, ऊँटों पर सिलह लदा हुआ था ही, फिर क्या देरी थी, तुरन्त सब ऊँटो पर सवार हो कर पांच सौ ५०० ऊँटों से नराजी पोकरण पर चले। आगे नराजा क्या देखते हैं, वही पुरोहित ऊँट की मोहरे पकड़े ऊँट को खीचे चला आता है। उसे मार्ग म आता देख कर रामा सोहड़ बोला कि "रावलजी वही पुरोहित आ रहा है। चुप रहो, वाहर का मामला है। तब नरा ने कहा कि हम कुछ नहीं कहेंगे चले आओ। तब पुरोहित भी ऊँट पर सवार हो लिया और साथ हो गया। जब पोकरण के पास विटड्यां के निकट गए, तब रामा सोहड ने कहा कि न तो कोई जाने वालों का पगार (पगडंडी) नजर आता है और न किसी के खोज (चरणचिन्ह) दृष्टिगोचर होते हैं, आपन चलेंगे किधर? तब नराजी ऊँट पर चढ़े। २ पुरोहित से बांह पसार कर मिले। और रामा से कहा कि हम पोकरण लेंगे।

नराजी कोडोधज घोड़े पर सवार थे। रामा ने कहा कि खीवा का प्रथम पता लगना चाहिए। आप इस कोड़ीधज को मुख को कूटे जिस से यह बोले। इस के शब्द को सुन कर खीवा अदर होगा तो उस का पता लग जायगा। यदि पोकरण के अदर होगा तो साम्हना किये विना न रहेगा। इसलिए विचार कर अदर चलना चाहिए। नराजी ने कहा कि तुम्हारा कहना उचित है ऐसा ही करेंगे। फिर वैसा ही किया गया। कोडोधज ने शब्द किया परन्तु उस के उत्तर

१ चोर और डाकुओं के पीछे अनुधावन करने को वाहर कहते हैं।

में पोकरण में से कोई वाहिर नहीं आया जिस से नराजी को निश्चय हो गया कि खीवा पोकरण के अंदर नहीं है, वाहिर है। ये पोकरण की तर्फ चले।

उधर खीवा उस समय गांव उग्रासर मे था। वहां तक कोड़ीधज का शब्द सुनाई दिया। खींवा गोठ में भोजन को वैठा है, सव राजपूत भोजन कर रहे हैं। खीवा ने कोड़ीधज का शब्द पहिचान कर अपने राजपूतो से कहा कि सुनते हो, नरा के कोड़ीधज घोडे का शब्द सुनाई देता है, दुर्ग छोड कर आपन यहां आ गए हैं, कोट सूना है, और नरा का ब्राह्मण फलोधी से आ कर पांच छः महीनो से यहां आ वैठा है, मुझे तो उपद्रव दिखाई देता है, जाओ तलाश करो, क्या वात है? फिर खीवा ने पांच चार सवार ख़वर करने को भेजे।

वे पोकरण की तर्फ रवाना हुए और एक पहाडी पर खड़े हो गए इतने में नराजी अपने साथ के साथ वहां पहुंचे। खीवा के सवारों ने उन को दूर से आते देखा। वे सवार भी मार्ग पर आ कर खड़े हो गए। इतने में नराजी आए। उन से सवारो ने पूछा कि कौन ठाकुर है? तव नराजी के मनुष्यों ने कहा कि राव वीकाजी के पुत्र नराजी वीकानेरी है। उमरकोट व्याहने को जाते है। तव सवारों ने कहा कि यह घोड़ा कोड़ीधज तो राव सूजाजी के पुत्र नरा का है। तुम्हारे पास यह कैसे आया? तव उन्होने कहा कि हां, यह घोड़ा उन्हीं का है, परन्तु हमारे यहां ऐसा उत्तम घोड़ा नहीं था इसलिए हम ने उन से मांग कर लिया है। विवाह का कार्य करके उन के यहां पीछे पहुंचा दिया जायगा। और घोड़ा मांगने का कारण यह है कि आगे उमरकोट में सोढ़ो के पास उत्तमोत्तम घोड़े हैं इसलिए हम ने अपनी शोभा के लिए मांग लिया है कि वहां हमारी न्यूनता न दीखे। सवारों को तव भी कोड़ीधज घोड़े के कारण सदेह ही रहा कि कही नरा सूजावत न हो? जिस से फिर उन्होने उन से पूछा कि इतने ऊंटो पर युद्ध की सामग्री क्यो है? तिस पर उन्होने कहा कि हमारे लोगों से वैर विरोध वहुत है इसलिए आत्मरक्षा का उपाय तो करना ही पड़ता है। हम भी तो राजा हैं, इतनी युद्ध सामग्री तो साथ मे अवश्य चाहिए।

यह सुन कर सवार पीछे खीवा के पास गए और खीवा से कहा कि वे लोग सज धज कर आए हैं, कोई उपद्रव ही दीख पड़ता है। पूछने पर उन्होंने कहा है कि राव वीकाजी के पुत्र नराजी सोढों के यहां व्याहने के लिए अमरकोट जाते हैं। और विवाह का वेष भी वनाए हैं। सिर पर सेहरा वँधा हुआ है। केसरिया वागा पहने है। खभायच राग गाई जा रही है। परन्तु हम को तो यह उपद्रव ही

दिखाई देता है, प्रथम दूल्हा के चढने को राव सूजाजी के पुत्र नरा का घोड़ा कोड़ीधज है, जिसे नरा क्षण भर भी अलग नही रखता। दूसरे राजपूत सब सिलह किये हुए हैं और साथ भी बहुत अधिक है और युद्ध की सामग्री सब सजी हुई है। यद्यपि वे कहते हैं कि हम घोडा मांग कर लाए हैं परन्तु यह असंभव है कि नरा सूजावत् अपना कोड़ीधज घोड़ा दूसरे को देवै। हमें तो कपट प्रतीत होता है।

ये लोग इस प्रकार गोठ में बैठे विचार कर रहे हैं इतने में नरा पोकरण जा पहुंचा। प्रोहित ने दरवाज़े पर जा कर पोलिये को आवाज़ दी कि दरवाज़ा खोलो, तुम्हारा कटोरा परोसा कर ले आया हूं जल्दी करो। रात्रि का समय था, पोलिया निद्रा में से उठा इतने में प्रोहित ने फिर उच्च स्वर से पुकार कर कहा कि देरी क्यों करते हो तुम्हारा कटोरा लो। पोलिये ने निद्रा में से उठ कर कटोरे के लालच से दरवाज़े की खिड़की (दरवाज़े के अंतर्गत छोटा द्वार) खोली और कटोरा लेने को हाथ बाहिर निकाला। नरा ने हाथ बाहिर निकालते ही उस पर बर्छी का प्रहार किया, वह उस के हृदय को भेद कर पीठ को पार कर गई। द्वारपाल वहीं ढेर हो गया। नरा ने खिडकी के द्वारा अंदर जा कर पोल बड़ा फाटक खोल दी और कोट में प्रवेश करके अपनी आज्ञा प्रवृत्त की। और नगर में भी मनुष्य भेज कर ड्योंडी पिटवा दी। खींवा के कुछ मनुष्य थे, मार लिए गए।

खींवा ने पहले सवार भेजे थे उन के कहने से उस के मन में पूरा ख़तरा पड़ गया जिस से उस ने फिर दूसरे सवार भेजे। उन्होंने आ कर देखा तो नरा सूजावत पोकरण में प्रविष्ट हो गया है। कोट और नगर में नरा की आज्ञा प्रवृत्त है। सवार इस दृश्य को देख कर पीछे खींवा के पास गए और उन्होंने खींवा से कहा कि पोकरण पर नरा सूजावत ने अधिकार कर लिया है और उस के साथ राजपूत और युद्ध सामग्री पूर्ण है। यह सुन कर खींवा गांव उआसर से पोकरण की ओर आया परन्तु यहां नरा की व्यवस्था देख कर पोकरण को तीन चार कोस बाजू में रख कर निकल गया।

नराजी ने पोकरण में निवास कर दिया है, ठौर ठौर चौकियां और थाने बिठा दिये हैं। नराजी ने निवास करके खींवा की स्त्री से कहा कि अब आप चली जाइये। उस ने अश्रु बहा कर कहा कि बेटा! तू हमें निकालता है? परन्तु नराजी ने उस पर करुणा नहीं की और उसे वहाँ से निकाल दिया। पोकरणा राठौड़ वहाँ से निकल कर बाहडमेर चले गए और पोकरण के प्रांत में लूटपाट करने लगे।

नराजी ने उन का दमन करके पोकरण के प्रदेश को आबाद किया। और उसी के समीप में इन के पिता सातलजी ने जो सातलमेर

वसाया था उस का इस ने प्राकार करवाया। और नरासर नामक तालाव करवाया, और देश को शांतिमय वना दिया। यद्यपि खीवा और उस के अनुयायियों ने नराजो के देश में उपद्रव उठाने का वहुत यत्न किया परन्तु नराजी के सुप्रवंध के कारण उन से कुछ भी न वन पड़ा। जव लूँका वारह वर्ष का हुआ उस ने भाला हाथ में लिया और घोड़े की अच्छी सवारी करने लगा तव उस की सहायता पा कर पोकरणों ने फिर पोकरण के प्रदेश में उपद्रव करना शुरू किया। और एक स्थान में सव एकत्रित हुए। अपना पूर्ण वल वँध गया तव पोकरणे सव एकत्रित हो वाहडमेर से पोकरण पर चढ धाए। राव खींवा, चाचा, वरजांग और लूँका इन्होंने जा कर पोकरण का गोधन घेरा। नराजी को यह कव सहन हो सकता था, तुरत उन का अनुधावन किया। थोड़ी दूर पर जाते नराजी उन को पहुँचे, दोनों में विकट संग्राम हुआ, पोकरणों के वहुत से राजपूत मारे गए। नराजी की विजय रही जिस से खीवा के राजपूतो ने रणांगण छोड़ दिया। उस समय नराजी उन के पीछे चले और लूँका को जा दवाया। दैव घटना ऐसी हुई कि नराजी की वह निष्फल हो गई। लूँका ने चलते ही नराजी पर तलवार का प्रहार किया वह ऐसा कारगर हुआ कि नराजी का मस्तक कट कर दूर जाता पड़ा और धड घोड़े पर से गिरते गिरते घोड़ा २०० क़दम चल गया। नराजी का मस्तक कहीं पड़ा और धड़ कहीं पड़ी। पोकरणे नराजी को मार कर गांव भिणियाणा में ठहरे। नराजी का स्वर्गवास संवत्[1] १५५५ चैत्र वदि २ द्वितीया को हुआ था।

नराजी के राजपूत मालिक के मारे जाने से खिन्न हो कर पीछे पोकरण आए। और नराजी की वीरगति के समाचार कहे। नराजी की स्त्रियां पति सहगमन करने को उद्यत हुईं; परंतु नराजी का मस्तक नही मिला जिस से उन को सहगमन से रुकना पड़ा और पोकरणों के पास मनुष्य भेज कर उन से मस्तक माँगा गया। पोकरणों ने उस के उत्तर में कहा कि हम तो नरा का मस्तक नहीं लाए, वहीं रणक्षेत्र में जहां धड़ पड़ी है उस से २०० क़दम के अन्तर पर कैर और गांगेरण के पेड़ है उन के अदर पड़ा होगा, जा कर देख लो। वहां से जा कर मस्तक लाया गया उसे उत्सग में रख कर नराजी की स्त्रियाँ सती हुईं।

लूँका के हाथ नराजी का मारा जाना सुन कर सूजाजी वाहडमेर सेना ले कर गए और वाहड़मेर का प्रांत लूट कर पीछे पोकरण में आए और वहां का शासक नराजी के पुत्र गोविन्द को नियत किया। वह नराजी के जैसा वीर और वहादुर नहीं था इस लिए पोकरणे

---

१ नैणसी संवत् १५५१ लिखता है।

राठोड सदा उपद्रव करते है । जहाँ देखो जहाँ लूट पाट होता है, और सदा लड़ाइयां होती हैं, दोनों ओर के मनुष्य मरते हैं देश में अशांति फैल रही है ; प्रजा दुखित है, इस उपद्रव को मिटाने के लिये राव सूजाजी ने नराजी के पुत्र गोविन्द को अपने पास बुलाया और बाहडमेर से पोकरण राठोड़ खींवा आदि को बुला कर सदा की शांति के लिए दोनों में संधि करवा दी। आधी भूमि पोकरण राठोडों को और आधी गोविंद को दी गई । पोकरण[१] का कोट नराजी के वैर मे पोकरणों से लेकर गोविंद को दिया गया ।

उक्त गोविंद के २ पुत्र थे। जैतमाल और हमीर । हमीर को फलोधी की भूमि दी गई । और जैतमाल को सातलमेर। जिसे सातलजी ने पोकरण से २ कोस पर अपने नाम पर बसाया था। और उस का कोट नराजी ने करवाया था ।

राव सूजाजी के राव जोधाजी ने सोजत भेज दिया था। संवत् १५४५ में वहाँ मुसलमानों की सेना का भ्रमण करता हुआ एक संघ चला आया और देश में उपद्रव करने लगा तब सूजाजी उन के प्रतिरोध के लिए उन के समीप पहुँचे। दोनों में बड़ा विकट युद्ध हुआ। उस में राव सूजाजी की तलवार का ताप न सह कर यवनों का संघ भाग गया और सूजाजी की विजय हुई।

वैसे ही राव सातलजी के समय मे संवत् १५४८ में मल्लूखाँ आदि यवनो ने मारवाड़ में आ कर पीपाड़ के निकट महान् उपद्रव किया और स्त्रियों को पकड़ लिया उन को छुड़ाने और यवनों को परास्त करने के लिए राव सातलजी वहाँ पहुँचे उन के साथ छोटे भाई सूजाजी भी थे। उस युद्ध में सूजाजी ने बड़ा पराक्रम किया जिस से मुसलमानों को हार खा कर भागना पड़ा । इस युद्ध म राव सातलजी घायल हो कर स्वर्गवास कर गए थे।

कर्नल टॉड साहिब इस घटना को सातलजी के समय में न मान कर सूजाजी के समय में संवत् १५७२ में मानते हैं और इसी युद्ध में सूजाजी का स्वर्गवास होना कहते हैं। परन्तु यह उन का भ्रम

---

१. किसी आधुनिक इतिहास लेखक ने पोकरण के विषय में लिख दिया है कि "पोकरण शहर अजमालजी के पुत्र (रणसीजी के पौत्र) तुंवर रामदेवजी ने मल्लिनाथजी की समति से बसाया था। परन्तु यह ठीक नहीं है । पोकरण शहर बहुत पुरातन है। पोकरण में बालनाथजी के मंदिर के पास एक कीर्ति स्तंभ में खुदा हुआ संवत् १०७० का शिलालेख विद्यमान है और मल्लिनाथजी संवत् १४३१ में गद्दी बैठे थे तब पोकरण रामदेवजी का बसाया हुआ नहीं, किन्तु संवत् १०७० से पूर्व पोकरण का बसाया जाना सिद्ध होता है।

है। मारवाड़ के समस्त इतिहास लेखक इस घटना का होना राव सातलजी के समय मे ही लिखते हैं और उस युद्ध में राव सातलजी का स्वर्गवास होना कहते हैं। जिन का स्वर्गवास संवत् १५४८ मे हुआ था। और उन के पश्चात् राव सूजाजी उन के उत्तराधिकारी हुए थे। यदि उक्त घटना संवत् १५७२ मे होती तो उस मे सूजाजी के पुत्र राव सेखो, राव गांगो, आदि उन के साथ उस युद्ध मे अवश्य समिलित होते। जो पूर्ण वयस्क और बड़े योधा थे। परन्तु उस युद्ध में सूजाजी के पुत्रो मे से किसी के समिलित होने का किसी ने भी उल्लेख नहीं किया है जिस से निश्चित है कि उक्त घटना न तो सूजाजी के समय में हुई थी और न सूजाजी उस में मारे गए थे।

संवत् १५५५ में रायपुर के सींधल राठौड़ों का उपद्रव उठा, उन्होंने सोजत प्रांत में विगाड़ किया तब राव सूजाजी ने उन का दमन करने के वास्ते अपने पुत्र सेखाजी को रायपुर भेजा। सेखाजी ने जा कर रायपुर को घेरा और उन को तग किया सींधल भी कुछ दिन लड़ते रहे अंत में सेखाजी के पास अपना विश्वस्त मनुष्य भेज कर संधि कर ली और सेखाजी उपद्रव को शांत कर पिता के चरणों में आ उपस्थित हुए।

मारवाड़ में सींधल राठौड़ फैले हुए थे और जैतारण, चाणोद आदि में वे ही शासक थे। संवत् १५६० मे चाणोद के सींधल राठौड़ों ने सिर उठाया और सूजाजी के राज्य में दौड़ धूप करने लगे तब राव सूजाजी उन को शांत करने के लिए चाणोद गए, वे भी सज कर युद्धार्थ सामने आए दोनो में संग्राम हुआ अंत में सूजाजी की विजय हुई, सींधल हारे। सूजाजी ने उन की भूमि पर अपना अधिकार कर लिया, परन्तु उन्होंने फिर विनय पूर्वक प्रार्थना की तब उन की भूमि उन्हें दे दी गई।

वैसे ही जैतारण में हुआ। जैतारण पर इस से पूर्व जोधाजी के समय में भी आक्रमण हुआ था क्योंकि वे महाराणा की चाकरी करते थे और जोधाजी की भूमि में विगाड़ करते थे। राव जोधाजी ने अपनी सेना भेज कर उन को वहाँ से निकाल दिया और वहाँ अपना अधिकार कर लिया था परन्तु जब सींधलों ने देखा कि राव जोधा महा प्रबल है इन का शरण लेने मे ही कल्याण है ऐसा समझ लिया तब उन्होंने महाराणा से संबंध त्याग कर राव जोधाजी की मातहती स्वीकार कर ली और शरण मे आ गए तब राव जोधाजी ने उन की भूमि उन को पुनः दे दी थी। जोधाजी के पश्चात् राव सूजाजी के समय मे उन्होंने फिर उद्दडता धारण की, तब राव सूजाजी ने उन पर

चढ़ाई की, इस समय उन के पुत्र ऊदाजी भी उन के साथ थे। सीधलों के साथ बडी भारी लडाई हुई जिस में ऊदाजी ने अच्छी तलवार बजाई और रावजी की विजय हुई तब रावजी ने प्रसन्न हो कर यह जैतारण का परगना ऊदाजी को ही दे दिया उन के वंशज ऊदावत राठौड़ हैं। चार पीढ़ी तक जैतारण पर ऊदावतों का अधिकार रहा।

राव सूजाजी का एक विवाह जेसलमेर हुआ था। यह रानी जोधपुर आई तब इस के साथ जेसलमेर के बहुत से पोकरणे ब्राह्मण और बनिये आए थे। और खेतपाल (क्षेत्रपाल) गोरा जेसलमेर का रानी लिखमी (लक्ष्मी) अपने साथ लाई थी, वह कोठारों के तले तल घर में पूजा जाता है। इस समय वह स्थान दौलतखाना के चौक में है, जहाँ उतरने के लिए जीने लगे हुए हैं।

संवत् १५७१ में इन रावजी को एक बडा भारी आघात पहुँचा। वह यह था कि इन के ज्येष्ठ पुत्र कवर वाघाजी इन के जीवित समय में काल के कवल हो गए। रावजी को इस का शोक इतना अधिक हुआ कि रावजी फिर थोड़े ही दिन जीवित रहे।

कंवर वाघाजी पिता के परम भक्त और वड़े वहादुर थे। राव सूजाजी के समय में राणा सांगा ने सोजत पर अपना अधिकार करने के लिए कुछ सेना भेज दी थी। राव सूजाजी ने कंवर वाघाजी को उस के साम्हने भेजा। यद्यपि उस समय राणा सांगा महावली था और उस के पास एक लाख से अधिक सेना थी, जिस से वावर जैसा मुगल वादशाह शंकित रहता था उस प्रतापी राणा सांगा की कुछ परवाह न करके कवर वाघाजी अपने चुनिंदे वीरों को साथ ले कर मुक़ावले पर गया। उधर सीसोदिये सज धज कर आए थे, दोनों में सग्राम हुआ जिस में कंवर वाघाजी की विजय हुई और राणा की सेना को पराजित हो कर पीछे लौटना पडा। कवर वाघाजी सोजत में डटे रहे। जिस से फिर राणा सांगा की सोजत पर सेना भेजने की हिम्मत नहीं हुई।

राव सूजाजी वड़े वीर पुरुष थे इन्होंने अपना राज्य अत्यन्त शांति पूर्वक किया किसी ने सिर उठाया तो उस का दमन करके राज्य की वृद्धि की। इन्होंने २४ वर्ष राज्य करके ७६ वर्ष की आयु पा कर संवत् १५७२ में कार्तिक वदि ६ (ई० स० १५१५ की २ अक्टूबर) को इस लोक को त्याग कर परलोक को प्रयाण किया१।

१. इन के राज्य समय का संवत् १५५२ का शिलालेख ठिकाना आसोप में मिला है।

मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास

(गताङ्क से आगे)

राव सूजाजी के ११ पुत्र हुए।

१ वाघाजी २ नराजी ३ सेखाजी ४ देवीदासजी ५ ऊदाजी ६ प्रागदासजी ७ सांगाजी ८ नापाजी ९ पृथ्वीराजजी १० जोगीदासजी ११ गोपीनाथजी। इन से १० शाखा[1] हुईं वे नीचे दिखा दी जायँगी।

१ वाघाजी। नराजी सातलजी के गोद जाने से वाघाजी ज्येष्ठ पुत्र माने गए। संवत् १५७१ में वाघाजी मरणासन्न हुए उस समय राव सूजाजी को उन्होंने बुलाया। सूजाजी पुत्र की दशा देख अति आकुल हुए और कहा कि यदि तुम्हारे मन में कुछ हो तो कहो तब वाघाजी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि "मेरी तो यह दशा है आप का उत्तराधिकारी मेरा पुत्र किया जाय"। उस समय सेखाजी रावजी के साथ थे। रावजी ने सेखाजी से कहा कि "कंवर वाघाजी कहते है इस में तुम्हारी क्या राय है? मैं तो इस समय इस के वचन को टाल नहीं सकता"। आज्ञाकारी सेखाजी ने करबद्ध हो कर कहा कि "आप की इच्छा है तो मैं आप की आज्ञा को कैसे लोप सकता हूँ"। रावजी ने सेखाजी की संमति ले कर वाघाजी को कह दिया कि तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। फिर कवर वाघाजी संवत् १५७१ भाद्रपद सुदि १४ को ५७ वर्ष की आयु पा कर स्वर्ग को सिधारे। इन का जन्म सवत् १५१४ कार्तिक वदि ३० को हुआ था।

वाघाजी के ७ पुत्र हुए। १ वीरमदे २ मांगो ३ सीघण पितृगण में पूजा जाता है ४ भीम[2] ५ जैतसी ६ प्रतापसिंह ७ खेतसी। वीरमजी और प्रतापसिंह के वंशज वाघावत राठोड़ है।

२ नराजी सातलजी के गोद दिये गए इन का इतिहास पहले

---

[1] एक आधुनिक इतिहास लेखक ने सूजाजी का पुत्र खगार मान कर खंगारोत शाखा लिख दी है, वह भ्रम है। सूजाजी के खंगार नाम का पुत्र नही था। खगार जोधाजी के पुत्र जोगाजी का पुत्र था। उस से खगारोत शाखा हुई। तब उस के लेख से ८ शाखा होना सिद्ध होता है और सूजाजी से १० शाखा हुई थीं वे आगे दिखाई जायँगी। और १२ पुत्र लिखना भी चिन्त्य है। ग्यारह से अधिक किसी इतिहास पुस्तक में दृष्टि-गोचर नहीं होता। खगार को १२-वां मान लिया हो तो बलिहारी है।

[2] भीम ने दसौर का कोट करवाया और उस ने कहा कि मैं दसौर के नीचे जोधपुर से दुगुने गाँव डालूँगा। इस बात से राव गांगाजी अप्रसन्न हुए। बड़ा खेद का विषय है कि भाई का अभ्युदय गांगाजी को सहन नही हुआ। उन्होंने उसे विष प्रयोग से मरवा दिया।

लिखा जा चुका है। इन के वशज फलोधी और पोकरण की ओर हैं वे नरावत राठौड़ कहलाते है। इन के वूह, भडाणो आदि ६ ठिकाने हैं।

३ सेखाजी—इन का इतिहास गांगाजी के इतिहास में लिखा जायगा। इन से सेखावत शाखा चली।

४ देवीदासजी—इनके वशज देवीदासोत कहलाते है।

५ सांगाजी—के वशज सांगावत राठौड़ हैं।

६ प्रागदासजी—इन के वशज प्रागदासोत राठोड़ हैं।

७ नापोजी—इन के वशज नापावत राठोड है।

८—९ तिलोकसी—इन से दो शाखा फटी। तिलोकसीयोत और इन के पुत्र रामा से रामोत।

१० ऊदाजी-राव सूजाजी ने जैतारण विजय करके इन को दे दिया था। इन्होंने सींधल राठौड़ों को जैतारण से निकाल कर वहां अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। इन के वशज ऊदावत राठौड है। ऊदावतो के ७४ ठिकाने हैं। जिन मे १६ ताजीमी आसामी है। उन में से रायपुर, नींवाज और रास ये तीन सिरायत हैं और इन को दीवानी और फ़ौजदारी के अव्वल दर्जे के अख़्तियारात है। लांवियां, पालासणी और सैसड़ा ये तीन हाथ के कुरव वाले है। देवली, वांसियो, देवरियो, पीह, गुंदोच, डेह और मोरला इन सातों को वांह पसाव का कुरव है। कालियाटड़ा और वर पांती २ को ताजीम है।

राव सूजाजी के समय मे निम्नलिखित भिन्न २ देशो में शासक थे दिल्ली में सिकंदर लोधी वादशाह था। सवत् १५४६ में गद्दी वैठा था।

मालवे के वादशाह—

१ गयासुद्दीन संवत् १५२६

२ नासुरुद्दीन सवत् १५६६

गुजरात के वादशाह—

१ महमूद वेगड़ा संवत् १५१५

२ मुज़फ़र संवत् १५७०

मुलतान के वादशाह—

१ हुसेनशाह लगा १५२६

२ महमूद शाह लगा १५५८

चीतौड़ के महाराणा—

महाराणा रायमल्ल संवत् १५३०

महाराणा सांगाजी सवत् १५६६

जैपुर के महाराजा—

चंद्रसेणजी और पृथ्वीराजजी

बीकानेर के राजा—

राव बीकाजी, नराजी और लूणकरणजी १५५१.

सिरोही के महाराव—

जगमालजी वि० सं० १५४०.

बूंदी के रावराजा—

महाराव नारायणदासजी

जेसलमेर के रावल—

देवीदासजी और जैतसीजी

इन रावजी के समय में स्मरणीय नवीन घटना ये हुई—

१ सिकदर लोधी ने संवत् १५६० में दिल्ली छोड़ कर आगरे में अपनी राजधानी स्थापित की।

२ फिरंगियों ने संवत् १५६६ में सब से प्रथम दक्षिण समुद्र के मार्ग से कालीकोट के राजा पर चढ़ाई की। उस दिन से इन लोगों की भारतवर्ष के इतिहास में गणना होने लगी।

३ मेवाड़ में महाराणा सांगाजी का इतना प्रताप बढ़ा कि पार्श्ववर्ती बहुत से राजा उन के आधीन हो गए।

राव सूजाजी ने चार गांव पुण्यार्थ दिये थे।

गांव २ सेवड पुरोहितों को दिये थे।

१ गांव बाबड़ी परगना सोजत।

१ गांव नेतड़ां परगना सोजत

गांव २ ब्राह्मण तेजमाल को दिये थे—

१ गांव धेनावस परगना सोजत

१ गांव धिणाला[1] परगना सोजत—

२५ राव गांगाजी—ये राव सूजाजी के पुत्र कवर बाघाजी के द्वितीय पुत्र थे। इन का जन्म वि० सं० १५४० के वैशाख मास की एकादशी (ई० सन् १४८३ की १८ अप्रेल) को हुआ था। इन के जन्म समय का ग्रह-चक्र यह है।

---

१. यह वही धिणाला है जहाँ राव रणमलजी मंडोर से निकल कर गए थे और राणा लाखाजी ने ४० गांवों से उन का हाथ खर्च के लिए दिया था।

जन्म कुण्डली

५ चं
३
६ श के
४
सू २
७
१ बु
८ वृ
१०
१२ शु
९ मं
११
रा

इन के बड़े भाई वीरमजी थे और राज्य के अधिकारी भी वे ही थे परतु एक ऐसी घटना हुई कि वे राज्य से वंचित रह गए और उन के छोटे भाई गांगाजी राज्य के मालिक हो गए।

राव वीरमजी के राज-तिलक करने का दिन नियत हुआ उस दिन सब सरदार और भाई किले पर गए। उन के साथ उन के पुत्र भी थे। उस दिन रात्रि में पानी बहुत बरसा जिस से सरदारों के कपड़े भीग गए। इन में अखैराजजी का पुत्र पंचायण अग्रणी था। और चांपावत सगता गढ़ के थाने पर था। इन्होंने वीरमदेवजी की माता देवड़ी[1] से कहलाया कि हमारे वस्त्र भीग गए हैं और बालकों को भूख लग गई है इसलिए आप इस का प्रबन्ध करें। देवडोजी ने यह तो नहीं सोचा कि इस समय राज्य का अधिकार देना इन्ही के हाथ में है इन को प्रसन्न रखना चाहिए और तुरंत राजमाता होने का अभिमान मन में ला कर कहला दिया कि "मैं तुम्हारी चाकर भटियारी नहीं हूँ कि बिछोने भेजूं और भोजन की सामग्री तैयार करूं"। इस बात की ख़बर गांगाजी की माता चौहानजी को हुई तो तुरन्त उन्होंने उन के लिए बिछोने और वस्त्र भेजे। और साथ के साथ थाल परोस कर भेज दिये। सरदार कपड़े भीग जाने और भूख लग जाने से अत्यंत क्रुद्ध हो रहे थे। उस समय में गांगाजी की माता ने उन का आतिथ्य सत्कार किया जिस से गांगाजी की माता की ओर उन का ध्यान चला गया। और वीरमजी के राजतिलक के विषय में टाला टूली करने लगे। और वीरमजी की माता को कहला दिया कि आज तो राजतिलक का मुहूर्त टल गया है फिर अच्छा शुभ मुहूर्त देखा जायगा।

---

(१) नैणसी सीसोदणी कहता है।

और गांगाजी उस समय जोधपुर में नहीं थे। वे अधिकतर मेवाड़ में महाराणा सांगाजी के पास रहा करते थे। उस समय वे मेवाड़ में थे। पंचायण आदि सरदारों ने गांगाजी की माता को कहलाया कि आप निश्चिंत रहिये राज्य का स्वामी आप का पुत्र होगा। और तुरत गांगाजी को बुलाने के लिए पत्र लिखा। गांगाजी इन का पत्र पहुंचते ही महाराणा से आज्ञा ले कर जोधपुर चले आए और कवरपदे के महल में ठहरे। वीरमजी ने उन के नीचे हो कर निकलना मजूर नहीं किया जिस से भरने के ऊपर चामुंडा के मदिर के तले बारी (छोटा द्वार) निकाली गई। वीरमजी तलहटी उस रास्ते आते जाते। परन्तु राठोड़ों ने वीरमजी का किले में रहना अनुचित समझ राज्य से वंचित रख कर गांगाजी को वि० सं० १५७२ मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को राज़ तिलक करके उन को राज्य का मालिक बना दिया। यह कार्य सेखाजी की इच्छा से विरुद्ध हुआ। सेखाजी राव सूजाजी के पूछने पर अपनी संमति वीरमजी के लिये दे चुके थे। उन का राज्याभिषेक न हो कर गांगाजी को राज्य मिल गया तब सेखाजी वीरमजी को लला कोटड़ी में ले आए और वहीं अपने हाथ से वीरमजी के राज तिलक करके उन को सोजत भेज दिया। वीरमदेवजी अपनी माता को ले कर सोजत चले गए। अब गांगाजी जोधपुर में और वीरमजी सोजत में शासन करने लगे। उन के साथ मुहता रायमल भी गया। जो बड़ा वीर और बुद्धिमान पुरुष था। सोजत में राज्य का कारबार उसी के आधीन था। जोधपुर छूट जाने पर वीरमजी का मन विक्षिप्त हो गया। परन्तु मुहता रायमल उन को सांत्वना देता रहता और अहर्निश उन की शय्या की रक्षा करता।

एक समय वीरमजी शिकार खेलते हुए बीलाड़े की तरफ़ चले गए। जहां डाभी राजपूत बीका की कन्या जीजी बाई रहती थी। यह अपने पिता के पशुओं को चराया करती थी और उस ने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं किसी पुरुष के साथ पाणिग्रहण नहीं करूँगी। वह जंगल मे पशुओं को चराती हुई राव वीरम जी के दृष्टि गोचर हो गई। अत्यंत रूपवती थी और तरुण अवस्था थी। किसी पुरुष का संसर्ग नहीं हुआ था। उस के अनुपम स्वरूप और मुग्धभाव को देख कर वीरमजी का मन चलायमान हुआ और उस के समीप जा कर उस से कहा कि मैं तुझे चाहता हूँ तू हमारे साथ चल। वीरमजी के इन वचनों को सुनते ही जीजी बाई आगबबूला हो गई और उस ने वीरमजी को शाप देते हुए कहा कि धिक्कार है तुझ को जो तू किसी के ब्रह्मचर्य को भ्रष्ट करने की इच्छा करता है। तू ने मेरे ऊपर दृष्टि डाल कर जो दुरभिप्राय प्रकट किया है इस से तेरा सर्वनाश होगा और

तेरी दुर्गति होगी। तेरा राज्य नष्ट हो जायगा। वीरमजी उस के शाप से कंपित हो कर पीछे लौट गए। और जीजी बाई वहीं अपने पशु चराती रही। यह शक्ति का अवतार मानी जाती थी और आई माता के नाम से प्रसिद्ध थी। जिस का स्थान मुख्य बीलाडा मे विद्यमान है और आई के पुजारी दीवान की पदवी से पुकारे जाते हैं। जो आई माता के कृपा-पात्र माधो के वशज है।

वीरमजी को जोधपुर का राज्य न मिलने और दूसरा जीजी बाई का शाप, जिस से वीरमजी सदा व्याकुल रहने लगे। परन्तु मुहता रायमल बड़ा वीर, नीतिज्ञ और बुद्धिमान् था जिस से वीरमजी के राज्य में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है। राव गांगाजी की इच्छा सदा सोजत लेने की बनी रहती है इसलिये वे सोजत प्रांत मे बिगाड करते है। ये सोजत का एक गांव लूटते हैं तो मुहता रायमल उन के दो गांव नष्ट करता है इस तरह इन के आपस में विरोध चलता रहता है।

सोजत प्रांत में बगड़ी का ठिकाना है। वह ठिकाना अखैराजजी के पुत्र पचायणजी और उन के पुत्र जैताजी[1] के अधिकार में है। और जैताजी जोधपुर गांगाजी के सामत हो कर उन की सेवा करते हैं। और कूंपाजी[2] वीरमजी के सामंत हो कर वीरमजी की सेवा में तत्पर है। बगड़ी ठिकाना सोजत परगना मे है और सोजत के स्वामी वीरमजी हैं। जैताजी का कुटुंब बगड़ी में है इस लिए जैताजी को वीरमजी के साथ भी अच्छा व्यवहार रखना पड़ता है। और वीरमजी भी उन के साथ वैसा ही व्यवहार बरतते हैं। वे जैताजी सोजत का भला चाहते हैं और गांगाजी की इच्छा उसे बिगाड़ने की। इस लिए गांगाजी ने जैताजी से कहा कि आप अपना कुटुंब बगड़ी से बीलाडे ले आओ, बगडी छोड़ दो। गांगाजी के अति आग्रह से जैताजी ने बगड़ी लिख दिया कि अपना परिजन बीलाडे ले आओ। बगडी में धाय[3] भाई, रेड़ा नाम का पुरुप अधिकारी था उस ने पीछा कहलाया कि जब वीरमजी हम से बगड़ी नहीं छुड़ाते है तो हम बगड़ी क्यों छोड़ें। रेड़ा बगड़ी में बैठा रहा।

गांगाजी ने फिर सोजत पर सेना भेजी उधर मुहता रायमल सदा सजा हुआ रहता था। दोनों में लडाई हुई जिस में गांगाजी की

---

१. इन के वशज जैतावत राठौड़ है।
२. अखैराजजी के पुत्र महराजजी और उन के पुत्र कूंपाजी थे। इन के वंशज कूंपावत राठौड़ हैं।
३. धाय 'धात्री' शब्द का अपभ्रंश है। धात्री का पुत्र धाय भाई कहलाता है।

सेना हार कर पीछे लौटी । ऐसे कई वेर हुआ तव गांगाजी ने कहा कि यह क्या वात है हम कभी भी सफल नही होते सदा हमारी हार होती है । तव किसी ने कहा कि जव तक जैताजी का परिजन वगड़ी में है तव तक आप की विजय नही हो सकती । तव गांगाजी ने जैताजी को बुलाकर उपालंभ दिया और कहा कि हम ने आप को वगड़ी छोड़ने का कहा था परन्तु आप वगड़ी नही छोड़ते जिस से पाया जाता है कि आप की साजिस है । यह सुन कर जैताजी ने रेड़ा धाय भाई को कहलाया कि तू ने मुझे रावजी से उपालभ दिराया तुरन्त वगड़ी छोड़ दे । रेडा वड़ा वीर और वुद्धिमान् पुरुप था उस ने विचार किया वीरमजी के पास जो कुछ है मुहता रायमल है, इस को मार दिया जाय तो फिर कोई वखेड़ा नही रहेगा । इस विचार से रेड़ा सोजत गया, रायमल से मिला । रायमल दरवार मे मुजरा करने को जाने लगा तव रेड़ा से कहा कि आप भी चलिये । रेड़ा उस के साथ हो गया ।

प्रथम रायमल रानी से मुजरा करने गया था उस के साथ रेड़ा भी था । रानी वड़ी विचक्षण थी मुजरा होने के पश्चात् रानी ने अंदर से उस रेड़ा की आकृति दे कर रायमल से पूछा कि यह तेरे साथ कौन है ? रायमल ने कहा कि यह जैताजी का धाय भाई है । तव उसे आसिस दी गई । जव रायमल पीछे लौटने लगा तव उसे एकांत में वुला कर कहलाया कि इस का विश्वास मत करना मुझे इस की दृष्टि अन्यथा दीख पड़ती है । रानी के सावधान करने पर भी रायमल नही चेता और उस ने कहा कि यह तो अपना ही है । तथापि रानी ने रायमल को कहा कि देखो इस का विश्वास मत करना । उस ने कहा जो आज्ञा ।

फिर वहां से रावजी से मुजरा करने को चला । रेड़ा साथ है । रेड़ा ने मन में विचार किया कि दरीखाने में तो वहुत से मनुष्य होंगे वहां मैं इस को कैसे मार सकता हूं । यहां यह इकल्ला है यही इस का काम तमाम कर दिया जाय तो अच्छा है । और वह मारने का मौक़ा देखने लगा । इतने में एक चील महल पर वैठी रायमल के दृष्टि में आई उसे उड़ाने के लिए रायमल पत्थर लेने को नीचा झुका रेड़ा ने यह अच्छा अवसर देख कर रायमल पर तलवार का प्रहार किया परन्तु वह ख़ाली गई थोड़ी से पीठ में लगी, रायमल के देरी कहां थी तुरन्त तलवार खीच कर रेड़ा के दो ढोल कर दिये । वगड़ी के अन्य मनुष्यों ने भाग कर अपने प्राण वचाए ।

राव गांगाजी के मन मे सोजत का शल्य सदा खटकता रहता है । परन्तु वीरमजी के एक तो रायमल मुहता और अखैराजजी का

पोता कूंपा उस के पास हैं जिस से रावजी की कुछ बन नहीं पडती। रावजी ने कूंपाजी को वहां से बुलाने के लिए जैताजी से कहा कि आप हर उपाय करके कूंपाजी को इधर खीच लें। जैताजी ने कहा कि मै भी उन को बुलाने के लिए पत्र दूंगा परन्तु आप का भी आज्ञापत्र जाना चाहिए। फिर गांगाजी के आज्ञापत्र के साथ जैताजी ने पत्र लिखा। उस में लिखा कि "भाई! वीरमदेजी के सतान नहीं है, पीछे ही तो जोधपुर आना है और आप को लाख रुपयों की जागीरी इस समय देते हैं, रावजी स्वीकार करते हैं कि मारवाड़ के अच्छे अच्छे गांव उन को दिये जायंगे। मेरी समझ में यह अवसर चूकने का नहीं है"। यह लिख कर अपने विश्वासपात्र मनुष्य के साथ पत्र भेजा। कूंपाजी ने पत्र को पढ़ कर मन में विचार किया कि बात तो यथार्थ है, इन की सलाह नेक है, फिर ऐसा अवसर आना दुर्लभ है, देखिये उस समय के राठोड़ों का परस्पर का मेल और प्रेम। तभी तो उन्होंने इस छोटे से जोधपुर के राज्य को इतना बढ़ाया था। इस प्रकार पूर्ण विचार करके कूंपाजी ने जैताजी को कहलाया कि यदि रावजी इस बात को स्वीकार करें कि मैं एक वर्ष पर्यंत सोजत पर सेना नही भेजूंगा तो मैं आ सकता हूं। जैताजी ने कूंपाजी का वह पत्र रावजी को दिखा दिया और कहा कि आप इस बात को विचार लें। रावजी ने मन में विचार किया कि यह एक वर्ष कल निकल जायगा, अच्छी बात है। कूंपाजी को कहला दिया कि आप आ जाइये। आप की प्रतिज्ञानुसार एक वर्ष पर्यंत सोजत पर सेना नहीं भेजी जायगी। रावजी का इस प्रकार लिखा आने पर कूंपाजी जोधपुर जाने को उद्यत हुए और रायमल से मिले। कूंपाजी ने रायमल से स्पष्ट अक्षरों में कह दिया कि वीरमजी के संतान नहीं है, पीछे ही तो हमें जोधपुर जाना पड़ेगा यदि आप की सलाह हो तो मैं जोधपुर जाऊं। रायमल ने कहा कि जब आप ने जोधपुर जाने का ठान ही लिया है तो मैं आप को कैसे रोक सकता हूं, आप ख़ुशी से जाइये। मैं तो वीरमजी को हरगिज़ नहीं छोडूंगा। कूंपाजी! आप पूरा ध्यान रखिये, वीरमजी का पलंग तो खेता के पुत्र (रायमल) को छाती पर पैर रखने पर ही सोजत के किले से नीचे उतरेगा। आप जाते हैं, जाइये। स्वामिभक्त चाकर हों तो ऐसे हों।

कूंपाजी सोजत से जोधपुर को रवाना हुए उन के साथ जो बड़े २ वीर जोधा थे वे भी चले गए। पीछे सिर्फ़ ७०० सात सौ सवार वीरमजी के पास सोजत में रहे।

कूंपा जी ने जोधपुर आकर यह मसलहत की कि सोजत के गांव हर साल दो दो चार चार लेते रहना चाहिए। और उस के लिए यह प्रबंध किया कि गांव धौलहरे में एक थाना रखा जाय। रावजी ने इस बात का स्वीकार किया और थाने पर अपने चार हजार ४०००

चौधड़ (अहदी) रख दिये। चौधड़ों का काम यह है कि अमल खाना, आनंद से भोजन करना, पलंग पर पड़ा रहना। और जब काम पड़े तब रणांगण में उपस्थित हो कर मालिक के आगे जूंझ कर मरना। निम्नलिखित उमराव उन के साथ भेजे गए—

१ मालो रूपावत २ सांडो सांखलो ३ रायपाल सांहणी और ४ मांगो डूगरसीयोत।

चौंधड़ों के सिवाय इन के पास सवार भी बहुत से थे। राव गांगाजी भी निगरानी के लिए अक्सर जाया आया करते थे। और वहां निवास भी कर देते थे। होली का त्यौहार आया, मुहता रायमल उस दिन एक कूप पर ठहरा, जिस का नाम मांडावा था। वहां उस ने प्रीति-भोज (गोठ) किया, गाना वजाना हुआ। लोगों को उस ने यह दिख ला दिया कि रायमल रंग में मग्न है, परतु उस का लक्ष्य शत्रु (गांगाजी) के उच्छेद में लगा हुआ था। उस ने धौलहरे के थाने पर अपने गुप्त दूत भेजे और वहां का वृत्तान्त अवगत किया। दूतों को कहा गया था कि राव गांगा आज होली का त्यौंहार है अवश्य घर पर जावेगा, वह वहां से रवाना हो जावे तब मुझे तुरत सूचना करो। उधर राव गांगाजी ने १ प्रहर रात्री गई तब सांहणी से कहा कि हमारे लिये घोड़ा तैयार करो हम आज घर पर जाना चाहते है। सांहणी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि आप तो त्यौहार मनाने को घर पर जाते है और रायमल यहां से समीप ७ कोस पर बैठा है, आप को इस बात पर ध्यान देना चाहिये। यह सुन कर रावजी ने उस से कहा कि बनिया तो फाग खेल रहा है, वह कैसे आ सकता है? सांहणी विचारा चुप हुआ, परतु उस ने डरते २ कह दिया कि कल आप देखना आप के राजपूत मारे जायँगे और आप को उन्हें जलाना पड़ेगा। रावजी हँस दिये, और घोड़े पर सवार हो कर चल दिये।

चारों ने जा कर रायमल को ख़बर दी कि रावजी जोधपुर गए। सुनते ही रायमल अपने वीर जोधों को, जो सजे सजाये थे, ले कर सीधा धौलहरे के थाने पर आया, थाना वाले असावधान थे, रायमल उन पर आ कर इस तरह पड़ा कि जैसे कौवों पर उल्लू पड़ता है। उस ने उस समय महाभारत के सौप्तिक पर्व का दृश्य दिखा दिया। जैसे अश्वत्थामा ने एक रात्रि में एक अक्षौहिणी सेना का संहार किया था वैसे रायमल ने इन चौधड़ों को मार गिराया और रावजी के घोड़े सब ले गया। वीरमजी के पास सोजत जा कर उस ने उन से निवेदन किया कि आप के बाप दादों के घोड़े ले आया हूं। वीरमजी

सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। इधर राव गंगाजी की यह दशा हुई कि
दो वर्ष तक वे सोजत के साम्हने देख नही सके।

ऊहड़ राठौर हरदास बड़ा वीर पुरुष था। वह गांगाजी के निकट
रहता था। एक बात पर राव गांगाजी के और हरदास के बिगड़ गई
एक दिन महाराज कुमार मालदेवजी और हरदास शिकार गए। एक
बड़ा शूकर दृष्टि-गोचर हुआ, मालदेवजी ने उस शूकर को अपना
भाग कह कर दूसरों को उसे मारने का प्रतिषेध कर दिया। शूकर
इधर उधर छिपता दौड़ता रहा। होते २ संध्या का समय आ गया।
संध्या समय हो जाने से अँधेरे में शूकर का मारना महाकठिन था।
और उस समय में शूकर हरदास के वार में आ गया तब हरदास ने
उसे मार दिया। महाराज कुमार ने मना कर दिया था कि इसे हमारे
सिवा दूसरा कोई न मारे और हरदास ने उसे मार डाला जिस से महा
राज कुमार अत्यन्त क्रुद्ध हुए। ऊहड़ हरदास भी महा अभिमानी और
बड़ा वीर था। वह अपना अपमान कब सहन कर सकता था? उस
समय महाराज कुमार से जाने का मुजरा किया और कहा कि आप
युवराज हैं आप को घात करने में मैं पाप समझता हूं इसलिए मैं आप
के किये इस अपराध को सहन करता हूँ। ऐसे कह कर हरदास वह
से चल दिया और वीरमजी के पास सोजत चला गया। वहां इस का
आदर सत्कार किया गया और उस से रहने के लिये कहा गया तो
उस ने कहा कि यदि आप राव गांगाजी से लड़ाई करो तो मैं आप के
यहां रह सकता हूं। उन्होंने उस का कहना मान लिया और हरदास
ने वहां निवास कर दिया। अब राव गांगाजी के साथ लड़ाइयां होने
लगीं। एक लड़ाई में हरदास वीरमदेजी के घोड़े पर सवार हो कर
रणांगण में गया, गांगाजी की सेना को मार हटाया परन्तु स्वयं हरदास
भी घायल हुआ और वीरमदेजी के घोड़े के भी बहुत से प्रहार लगे
जिस से घोड़ा मर गया। हरदास ज़ख़्मी ज़्यादा हुआ था इस लिए
उस को रणांगण से डोली में बिठा कर घर पर लाये। पट्टे बांधे गए
वीरमदेवजी को ख़बर लगी कि उन का घोड़ा लड़ाई में मारा गया
उन्होंने हरदास को उलहना दिया कि तू ने मेरा घोड़ा गँवा दिया
हरदास सुन कर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और उस ने कहा कि यदि हरदास
खड़े रहते आप का घोड़ा जाता तो आप का उलहना उचित था परन्तु
जब मैं ही गिर गया तो घोड़े की रक्षा कौन करे? क्या घोड़े को आप
मुझ से अधिक समझते हैं? मैं सख़्त घायल हुआ जिस की तो आप
ने परवाह नहीं की और घोड़े का इतना सोच किया और मुझे उपा
लंभ दिया, मैं आप के यहां नहीं रहता। ऐसा कह कर वहां से चल
दिया और नागोर सरखेलखां के पास जाने को रवाना हुआ। मार्ग में

सेखा सूजावत आ कर उस को अपने घर पीपाड़ ले गया और उस की चिकित्सा की। हरदास चगा हो गया।

राव गांगाजी का विवाह सिरोही के राव देवड़ा लाखा के पुत्र जगमाल की पुत्री से विक्रम संवत् १५७२ में हुआ था। गांगाजी की रानी का नाम पीहर में पद्मावती[1] और ससुराल में माणकदे था। वह श्यामजी की परम भक्त थी। उस ने अपने प्राणपति से निवेदन किया कि मैं श्यामजी के दर्शन करके भोजन करती हूं आप श्यामजी की मूर्ति मांग लें तो मेरा नियम अखंड रह जाय। राव गांगाजी ने राव जगमालजी से कहा कि मैं एक अलौकिक पदार्थ आप से मांगता हूं और वह आप के पास है मुझ पर कृपा करें और वह वस्तु प्रदान करें। जिस में आप की कन्या का ही भला है। जगमालजी ने कहा कि ऐसी कौन सी वस्तु है जिस के लिये आप का इतना आग्रह है। तब गांगाजी ने वह असली बात कह दी तब लाचार हो कर जगमालजी को कन्या के प्रेम से स्वीकार करना पड़ा और श्यामजी की मूर्ति गांगाजी को दे दी गई। गांगाजी ने उस मूर्ति को ला कर प्रथम किले में स्थापित की और उस का पुजारी सेवक जो उस मूर्ति के साथ सिरोही से आया था उसी के रक्षण में दी गई। वर्तमान पुजारी उसी सेवक के वशज हैं। राव गांगाजी ने ठाकुरजी श्यामजी के साथ अपना नाम जोड़ दिया जिस से उन का नाम गगश्याम प्रसिद्ध हो गया। वह मूर्ति आज जूनी मंडी में विराजमान है। इस समय जो गंगश्यामजी का मदिर है जिस में वह मूर्ति विराजमान है महाराजा श्री विजैसिंहजी ने वि० सं० १८१७ में करवाया था। पहले वहां मस्जिद थी उसे तुड़वा कर उस के स्थान में यह मन्दिर बना।

---

[1] म. म. पं० गौरीशंकरजी हीराचदजी ओझा 'सिरोही का इतिहास' के पृष्ठ २०५ में लिखते है कि राव जगमाल के "एक पुत्री पद्मावती बाई थी, जिस का विवाह जोधपुर के महाराव गांगा से हुआ था.........पद्मावती बाई ने जोधपुर पदमलसर तालाब बनवाया।" परन्तु यह तालाव जगमाल की पुत्री पद्मावती ने नही बनवाया था किन्तु मेवाड़ के महाराणा सांगा (प्रथम) की पुत्री पद्मावती ने बनवाया जिस का नाम पीहर में पद्मावती और सुसराल में उतिमदे (उत्तमदेवी) था। महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम) के समय में सं० १७२० के आस पास बनी हुई प्राचीन इतिहास पुस्तक में लिखा है कि "पदमसर तालाब सीसादेणी रानी पद्मावती ने कराया था" और इस तालाब का नाम पदमलसर नही पदमसर है। और सीसोदणी पद्मावती रानी ने भी इस तालाब का ऊपर का हिस्सा कराया था, क्योंकि पदमसर तालाब का आरंभ पद्मा सेठ ने करवा दिया था जिसे राव जोधाजी मेवाड़ से पकड़ कर लाये थे। और इस द्रव्य के देने से ही उस ने कैद से छुटकारा पाया था।

राव जगमालजी का प्रधानामात्य सिंघवी जाति का पदमसी नामक एक ओसवाल था। वह बड़ा बुद्धिमान् और नीतिनिपुण था। उस से राव गांगाजी के वार्तालाप हुआ। उस की नीति-निपुणता और कार्यदक्षता को देख कर राव गांगाजी ने चाहा कि यह मनुष्य हमारे यहां आ जाय तो अच्छा है। फिर राव जगमालजी से कहा कि पदमसी को मैं अपने यहां ले जाना चाहता हूँ कृपा करके इसे आज्ञा दीजिये। राव जगमालजी ने दामाद का कहना मान कर उसे भी दे दिया। राव गांगाजी उसे अपने साथ ले आए। तब से सिंघी जाति जोधपुर राज्य में आई है। राज्य के बड़े बड़े अधिकार दीवानी, बख़्शी आदि इन के घराने में रहे हैं।

गुजरात महीकांठा के अंतर्गत ईडर नगर में राठौड़ राव सीहाजी के पुत्र सोनगजी के वंशजों का राज्य जोधपुर के महाराजा अजीत सिंहजी के राज्य पर्यंत रहा। फिर अजीतसिंहजी के पुत्रों का राज्य हुआ। इस समय महाराजा अजीतसिंहजी के वंशज ईडर के शासक हैं परन्तु राव गांगाजी के समय में ईडर पर सोनंगजी के वंशजों का राज्य था। सोनगजी के वंशज सूर्यमल्लजी का पुत्र रायमल्ल ईडर का शासन करता था। ईडर के राजा के और गुजरात के बादशाह के परस्पर लड़ाइयां होती रहती थीं जिस से रायमल्ल निर्बल हो गया था। रायमल्ल के चचा भीम ने अच्छा अवसर पा कर मुसलमानों की सहायता से रायमल्ल को ईडर से निकाल दिया और स्वयं भीम ईडर का मालिक बन बैठा। उस के साथ भी मुसलमानों के नहीं बनी और मुसलमानों की सेना ईडर पर गई उस के साथ भीम के युद्ध हुआ जिस में भीम परास्त हो कर भाग गया और ईडर पर मुसल मानों ने अपना अधिकार कर लिया। परन्तु भीम बड़ा विचक्षण, बहादुर और समयदर्शी था। उस ने अवसर पा कर ईडर का राज्य पीछा मुसलमानो से छीन लिया।

भीम के स्वर्गवासी होने पर उस का पुत्र भारमल ईडर का राजा हुआ। इस का चचेरा भाई रायमल्ल जो पहले ईडर का राजा था महाराणा सांगाजी की कन्या व्याहा था। इस लिए सांगाजी ने रायमल्ल की सहायता में अपनी सेना भेज कर भारमल को ईडर से निकाल दिया और रायमल्ल को ईडर के सिंहासन पर बिठा दिया। तब भारमल गुजराती बादशाह के पास गया और अपनी कर्म कहानी कही। गुजराती बादशाह मुज़फ़्फ़रशाह द्वितीय ने ईडर को तबाह करने का यह अच्छा मौका देख कर भारमल के साथ अपनी सेना भेजी। संवत् १५७२ में यह सेना भारमल के साथ ईडर गई उस ने रायमल्ल को ईडर से निकाल दिया और भारमल को राजा बना

दिया। रायमल्ल महाराणा सांगाजी के पास गया और अपना दुःख निवेदन किया। महाराणा ने उस समय के अनुकूल राठौडों की सहायता लेना उचित समझ कर राव गांगाजी के पास डूंगरपुर के रावल सीसोदिया डूंगरसी को भेजा। उस ने आ कर राव गांगाजी से कहा कि महाराणा सांगाजी इस समय ईडर की सहायता करने में आप की मदद चाहते हैं। उन्होंने कहा है कि रायमल्ल मेरा तो दामाद है और आप का भाई और ईडर का हकदार भी वही है इस लिए आप को भी उस की सहायता करनी चाहिए। और इसी तरह राव दूदाजी के पुत्र मेड़तिया वीरमदेवजी को भी कहलाया। राव गांगाजी और वीरमदेवजी दोनों सेना लेकर महाराणा सांगाजी के शामिल हुए। भारमल की मदद में गुजराती बादशाह मुज़फ्फ़रशाह द्वितीय सेना ले कर आया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ जिस में मुज़फ्फ़रशाह परास्त हो कर भाग निकला और राजपूतों की विजय हुई। रायमल्ल ईडर का राजा हुआ। इस सहायता के करने से महाराणा सांगाजी ने और गांगाजी वीरमदेवजी का बड़ा अहसान माना और परस्पर प्रीति का व्यवहार सदा के लिए स्थिर हुआ। गांगाजी ने ईडर का राज्य रायमल्ल को देने में सहायता की उस विषय में यह प्राचीन दोहा प्रसिद्ध है—

दोहा

"गांगो गोत गुवाल, उग्राही ईडर तणो।
सोहै तूं सुखपाल, वडां प्रवाडां वाघउत ॥ १ ॥"

संवत् १५८२ में मुगल बादशाह बाबर ने पठानों से दिल्ली का राज्य छीन लिया तब पठानों ने महाराणा सांगाजी से सहायता मांगी और इन्होंने सहायता देना स्वीकार किया इस से बाबर बादशाह ने महाराणा पर संवत् १५८४ में चढ़ाई की। दोनों में महाघोर संग्राम हुआ। उस समय महाराणा ने अपने मित्र और संबंधी राजा लोगों से सहायता ले कर अनुमान दो लाख सेना एकत्र कर ली थी। जिस में एक लाख महाराणा की और एक लाख दूसरे नृपालों की थी। इस युद्ध में महाराणा की विजय हुई। इस समय राव गांगाजी ने महाराणा सांगाजी की सहायता के लिए चार हज़ार ४००० राठौड़ सेना भेजी थी। और मेड़ते के राव वीरमदेवजी स्वयं चार हज़ार ४००० सेना ले कर गये थे। उन की सेना में राव दूदाजी के पुत्र रायमल और रतनसी सेना नायक थे। फिर महाराणा सांगाजी बयाना से आगे बढ़े। पीलियाखाल पर बाबर से मुठभेड़ हुई। महाघोर सग्राम हुआ। चलती लड़ाई में तीस हज़ार सेना ले कर रायसैन का राजा सलहदी तंवर निकल गया जिस से महाराणा सांगाजी की सेना में खलबली

पड़ गई और महाराणा की आंख पर तीर लगा जिस से महाराणा मूर्च्छित हो गए जिस से महाराणा की सेना हतोत्साह हो गई और बाबर की विजय हो गई। इस युद्ध में राठौड़ बड़ी बहादुरी से लड़े थे। महाराणा सांगा के अगाड़ी राव दूदाजी के पुत्र रायमल और रतनसी लड़ कर काम आए थे। और राव वीरमदेवजी की सहायता से महाराणा सांगाजी बचे थे। उस विषय का यह प्राचीन गीत का पद्य है—

"रतन रायमल बंधव रहिंया
समहर भिड़ दाखे ओसाप।
सांगो रांण कुसल घर पौंतो
(वो) वीरमदेव तणौ परताप ॥ १ ॥"

रतनसी और रायमल दोनों भाई युद्ध में जूंझ, अपना बल दिखा कर रणखेत में रह गए। और महाराणा सांगाजी सकुशल घर पर पहुंचे यह वीरमदेव का प्रताप था। इस से जाना जाता है कि वीरमदेवजी उन के साथ जा कर चीतौड़ पहुँचा आए थे।

राव गांगाजी के चचा सेखाजी को भाईबटे में पीपाड़ नगर मिला था। एक समय सेखाजी जोधपुर आए। उष्णकाल का समय था, दुपहरी में रावजी और सेखाजी झरने पर गए। झरने में स्नान किया और दोनों ओर से परस्पर जल फैंका जाने लगा। उस समय दो पार्टी हो गईं। एक रावजी की और दूसरी सेखाजी की। परस्पर जल के बिंदुओं की बोछार करते थक गए। उस समय सेखाजी ने गांगाजी से कहा कि मुझे पीठ न दिखाने की प्रतिज्ञा है आप पीछे लौट जाइये। प्रत्युत्तर में गांगाजी ने कहा कि मेरे भी तो ऐसी ही प्रतिज्ञा है हट जाइये। न सेखाजी हटते हैं और न गांगाजी। बढ़ते २ मामला बहुत बढ़ गया। तब राजपूतों ने बीच में पड़ कर दोनों को अलग कर दिया। सेखाजी बिना भोजन किये पीपाड़ चले गए।

वीरमदेवजी के मन्त्री मूता रायमल ने सेखाजी से मिलने का यह अच्छा अवसर समझा। और सेखाजी के पास पीपाड़ गया और सेखाजी को सोझत ले आया। सेखाजी कुछ दिन सोझत में ठहरे। इन के परस्पर प्रीति हो जाने से रावजी के साथ वैर की वृद्धि हुई।

तदनंतर सीरोही के राव अखैराजजी अपने बहनोऊ और बहिन से मिलने के लिए जोधपुर आये थे। महाराज कुमार मालदेवजी के साथ शिकार गए। पीपाड़ के निकट जा पहुँचे। सेखाजी इन का आगमन सुन कर साम्हने आए स्वागत किया। और बड़े आदर सत्कार के साथ अपने स्थान पर ले गए। बड़े समारोह के साथ मिहमानी की। राव अखैराजजी को सेखाजी ने अपनी अश्वशाला और शस्त्रा-

गार दिखाया। सेखाजी के घोड़ों और शस्त्रों की तैयारी देख कर राव अखैराजजी स्तब्ध हो गए। और मन में घबराए कि जिन के ऐसे प्रबल बंधु है, चाहे ये आपस मे लड़ते भिड़ते भी हो परतु दूसरों से काम पड़ने पर सब एक है। इन का वैभव देख कर मुझे शका होती है कि ये कभी न कभी मेरे राज्य पर अक्रमण करेंगे और मेरा राज्य छीन लेंगे। राव अखैराजजी ने यह सोच कर कुटिल-नीति का प्रयोग करते महाराज कुमार मालदेवजी से कहा कि सेखाजी के परि-कर को देख कर मुझे भ्रम होता है कि ये आप के आधीन कभी नहीं रहेंगे। भले ही आप इन का एकाध गांव जब्त करके अनुभव कर लीजिए। मालदेवजी ने वही बात राव गांगाजी से कह दी। गांगाजी के और सेखाजी के पहले झगड़े में परस्पर प्रेम में फर्क आ चुका था और इधर महाराजकुमार ने यह वार्ता कही जिस से गांगाजी के मन में भी उस का असर हो गया और उन्होंने परीक्षार्थ एक गांव जब्त कर लिया। इस से सेखाजी अत्यंत क्रुद्ध हुए। सेखाजी ऐसी बला कहाँ थी कि ऐसा अपमान सहन करें। पहले प्रेम में अंतर था ही और दूसरा कारण यह हो गया।

लिख आए है कि ऊहड़ हरदास राव गांगाजी से नाराज़ हो कर वीरमदेवजी के पास सोझत गया था वहां भी इस का अनादर होने से वह नागोर जाने लगा था। मार्ग में सेखाजी आ कर इस को अपने नगर में ले गए और उस को आदर सम्मान के साथ रखा। राव गांगाजी के और सेखाजी के परस्पर विरोधाग्नि सुलग रही थी। जलती में पूला पड़ा कि ऊहड़ हरदास उन के शामिल हो गया। रावजी ने विरोध मिटाने के लिए संधि करने का प्रस्ताव किया था। अपने प्रतिष्ठित पुरुष भेज कर सेखाजी को कहलाया कि आप बड़े हैं मैं आप का बालक हूं परस्पर विरोध रहने से दुतर्फा हानि है। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें और सीमा का झगड़ा मिटा दें। क्योंकि सीमा के निमित्त ही अपने सदा झगड़े रहते है। और सीमा के विषय में यह कहलाया कि जिस भूमि में करड़ जाति की घास है वह आप की, और भुरट जाति की घास है वह हमारी। सेखाजी ने उसे स्वी-कार भी कर लिया परंतु ऊहड़ हरदास ने सेखाजी से कहा कि यह आप क्या करते हैं? यदि मुझे रखना है तो स्वीकार न करें। क्योंकि उसे तो गांगाजी से विरोध रखना था। सेखाजी ने हरदास का कहना मान लिया और सन्धि करने से इनकार कर दिया। रावजी के मनुष्य पीछे गांगाजी के पास गए और उन से कहा कि सेखाजी तो सन्धि करने को तैयार थे परन्तु हरदास ने बात बिगाड़ दी। वह नहीं मानता। वह कहता है कि राज्य के हकदार आप है, आप रावजी के चचा है, सब भूमि आप की है, उन के पास एक पहाड़ी है उसे

विजय करके मैं आप के आधीन कर दूँगा। सेखाजी भी उस की बातों में आ गए और इनकार कर दिया। राव गांगाजी इस बात को सुन कर अत्यंत क्रुद्ध हुए और उन्होंने पीपाड़ पर सेना भेजने का निश्चय किया। सेखाजी को ख़बर लगी कि राव गांगाजी सेना सज कर आते है और बीकानेर के रावजी जैतसीजी भी उन के साथ रहेंगे।

सेखाजी ने विचार किया कि आपन को भी इस समय किसी की सहायता लेनी चाहिए। क्योंकि उधर दो राव शामिल हो गए हैं। सेखाजी नागोर के नवाब सरखेलखां के पास गए और उन को द्रव्य और भूमि का लोभ दे कर उस के सेनापति दौलतखां को सहायता में ले आए। इन का मुकाम गांव बेराई में हुआ। इधर जोधपुर से सेना ले कर राव गांगाजी गांव घांघांणी पहुंचे। उस समय राव गांगाजी ने सेखाजी को फिर कहलाया कि अब भी आप संधि कर लें। जहां आप ठहरे है वह भूमि आप की, और जहां मेरा मुकाम है वह मेरी। इधर उधर संधि के लिए मनुष्य गये आए और बहुत समझोता किया परन्तु हरदास के कारण सफलता नही हुई। सेखाजी ने गांगाजी को स्पष्ट अक्षरो में कहला दिया कि हम ने युद्ध का पूर्ण निश्चय कर लिया है और युद्ध भूमि गांव सेवकी का क्षेत्र साफ़ कर रखा है। राजपूतों को ऐसा अवसर फिर कब मिलेगा। इस में दोनों हाथ लड्डू हैं। जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा है—

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।"

आप तैयार हो जाइये। आपन युद्ध करेंगे। इस कथन पर राव गांगाजी ने कहा कि बहुत अच्छा, मैं भी जैसा हूं तैयार हूं। दोनों ओर से युद्ध के लिए आगे बढ़े। दोनो दलों में घोर संग्राम होने लगा। दोनों ओर से तलवार चल रही है, बाणों की वर्षा हो रही है, वीर योधा आगे बढ़ बढ़ कर लड़ रहे हैं। उस समय राव गांगाजी पालकी में बैठे अफ़ीम की पिनक का मज़ा ले रहे थे। पिनक के मारे उन का मस्तक नीचे लगना चाहता था। उस समय खींवाजी आदि सरदारों ने राव गांगाजी से कहा कि शत्रु तो सिर पर आया है और आप पालकी में विराजे पिनक का आनंद लूट रहे हैं। यह सुन रावजी ने सिर उठा कर सरदारों से कहा कि मै यही देखना चाहता था कि सरदारो में कोई ऐसा भी है जो हम को हितकारी कटुवचन कहे। नीति का वचन है—

"अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।"

अब हमें भी एक सैन्य का विभाग बतला दो जिधर स्थित हो कर हम अपना कार्य करें। इतना कह कर रावजी घोडे पर सवार हुए। तब सरदारों ने अर्ज़ किया कि यह दरियाजोश हाथी, जिस की सूंड

के दुधारा खांडा बँधा हुआ है, अपने राजपूतों को मारता हुआ आगे बढ़ रहा है, प्रथम इसे रोकिये[१]। रावजी ने धनुष को खींच कर उस के बहुत से तीर लगाए परन्तु पीछे नहीं हटा और मारता ही साम्हना चला आया। रावजी ने उसे निकट आता देख एक तीर खींच कर उस के कुंभस्थल में ऐसा मारा कि दरयाजोश घबरा कर चिंघाड़ता हुआ पीछे लौटा। और शत्रु सेना का संहार करता हुआ भाग कर मेड़ते चला गया। उसे मेड़तिया वीरमदेवजी ने पकड़वा कर रख लिया। जिस हाथी के वास्ते मालदेवजी के और वीरमदेवजी के परस्पर विरोध हो गया था।

दरियाजोश हाथी के भागने पर दौलतखां के पैर नहीं टिके। वह भी अपना प्राण बचा गया[२]। दौलतखां रणांगण छोड़ कर भाग गया तो भाग जाओ, सेखाजी पीठ दिखाने वाले कब थे, रणभूमि में डट कर खड़े हो गए। और हरदास ऊहड़ भी वैसा ही था। रावजी के साथ सेना ज़्यादा थी, बीकानेर के राव जैतसीजी भी उन के शामिल थे। और सेखाजी के पास सिर्फ़ सात सौ राजपूत रहे। बाकी सब दौलतखां के भाग जाने पर इधर उधर हो गए। इन दोनों वीर पुरुषों ने रावजी के साथ महाघोर संग्राम किया। इन्होंने तलवार बजाने में कोई कमी नहीं रखी। इन के हाथ से रावजी के कई राजपूत वीर मारे गए परंतु इन की सख्या बहुत अल्प थी और बहुत से राजपूत कट गए अंत में सेखाजी और ऊहड हरदास दोनों पुत्रों सहित रणशय्या में सो गए और रावजी की विजय हुई[३]। यह युद्ध वि० संवत् १५८६ मे हुआ था।

---

(१) मूहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि उक्त हाथी के दोनों बगलों में चालीस चालीस हाथी उस के रक्षक थे। और दौलतखां भी उसी पर सवार था। राव गांगाजी ने पहले तीर से महावत को मारा फिर हाथी के ज़ोर का तीर लगाया। जिस से वह भागा।

(२) मूहणोत नैणसी की ख्यात में इस विषय में घूमर छंद का पद्य लिखा है—
घूमर—"बीबी पूछै रे दौलतिया, तैं हाथी केथा किया।
रूड़ा मूड़ा रावै लीया, पाडा पाछा दीया॥"
(केथा) किधर। (रूडा रूड़ा) अच्छे २। (पाडा) भैंसे अर्थात् निकम्मे हाथी।

(३) किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि सेखाजी घायल हो कर रण-भूमि में गिर गए थे उन्हें उन के राजपूत चीतौड ले गए। यहाँ चीतौड़ के महाराणा विक्रमादित्य के अगाड़ी गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के साथ लड़ कर स्वर्ग को सिधारे।

राव गांगाजी ने खेत सम्हाला। सेखाजी रणशय्या में सोये हुए अंतिम श्वास ले रहे थे। धूप था राव जैतसीजी ने उन के ऊपर छाया कराई। अफ़ीम खिलाया, पानी पिलाया। तब सेखाजी ने उस दशा में भी उन से पूछा कि तू कौन है ? राव जैतसीजी ने कहा कि मैं बीकानेर का राव जैतसी हूँ। सेखाजी ने उन को उपालभ देते हुए कहा कि मै ने आप का क्या बिगाड़ किया था, जो आप हमारे घरू झगडे में आए। हम चचा भतीजा परस्पर जमीन के लिए लड़ते थे। सेखाजी ने मरते समय जैतसीजी से कहा कि जैतसीजी ! आप देख लेना जो गति मेरी हुई है वही आप की होवेगी।

सेखाजी को रणभूमि मे पड़े देख राव गांगाजी ने कहा कि इस भूमि के वास्ते आप को महाकष्ट हुआ है, अतिम दशा आ पहुंची है, इस समय आप के मन में जो हो कहिए। तब सेखाजी ने कहा कि सूराचद के स्वामी चौहान ने मेरे आश्रित राठौड को बलिदान दे दिया था उस का बदला लेने की मेरे मन मे थी, यदि तुम उस का बदला लो तो मेरे मन में किसी बात की न रहै। रावजी ने कहा कि आप किसी बात की मन में न रखें, आप के लिए स्वर्ग का द्वार खुला है, उस का बदला मै लूंगा। फिर सूराचंद पर सेना भेज कर चौदह चौहानों को बलिदान दिया। महाराज कुमार मालदेवजी ने अच्छे २ हाथो थे वे ले लिए और दरियाजोश हाथी वीरमदेवजी से मांगा परतु उन्होंने वह नही दिया।

वीरमदेवजी ने दरियाजोश हाथी को पकड़ कर रख लिया उसे महाराजकुमार मालदेवजी ने अपनी जीत का समझ कर वीरमदेवजी को कहलाया कि यह हाथी हमारी विजय का है, भेज दो। परन्तु वीरमदेवजी ने उत्तर में कहा कि हम हाथी को लेने नहीं गए थे, भागा हुआ हमारे यहां चला आया। और हम ने पकड़वा कर बांध लिया। आप के हाथी बहुत हैं, एक हमारे पास ही रहने दें। परन्तु मालदेवजी ने हाथी लेना चाहा और शिकार के बहाने रावजी को भी साथ में ले कर मेडते की तर्फ गए। वीरमदेवजी ने उन को मिहमानी दी। जब भोजन का अवसर हुआ और मालदेवजी को भोजन के लिए कहा तो उन्होंने वीरमदेवजी को कहा कि आप हाथी दें तो हम भोजन करें। वीरमदेवजी ने कहा कि आप को हाथी दे दिया जायगा, आप भोजन करें। परन्तु मालदेवजी ने हाथी के लिए अत्यत हठ किया कि पहले हाथी हमारे हवाले किया जाय तो हम भोजन करें। तिस पर भी वीरमदेवजी तो शांत ही रहे, परन्तु उन का छोटा भाई रायमल बोल उठा कि हम ने हाथी देना स्वीकार कर लिया है, अब हट करने की बात ही क्या रही ? आप भोजन करें हाथी दे दिया जायगा। परतु

मालदेवजी का तो वही हठ रहा। तब रायसल ने कहा कि आपको यह उचित नही है आप भोजन करें। इस प्रकार अत्यंत आग्रह करने पर भी मालदेवजी ने भोजन नही किया और वहां से चल कर जोधपुर चले आए। रावजी युवराज के लिहाज़ से कुछ न बोले। परंतु उन्होंने इस बात से वीरमदेवजी को अप्रसन्न हुए समझ कर वीरमदेवजी के संतोष के लिए एक घोड़ा सिरापाव भेजा। वीरमदेवजी ने उसे सहर्ष स्वीकार किया और समझ लिया कि रावजी मुझ से अप्रसन्न नही है। यदि अप्रसन्न होते तो पारितोषक क्यों भेजते? वीरमदेवजी ने मन में विचार किया कि इस व्यवहार से प्रतीत होता है कि रावजी मुझ से अप्रसन्न नही हैं मुझे भी उन्हें प्रसन्न रखना चाहिए। उन्होने रावजी की प्रसन्नता के लिए वह दरियाजोश हाथी और दो घोड़े दे कर अपने मनुष्यों को जोधपुर भेजा ये रावजी के दे आओ। वीरमदेवजी के मनुष्य हाथी और घोड़े ले कर जोधपुर के लिए रवाना हुए। वे पीपाड़ पहुंचे यहां दरियाजोश हाथी घाव फट कर मर गया। वे अब सिर्फ़ दो घोड़े ले कर जोधपुर आए। रावजी से मिले और घोड़े नज़र करके रावजी से निवेदन किया कि वीरमदेवजी ने हमारे साथ दरियाजोश हाथी और ये घोड़े आप की सेवा में भेजे थे। हम लेकर रवाना हुए। पीपाड़ मे हमारा मुक़ाम था वहां घाव फट जाने से दरियाजोश हाथी मर गया और ये उन के दिये घोड़े ले कर चरणों में उपस्थित हुए है। रावजी इस बात से संतुष्ट हो गए। परंतु मालदेवजी राज़ी नही हुए। तब रावजी ने मालदेवजी को समझाया कि वीरमदेवजी ने हाथी भेज दिया और वह अपने राज्य की सीमा मे आ कर मरा हैं तो वह अपना हो चुका। इस पर भी मालदेवजी के अंतःकरण में तो द्वेष बना ही रहा।

संवत् १५८८ चैत्र सुदि ११ को रावजी और महाराज कुमार मालदेवजी दोनों सेना सज कर सोजत पर गए। गांव धेनावस में मुकाम करके रावजी ने मूता रायमल को कहलाया कि तुम सावधान हो जाओ, हम आते हैं। रायमल युद्धार्थ सज्ज हुआ। रावजी सोजत पर आक्रमण करके नगर में घुस गए। रायमल कुछ पीछे हट कर पांव रोप कर खड़ा हो गया। दोनों में घोर संग्राम हुआ। रायमल भी बड़ा वीर पुरुष था। उस ने बाज़ार के बीच मे खड़ा रह कर अच्छी तलवार बजाई। अंत में रावजी की सेना से लड़ कर ३५ मनुष्यों के साथ स्वर्ग को सिधारा[१]। उस पर छत्री कराई गई वह विद्यमान

(१) नैणसी लिखता है कि सेखाजी वीरमदेवजी के पास आए और वीरमदेवजी की रानी सीसोदणीजी (महाराणा सांगाजी की बेटी) से मिले। रानी ने उस से मेल कर लिया इस में रायमल सहमत नहीं था जिस से रायमल नाराज़ हो गया था और उसी ने गांगाजी को इशारा किया था कि आप आ जावे मै लडू

है। रावजी ने सोजत में अपना अधिकार कर वाघाजी के पुत्र वीरमदेवजी को पालकी में बिठा कर गांव बाला में भेज दिया। और वह गांव उन को जागीर में दे दिया गया।

वीरमदेवजी को रावजी ने सोजत से निकाल दिया तब उन्होंने अपने साले महाराणा रतनसिंहजी को कहलाया कि राव गांगाजी ने हमारी यह दशा की है, सहायता करने का यह समय है। तिस पर वीरमजी की सहायतार्थ महाराणा ने सेना भेजी। राव गांगाजी ने उस के मुकाबले मे अपनी सेना भेजी। दोनों मे संग्राम हुआ जिस में रावजी की विजय हुई। और महाराणा की सेना वापिस लौट गई। रावजी ने गोड़वाड़ में अपना अधिकार कर लिया।

राव गांगाजी का राज्य अब निष्कण्टक हो गया है। उन के सरदार और कृपापात्र उन की तन मन से सेवा करते हैं। रावजी अफ़ीम अधिक खाते थे। वह बढ़ता २ इतना बढ़ गया कि उस के भार ने उन को दबा लिया। यह दशा हो गई थी कि उन का समय अफ़ीम की पिनक में ही व्यतीत होता था। यहां तक कि जहां बैठते हैं वहीं पिनक उन को आ घेरती है। एक समय वे झरोखे मे बैठे पिनक का अनुभव कर रहे थे, पिनक ने उन को इतना दबाया कि वे उसी के वशीभूत हो कर गोख से गुड़ पड़े। उसी समय उन के कृपापात्र दौड कर उन के समीप पहुंचे और उन को उठाने लगे। वे विचारेस्वामिभक्ति से गए थे परन्तु महाराज कुमार को तरुण-वय के कारण ऐसी भ्रांति हो गई कि रावजी को इन्ही पुरुषो ने गिराया है और उसी भ्रम से उन को मारने की आज्ञा की। उन में से योगी सोमनाथ और चारण चांपा भाग गए। और भाटी भांण व तिंवरी का प्रोहित मूलराज अपने स्वामी के चरणों में खड़े रहे वे मारे गए। इस विषय का प्राचीन पद्यार्थ है—

"भांण पहल्ले भरड़ियो, पड़यौ मूल पर हाथ॥"

इन रावजी के ६ रानियां और ६ पुत्र थे। पुत्रों के नाम—

१ राव मालदेवजी २ वैरसल ३ मानसिंह ४ किसनसिंह

५ सादूल और ६ कान्ह॥

वेरीसाल और किसनदास से गांगावत शाखा चली।

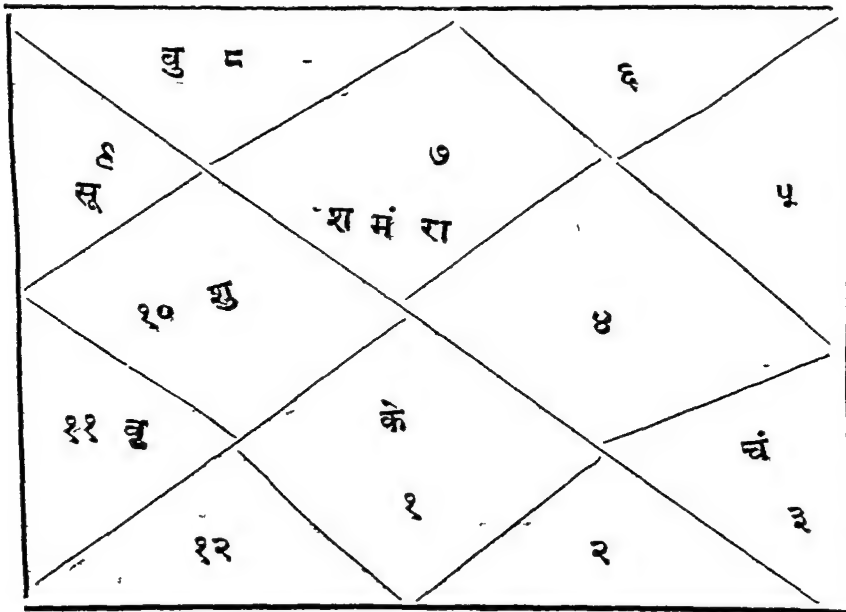
राव गांगाजी ने इस लोक को साधा था वैसे दान पुण्यादि कर के परलोक का साधन भी किया था। इन्होंने १६ गांव पुण्यार्थ शासन

कर काम आ जाऊँगा फिर आप का अधिकार सोजत पर हो जायगा। इस का कारण उस ने यह सोचा था कि सोजत का राज्य वाघाजी की सतान के हाथ में रहे। सूजाजी की संतान के हाथ में न जाय।

दिये थे। ब्राह्मणों को १३ तेरह, चारणों को २ दो, और पाबूजी के पुजारी धांधलो को १ एक।

इन्होंने जोधपुर मे गांगेलाव तालाब और गांगा की बावड़ी, जो दोनों उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है, करवाए थे। गांगा की बावड़ी प्रसिद्ध महादेवजी अचलेश्वरजी के मंदिर के पास है।

१६ राव मालदेवजी—राव गांगाजी के ज्येष्ठ पुत्र मालदेवजी का जन्म संवत् १५६८ की पौष वदि प्रतिपदा शुक्रवार को सीरोही के राव जगमाल की पुत्री माणकदेवी के उदर से हुआ था उस समय का ग्रहचक्र इस प्रकार है:-



राव मालदेवजी का पट्टाभिषेक आषाढ़ वदि ५ सं० १५८८ को सोझत में हुआ था। उस समय मालदेवजी का अधिकार केवल जोधपुर तथा सोझत के दो परगनों में ही था। अन्य प्रान्तों में पृथक् पृथक् राजपुत्रों का अधिकार था।

सं० १५८८ में प्रथम ही प्रथम रावजी ने भाद्राजण के सींधल वीरा पर सेना भेजी। वीरा के और रावजी के मनुष्यों के आपस में कई दिनों तक युद्ध होता रहा। वीरा ने भरसक खूब तलवार बजाई किन्तु अन्त में वह रावजी के मनुष्यों के हाथ मारा गया और भाद्राजण में रावजी की आज्ञा प्रवृत्त हो गई। इस सेना के साथ मेड़ता के राव वीरमजी भी गये थे। भाद्राजण पर पूर्ण अधिकार हो जाने पर उसी सेना को रायपुर पर भेजी। रायपुर का स्वामी सींधल भी लड़ने को सन्नद्ध हुआ। दोनों के परस्पर युद्ध हुआ। अन्त में रावजी की सेना ने रायपुर के स्वामी सींधल को मार कर रायपुर पर भी रावजी का अधिकार जमा दिया। इस युद्ध में चांपावत रायसिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई।

सं० १५९१ में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चीतौड़ पर चढ़ाई की जिस समय चित्तौड़ में महाराणा विक्रमाजीत राज्य शासन करता था। महाराणा ने सहायतार्थ राव मालदेवजी को लिखा। रावजी अपनी बड़ी सेना ले चीतोड़ गये। बहादुरशाह राठोडों की बड़ी सेना देख कर मन में शंकित हुआ और संधि करने का विचार करने लगा। महाराणा भी यही चाहते थे। निदान मालवीय महमूद का जड़ाऊ ताज और दुपट्टा (जो राणा सांगा ने मालवीय महमूद से छीने थे) दे कर संधि कर ली गई और बहादुरशाह पीछा गुजरात को लौट गया और रावजी अपनी सेना के साथ वापिस जोधपुर आ गये।

राठोड़ अचला पंचायण का पुत्र और अखेराजजी का पौत्र रावजी मालदेवजी की ओर से नागोर के रड़ोद के थाने पर सेना नायक नियत था। रड़ोद पर नागोरी खान की सेना ने आक्रमण किया उस के साथ अचला बड़ी वीरता से लड़ कर शत्रुओं के हाथ मारा गया। जिस का बदला लेने के लिये अचला के भाई रणमल्ल ने नागोर के गांवो को लूटना आरम्भ कर दिया और उस ने उस प्रान्त में ऐसा उपद्रव मचाया कि जिस से तंग आ कर नागोरी खान ने १६ ग्राम राव मालदेवजी को देना स्वीकार कर रणमल्ल को राज़ी किया और अपना पीछा छुड़ाया। यह घटना सं० १५९२ में हुई।

रावजी ने नागोर के खानजादा के दीवान दौलतखाँ को राव वीरमजी पर आक्रमण करने को मेड़ते भेजा और पीछे नागोर लेने का अच्छा अवसर जान आप ने नागोर पर आक्रमण कर दिया। दौलतखां को इस का पता लगा तो उस ने मेड़ता लेना वहीं छोड़ पीछा नागोर आया जहां उस का रावजी की सेना के साथ युद्ध हुआ जिस में दौलतखां भाग कर अजमेर के पहाड़ों में चला गया। और रावजी का नागोर पर अधिकार हो गया।

यह युद्ध संवत् १५९२ में हुआ जिस विषय का यह प्राचीन गीत है :—

गीत

भगे खान नागोर अजमेर गो भाखरां
ऊतरे मेछ खागां मुहिं ऊंवरां।
किलमणी गात काढे गढ़ां कांगुरां।
पसरदे मालदे विरोले पाखरां॥ १॥
झालते तेजियां पखर रिमझोलियां।
गणण नलियार हद हवाई गोलियां।

चढ़े गढ़ वीवड़ी हाथ कर चोलियां
पाडियां मेछ नागोर की पोलियां ॥ २ ॥
पहरियां जरद ताऊसर पालियां।
जूजुवा गात देखालती जालियां।
मारिया मेछ दल आगली नालियां
जोइयो माल राव वीवियां वालियां ॥ ३ ॥
सिवा जंवक किया त्रपत पल सावलां।
वींट नागोर गढ फेरि चहुंवै वलां।
आंवलै मीर घड़ वलै आलू मलां।
पछटिया माल राय मेछ दल प्रावलां ॥ ४ ॥

रावजी ने नागोर पर अधिकार कर निम्न थानो पर अपने विश्वासपात्र पुरुप नियत कर दिये—

१ खास नागोर में—मांगलिया वीरा हाकिम नियत किया गया
२ रड़ोद व चावॅडा के थाने पर—राठौड़ अचला
३ हीरावाड़ी के थाने पर—राठौड़ जेताजी वो कूंपाजी

सं० १५८३ में राव मालदेवजी ने वीलाड़े के दीवान सीरवी गोविन्ददास पर सेना भेज कर नजराना मांगा किंतु उसे नजराना नहीं दिया तिस पर उस को कैद कर सख्ती की गई तो १२१ सीरवियों के आतमघात करने पर उस को छोड़ना पड़ा।

इसी वर्ष में जेसलमेर के रावल लूणकर्णजी की पुत्री का राव मालदेवजी के साथ संवन्ध हुआ और वड़ी धूम-धाम के साथ विवाह हुआ। उस समय बाई ऊमादे को इस का पता पड़ गया कि रावलजी चैांरी में आये हुए उस के पति को मार देना चाहते है जिस से उस ने अपने विश्वास-पात्र पुरोहित राघो के साथ राव मालदेवजी को उस की सूचना करवा दी जिस से रावजी और रावजी के सेना-नायक कूंपाजी व जेताजी सावधान हो गये और कोई अनिष्ट न हो सका। कूंपाजी व जेताजी ने जव तक रावजी चैांरी में रहे तव तक रावलजी को अपने पास विठा रखा, कारण यह था कि यदि रावजी के साथ किसी प्रकार का अनर्थ हो तो हम रावलजी को जीवित नहीं जाने देंगे। विवाह निर्विघ्न समाप्त होने पर रावजी वहां से रवाना हुए और अपने साथ पुरोहित राघो दामादर को भी ले आए। रानी ऊमादे भी उन के साथ जोधपुर आई। यह विवाह सं० १५८३ मे हुआ था। ऊमादे अत्यन्त रूपवती थी अतः रावजी उस के रूप पर मुग्ध थे। परन्तु ऊमादे की दासी भारमली के कारण दो वर्ष पश्चात् स० १५८५ में अजमेर के मुकाम पर रानी ऊमादे रावजी से रूठ (रुष्ट)

गई। रावजी ने उसे मनाने के कई यत्न किये परन्तु उस मानवती ने अपना मान नहीं छोडा।

संवत् १५६४ में रावजी ने सिवाने पर सेना भेजी, क्योंकि जब नागोरी दौलतखां पर सेना भेजी तब सब सरदारों को सहायतार्थ बुलाया था। आज्ञानुसार सब एकत्र हो गये थे किन्तु सिवाने का जेतमालोत डूंगरसी आ उपस्थित नहीं हुआ था। आज्ञाभंग का परिणाम बताने के निमित्त ही यह सेना भेजी गई थी। जब विजय होती दिखाई नहीं दी तो रावजी स्वयं सेना ले कर पूर्व सेना की सहायतार्थ गये और सिवाने के किले को चारों ओर से घेर लिया। किले के सब रास्ते बंद हो जाने के कारण डूंगरसी किला छोड़ कर निकल गया और रावजी का सिवाने के किले पर अधिकार हो गया। रावजी वहां स्वयं कुछ दिन ठहरे और रवाना होते समय मांगलिया भदा के पुत्र देवा को सिवाने का दुर्गपाल नियत कर दिया। जिस विषय का शिलालेख वि० सं० १५६४ आषाढ़ वदि ८ बुधवार का सिवाने के किले में खुदा हुआ विद्यमान है।

सं० १५६५ में रावजी ने जालोर के विहारी पठान सिकन्दरखां को, जो बलोच मुसलमानों से मिल कर रावजी के राज्य में उपद्रव किया करता था, अपने पास बुलाया। सिकन्दरखां आज्ञानुसार जोधपुर आया। उसे समझा बुझा और दूनाड़े का गांव जागीर में दे, वहां भेज दिया। वहां भी वह वही कार्य करने लगा तब रावजी ने अपनी सेना भेज सिकंदरखां को पकड मंगवाया और कुछ दिन कारागार में रखा। वहां से मुक्त हो कह वह पीछा जालोर गया किंतु उस ने अपना स्वभाव नहीं बदला। तब रावजी ने उसे दण्ड देने के लिये राठौड़ भारमल के पुत्र वीदा को भेजा जिस ने जालोर के किले को घेर लिया। विहारी लोग कुछ दिन तक लड़ते रहे किंतु अंत में वे किला छोड़ कर भाग गये। वीदा ने जालोर पर रावजी का अधिकार कर लिया।

जालोर लेने के पश्चात् साचोर, खावड, आदि प्रदेश ले कर नावरा गांव लूटा गया जिस विषय का यह प्राचीन छप्पय है :—

छप्पय

जोधपुरे ऊठिये चढ़े सेना चतुरंगा,
समियांणो घूघरोट अणो चाढियो अलंगा।
भाद्राजण पाधरो कियो हय पाय उलडे
जालोरी साचोरी धरा त्रय खावड़ खडे।
मरुधराधीश भ्रम मालदे, वैराई आवर वलं।
दोधा प्रथम भड़ मार के, कलह पाण नावर कलं॥

संवत् १५९६ में रावजी अजमेर की ओर गये और वापिस जोधपुर आये तब उन को ख़बर लगी कि बंगाल में हुमायूं और शेरशाह सूर के आपस में युद्ध छिड़ गया और दिल्ली आगरा ख़ाली पड़े हैं। अत उन्होंने बीकानेर की ओर जाने का ध्यान छोड़ कर पूर्व की ओर आक्रमण किया और वे हिंदौन से बयाना तक का मुल्क विजय करते चले गये। वहां से लौटते राव मालदेवजी ने सं० १५९८ में बीकानेर भी ले लिया। इस बीच में शेरशाह हुमायूं को सिंध में भगा कर आगरे पहुंचा। इधर से वे राजा, रईस, ठाकुर प्रभृति, जिन के राज्य राव मालदेवजी ने स्वाधीन कर लिये थे, बीकानेर वालों के साथ शेरशाह के पास गये और उसे रावजी पर चढ़ा लाने की चेष्टा करने लगे। जिस से रावजी ने शेरशाह से युद्ध करने के लिये ८० हज़ार सवार एकत्र किये।

जब मेड़ता के वीरमदेवजी को सूचना मिली कि मुसलमान आफ़िसर लोग अजमेर छोड़ कर चले गये हैं और अजमेर में केवल उन के मनुष्य ही रहते हैं तब वीरमदेवजी अपने चुनिंदे सवार ले कर अजमेर पहुंचे और वहां अपना अधिकार कर लिया। जब राव मालदेवजी को इस बात की ख़बर हुई तब रावजी ने वीरमदेवजी को कहलाया कि आप मेड़ता अपने अधिकार में सदा की भांति रखें, किन्तु अजमेर को जोधपुर के राज्य के अन्तर्गत कर दें क्योंकि अजमेर आप के हाथ में रहेगा नहीं। वीरमजी ने रावजी के कथन को स्वीकार नहीं किया तब रावजी ने जेताजी व कूंपाजी की अध्यक्षता में मेडता पर सेना भेजी। जेताजी व कूंपाजी ने वीरमजी को समझाया कि अपन भाई भाई हैं आपस में लड़ मरने से अपन दोनों दुर्बल हो जायंगे और शत्रु को अपन को विजय करने का अच्छा अवसर मिल जायगा। अत उचित है कि आप मेडता रखें और अजमेर राव मालदेवजी को सौंप दें। उत्तर में वीरमजी ने कहा कि रावजी भले मेडता ले लें, किंतु मैं अजमेर नहीं छोड़ूंगा, वीरमजी का आग्रह देख जेताजी कूंपाजी ने अजमेर वीरमजी के आधीन रहने दिया और मेडता को राव मालदेव जी के आधीन कर लिया। उस समय रावजी ने कुछ ग्राम सरदारों को दिये थे जिन में वरसिंह के पौत्र और तेजसी के पुत्र राठौड़ को ठिकाना रीयां जागीर में दिया था। इस कारण सहँसा और वीरमजी के परस्पर पूर्ण वैर हो गया।

मेड़ते पर रावजी का अधिकार हो जाने पर रावजी ने वीरमजी

को अजमेर से निकाल देने के विचार से वीरमजी के ऊपर अजमेर सेना भेजी। वीरमजी वहुत वहादुरी से लड़े किंतु रावजी की सेना अधिक होने और कूंपाजी जेताजी जैसे वीर सेना संचालक होने के कारण अत में वीरमजी को अजमेर छोड़ कर भागना पड़ा। वीरमदेवजी के निकल जाने पर रावजी की सेना ने अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया।

वीरमजी अजमेर से निकल कर डीडवाणे की ओर गये। रावजी की सेना ने उन का पीछा किया। डीडवाणे में फिर युद्ध हुआ परन्तु वीरमजी रावजी की सेना के आगे टिक न सके और वे डीडवाणा छोड कर फतैपुर जूंभरणू की ओर चले गये। रावजी की सेना ने डीडवाणा पर भी कब्जा कर लिया। इस युद्ध में वीरमजी का छोटा भाई रतनसी काम आया।

डीडवाणे से निकल कर वीरमजी कछवाहा रायमल के पास १ वर्ष पर्यन्त वड़े आदर-सत्कार पूर्वक रहे। वहां से रवाना हो कर वीरमजी कुछ दिन इधर उधर भ्रमण करते रहे और पीछे गांव वोयल में जा कर अपना अधिकार जमा लिया और तदनन्तर वणहड़ा भी ले लिया और वहां निवास कर दिया।

जव राव मालदेवजी को इस वात की सूचना मिली तो उन्होंने वीरमजी का वोयल व वणहड़ा से निकाल देने की मन्शा से अपनी सेना भेजी। वीरमजी सेना के फैजावाद पहुंचने की सूचना मिलने पर युद्ध के लिये सन्नद्ध हुए और लड़ कर मर मिटने का पक्का इरादा कर लिया। परन्तु मुहता खीमा के समझाने पर वीरमजी मांडू के वादशाह के पास चले गये। मांडू के वादशाह ने वीरमजी को अपने यहां रख कर मालदेवजी से वैर वांधना उचित नहीं समझा और वीरमजी को कुछ द्रव्य दे कर दिल्ली के वादशाह के पास जाने की सलाह दी। तदनुसार वीरमजी दिल्ली की ओर गये। मार्ग में गांव सलारणा में मुकाम किया जहां के मुसलमान थानेदार ने अपने मित्र रणथंभोर के थानेदार के पास वीरमजी को भेज दिया। रणथंभोर के थानेदार ने वीरमजी को वादशाह से मुलाकात कराने का वादा किया जिस से वीरमजी उस के साथ दिल्ली गये।

इधर रावजी की सेना वोयल तक वीरमदेवजी के पीछे गई। वहां से टोंकटोडे की ओर गई जहां सोलकी राज्य करते थे। उन से पेशकसी ले कर सेना आगे जोनपुर (मेवाड़) गई जहां रावजी का थाना विठाया। वहां से पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया और उधर के प्रान्तों में रावजी की आज्ञा प्रवृत्त करके रावजी का राज्य स्थापित

किया। प्रथम सांभर में अधिकार किया। तदनन्तर कासली, फतैपुर, रैवासा, छोटा उदयपुर, चाटसू, लवाण और मलारण आदि परगनों में अधिकार कर के वहां किले वनवाये और उन में अपने थाने विठाये।

राव मालदेवजी का एक थाना नागोर के गांव भावँडा में था जो नागोर के खानजादा को वहुत खटकता था। उसे नष्ट भ्रष्ट करने के लिये अजमेर से आ कर खानजादा ने भावंडा पर आक्रमण किया। थाने में जो राजपूत थे उन्होंने मुक़ावला कर थाने को वचा लिया। परन्तु इस युद्ध में अखैराज का पौत्र और पचायण का पुत्र अचलसिंह मारा गया। यह वड़ा वीर-पुरुष था और नागोर शहर के किले के कँवाड़ यही वीर जोधपुर लाया था।

जिस समय जैताजी और कूंपाजी नें नागोर विजय कर के लूटा था उस समय रावजी का थाना हीरावाड़ी मे था इसी से वह गांव लूट से वच गया। अतः हीरावाड़ी की प्रजा १५ हज़ार रुपये उक्त दोनों सेना-नायकों के भेंट करने को ले कर उपस्थित हुई। उन्होने लूट का द्रव्य लेने से इन्कार किया तव प्रजावर्ग ने भेट स्वरूप देने का निवेदन किया। प्रजा का आग्रह जान उस धन को लेना स्वीकार तो कर लिया, परन्तु उस से जगत् के उपकार करने और अपने नाम चिरस्थायी रखने के काम में लगाने का कहा। प्रजावर्ग ने उस वात को स्वीकार कर रजालानी में एक उत्तम तथा सुदृढ़ वावड़ी वनवा दी जिस पर वि० सं० १५९७ का शिलालेख लगा हुआ है।

मेवाड़ के राना विक्रमाजीत को मार कर जब वनवीर, जो दासी पुत्र था, चित्तौड़ का स्वामी वन वैठा और उस ने विक्रमाजीत के छोटे भाई उदयसिंह को जो उस समय वहुत छोटी वय में होने से पलने मे झूलता था, मारने का इरादा किया। उदयसिंह की धाम को वनवीर के दुरभिप्राय का कुछ पता लग गया जिस से वनवीर के अंतःपुर में आने से पूर्व ही उस ने उदयसिंह को किसी एक नाइन के हाथ वाहिर भेज दिया। वह नाइन उसे ले कर भामाशाह के पास गई और उसे सब वृत्तान्त कह दिया। भामाशाह ने उदयसिंह को पाला पोसा और अपना भतीजा प्रसिद्ध कर दिया। जब मेवाड़ के सरदारों को उदयसिंह के जीवित होने का पता लगा तो उन्होंने राव मालदेवजी से प्रार्थना की कि आप मेवाड़ के शुद्ध वंश की रक्षा के निमित्त सहायता प्रदान करें। रावजी ने उन की प्रार्थना उचित जान अपनी सेना भेजी और वनवीर और रावजी के सेना के वीच विकट संग्राम हुआ जिस में वनवीर मारा गया। तव रावजी की सेना ने उदयसिंह को

बुला कर उन्हें वि० सं० १५९७ में चित्तौड़ का राज दिला दिया। उदयसिंह ने इस का बड़ा अहसान माना और रावजी के पास चालीस हज़ार पिरोजियां और वसंतराय हाथी नजराने में भेजा और सेना नायक जैता, कूंपा आदि को भी सरोपाव दिये। संवत् १५९८ में राव मालदेवजी ने कूंपाजी महराजोत और पंचायण करमसीहोत आदि सरदारों के साथ २० हज़ार सेना ले कर बीकानेर पर आक्रमण किया। बीकानेर का राव जेतसी भी अपनी सेना ले कर सामने आया। गांव सूवा में डेरा हुआ और राव मालदेवजी का डेरा गांव पही में हुआ। सूवा के मुकाम से जेतसी घोड़ों के सौदागरों को रुपये दिलवाने बीकानेर गया जिस की ख़बर होने पर जेतसी के सरदार एक एक कर के चले गये और पीछे केवल १०० सरदार रह गये। जेतसी वापिस सूवा पहुंचा तो पता लगा कि अपनी सब सेना चली गई है। अंधियारे में राव मालदेवजी की सेना को अपनी सेना समझ कर जेतसी खेमे के पास आ गया। यह अच्छा अवसर समझ रावजी की सेना ने जेतसी पर आक्रमण कर दिया और उस को घेर लिया। खूब तलवार चली। मालदेवजी पर पहले जेतसी ने प्रहार किया जिसे मालदेवजी ने बचा लिया और फिर जेतसी को एक प्रहार से ही मार लिया। रावजी की विजय हुई और वे उसी सेना के साथ बीकानेर पर चढ़ गये। जहां रूपावत भोजराज और सांखला महेशदास के साथ भयानक संग्राम हुआ जिस में भोजराज के १५०० सवार मारे गये और रावजी की जीत हुई। रावजी का बीकानेर पर आधिपत्य हो गया। बीकानेर लेने में कूंपाजी अग्रणी थे जिस से रावजी ने बीकानेर का पट्टा कूंपाजी को लिख दिया और फतैपुर, झुंझणू भी उन को जागीर में दे दिये।

संवत् १५९९ में बादशाह हुमायूं मारवाड़ में आया और जोधपुर से ४ कोस पर जोगीतीर्थ पर डेरा किया। यहां कुछ समय बादशाह ने निवास किया। राव मालदेवजी से मुलाकात की और कहा कि मैं आप के पास सहायता की आशा कर के आया हूं। आप अवश्य सहायता करें। मैं आप का अहसान कभी न भूलूंगा। रावजी ने बादशाह का जैसा चाहिये वैसा सत्कार किया और कहा कि आप यहां ठहरें, चाहे फलोधी में ठहरें, मैं सब प्रकार से सहायता करने को सन्नद्ध हूं। बादशाह ने निकट रहना उचित न समझा और वह जोगी तीर्थ से रवाना हो कर फलोधी चला गया। रावजी ने उस की रक्षार्थ अपनी सेना भेजी। फलोधी से बादशाह ऊमरकोट की ओर गया जहां अकबर का जन्म हुआ।

तुजक जहांगीरी नामक पारसी के इतिहास पुस्तक की भूमिका पृष्ठ ५ पर राव मालदेवजी के विषय मे इस प्रकार लिखा मिलता है।—

"राजा उदेसिंह, राव मालदेव का पुत्र है जो हिंदुस्थान के बहुत बड़े राजाओ में से था। और ८० हज़ार सवार रखता था। राणा सांगा जो बाबर से लड़ा था सेना और सपदा में राव मालदेव के समान था, परन्तु मुल्क की लबाई चौड़ाई और लश्कर की अधिकता में राव मालदेव उस से बढ़ कर था। इसी लिये जब उस की सेना को राणा सांगा से लड़ने की बारी आई तो विजय पाई।

लिख आये हैं कि राव मालदेवजी ने बीकानेर पर आक्रमण किया और बीकानेर के राव जेतसी को मार कूंपा,को बीकानेर का पट्टा कर दिया। बीकानेर के भोजराज ने मालदेवजी के आक्रमण की खबर सुन कर जेतसी के पुत्र कल्याणमल को सिरसा की ओर भेज दिया था। कल्याणमल अपना दुःख निवेदन करने शेरशाह बादशाह के पास दिल्ली गये और इधर से दूदाजी के पुत्र राव वीरमदेवजी भी दिल्ली पहुंच गये। दिल्ली में दोनों शामिल हो गये, दोनों ने अपना २ दुःख परस्पर कहा और दोनों मे पूर्ण मित्रता हो गई।

अब दोनों ने इधर उधर मिल मिला कर बादशाह के पास जाने का यत्न किया और अंत में बादशाह के पास पहुंचे। उन्होने अपनी २ कथा कही जिसे सुन कर बादशाह चुप हो गया। उस ने वृथा मालदेवजी से बैर करना उचित न समझा और वीरमजी व कल्याणमल से कहा कि मैं ऐसे घरेलू झगड़ों में पड़ना नहीं चाहता। इस से दोनों वीरमजी व कल्याणमल असतुष्ट हुए, परन्तु निरुत्साह न हुए। वीरमजी ने फिर बादशाह से निवेदन किया कि राव मालदेवजी ने जिन २ जागीरदारों की जागीरें जब्त कर ली है, वे सब उन से अप्रसन्न है और वे सब आप को मदद देंगे। आप किसी प्रकार का विचार न करे, आप की विजय होगी। यदि आप को मेरा विश्वास न हो तो आप मेरे पुत्र जैमल को अपने पास रखै। मै ऐसा षड़यन्त्र रचूंगा कि आप को युद्ध करना ही नही पड़ेगा और आप की विजय हो जावेगी। बादशाह वीरमजी की बातों पर रीझ गया और प्रलोभन मे आ कर उस ने मारवाड़ पर ६०-७० हज़ार सेना ले कर मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिये रवाना हो गया। इस बात की खबर कूंपाजी को डीडवाणे में लगी तो उन्होंने अपने मनुष्य रावजी के पास सूचना देने के लिये भेजे और सरदारों के पास भी भेज दिये। रावजी न खबर पाते ही अपनी सेना को युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दी और

सरदारों के नाम आज्ञापत्र लिखे कि शेरशाह सूर मारवाड़ पर आता है आप अपनी युद्ध की पूर्ण सामग्री के साथ जोधपुर जल्दी आओ। सरदार तो पहले ही से युद्धार्थ उत्सुक हो रहे थे जिस पर फिर रावजी का निमत्रण आ गया जिस से उन का उत्साह द्विगुणित हो गया। सब सरदार सज-धज सन्नद्ध हो कर रावजी के चरणों में आ उपस्थित हुए। रावजी ने सेना सहित अजमेर की ओर प्रयाण किया। और अपने अन्तःपुर को सिरोही भेज दिया जहाँ आप का ननिहाल था।

रावजी का डेरा अजमेर के निकट हुआ। बादशाह को इस की ख़बर लगी तो वह मन मे घबराया और पीछे लौटने का विचार किया। परन्तु वीरमजी के ढाढस दिलाने पर वह आगे बढ़ा। बादशाह की सेना का डेरा सुमेल में हुआ और रावजी की सेना का गिररी में। रावजी गिररी से भी पीछे हटना चाहते थे कि बादशाही सेना को जंगल में ले जा कर जलकष्ट से तग आने पर आसानी से मार डाले, परन्तु जेता व कूंपा ने गिररी से पीछे हटने से इन्कार कर दिया और कहा कि इतनी भूमि तो आप की ली हुई थी सो आप ने छोड दी, किन्तु अब यह भूमि हमारे पूर्वजों की है सो हम नहीं छोड़ सकते। इस पर रावजी को गिररी में मुकाम रखना पड़ा। बादशाह की सेना के और रावजी की सेना के बीच केवल ४ कोस का अन्तर था। बादशाह के मन में रावजी की सेना की सजावट देख कर अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ। जिस से उस ने यह विचार किया कि द्वन्द्व युद्ध कर के जय पराजय का निर्णय कर लिया जाय। ऐसा विचार कर बादशाह ने अपना प्रतिष्ठित पुरुष रावजी के पास भेजा और कहलाया कि यदि आप को स्वीकार हो तो धर्म युद्ध किया जाय जिस में एक योधा आप की ओर का और एक योधा हमारी तर्फ का दोनों द्वन्द्व युद्ध करें, उन में से जिस पक्ष का योधा विजयी होवे उस पक्ष का विजय समझा जाय। राव मालदेवजी ने इस बात को स्वीकार कर लिया और अपनी ओर से राठौड़ भारमल के पुत्र बीदा को नियत किया और बादशाह को पीछा कहलवा दिया कि हमारी ओर से बीदा तैयार है, आप अपनी ओर का एक योधा नियत करें। बादशाह ने भी अपना योधा नियत किया। दोनों ओर के योधा द्वन्द्व युद्धार्थ रणांगण में उपस्थित हुए। उस समय वीरमजी ने बादशाह से निवेदन किया कि आप ने यह क्या किया? मै रावजी के योधा के बल और पराक्रम से पूर्ण परिचित हूं। आप की सेना में इस योद्धा की तुलना करने वाला एक भी नहीं है। आप इस बात को छोड़ दीजिये। निदान बादशाह को विवश हो कर अपनी बात त्यागनी पड़ी और

मन में बहुत पश्चात्ताप किया।

अब वीरमदेव ने एक ऐसा षडयन्त्र रचा कि जिस से रावजी रणाङ्गण से विमुख हो गये। वीरमजी ने बादशाह से अर्ज कर २०-२५ हज़ार फीरोजशाही मोहरें और पारसी भाषा लिखने वाले एक उत्तम मुन्शी मांग लिया। वीरमदेव ने मोहरें व्यापारियों के हाथ रावजी की सेना में सस्ते भाव से बिकवा दीं और मुन्शी से जाली फ़रमान लिखवा कर और उन को नयी ढालों की गद्दियों में सिलवार व्यापारियों के हाथ रावजी की सेना में सस्ते मोल पर बिकवा दीं। रावजी को तथा उन की सेना वालों को इस का कुछ भी अन्देशा नहीं हुआ।

अब संध्या के समय वीरमदेवजी से रावजी से मिलने आये और अर्ज किया कि मेरे निमित्त आप को महाकष्ट हुआ जिस का मुझे पश्चात्ताप है। परंतु आप ने मेरा मेड़ता ले लिया और मुझे किसी स्थान पर टिकने नहीं दिया जिस से लाचार हो कर मुझे बादशाह की शरण लेनी पड़ी। किंतु जिन सरदारों को आप ने दान मान आदि से पूर्ण सत्कार कर प्रसन्न रखा है, ये सब बादशाह से मिल गये हैं और उन्होंने बादशाह के साथ इकरार कर लिया है कि हम पकड़वा देंगे। और इसी हेतु उन के पास फिरोजशाही अशरफ़ियें भेजी हैं और उन के नाम फ़रमान भेजे हैं जो सरदारों की ढालों की गद्दियों में विद्यमान हैं। आप उन की ढालें मंगवा कर दृष्टिगोचर करें तो आप को आप से आप तसल्ली हो जायगी। ऐसा कह वीरमजी पीछे बादशाह की सेना में चले गये।

राव मालदेवजी ने बाज़ार में मनुष्य भेज कर अन्वेषण कराया तो फीरोजशाही आने की बात सत्य निकली। जिस से रावजी के मन में संदेह का अंकुर जम गया। तदनन्तर सरदारों की नई ढालें मँगवा कर देखी तो उन में बादशाही फ़रमान निकले जिस से रावजी को पूरी तसल्ली हो गई कि सरदार बादशाह से मिल गये और मुझ को पकड़वाने के लिये अशरफ़ियां ले चुके। अतः उन्होंने उस समय रणांगण से निकल जाना ही अपने लिये श्रेयस्कर समझा और निकलने की तैयारी करने लगे। सरदारों को इस की ख़बर हुई तो वे सब एकत्र हो रावजी के पास आये और कारण पूछा। सरदारों ने बहुत कुछ समझाया और तसल्ली दी, परंतु रावजी ने सरदारों का विश्वास नहीं किया और वे अपने चुनिंदा सरदार साथ ले कर रणभूमि से निकल गये।

रावजी के चले जाने से पीछे अनुमान २० सहस्र सेना रही जिस में मुख्य जेता व कूंपा थे। इन्होंने अपनी सेना के ४ विभाग कर बादशाही सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि बादशाह की

सेना बहुत अधिक थी तथापि राठौड़ों ने उस के अंदर घुस कर ऐसी तलवार बजाई कि बादशाह घबरा कर कहने लगा कि मैंने बिना विचारे बहुत बुरा कार्य किया कि सेर भर बाजरे के लिये जान को जोखे में डाला। इस युद्ध में सब के सब राठौड़ मारे गये और बादशाही की सेना अधिक होने से उस की विजय हुई। बादशाह ने जेता व कूंपा की लाशें देखना चाही जिन को बादशाह के सेनापति ने तलाश करवा हाथियों के सहारे खडी करवाई। बादशाह उन को देख कर चकित हो गया और उन की वीरता की प्रशंसा कर के कहा कि ईश्वर ने अनुग्रह किया कि राव मालदेव चला गया, नहीं तो हमारी विजय सर्वथा न होती। राठोड़ २० हज़ार और बादशाही सेना ४० हज़ार इस युद्ध में हताहत हुई।

शेरशाह ने वीरमजी को मेडता और कल्याणसिंह को बीकानेर वापिस दे दिया। वीरमजी बादशाह को ले कर जोधपुर पर आये और किले पर आक्रमण किया। सेना के आधिक्य के कारण किले के अंदर के राजपूत तलवार बजा कर सब के सब मारे गये और किले पर बादशाही कब्जा हो गया। पन्द्रह महीनों तक बादशाह का कब्ज रहा। बादशाह ने मारवाड में ठौर २ अपने थाने बिठवा दिये। बादशाह कालजर गया जहां बारूद से भस्मीभूत हो गया।

राव मालदेवजी सिवाना, जालोर और परवतसर आदि प्रान्तों में भ्रमण करते हुए भाद्राजण के समीपवर्ती गांव पाली में आये। जहां आप ने मुकाम कर सेना का संग्रह किया और पाली परगने के बादशाही थाने भांगेसर पर वि० सं० १६०२ में आक्रमण कर उसे अपने हस्तगत कर लिया। भांगेसर का थाना विध्वस्त करके रावजी जोधपुर की ओर बढ़े। रावजी के जोधपुर पहुँचने से पहले जोधपुर जा कर जोशी उमदेमल ने बादशाही लोगों को मार कर किले पर कब्जा कर लिया था जिस से रावजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और जोधपुर में निवास कर दिया।

सं० १६०४ में रावजी ने फलोधी पर राठौड़ भारमल के पुत्र नगा और विदा को भेजा। उस समय फलोधी पर नरा का पुत्र हमीर राज्य करता था। नगर और वीदा ने फलोधी को जा घेरा। हमीर ने मुक़ाबला किया, परन्तु उसे फलोधी छोड कर निकलना पडा। रावजी की विजय हुई और रावजी का फलोधी पर अधिकार हो गया।

इसी वर्ष में मेडता के राठौड़ वीरमदेवजी दूदावत का स्वर्गवास हुआ और पीछे उन का ज्येष्ठ पुत्र जैमल स्वामी हुआ।

इसी वर्ष रावजी के पांव में बाला (स्नायु) निकला। रावजी अत्यन्त पीड़ित थे जिस से रावजी के ज्येष्ठ पुत्र रामसिह ने जो रानी कछवाही से उत्पन्न हुआ था, यह अच्छा अवसर समझ रावजी को कैद कर आप मारवाड़ का स्वामी होने का विचार किया और जैतावत पृथ्वीराज से इस विषय में परामर्श किया। पृथ्वीराज ने अधर्म में सहायता करने से इन्कार कर दिया। तथापि रामसिंह के मन का संकल्प शान्त नही हुआ और उस ने मडोर में एक प्रीतिभोज किया और वहां से भोजन कर सीधे जोधपुर के किले पर जाने का विचार किया।

पृथ्वीराज ने ये सब समाचार चांपावत भैरूँदास के पुत्र जैसा के साथ रावजी को कहलवा दिये जिस से रावजी उस की स्वामी भक्ति से प्रसन्न हुए और पृथ्वीराज को आज्ञा दी कि तुम सब सेना ले कर किले मे आ जावो और ऐसा प्रबन्ध करो कि रामसिह किले में प्रवेश करने न पावे। पृथ्वीराज ने वैसा ही प्रबन्ध कर दिया। रावजी ने रामसिंह की माता कछवाही को पालकी मे बिठा कर किले के नीचे उतार दिया और तलहटी के महलो में भेज दिया। उस के साथ रूठी रानी उमादे भी आ गई। रामसिह को किले पर आने से रोक कर पृथ्वीराज ने कह दिया कि आप के लिये सख़्त मनाही है। जिस पर रामसिंह ने पूछा कि रावजी से निवेदन करो कि मेरे लिये क्या आज्ञा है। तब रावजी ने उसे गूंदोच जाने की आज्ञा दी। तदनुसार रामसिंह गूंदोच चला गया और साथ में उस की माता कछवाही लाछलदे और रूठी रानी ऊमादे भी गूंदोच चली गईं।

कँवर रामसिंह का विवाह उदयपुर के महाराणा उदैसिंह की पुत्री के साथ हुआ था अतः वे गूंदोच से महाराणा के पास उदयपुर चले गये जहां से उन को गांव केलवा की जागीर दे कर वहां भेज दिया जिस से रामसिंह अपनी दोनो माताओं के साथ वहां रहने लगा। रामसिंह उमादे रानी का दत्तक हो चुका था जिस से वह भी उस के साथ २ रही।

राव मालदेवजी का विवाह झाला राजपूत तेजसिंह की पुत्री से हुआ था। वह झाली रानी अत्यन्त गुणवती और सुन्दरी थी। रावजी उस से अत्यन्त प्रेम करते थे और उसी कारण से रावजी ने उस के पिता तेजसिंह को ठिकाना खैरवा जागीर में दिया था। एक समय रावजी देशाटन करते खैरवे पहुंचे जहां आप का पाहुनचार

बडे आदर सत्कार से हुआ। उस अवसर में रावजी को सूचना मिली कि झाली रानी की छोटी वहिन उस से भी अधिक रूपवती है। रावजी ने अपनी इच्छा उस से पाणिग्रहण करने की प्रकट की।

झाला तेजसिंह का विचार उस कन्या को महाराणा उदयसिंह से व्याहने का था जिस से उस ने २ मास की अवधि चाही। रावजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। तेजसिंह के मन में कपट तो था ही, वह खैरवा छोड़ कर गांव गुड़े चला गया और वहां अपनी दूसरी कन्या का विवाह महाराणा उदैसिंह के साथ कर दिया। रावजी यह खबर सुन कर अत्यन्त कुपित हुए और महाराणा के ऊपर सेना भेजी। रावजी की सेना गोड़वाड़ में पहुंची जहां महाराणा की सेना से मुकाबला हुआ जिस में महाराणा की सेना भाग गई और रावजी की विजय हुई। राठौड़ी सेना ने गोड़वाड़ प्रान्त पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया और वहां रावजी का थाना बिठा दिया।

संवत् १६०७ में राव मालदेवजी के मन में यह विचार हुआ कि इस समय पूर्व की ओर तो बादशाही पूर्ण प्रबन्ध है अतः उधर बढना तो उचित नही, परन्तु पश्चिम की ओर कोई प्रबल राज्य नहीं है इधर अपना अधिकार बढ़ा सकते है। इस विचार से आप ने पहले पोहकरण पर आक्रमण करने का इरादा किया। उस समय पोहकरण में गोविन्ददास का पुत्र जैतमाल शासन करता था और कभी कभी वह रावजी के प्रान्त में कुछ कुछ उपद्रव भी किया करता था। इस बहाने रावजी ने पोहकरण पर बाला राठौड़ भारमल के पुत्र नगा और बीदा को सेना दे कर भेजा। जेतमाल भी अपनी सेना ले कर सामने आया। कुछ काल तक वह लडता रहा, परन्तु अन्त में अपनी सेना के क्षीण हो जाने से उस ने संधि करने का प्रस्ताव किया और स्वयं रावजी की सेना में आ कर उपस्थित हो गया। नगा और बीदा ने पोहकरण पर रावजी का अधिकार कायम कर जैतमाल को अपने साथ जोधपुर ले आये। जेतमाल का व्यवहार शुद्ध न देख कर वह कैद कर लिया गया।

इसी वर्ष में पूगल के स्वामी भाटी जेसा ने अपनी सेना सज कर पोहकरण पर आक्रमण किया। पोहकरण में रावजी के राजपूत थे उन्होंने मुकाबला किया। दोनों ओर से खूब तलवार चली। अन्त में लाचार हो कर जेसा को पीछा लौटना पड़ा।

रावजी ने जेतमाल से पोहकरण लेने के अनन्तर फलोधी लेने का विचार किया। इस मुहिम में रावजी खुद अपनी सेना ले कर फलोधी पर गये। उधर जेतमाल अपनी सहायता के लिये जेसलमेर के रावल मालदेवजी के पास गया। रावलजी का जेतमाल जामाता था जिस से-

उन्होंने सहायतार्थ सेना भेजी। रावजी ने जा कर फलोधी को घेर लिया। कुछ दिन साधारण युद्ध हुआ; अन्त मे रावजी ने एक साथ हल्ला कर दिया। उस में भाटी भाग निकले। रावजी की विजय हुई। भाटियों के १००० ऊँट बाहड़मेर का स्वामी रावत भीमा ले भागा। रावजी को इस की खबर हुई तब आप ने ऊँटों की बाहर में अपनी सेना भेजी जिस में भेरूँदास का पुत्र जेसा अग्रणी था और साथ मे जेतावत पृथ्वीराज भी था। रावजी की सेना ने रावत भीमा को जा दबाया और ऊट ले आया। भीमा पृथ्वीराज की बरछी से घायल हो गया जिसे रावजी के पास ले आए। पृथ्वीराज पर इस कारण रावजी की कृपा हो गई और उसे अपना सेनापति नियत कर दिया।

भीमा पुनः अपने देश में गया और उपद्रव करने लगा जिससे संवत् १६०६ में रावजी ने फिर उस पर सेना भेजी। भीमा परास्त हुआ और बाहड़मेर और कोटड़ा पर रावजी का अधिकार हो गया और वहां थाना नियत कर दिया। भीम भाग कर जेसलमेर रावलजी के पास गया और सहायता मांगी। रावलजी ने अपनी सेना के साथ अपने पुत्र हरराज को भेजा। भीमा हरराज के साथ बाहड़मेर आया और इधर से रावजी की सेना भी बाहड़मेर पहुंची। दोनों में घमसान युद्ध हुआ। भाटियों की पराजय हुई रावत भीम फिर भाग गया और उस का असबाब लूट लिया गया।

संवत् १६०६ में ही रावजी ने रावलजी पर जेसलमेर सेना भेजी। रावलजी ने भी अपनी सेना सज कर तैयार की। रावजी की सेना ने जेसलमेर को घेर लिया दोनों दलों में विकट संग्राम हुआ। राठोड़ सेना ने जेसलमेर शहर में देसरी तलाई तक धावा करके विजय प्राप्त की। रावलजी गढ़ में बैठ रहे, तलहटी लूट ली गई। रावलजी से पेशकसी ले कर रावजी की सेना पीछे जोधपुर लौट आई। वहां एक बड़ शत्रु सेना काटना चाहती थी जिसे पृथ्वीराज ने नहीं काटने दिया जो अभी तक जेसलमेर मे विद्यमान है और पृथ्वीराज का बड़ कहलाता है।

संवत् १६१० में राव वीरमदेवजी के पुत्र जेमलजी को रावजी ने जोधपुर बुलाया, परन्तु वे उपस्थित नहीं हुए जिस से क्रुद्ध हो कर रावजी ने मेड़ते पर चढ़ाई की। जेमलजी ने अपने प्रतिष्ठित पुरुष के साथ रावजी को कहलाया कि मै आप का ही राजपूत हूं, मैंने ऐसा क्या अपराध किया है जिस से मुझ पर चढ़ाई की गई। परन्तु रावजी ने कुछ ध्यान नहीं दिया और मेड़ते पर हल्ला कर दिया। उस समय जेमलजी चारभुजा की सेवा कर रहे थे और मेड़ते की प्रजा शहर घिर जाने से घबरा गई तब चारभुजा ने जेमलजी का रूप

धारण कर घोड़े पर सवार हो स्वयं युद्ध किया और रावजी की सेना को मार भगाया। उस युद्ध में चारभुजी के कान का कुण्डल गिर गया था उस भूमि को अभी तक कुण्डल कह के पुकारते हैं। रावजी परास्त हो कर वापिस आ गये। इस विषय का प्राचीन पद्यार्द्ध अभी तक प्रसिद्ध है—

"जैमल जपी जाप जयमाला।
भागा राव मंडोवर वाला॥"

इस लड़ाई में पृथ्वीराज अखैराज के हाथ मारा गया था जिस का बदला लेने के लिये पृथ्वीराज का भाई देवीदास जेतावत मेड़ते पर गया और अपने साथ रावजी से अर्ज़ करके राजकुमार चन्द्रसेणजी को साथ ले गया था। देवीदास ने प्रथम मेड़ते परगने का गांव कुड़की लूटा। फिर रीयां जा कर उसे लूटा। वहां से मेड़ते आया। जैमलजी युद्ध के लिये तैयार हुए। उसी अवसर में महाराणा उदैसिहजी बीकानेर जाते थे उन के भी डेरे मेड़ते में हुए। महाराणा ने देवीदास को समझा बुझा कर पीछा जोधपुर भेज दिया और जेमलजी को अपने साथ बरात में बीकानेर ले गये।

इसी वर्ष में बादशाह हुमायूं ने दिल्ली को विजय किया और उस के सं० १६१२ में हुमायूं के मरने पर अकबर दिल्ली के तख़ पर बैठा और उस ने पठान हाजीखां को पराजित करके निकाल दिया। जब वह राजपूताने की ओर आया और उस ने अजमेर व नागोर पर अपना अधिकार कर लिया। इस की खबर होने पर रावजी ने अपनी सेना हाजीखां पर भेजी। हाजीखां ने महाराणा उदयसिह से सहायता मांगी। महाराणा हाजीखां की सहायता करने सेना ले कर आये। हाजीखां की विजय हुई। उस के बदले में महाराणा ने हाजीखां से रगराय नामक वेश्या को मांगा, हाजीखां ने देने से इन्कार किया। तिस पर महाराणा ने हाजीखां पर चढ़ाई की। हाजीखां ने इस समय रावजी मालदेवजी से सहायता चाही और अजमेर दे देने का कहा। रावजी ने अजमेर हस्तगत होने का अच्छा अवसर जान सहायता के लिये अपनी सेना भेजी। इस समय सेना का नायक देवीदास था जिस को रावजी ने १५०० सवारों के साथ भेज कर यह कहा कि महाराणा की सेना में बालेचा सूजा शामिल है उसे हर उपाय से जीता न छोडना। देवीदास सेना ले कर हरमाड़े पहुंचा जहां महाराणा की सेना पहले से ही डेरा डाले हुए पड़ी थी। दोनों दलों के बीच घमासान युद्ध हुआ। देवीदास ने सूजा को जा ललकारा और उस का काम तमाम कर दिया। राठौड़ों की सेना के आगे महाराणा की सेना ठहर न सकी और भाग निकली। महाराणा वापिस चीताड़

गये और हाजीखां की विजय हुई। उस ने रावजी को लिख भेजा कि इस विजय का श्रेय देवीदास को है जिस से प्रसन्न हो कर रावजी ने देवीदास को बगड़ी का पटा इनायत किया और जेतावत पृथ्वीराज के पुत्र सूरजमल को १२ गांवो के साथ पिचियाक का पटा दिया।

संवत् १६१३ में जब राव जेमलजी हरमाड़े के युद्ध से हट कर मेड़ते गये, परन्तु वहां राव मालदेवजी के राजपूतों का क़ब्ज़ा था जिस से जेमलजी महाराणा उदयसिंहजी के पास चीतोड़ चले गये। महाराणा ने उन को वल्लोर की जागीर प्रदान की जो आज तक जेमलजी के वंशधरों के अधिकार में है।

मेड़ता में रावजी ने अपने पुत्र जयमल को राठौड़ देवीदास के साथ भेज दिया। संवत् १६१५ का कँवर जेमल का लेख गांव रैण में मिला है। संवत् १६१४ में रावजी ने पुराने मेड़ता नगर को निर्मूल कर नया नगर बसाने का विचार कर अपने नाम से मालकोट बनवाने की आज्ञा दी। यह कोट सं० १६१६ में बन कर तैयार हो गया तब उस मालकोट के थाने पर जेतावत देवीदास को रहने की आज्ञा दी।

संवत् १६१६ में अजमेर का मुसलमान सुबहदार कासमखां बादशाही सेना ले कर जेतारण पर चढ़ कर आया। उस समय जेतारण पर राठौड़ खींवा का पुत्र रतनसी ऊदावत शासन करता था। उस ने सहायता के लिये रावजी को कहलाया किन्तु रावजी ने आना-कानी की। रतनसी बड़ा वीर पुरुष था। उस ने खूब तलवार बजाई किन्तु शत्रु सेना अधिक होने से वह मारा गया। मुगल सेना के भय से जेतारण नगर निर्जन हो गया।

संवत् १६१८ मे जेमलजी अपनी पैतृक भूमि मेड़ता वापिस लेने के विचार से बादशाह अकबर के पास गये और अपना सब वृत्तान्त कह निवेदन किया कि मालदेवजी बादशाही अमलदारी मे बिगाड़ करते है जिस से अकबर ने मिर्ज़ा शरफुद्दीन को सेना दे कर जेमलजी के साथ भेजा। जेमलजी मिरजा के साथ मेड़ता पर आये। देवीदास ने रावजी को कहला भेजा कि जेमलजी बादशाही सेना ले कर मेड़ता पर आते है सो यदि मुझे बुलाना हो तो अभी आ जाऊँ अन्यथा सेना के आ पहुँचने पर मै नही आऊंगा। रावजी ने इस का कुछ प्रत्युत्तर नही दिया। थोड़े अर्से के बाद बादशाही सेना मेड़ते पर आ गई और मालकोट को घेर लिया। रावजी को इस की खबर लगी तब उन्होंने कुमार चन्द्रसेण को सेना दे कर भेजा। किन्तु वह बादशाही सेना का बलाधिक्य देख कर लड़ना नही चाहता था। और उस ने देवीदास

को जोधपुर चलने का कहा। देवीदास ने इन्कार कर दिया। तब चन्द्रसेण जी तो पीछे जोधपुर आ गये और देवीदास अपने राजपूतों के साथ युद्ध करने को सन्नद्ध हो गया। कई दिन लड़ाई होती रही। अन्त में बादशाही सेना ने एक सुरंग लगा कर मालकोट का एक भाग गिरा दिया और बादशाही सेना अन्दर घुस गई। राठौड सेना किले में से निकल गई। मिरजा ने उस का पीछा किया। गांव सोगा वास और मेड़ते के बीच इन की मुठभेड हुई जिस में देवीदास काम आया। बादशाह का मेड़ता पर अधिकार हो गया। तबकात अकबरी मे इस युद्ध का वर्णन कुछ फेर-फार के साथ मिलता है।

मेड़ते में मुगलों का अधिकार हो जाने पर रावजी ने फिर मेडते पर सेना नहीं भेजा। क्योंकि बादशाह अकबर का प्रताप उस समय बहुत बढ़ गया था, अकबर ने अजमेर का सूबा कायम करके परबत सर, मेड़ता, जेतारण के परगनों में अपना अधिकार कर रखा था।

अकबर बादशाह ने चीतोड़ का किला विजय किया तब राठौड जयमल महाराणा की ओर से किले का अध्यक्ष था और वह बड़ी बहादुरी से लड़ कर बादशाह के हाथ से मारा गया था जिस से बादशाह ने उस के चिरस्मरणार्थ उस की हाथी पर मूर्ति बनवा कर आगरे के किले के द्वार पर स्थापित की थी।

राव मालदेवजी ने निम्न नवीन दुर्ग आदि का निर्माण कराया और प्राचीन दुर्ग आदि का पुनरुद्धार तथा परिमार्जन कराया—

१ जोधपुर के किले को विस्तृत बनाया

२ रानीसर तालाब का कोट बनवाया

३ शहर का प्राकार निर्माण कराया

४ झरने का प्रकार कराया

ऊपर के कमठे में ९ नौ लाख फदिये खर्च हुए।

५ पोहकरण का नवीन कोट १६०८ में कराया

६ मेड़ते का मालकोट १६१४ मे आरम्भ हो कर १६१६ में संपूर्ण हुआ।

७ सोझत का कोट पुरानी भित्ति पर बनवाया गया।

८ रायपुर में पहाड़ पर मालगढ़ का निर्माण

९ सिवाना के समीप कोट पीपलोद के पहाड में मालकोट का निर्माण

१० गूंदोच में कोटड़ी

११ भाद्राजण का प्राचार

१२ रोयां का कोट

१३ सिवाना का कोट
१४ पीपाड की कोटड़ी
१५ नाडोल का प्राकार
१६ सिवाने के समीप कुण्डल में कोट
१७ फलोधी का कोट
१८ धूनाडा में कोटड़ी
१९ नागौर के कोट का जीर्णोद्धार
२० अजमेर के किले पर बींटली कोट, बुर्ज और जल यन्त्र
२१ चाटसू का कोट
२२ बीकानेर का कोट

रावजी की झाली रानी स्वरूपदेवी ने अपने नाम से स्वरूप सागर तालाब कराया जो अब बहूजी का तालाब कहलाता है और कागा से मण्डोर जाते वाम पार्श्व में प्राकार के बाहिर स्थित है।

राव मालदेवजी का स्वर्गवास संवत् १६१९ कार्तिक सुदि १२ शनिवार को मध्याह्न के समय हुआ। उस समय उन के पुत्र चन्द्र-सेणजी सिवाना में था। खबर मिलते ही वे दूसरे दिन जोधपुर पहुंचे और उसी दिन (सुदि १३) मण्डोवर जा कर अपने पिता की और्ध्व-देहिक क्रिया की।

रावजी के २५ रानियाँ थी जिन मे से १० उन के पीछे सती हुईं जिन में रूठी रानी ऊमादे भी शामिल थी। रावजी के २२ पुत्र थे जिन से नीचे लिखी शाखाएँ फटी :—

१ राव रामसिंह—इस का वृत्तान्त ऊपर लिखा जा चुका है।
२ मोटा राजा उदयसिंह—जोधपुर के राजा हुए
३ राव चन्द्रसेण—इन का इतिहास आगे आवेगा
४ रतनसिंह से रतनसिहोत जोधा जिन के भाद्राजन आदि १२ ठिकाने हैं।
५ भोजराज से भोजराजोत—इन का भागासणी गाँव है
६ रायमल से ३ शाखाएँ फटीः—

(अ) केसरीसिंघोत—के लाडणू आदि ६४ ठिकाने हैं
(आ) अभैराजोत—के नींबी आदि ११ ठिकाने हैं
(इ) विहारीदासोत—के रोईसी आदि २ ठिकाने हैं

७ भाण से भाणोत जोधा
८ विक्रमादित्य से विक्रमायत
९ भासकरण
१० गोपालदास
११ जसवंतसिंह

१२ महेशदास से महेशदासोत—केलाणा आदि १३ ठिकाने हैं
१३ तिलोकसी के तिलोकसीयोत—रावरिया व लूणावा २ ठिकाने
१४ पृथ्वीराज
१५ डूंगरसी के डूंगरोत जोधा
१६ जेमल—इस का वृत्तान्त मेडता के प्रकरण मे ऊपर लिखा गया है
१७ नेतसी
१८ लिखमीदास
१९ रूपसी
२० तेजसी
२१ ठाकुरसी
२२ कल्याणदास

रावजी ने सेवड, पुरोहित, आचारज, श्रीमाली ब्राह्मण, चारण आदिकों को २२ गॉव शासन मे दिये थे।

राव मालदेवजी के समकालीन बादशाह और राजाओं का विवरण—

दिल्ली के बादशाह

१ हुमायूँ संवत् १५८७
२ शेरशाह सूर १५९७
३ सलीमशाह १६०२
४ महमदशाह १६०५
५ सिकंदरशाह
६ हुमायू दुबारा १६११
७ जलालुद्दीन महम्मद अकबर १६१२

गुजरात के बादशाह

१ मुजफ्फरशाह सुलतान महम्मद १५६८
२ सिकदरशाह १५८२
३ महम्मदशाह १५९१
४ बहादुरशाह १५९१
५ सुलतानमहम्मद १५९४
६ सुलतान अहमद १६११
७ सुलतान मुजफ्फर १६१८

सिंध के बादशाह

१ शाह बेग् औरंग १५७८
२ हुसेनशाह १५८१

३ मिरजा असतारखां १६१२

४ मिरजा बाकी १६१४

मुलतान का बादशाह

१ शाहहुसेन १५८१

चीतौड़ के महाराणा

१ महाराणा सांगा १५६५–१५८६

२ „ रतनसिह १५८६–१५८६

३ „ विक्रमादित्य १५८६–१५६३

४ „ उदयसिंह १५६७–१६२८

जयपुर के महाराजा

१ राजा पुरणमलजी १५८४–१५६०

२ „ भीमसिहजी १५६०–१५६३

३ „ रतनसिंहजी १५६३–१६०४

४ „ भारमलजी १६०४–१६३०

जैसलमेर के रावलजी

१ रावल लूणकरणजी १५८६-१६०७

२ „ मालदेवजी १६०७-१६१८

सीरोही के महाराव

१ महाराव अखैराज १५८०-१५६०

२ „ रायसिह १५६०-१६००

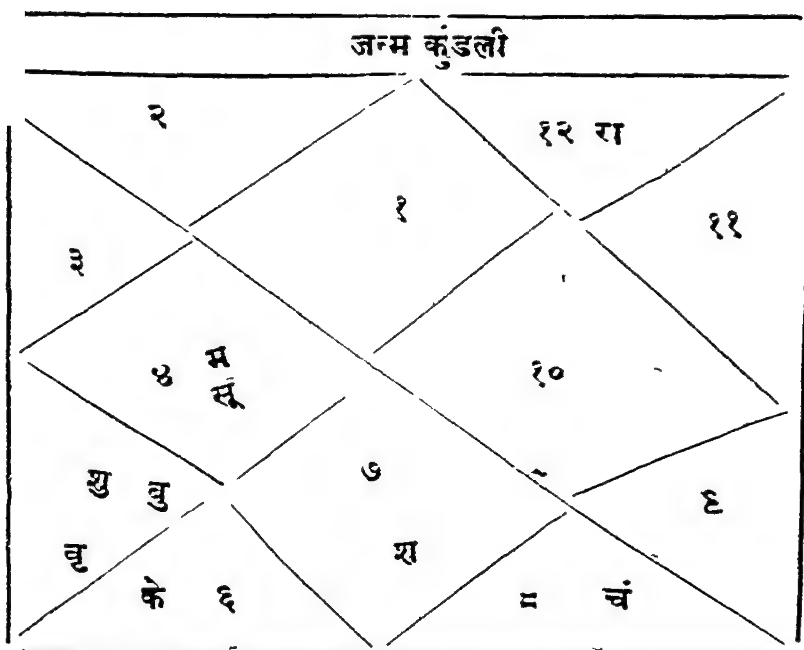
३ „ दूदा १६००-१६१०

४ „ उदयसिंह १६१०-१६१६

२० राव चंद्रसेणजी—राव चंद्रसेणजी का जन्म जोधपुर के राठौड़ राजा राव मालदेवजी की झाली रानी के उदर से संवत् १५६८ श्रावण वदि ८ शुक्रवार को हुआ और राज्याभिषेक संवत् १६१६ मार्गशीर्ष वदि प्रतिपदा १ और स्वर्गवास संवत् १६३७ माघ शुक्ला सप्तमी को सोझत के गांव सारण और सिचियावास के समीप उपत्यका में हुआ था।

राव मालदेवजी झाली रानी से अत्यन्त प्रेम करते थे। और वह अपने ज्येष्ठ पुत्र उदयसिहजी के व्यवहार से अप्रसन्न रह कर छोटे पुत्र चद्रसेणजी से अत्यन्त प्यार करती थी। इसलिए मालदेवजी ने

उस के ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंहजी को राज्य से वञ्चित रख कर अपनी परम वल्लभा रानी के छोटे पुत्र चन्द्रसेण को अपना उत्तराधिकारी किया। इन के जन्म समय का ग्रहचक्र इस प्रकार है। जिस के साथ संवत् आदि का भी निदर्शन किया गया[१] है।



राव मालदेवजी ने संवत् १६०० में कार्तिक वदि प्रतिपदा १ के दिन महाराज कुमार चन्द्रसेण को गांव बीसलपुर और सिवाना जागीर में दिया था। राव मालदेवजी का स्वर्गवास जोधपुर में हुआ उस समय चंद्रसेणजी सिवाने में थे। चन्द्रसेणजी को रावजी के स्वर्गवास होने की ख़बर होते ही वे वहां से रवाना हो कर तुरन्त जोधपुर आए और मार्गशीर्ष वदि प्रतिपदा १ को राव चंद्रसेणजी सिंहासनारूढ़ हो कर मारवाड़ के स्वामी हुए।

लिख आए हैं कि राव मालदेवजी के ज्येष्ठ पुत्र राव राम थे, परन्तु वे सापत्न माता उमादे के साथ मेवाड़ में गांव केलावे चले गये थे जिस से वे राज्य से वञ्चित रहे। और उन से छोटे महाराज कुमार उदयसिंहजी थे वे पिता की आज्ञा पालन में त्रुटि किया करते थे, पिता की इच्छा के अनुकूल नहीं चलते थे जिस से राव मालदेवजी ने उन्हें फलोधी का परगना दे कर पश्चिम की ओर भेज दिया था। और चन्द्रसेण सिवाणा में थे वहां से जोधपुर आए। इधर उन की माता झाली रानी पति के साथ गमन करने की तैयारी कर रही थी।

१ "संवत् १५९८ रा शाके १४६३ रा श्रावण वदि ८ शुक्रे इष्टम् ४२। ४४ सूर्य ३।२६ लग्न ०।१९ समये रावजी श्री चंद्रसेणजी जन्म"।

चंद्रसेणजी ने हाथ जोड़ कर माता से प्रार्थना की कि माता! आप तो अपने प्राण प्यारे के साथ गमन करती हो, जिस से स्वर्ग सुख का अनुभव करोगी, परन्तु मुझे दुःख में क्यों डाले जाती हो, आप मेरा उद्धार करके फिर स्वर्ग को सिधारें। मेरी प्रार्थना यह कि आप मुझे सिंहासनारूढ़ करके फिर पति सहगमन करें, पुत्र का स्नेह ऐसा ही होता है। पति वियोग के दुःख को सहन करके भी झाली रानी ने पुत्र स्नेह से शरीर को कुछ समय के लिए धारण किया और सरदारों से कहा कि आप को रावजी ने आज्ञा की थी कि मेरे पीछे मेरा उत्तराधिकारी चंद्रसेण किया जाय, वह समय आ उपस्थित हुआ है; अब आप का कर्तव्य है कि अपने स्वामी के वचन का प्रतिपालन करके उन की इच्छानुसार कार्य करें। रानी के वचन सुन कर सरदारों ने कहा कि आप का कहना यथार्थ है, रावजी की आज्ञा ऐसी ही थी। उन की आज्ञा का पालन होगा। परन्तु जब तक इन का राज्याभिषेक का कार्य हो तब लों आप अपने इस शरीर को धारण करें। आप की विद्यमानता में किसी प्रकार का उपद्रव न हो सकेगा। सरदारों की प्रार्थना सुन कर रानी ने पुत्र प्रेम के आधीन हो कर पाँच दिन पर्यन्त शरीर को धारण किया। मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा के दिन राव चंद्रसेणजी के राज्याभिषेक का कार्य निर्विघ्न समाप्त होने पर दूसरे ही दिन रानी ने पति वियोगानल की ज्वाला से दग्ध हुए इस शरीर को भस्मसात् करके स्वर्गीय दिव्य देह को धारण कर प्रियतम के पार्श्व में पहुँच दिव्य देवलोक के भोग भोगने का अनुभव प्राप्त किया।

राव चंद्रसेणजी ने राजसिंहासन पर आरूढ हो कर अपने भाई रायमल्लजी को सिवाने की जागीर प्रदान की। राव चंद्रसेणजी बड़े वीर, साहसी और आत्माभिमानी थे, वे किसी की परतंत्रता में बँध कर रहना पसंद नहीं करते थे, एक दिन राव चंद्रसेणजी अपने एक दास पर अप्रसन्न हुए। तब वह भयभीत हो कर जेसा के पुत्र जैतमाल के डेरे पर शरणार्थी हो कर चला गया। रावजी ने अपने मनुष्य भेज कर उसे पकड़ कर रोक में रख दिया। रावजी चाहे उसे कुछ ही दंड देते, परन्तु जैतमाल ने अपना मनुष्य भेज कर कहलाया कि इस को अन्य कुछ भी दंड दिया जाय, परन्तु प्राण हरण नहीं किया जाय, रावजी ने अपने चाकर का दूसरे के पक्ष में होना अनुचित समझ कर, अन्य को भी ईदृश कार्य न करने की शिक्षा हो जाय इस अभिप्राय से उसे प्राण दंड दे दिया। इस बात से जैतमाल और कूंपावत पृथ्वीराज आदि कितने एक सरदार रावजी से अप्रसन्न हो गये। और रावजी को ऐसे उग्र कार्य की शिक्षा होने के लिये यह षड्यंत्र रचा कि राव चंद्रसेणजी के बड़े भाई राव राम के पास जो अपने पट्टे के गाँव

गूंदोच में थे, और दूसरे बड़े भाई उदैसिंहजी के पास जो फलोधी में थे, तथा सिघाने के अधिपति रायमल्ल के समीप अपने पृथक् २ मनुष्य भेजे और उन को लिखा कि आप राज्य के दायी (हकदार) हैं, आप के रहते चन्द्रसेण राज्य का स्वामी बन बैठा है, यह सर्वथा अयोग्य है, आप एक स्थान में स्थित हो कर निरुद्योग कैसे बैठे हैं? आप यदि अपना राज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो उद्योग करें, हम आप के साथ हैं। इस प्रकार उत्तेजित करने से तीनों भाई राज्य लोलुप हो कर देश में बिगाड़ करने लगे। रामसिंहजी ने तो सोझत प्रांत में लूट पाट करनी शुरू की जिस से वह प्रांत उपद्रुत हो कर अत्यन्त व्याकुल हो गया। रायमल ने दूनाड़ा के प्रांत में उपद्रव मचाया। उधर फलोधी से आ कर उदैसिहजी ने गॉव गांघाड़ी को लूटा; और गॉव बावडी व गांघाणी में कब्जा कर लिया। राव चन्द्रसेणजी को इस बात की दूतों ने आ कर सूचना की कि आप के बड़े भाई उदैसिंहजो ने गांघाणी और बावड़ी पर अधिकार कर लिया है, यह सुनते ही राव चंद्रसेणजी सेना ले कर उन को दंड देने के लिये रवाना हुए। उदैसिहजी ने गांघाणी में ठहरना उचित न समझ कर फलोधी की ओर प्रयाण कर दिया। गॉव लोहावट में जाते राव चद्रसेणजी उदैसिहजी को पहुंचे, उदैसिहजी भी राव चंद्रसेणजी को पहुंचा देख कर वहाँ डट गए। लोहावट रणभूमि का क्षेत्र हुआ दोनों सेनाओं का साक्षात्कार हुआ। इधर से राव चद्रसेणजी की सेना आगे बढ़ी, उधर से उदैसिंहजी के वीर उग्रसर हुए। घोड़े उठाये गए। दोनों में तलवार चली, भालों की भरमार हुई, मस्तक कट कट कर गेंद की भाँति आकाश में उड़ने लगे, कोई दो ढाल हो कर गिर पडता है, इस प्रकार घोर संग्राम हो रहा है। उदैसिहजी ने तोल कर जो राव चन्द्रसेणजी पर प्रहार किया उसे इन्होंने अपनी रण-कुशलता से बचा लिया, जिस से सामान्य आघात हुआ। तब राव चद्रसेणजी[1] ने कुपित हो कर ऐसा कारगर प्रहार किया कि यदि उदयसिहजी उस से न बच लेते तो जो घोड़े की दशा हुई वही उदैसिंहजी की होती, परन्तु उन्होंने भी उस प्रहार को अपने शरीर से बचा लिया, घोड़े पर प्रहार पडा, घोडा वहीं ढेर हो गया और उदैसिहजी घोड़े सहित गिर गये तब खीचीं हदा उन को उठा अपने सवारी के घोड़े पर सवार करके ले गया।

लोहावट में युद्ध होने के अनतर राव चंद्रसेणजी तो जोधपुर आए और राव उदैसिंहजी फलोधी गये। राव चंद्रसेणजी के चित्त

१ किसी इतिहास पुस्तक मे जमोल राव मेघराज के हाथ की बरछी का प्रहार होना लिखा है।

को इस मुहिम से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने फिर सेना तैयार करके फलोधी पर आक्रमण किया। उधर से राव उदैसिंहजी सन्नद्ध हो कर साम्हने आए। परस्पर बन्धु कलह में दोनों की दुर्बलता के सिवाय अन्य कोई फल नहीं है, इस बात को विचार कर विचारशील दूरदर्शी सरदारो ने राव चंद्रसेणजी को समझाया कि बड़े भाई की विद्यमानता में आप का हक्क न होने पर भी आप को जोधपुर का राज्य मिल गया है, और राव उदैसिंहजी को फलोधी का परगना राव मालदेवजी ने अपने हाथ से दिया है, इस पर आप का कोई हक्क नही है, यदि आप पिता की आज्ञा को उल्लंघन करते है तो हम को आप का पक्ष छोड़ कर दूसरे पक्ष का अ लम्ब करना पड़ेगा, और आप अपने पिता की आज्ञा का पालन करेंगे तो हम आप की सेवा तन मन से करने में तत्पर हैं। हमारी समझ मे आप पितृ आज्ञा को शिरोधार्य करके जोधपुर लौट जाइये, उधर राव उदैसिंहजी को हम समझा देंगे, वे आप के राज्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करेंगे। इस व्यवस्था में आप दोनों का श्रेय और मंगल है। सरदारों के इस प्रकार समझाने पर राव चद्रसेणजी फलोधी से पीछे जोधपुर लौट आये। इस कार्य में प्रधान निम्नलिखित सरदार थे –

१ जसवंतसिंह डूंगरसिंहोत   १ रावल मेघराज जसोल का   १ राठौड़ जैतमाल जैतावत
१ राठौड़ पतो जगा का पुत्र   १ पृथ्वीराज कूंपावत   १ सोनिगरा रामसिंह
१ राठौड़ तिलोकसी कूंपावत

राव रामसिंहजी देश निर्वासन की आज्ञा होने पर मारवाड़ में ठहरना कठिन समझ कर महाराणा उदयसिंहजी के पास चले गये थे। परन्तु राव मालदेवजी के स्वर्गवासी होने पर महाराणा की मदद ले कर मारवाड में आए। और अपने पटे के गाँव गूंदोच में ठहरे। और वहाँ से चल कर गाँव धणला आदि लूट कर उपद्रव करने लगे। तब इधर से राव चद्रसेणजी ने उन के समुख प्रयाण किया। नाडोल मे दोनों की मुठभेड हो गई, वहाँ दोनों मे युद्ध हुआ। राव चद्रसेण जी की विजय हुई और राव रामसिंहजी पराजित हो कर अपने पट्टे मे चले गए। तत्पश्चात् राव रामसिहजी सवत १६२० मे ज्येष्ठ सुदि १२ को जोधपुर आए और यहाँ एक दिन ठहर कर बादशाह अकबर के पास चले गए। बादशाह से अपना समस्त वृत्तान्त निवेदन करके अपनी दुःख कहानी कही। उन्होंने कहा कि मै राव मालदेवजी का ज्येष्ठ पुत्र हूँ राज्य का अधिकारी हूँ, परन्तु राव चन्द्रसेण की माता की शिफारिस से यह बड़ा भारी अन्याय हुआ है। मेरी विद्यमानता मे राव चंद्रसेण राज्य का अधिकारी किसी प्रकार से नही है। मैं अपना दाय प्राप्त करने के लिये आप की शरण में आया हूँ। आप

सम्राट् हैं, अन्यायी को दंड और न्यायमार्गानुसारी पुरुष की रक्षा करना आप का धर्म है, ईश्वर ने भारतवर्ष की रक्षा का भार आप के हाथ में दिया है इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप न्याय पक्ष का अवलंबन करके मेरा हक मुझे दिलावेंगे।

बादशाह अकबर को अपने पिता के परम वैरी राव मालदेवजी के राज्य को ध्वंस करने का यह उत्तम अवसर मिला। राव मालदेवजी के राज्य को छेदन करने के लिये राव रामकुठार हो गया है। बादशाह ने उस की सहायता करके जोधपुर का राज्य दिलाने के लिये अपने सेनापति हुसेन कुली को बड़ी सेना दे कर रवाना किया। उस ने जोधपुर आ कर नगर को घेर लिया। कई दिनों तक लड़ाइयाँ होती रहीं। अन्त में राव चंद्रसेणजी ने राव राम को सोझत देना स्वीकार करके बादशाही सेनापति के साथ सन्धि करके हुसेन कुली को पीछे लौटा दिया[1]। सन्धि के समय फ़ौज ख़र्च के रुपये चार लाख देने ठहरे, परन्तु रावजी के पास रुपये कहाँ थे? रुपयों की एवज़ में पाँच मनुष्य ओल[2] में दिये गये।

१ पंचोली भांणो | १ पचोली गोविन्द

१ मूतो उरजन | १ भंडारी नैतसी

१ ऊहड जैमल कोरणे का ओल में दिया गया था, परन्तु वह राव चंद्रसेणजी के कहने से उन के पास ही रक्खा गया। पंचोली भांणा नागोर के किले में से भाग गया, अवशिष्ट तीन जन वहीं रहे।

यद्यपि राव राम के साथ राव चंद्रसेणजी के सन्धि हो चुकी थी परन्तु उस का यथावत् पालन न होने से संवत् १६२१ में राव राम फिर बादशाह अकबर के पास गए और बादशाह से निवेदन किया कि आप ने कृपा करके मेरी सहायता में हुसेन कुली को सेना दे कर भेजा था और उस समय राव चंद्रसेण ने सोझत का परगना देना स्वीकार करके सन्धि भी कर ली थी, परन्तु वह अपने नियम पर दृढ नहीं है, उस ने नियम का उल्लंघन करके आज्ञा भंग किया है इसलिये वह अवश्य दंडनीय है, यह सुन कर बादशाह ने कुपित हो कर हुसेन कुली को कहा कि तुम राव राम के साथ जा कर राव माल-

---

१ इस समय राव चन्द्रसेणजी के अधिकार में ४ परगने रहे—१ जोधपुर १ जैतारण १ पोहकरण १ सिवाणो।

२ रुपयों की एवज में प्रतिष्ठित पुरुष सौंप दिये जाते हैं उसे ओल में देना कहते हैं। जब रुपये वसूल हो जाते हैं तब वे मनुष्य अपने स्वामी के पास आ जाते हैं। रुपये वसूल होवे तब तक वे मनुष्य शत्रु की सेवा में रह कर उस की आज्ञा पालन करते हैं।

देव के पुत्र राव चन्द्रसेण को जोधपुर के किले में से निकाल दो और राव राम के लिये जो नियत हुआ उस का प्रबन्ध करो। बादशाह की आज्ञा पा कर राव राम को अपने साथ में ले कर हुसेन कुली मारवाड़ की ओर चला। उस के साथ मुदफ्फ़र खान भी था। ये बादशाह के पास से रवाना हो कर संवत् १६२१ चैत्र सुदि १२ को जोधपुर पहुँचे और राव चन्द्रसेणजी को कहलाया कि बादशाह का हुक्म है कि तुम किला छोड़ कर चले जाओ, इस से तुम्हारी प्राणरक्षा हो सकती है, अन्यथा मारे जाओगे। राव चन्द्रसेण ऐसी विभीषिकाओं से भयभीत होने वाले नहीं थे, उन्होंने प्रत्युत्तर से कहलाया कि मुझे किला बादशाह ने नहीं दिया है, यह किला मेरा पितृपरंपरागत है, इस पर बादशाह क्या माँगते हैं? और हुक्म देने वाले कौन हैं? इस प्रकार का प्रत्युत्तर आने पर हुशेन कुली ने जोधपुर को घेर लिया; खान पान की वस्तु किले में जाने का प्रतिषेध कर दिया; और शहर को लूट लिया, और किले को घेर कर तोपों से उसे उड़ाने का यत्न किया। राव चन्द्रसेणजी किले में बैठे लड़ रहे हैं, हुशेन कुली बाहिर से किले का ध्वंस कर रहा है, इस तरह लड़ते २ दो मास हो गये परन्तु किला टूटने का कोई उपाय दृष्टिगोचर नही हुआ। यवन सेनापति ने इधर उधर से तलाश करके किले में प्रवेश करने का एक मार्ग सुगम जान कर सवत् १६२१ ज्येष्ठ सुदि ३ को राणीसर तालाव की ओर हल्ला किया। उस को राव चन्द्रसेणजी ने रोका जिस में उन के निम्नलिखित मनुष्य घायल हुएः—

।जीतसिंह गाँव सेखाले का

१ राठाड़ ...नदास दुरजन सालोत

निम्नलिखित इस स्थान पर उपस्थित थे :—

१ गोगादे वीरमदे गाँव टोवड़ी (सेरगढ़) १ गोगादे रावत भीमसिंह गाँव खिरजाँ (सेरगढ़)
१ गोगादे महेशराज गाँव तैना (सेरगढ़) १ गोगादे उगमसिंह गाँव गड़ो (सेरगढ़)

अब न तो कोई किले के अन्दर जा सकता है और न कोई बाहिर आ सकता है। इस तरह लड़ते २ बहुत समय हो गया है, किले के अंदर भोज्य पदार्थ का सर्वथा अभाव है, परन्तु राणीसर तालाव किले के अन्दर होने से जल का कष्ट नहीं है, परन्तु केवल जल से निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिये सोनगरा मानसिंह और कूंपावत तिलोकसी ने राव चन्द्रसेणजी से प्रार्थना की कि राजपूत का लड़ कर मरना तो उचित है, परन्तु क्षुधा से व्याकुल हो कर मरना उचित नहीं, और अन्य किसी प्रकार से करगत होना अशक्य है। इसलिये हमारी समझ में यहाँ से निकल जाना ही उचित है।

और राव चन्द्रसेणजी ने भी अन्नाभाव के कारण उन की बात मान ली, रावजी ने किले से निकलते समय निम्नलिखित सुभटों को किले में रख दिया था :—

१ भाटी गांगो नीबावत। १ भाटी जैमल आसावत। १ भाटी आसो जोधावत।
१ राठौड वैरसल पातलोत। १ राठौड़ रांणा वीरम। १ राठौड गांगो सूजावत।
१ राठौड़ विजो वीर राजोत। १ ईंदो रासो जोगावत। १ ईंदो रणधीर मेवावत।
१ ईंदो सूजो वरजांगोत। १ ईंदो जोगो आसावत।

और संवत् १६२२ मार्गशीर्ष वदि १२ को किले से निकल कर सपरिजन भाद्राजण चले गये। किला खाली हो जाने पर हुशेन कुली ने जा कर बादशाही अधिकार कर लिया। हुशेन कुली ने किले में प्रवेश किया उस समय किले में कुछ मनुष्य विद्यमान थे उन्होंने शत्रु को किले में प्रविष्ट होता देख कर उस का साम्हना किया और लड कर काम आये तथा घायल हुए; जिन में प्रधान ये थेः—

राठौड़ किसनदास दुरजनसाल का पुत्र मारा गया पहले यह स० १६२१ में राणीसर पर के हल्ले में घायल हुआ था।

निम्नलिखित घायल हुएः—

१ करमसोत नेतसिंह, गॉव जाखणियो * (फलोधी)
१ नायक खेतसी
१ कान्हसिह गागरिया राठौड़ गॉव भीचरलाई (जोधपुर)
१ मांडण " " " (")
१ महेशदास जोधा गॉव पाटोदी (पचपदरा)
१ कल्याणसिंह मेड़तिया बावडलो † (मेडता)

बादशाही सेना के ३०० मनुष्य मारे गये जिन में एक सरदार दाऊद अलावक्त का बेटा नामी आदमी था। वह चौहान था। मुसलमान हो गया था। उस के साथ उस के चार मनुष्य मरेः—

राव चन्द्रसेणजी किले से निकले उन के साथ निम्नलिखित सरदार थेः—

१ सोनगरा जसवन्तसिंह मानसिंह का पुत्र १ कूंपावत पृथ्वीराज
१ राठौड जैतमाल जैसा का पुत्र १ चदा वीरमदेव का पुत्र

---

* इन के वंशज पदमसिंह को महाराज अजीतसिंहजी ने संवत् १७६६ में जाखणियो इनायत किया।

† इन के वंशज भगवानदास को इसी बंदगी से राव चन्द्रसेणजी ने संवत् १६२२ में बांवडला इनायत किया।

* रावजी ने अपना स्थायी स्थान भाद्राजण नियत कर रक्खा था ; वहाँ से वे किसी प्रयोजन से, मुख्य प्रयोजन सेना संग्रह करना ही जाना जाता है, मूँडाड़ा, सीरोही, डूंगरपुर और वाँसवाड़े की तर्फ भ्रमण करके पीछे भाद्राजण आए।

संवत् १६२४ में वादशाह अकवर ने मेवाड़ देश के प्रसिद्ध चित्तौड़ दुर्ग पर आक्रमण किया। उस का कारण यह वतलाया जाता है कि वादशाह मालवा देश को विजय करने में प्रवृत्त हुए थे उस समय महाराणा संग्रामसिंहजी के पुत्र उदयसिंहजी ने मालवा के अधिपति वाज वहादुर की सहायता की और जौनपुर के विद्रोहियों के भी प्रकट रूप से सहायक हुए, तथापि वादशाह ने उन के साथ मित्रता स्थापन करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु महाराणा ने अस्वीकार किया—

चित्तौड़ का किला वनास नदी के किनारे पर ५०० फ़ीट ऊँचा एक वड़ा पर्वत है। इस किले के विषय में जन श्रुति है "गढ़ तो एक चीतौड़गढ़ और सव गढ़इयां" उस में कई देवालय और राजमहल हैं। और महाराणा कुंभा का निर्माण कराया हुआ एक अति सुन्दर १२० फ़ीट ऊँचा विजय स्तम्भ है। उस में एक प्रशस्ति खुदी हुई है

---

* पारसी इतिहास पुस्तकों में यह वृत्तान्त इस प्रकार लिखा मिलता है। साल ८ जलूस हि० सन् ६७१ (वि० सं० १६२०) "इस साल में अजमेर, नागोर, जालोर, और मेड़ता आदि का जागीरदार शर्फुद्दीन विरुद्ध हो गया था, वादशाह ने उस की जागीरें हुशेनकुलीवेग को इनायत करके उस पर रवाना किया। उसने अजमेर, मेड़ता और जालोर आदि विजय करके मिरज़ा को भगा दिया। जव वादशाही अमीरों को मिरज़ा की तर्फ से संतोष हो गया तो जोधपुर का किला विजय करने की इच्छा हुई। जो उस देश के समस्त दुर्गों से अधिक दृढ़ है।

राव मालदेव जो इज़्ज़त, फ़ौज और खानदान में हिन्दुस्तान के वड़े २ राजों में प्रथम कक्षा का समझा जाता था इस किले का स्वामी था और इसी में रहता था, उस की मृत्यु के अनन्तर उस का छोटा वेटा चन्द्रसेन गद्दी वैठ कर इस किले और देश का स्वामी हुआ और इस किले मे रहने लगा। जव हुशेनकुलीवेग और वादशाही सेना ने आ कर किले को घेरा तो राव मालदेव का वड़ा वेटा राव राम आ कर शामिल हो गया, अमीरों ने उस को वादशाह के हुजूर मे भेज दिया और उस ने वहाँ पहुँच कर वादशाह की कृपा से इज़्ज़त पाई।

वादशाह ने मुईउद्दीन अहमदखाँ, मुजफ्फर मुगल और दूसरे सरदारों को फ़ौज के साथ हुशेनकुलीवेग की मदद पर जोधपुर भेजा और जोधपुर का किला थोड़े अर्से में विजय हो गया।

जिस में महाराणा कुंभा के पूर्वजों सहित महाराणा कुंभा के विजय का वर्णन है।

महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड़ त्याग कर निवास के लिये अपने नाम से उदयपुर नामक नगर बसाया और अधिकतर वहीं निवास करने लगे। राव मालदेवजी के इतिहास में लिख आए हैं कि राठौड जैमलजी मेड़तिया वीरमदेव के पुत्र मेड़ता छूट जाने पर महाराणा उदयसिंहजी के पास चले गए थे। महाराणा ने उस के बल, पराक्रम, धैर्य और शौर्य आदि गुणों से मुग्ध हो कर अपना सेनापति नियत किया था, और किले का अध्यक्ष बना दिया था, इसी लिये जैमलजी शाश्वत चित्तौड़ के किले में ही निवास करते थे और महाराणा उदयसिंहजी कभी उदयपुर और कभी गोघूंदा में निवास करते थे। जिस समय अकबर ने किले को घेरा उस समय महाराणा गोघूंदा स्थान में थे। राठौड़ जैमलजी चीतौड़ के किले में अध्यक्षता के पद पर नियुक्त हो कर किले के संरक्षण का कार्य करते थे।

बादशाह ने चित्तौड़ के पर्वत की प्रदक्षिणा करके उस की अवस्था से अवगत हो कर अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त करके घेरा दिया। बादशाह ने एक स्थान का कार्यभार अपने ऊपर लिया, राजा पत्रदास आदि उस के सहकारी नियुक्त हुए। परन्तु कार्य प्रणाली का निरीक्षण स्वयं करने लगे। राजा भगवानदास, राजा टोडरमल आदि चित्तौड़ के पतन में प्रवृत्त हुए।

बड़े २ ढोल बनवाये गए, गोला लगने से नष्ट न हो जायँ इस लिये उन के भीतर मिट्टी भर दी गई ऊपर भैंस के चमड़े मढ़े गए। उन की आड़ में रह कर क्रम से उन को लुढ़काते हुए सुरंग खोदने वाले सुरग खोद खोद कर किले के समीप पहुँचने लगे। सुरंग का ऊपरी भाग खुला हुआ और इतना विस्तृत था कि उस के भीतर १० सवार एक साथ जा सकते थे। इस सुरंग के खोदने में पाँच हज़ार मनुष्य लगाये गए थे। किले के भीतर के लोक महावीर राठौड़ जैमलजी और सीसोदिया पत्ताजी की अध्यक्षता में रह कर महापराक्रम से मुगल सेना को नष्ट करने लगे। सुरग खोदने वाले मनुष्यों में से प्रायः प्रतिदिन दो सौ मनुष्य मरने लगे।

एक बार किले के एक स्थान से निरन्तर गोला गोली मुगल सेना में पड़ कर असख्य सेना को निहत करने लगे। बादशाह को इस बात की खबर होते ही उस विपद् के मध्य में पहुँचे। वह उस का उपाय सोचते थे इतने में एक गोला उन के अति निकट आ कर गिरा, और उस ने २० सैनिकों को निहत किया। एक समय बादशाह और सेनापति इकट्ठे खड़े थे, अकस्मात् शत्रुओं की गोली से सेनापति

घायल हुआ। एक दिन एक राजपूत किले की दीवार पर खड़ा हुआ गोलियों से मुगल सेना को नष्ट कर रहा था बादशाह ने अमोघ सन्धान से ऐसी गोली मारी कि वह प्राकार से नीचे गिरा। राजा टोडरमल, राजा पत्रदास और राजा भगवानदास आदि असाधारण परिश्रम से कार्य करने लगे।

तीन सप्ताह के अविराम परिश्रम से सुरंग तैयार हो गई। उस के दोनों ओर किले के कोट के नीचे दो बड़े२ खड्डे तैयार करके उन में बारूद भरी गई। दोनों खड्डों को एक साथ विदीर्ण करने के लिये एक फलीते द्वारा आग लगा देने की आज्ञा दी गई, परन्तु कर्मचारी ने बादशाह का आशय नहीं समझ कर दो फलीते अलग अलग लगाये। एक सुरंग तो नियत समय पर भीषण शब्द करके फट गई, उस के साथ ही कोट का कुछ भाग टूट गया। उस राह से साहसी राजपूत और मुगलों ने किले पर आक्रमण किया। महासाहसी राठौड़ जैमल और सीसोदिया पत्ता ७००० सात सहस्र सेना सहित किले की रक्षा में प्रवृत्त हुए। भयंकर युद्ध का आरभ हो गया। राजपूत-गण स्वदेश रक्षा के लिये अतुलनीय वीरत्व प्रदर्शन करने लगे। मुगल सेना के लोग कभी एक पद पीछे हट जाते थे और कभी अधिक वेग और अधिक पराक्रम से राजपूत सेना के ऊपर आक्रमण करते थे। इस प्रकार परस्पर युद्ध हो रहा था इतने में दूसरे खड्डे की सुरंग फटी जिस से बहुत सी राजपूत और मुगल सेना का क्षय हुआ।

चैत्र मास आ गया है दोनों ओर से युद्ध अविरत हो रहा है। बादशाह एक ऊँचे मंच पर बैठ कर शत्रुगण का कार्य देखते हुए अपनी सेना का कार्य सञ्चालन कर रहे है। उन्होंने देखा कि शत्रु सेना में एक पुरुष जिरह पहने बड़े साहस से सैन्य परिचालन कर रहा है। इसी समय अकबर ने अपनी संग्राम नामक बंदूक का उसे निशाना बना कर गोली चलाई। उस गोली के लगने से वह पुरुष गिर पड़ा; जो राठौड़ जैमल था। उस के गिरने से किले में हाहाकार मच गया। जैमलजी के विषय में यह प्राचीन गीत है:—

चवै राव जैमल चीतोड़ मत चल़ चल़ै, हटाऊँ अरीदल न दूं हाथैं।
ताहरै कमल़ न चढै पग ताइयां; मांहरै कमल़ जो खवां माथे॥ १॥

धड़क मत चित्रगढ़ माल इम धीरपै, गूंड ग़ोरी इल़ा करूँ गजगाह।
भुजा सूं मूज जुध कमल़ कमल़ां भिलै, पलै तो कमल़ पग दिये पतसाह॥२॥

दूदं कुल़ आभरण वयण इम दाखवे, धीर मन धरै मत करै धोखो।
प्रचारे रोद मो सीस पड़ियां पलै, जांणजे ताहरै सीस जोखो॥ ३॥

साथ आगे कियां वार रौ सीगलो, हांम चित पूरवै कोड़ हतवाह ।
पुर अमर कमॅध जैमल पाधारियौ, पछै पाधारियौ कोट पतसाह ॥ ४ ॥

जैमलजी के निहत होने से समस्त राजपूतों की आशा निराशा हो गई । और लड़ कर मरने का निश्चय कर प्रथम जौंहर करने की तैयारी की । जौंहर करना आत्मोत्सर्ग व्रत है । यह केवल हिन्दुओं में ही संभव है ।

पृथ्वी के वहुत से अंशों के वहुत से वीरों की वीर गाथाएँ पढ़ी हैं, परन्तु ऐसे भीषण, लोम हर्षण व्रत का ज़िक्र और कहीं भी नहीं पढा । वोध होता है कि भारतवर्ष के अतिरिक्त और कही, कवि की कल्पना में भी ऐसे भयकर व्रत की सृष्टि संभव नही है । जो जाति साहस में अतुलनीय है, सन्मान ज्ञान में दीक्षित है, स्वाधीनता रक्षा में दृढ सङ्कल्प है, केवल उसी जाति में इस भीषण व्रत का होना संभव है । जिस समय अकवर की वन्दूक से राजपूत कुल का सूर्य राठौड़ जैमल निहत हुआ उस समय राजपूतों ने समझ लिया कि अव हमारे जीतने की आशा नही है । यह समझ कर उन्होंने निश्चय किया कि पराजित जीवन से ।क्या लाभ है ? स्वाधीनताहीन जीवित रहने में क्या सुख है ? उस समय उन्होंने आत्मोत्सर्ग के लिये उक्त महावृत धारण किया । भीषण अग्निकुंडों की एक श्रेणी प्रज्वलित की गई । अग्नि की चपल जिह्वा गगन स्पर्श करने लगी और उसी में राजपूत वालाओं के दल के दल कूद कूद कर गिरने लगे । आत्मविसर्जन के लिये एक भी पराङ्मुख नहीं हुई । अपने पास खड़ी हुई की ओर दृष्टि तक नहीं दी । इधर स्नेह वन्धन विमुक्त आशा और भयरहित राजपूतगण जीवन की ममता त्याग कर पीले वस्त्र पहन आत्मोत्सर्ग के लिये दृढ संकल्प हो गए[1] ।

---

१ अकवरनामा के जिलूस सन् १२ हि० सन् ९७५ (विक्रम संवत् १६२४) पृष्ठ २२०—२१ दफ़तर दूसरे में लिखा है कि "चीतौड़ की लड़ाई में जैमल राठौड महाराणा की तर्फ से वादशाह के साथ युद्ध करता था । एक दिन वादशाह ने देखा कि एक मनुष्य कवच धारण किये किले पर फिर रहा है और युद्ध का प्रवन्ध करता है परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि यह कौन है ? इसलिये संग्राम नामक वन्दूक हाथ में ले कर उस को लक्ष्य करके गोली चलाई । राजा भगवन्तदास को कहा कि मुझे हाथ के अदाजे से ज्ञात होता है कि गोली लक्ष्य पर लगी है, खान जहांन ने निवेदन किया कि यदि वह मनुष्य रात्रि भर प्रवन्ध के वास्ते न आवे तो जान लेना चाहिये कि वह मारा गया । एक घटे के पश्चात् जब्बारकुली दीवाना खवर लाया कि उस दराड़ की तर्फ शत्रु की सेना में से कोई नहीं रहा है । उसी अवसर में क़िले में कई स्थलों में अग्नि की ज्वालाएँ दिखाई दीं । वादशाही अमीर चकित थे । राजा भगवन्तदास ने निवेदन किया कि यह अग्नि

उसी रात्रि के अन्तिम प्रहर में बादशाह ने सैनिकों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। स्वयं एक हाथी पर सवार हो कर आगे बढ़े। मुगल सेना बड़ी सावधानता से बहुत धीरे धीरे आगे बढ़ने लगी, क्रम से किले में पहुँच गई, भीतर को बढ़ने लगी, परन्तु कोई दृष्टि-गोचर नहीं हुआ क्रम से उन लोगों ने नगर में प्रवेश किया। ज्योंही मुगल सेना नगर में घुसी त्योंही राजपूतों ने टीडियों की तरह निकल कर चारों ओर से मुगल सेना पर भीम पराक्रम से आक्रमण किया और भीषण हत्याकांड आरंभ कर दिया। साहस से उत्साहित राजपूत सेना ने मत्त हो कर मुगल सेना पर आक्रमण किया और शत्रुओं का संहार करने लगी। उन्होने कोई व्यूह रचना नहीं की और न किसी की सहायता ही चाही, केवल मार मार करके शेष में थक कर शत्रुओं के हाथ मारे गये। महाराणा के महल के साम्हने महादेव के मन्दिर के समीप रामपुरा नामक किले के दरवाजे पर भयंकर हत्याकाण्ड हुआ। मृत और मुमूर्षु लोकों से राजमार्ग बन्द हो गये। देखने से प्रतीत होता था कि यह लोग रक्त वस्त्र ओढ़े पड़े है।

एक स्थान पर महासाहसी सीसोदिया पत्ता महापराक्रम से मुगल सेना को नष्ट कर रहा था, शत्रुओं ने उस को नष्ट करने में समर्थ न हो कर उस के ऊपर एक हाथी को बढ़ा दिया। पत्ता क्या भागने वाला था? क्या वह पीछे हटता? पत्ता उस मदोन्मत्त महापराक्रमी हाथी को हटाने के लिये उस के ऊपर झपटा, हाथी ने उसे सूंड से पकड़ कर पैर के नीचे ला कर कुचल डाला। तथापि रात्रि के शेष प्रहर से दूसरे दिन सन्ध्या पर्यन्त यह भीषण युद्ध चलता रहा। अन्त मे राजपूतों का पराक्रम रवि अस्त हो गया। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है "इस संग्राम में ८००० आठ हज़ार राजपूत सेना और ३०००० तीस हज़ार नगर के लोग थे। उन में से बहुत से मारे गए। बादशाह की सेना कितनी मारी गई उस का कुछ निश्चय नहीं है।

तदनन्तर बादशाह रणथभोर का किला विजय करके बुंदेलखड में गए; फिर क्रम से जयपुर, बीकानेर आदि के राजा बादशाही मन्सबदार हो गए। बीकानेर के राजा रायसिंह को चार हज़ार सेनापति का पद प्राप्त हुआ। राजा रायसिंह ने पीछे गुजरात, पजाब, बंगाल, बलूचिस्तान, सिन्ध और मेवाड़ में अति साहस से वीरता

जौहर (आत्मोत्सर्ग) की प्रतीत होती है। प्रातःकाल ही ख़बर आई कि बादशाह की बंदूक की गोली से किले का सर्दार जैमल मारा गया, और सीसोदियों, राठौड़ों और चौहानो के डेरों में जौहर किया गया था। फिर किला विजय हो गया और बादशाही सेना उस मे प्रविष्ट हुई।

पूर्वक बादशाह का कार्य सपादन किया। राजस्थान मे मुगल वैजयन्ती उड़ने लगी। राजस्थान को विजय कर बादशाह पीछे आगरा गए, हिन्दुओं के चित्त आकर्षित करने के लिये बादशाह ने आगरा में उन महापराक्रमी वीर पुरुष राठौड़ जैमल और सीसोदिया पत्ता के नाम चिरस्थायी रहने के अभिप्राय से स्मृति चिह्न स्थापित करने का विचार किया। प्रवल शत्रु का नाम स्थिर होने से अपनी कीर्ति विस्तृत होती है इसलिये बादशाह प्रबल शत्रु के प्रति पूर्ण सन्मान प्रदर्शित करने के लिये अग्रसर हुए। उन्होंने महानगरी आगरा राजधानी के किले मे सिंहपोल् पर पाषाण के दो वृहत् हाथियों के ऊपर महावीर राठौड़ जैमल और पत्ता की वीरत्वव्यञ्जक मनोहर मूर्तियाँ बड़े समारोह से स्थापित की।

इस के पश्चात् दिल्ली के क़िले के द्वार पर स्थापित हुई। फरासीसी वर्नियर साहब ने ईसा की सत्रहवी शताब्दी के मध्यभाग में उन के दर्शन करके लिखा है "ये दो वृहत् हाथी और उन के ऊपर दो महावीरों की मूर्तियाँ ऐसी सुन्दर है और मेरे चित्त में उन्होंने ऐसी भक्ति और विस्मय उत्पन्न किया है कि जिस का वर्णन मै कर नही सकता"।

इस समय उन दो स्मारक चिन्हों में से। केवल एक हाथी, ऊपर की मूर्ति रहित, केवल महावत को पीठ पर लिये दिल्ली के सर्व साधारण विहार उद्यान में विराजमान है।

संवत् १६२५ में राव चन्द्रसेण फाल्गुन सुदि ५ को हाड़ा सूरजमल की पुत्री के साथ पाणिग्रहण करने के लिये रणथंभोर गए। सूरजमल ने वेद विधि से कन्यादान करके यौतक में घोड़े १५, हाथी १ सुवर्ण की सामग्री सहित और एक लक्ष पॉच सहस्र रुपये दिये। विवाह करके रावजी रणथंभोर से लौट कर मारवाड में आए, और यहॉ फिर लूट पाट शुरू की। उस समय जोधपुर का प्रवन्ध बीकानेर के राव रायसिंह के आधीन था उस की सेना से रावजी के युद्ध हुआ जिस में इन की बहुत हानि हुई और युद्ध स्थल से लौट कर भाद्राजण चले गए।

संवत् १६२६ मार्गशीर्ष शुक्ला ३ को महाराणा उदयसिंहजी गॉव नयसर में हो कर जेसलमेर विवाह करने को जाते थे मार्ग में राव चन्द्रसेणजी से भेट हो गई, महाराणा ने चन्द्रसेणजी से कहा कि रावल हरराजजी की कन्या अत्यन्त रूपवती और गुणवती है, उस की ओर से हमारे पास उस का चार भी आया है इसलिये हम वहॉ विवाह के लिये जाते हैं आप भी हमारे साथ चलें। मुसलमानों

के दबाव से रावलजी ने मुसलमानों के परम वैरी उदयसिंहजी को अपनी कन्या देना अनुचित समझ कर किला और नगर के द्वार बन्द कर लिये और महाराणा को कहलाया कि आप हमारे विना बुलाए आ गये हैं, यह आप को उचित नहीं था। यदि आप को हमारी कन्या का पाणिग्रहण करना था तो आप को केवल कन्या की सूचना पर ही नहीं आना था, हमारी इच्छा होती तो हम आप के पास सबन्ध का नारियल भेजते और धूमधाम से विवाह करते। परन्तु आप यकायक आ गये इसलिये आप को पीछे ही लौटना होगा, हम कन्या नहीं देंगे। महाराणा उदयसिहजी महाराणा प्रताप के समान साहसी और स्वात्माभिमानी नहीं थे, बिना विवाह किये वहाँ से पीछे लौट गये। राव चन्द्रसेणजी उन्हीं के साथ थे। महाराणा को इस अपमान से अत्यन्त परिताप और दुःख हुआ और उस से अत्यन्त चिन्ता करने लगे तब राव चन्द्रसेणजो ने उन को बहुत समझाया और उन के साथ साथ भाद्राजण आए और वहाँ महाराणा उदयसिहजी को अपनी कन्या प्रदान की। महाराणा विवाह करके उदैपुर चले गये।

जैतमालोत शुभकरण महादेव का परम भक्त था उसे कभी २ स्वप्न में महादेवजी का दर्शन भी होता था। और इसी वास्ते लोक उस को महादेव का भक्त मान कर उस से अपने भविष्य की वार्ता भी पूछा करते थे। राव उदैसिंहजी को किसी ने यह वार्ता कही। तिसपर रावजी ने उस के पास अपना मनुष्य भेज कर कहलाया कि आप महादेव के परम भक्त हैं आप पर महादेव की कृपा है, मैं महाविपति मे हूँ, कभी मेरी भी यह आपदा दूर होवेगी और मुझे जोधपुर का राज्य मिलेगा ? शुभकरण ने उस से कहा, तुम रावजी से कह दो कि आप को जोधपुर का राज्य मिल जायगा। परन्तु मिलेगा बादशाह अकबर के द्वारा। रावजी इस बात को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और शुभकरण को अपने पास फलोधी बुला कर कहा कि मै अपने कार्य के लिए आप को बादशाह के पास भेजना चाहता हूँ आप इस बात को स्वीकार करें। आप के बिना यह कार्य होना अशक्य है, आप के हाथ से सहज में हो जायगा। क्योंकि आप के पिता पृथ्वीराज ने बादशाह हुमायूं की सेवा की थी उस बात को बादशाह अकबर जानते हैं। आप मेरे कार्य के लिए मंगल प्रयाण करिये। फिर उस को अपना वकील नियत कर बादशाह अकबर के पास भेजा। वह बादशाह के चरणो मे उपस्थित हुआ और राव उदैसिहजी का प्राथनापत्र निवेदित किया। बादशाह ने कहा कि हम अजमेर ख्वाजा की यात्रा को

जाते हैं । वहाँ से नागोर जावेंगे, वहाँ राव उदयसिंह हमारे पास आवै ।

संवत् १६२७ में बादशाह अकबर ख्वाजा की यात्रा करने के लिए अजमेर गए और ४ जमादी अखीर को अजमेर से चल कर १६ को नागोर पहुँचे वहाँ पर जलाभाव के कारण प्रजा को दुःखित देख कर बादशाह ने १ तालाब बनवाया और उस का नाम शक्कर तालाब रक्खा । बादशाह नागोर में ५० दिन ठहरे । उसी अवसर में राव उदैसिंहजी उन की सेवा मे उपस्थित हुए । और उधर बीकानेर के रावजी कल्याणमलजी[१] अपने पुत्र रायसिंहजी के साथ आए । और इधर से राव चन्द्रसेणजी और उन के भाई रायमलजी भी गये । राव चन्द्रसेणजी बादशाह से मिले और उपहार के लिए कुछ वस्तु ले गए । बादशाह ने उसे स्वीकार की और प्रसन्न हुए कि राव मालदेव का पुत्र हमारे चरणों में आ कर उपस्थित हुआ है । राव चन्द्रसेणजी के और राव उदैसिंहजी के परस्पर विरोध था । बादशाह ने दोनो को समझा कर आपस में मैत्री करवा दी । और राव चन्द्रसेणजी से कहा कि यदि तुम हमारी आधीनता स्वीकार कर लो तो तुम को तुम्हारा मारवाड का राज्य दे दिया जाय । उस में दो बातों का नियम था । एक तो घोड़ों को बादशाही अंक से अङ्कित करना और दूसरा मन्सब स्वीकार करना । परन्तु राव चन्द्रसेणजी बड़े स्वात्माभिमानी और वीर पुरुष थे । उन को परतन्त्रता में रह कर राज्य करना पसन्द नहीं था । उन्होंने उन दोनों बातों के लिए अस्वीकार किया । उस विषय का डिंगल भाषा में यह प्राचीन छंद है—

गीत साणोर

अण दगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियौ चीत ।
सारे हिंदस्थान तणै सिर, पातल ने चन्द्रसेण प्रवीत ॥ १ ॥

पमंग अदग अदग पडियालग, खरहॅड तणी न लागी खेह ।
रांण उदैसी तणौ अरेहण, राव मालदे तणौ अणरेह ॥ २ ॥

तुरिये विगत खत्रिवट त्रजडे, असपत दल रहिया अगिण ।
कलक विना कुंभेण कलोधर, वाघ कलोधर कलंक विण ॥ ३ ॥

---

१ राव कल्याणमलजी शरीर के बहुत मोटे होने से घोडे की सवारी नहीं कर सकते थे इसलिए उन को बीकानेर जाने की आज्ञा हुई । और उन के पुत्र रायसिंहजी को साथ रहने की आज्ञा दी गई । बादशाह रायसिंहजी को भुरटिया राव कहते थे । क्योंकि बीकानेर प्रान्त में भुरट जाति की घास बहुतायत से होती है और उस के कॉटे वस्त्र में लगने से पीछे कठिनता से छूटते है ।

असवां लाड साह घर असमर, दियौ न दुहुवे हीणो दाव ।
रवि सिरखो मेवाणो राणो, रवि सिरखौ जोधपुरो राव ॥ ४ ॥

इस गीत में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेण की उन के गुणों से समानता दिखाई गई है। महाराणाप्रताप ने भी परतन्त्र हो कर राज्य लेना नहीं चाहा था। जैसे महाराणाप्रताप के पीछे बादशाही सेना लगी रहती थी वैसे इन के पीछे भी बादशाही सेना हरदम लगी रहती थी। राव चन्द्रसेणजी ने बादशाह के कथन पर ध्यान नहीं दिया किन्तु वे अपने स्वाभिमानता के विचार पर आरूढ़ रहे, और परतंत्रता में रह कर राज्य करना अनुचित और मान हानिकर समझ कर नागोर से पीछे भाद्राजण चले गये। बादशाह ने इस बात से अपनी मान हानि जान कर राव चन्द्रसेण के ऊपर सेना दे कर कलाखां को भाद्राजण भेजा। उस ने जा कर भाद्राजण को घेर लिया, भीतर भोजन की सामग्री नहीं थी। रावजी खाद्य वस्तु के न होने से वहां से निकल जाना उचित समझ कर वहां से सिवाना चले गये। भाद्राजण में जो रावजी के मनुष्य थे वे कलाखां से लड़े, इस युद्ध में चॉपावत छत्रसिंह गांव जेरण [जसवन्तपुरा] का स्वामी घायल हुआ। वहां गांव लोद्राऊ (जालोर) का स्वामी चॉपावत छत्रसिंह भी विद्यमान था।

कलाखां भाद्राजण में अपना अधिकार कर वहां से सिवाने को जा रहा था ; मार्ग में गांव मेहली आया। वहां रावजी का राजपूत दासा प्रतापसिह का पुत्र रावजी की ओर से था, उस ने कलाखां पर हमला किया; राव चंद्रसेणजी भी वहां आ पहुंचे, घोर युद्ध हुआ जिस में बहुत से बादशाही सैनिक मारे गये, परन्तु सेना बहुत अधिक थी। राव चन्द्रसेणजी की सेना बहुत अल्प थी उस के क्षीण हो जाने पर राव चन्द्रसेणजी ने दश लाख रुपये फ़ौज ख़र्च के देने स्वीकार करके सन्धि कर ली। परन्तु उन के पास इतने रुपये कहां थे? रुपयों के स्थान में अपने दो मनुष्यों को ओल (एवज़) में दिया। एक तो पंचोली सारण जैता का पुत्र। और दूसरा भंडारी डांवर का पुत्र। इस युद्ध के पश्चात् थोड़े ही अर्से में तुरन्त ही कलाखां मर गया तब वे दोनों कारागार से निकल कर रावजी के निकट चले आए।

कह आए हैं कि राव उदयसिहजी बादशाह के चरणों में उपस्थित हुए थे। उन्होंने बादशाह की सेवा स्वीकार की। बादशाह ने उन को गुजरों के ठिकाने समावली नाम परगने में, जिस की आय रुपये ६००००) की थी, प्रबन्ध करने के लिये भेजा। और रावजी से

कहा कि यदि तुम इस का उत्तम प्रवन्ध करोगे और तन मन से सेवा करोगे तो तुम्हें जोधपुर का राज्य मिल जायगा।

रावजी ने वहां जा कर अमल करना चाहा परन्तु गूजर भी भीरु और कायर नहीं थे, उन्होंने साम्हना किया, रावजी ने उन को मार हटाया और बादशाह की आज्ञा प्रवृत्त की। रावजी कई वर्ष वहां रहे और वहाँ का उत्तम प्रवन्ध किया। इस मुहिम में रावजी के निम्न-लिखित सुभट मारे गए—

१ गेहलड़ो अचला धरमा का पुत्र
१ पूरविया वैस जांमणी माणकचद का पुत्र देवसेन का भाई।
१ व्यास भोजराज तेजा का पुत्र।
१ चांपावत मांडण गाँव वाकरा (जालोर)

निम्नलिखित घायल हुए—

१ जैतमाल शुभकरण गाँव पाल (जोधपुर)
१ चांपावत मांडण[1] गाँव सारासणी (नागोर)

निम्नलिखित युद्ध में उपस्थित थे—

१ जोधा रायसिंह लाडणू (नागोर)
१ चांपावत मांडण[2] गांव दोवाणदी–जालोर
१ जोधा जैतसिह गाँव लोटोती[4] (जैतारण)
१ भदावत रामसिह गांव खांवहत (सोझत)
१ रायमलोत महेशदास[3] गांव नेणाऊ (नागोर)

राव उदैसिंहजी ने समावली में निवास करके प्रवन्ध किया, वहां शोभा कोतवाल था।

वादशाह नागोर से सीरोही की तर्फ होते हुए गुजरात जा रहे थे, सीरोही के मुकाम पर उन का विचार हुआ कि एक अमीर जोधपुर मे तइनात कर दिया जावे कि जिस से उधर की सदा के लिये कोई शिकायत न आवै, और उस का यह कर्तव्य समझा जावे कि वह वहां का प्रवन्ध रखता हुआ गुज़रात के मार्ग की भी संभाल करता रहे कि जिस से गुजरात के मार्ग में सदा शान्ति रहे, किसी

---

१ इन के वंशज ठाकुर तेजसिंह को महाराज अजीतसिंहजी ने संवत् १७६३ में गांव-सारासणी इनायत किया।

२ इन के वंशज ठाकुर सुरताणसिह को महाराज वखतसिहजी ने संवत् १८०८ में गांव दोवाणदी इनायत किया।

३. इन के वंशज ठाकुर सुदरसिंह को महाराज अजैसिंहजी ने संवत् १७९२ में गांव नेणाऊ इनायत किया।

४. इन के वंशज ठाकुर जोधसिंह को महाराज वखतसिंह जी ने संवत् १८०८ में गांव लोटोती इनायत किया।

प्रकार का उपद्रव और अशान्ति न होने पावे इस कार्य पर बीकानेर के रायसिंह को रखना योग्य समझ कर बादशाह ने रायसिंह को जोधपुर में रख दिया और उस प्रदेश के समस्त अमीरों के नाम आज्ञापत्र लिख दिये गये कि जब रायसिंह किसी मुहिम पर जावे और वह जिस को बुलावे वह शीघ्र उस के पास जा कर उपस्थित हो जावे।

संवत् १६२८ में मिरजा इब्राहीम, जो बादशाह से विरुद्ध हो गया था, मेड़ते के समीप पहुंचा, उस समय एक संघ जो गुजरात से आगरे को जाता था, मेड़ते से ११ कोस पर उसे मिरजा ने लूट लिया, और वहां से वह नागोर पहुंचा, नागोर के किले में वहां का हाकिम फर्रुखखां था, उस ने किले का दृढ़ प्रबन्ध कर रक्खा था। जिस से मिरजा किले में नही घुस सका, परन्तु उस ने किले को घेर लिया, फर्रुखखां किले के अंदर घिर गया है, इब्राहीम ने किले में प्रवेश करने के लिये बहुत यत्न किया परन्तु वह सफल न होने से वह बाहिर बसने वाले गरीब आदमियों के घर लूट कर वहां से चल दिया। उस समय शहर में बहुत से धनाढ्य पुरुषों की आबादी थी, परन्तु वह किले के समीप होने से मिरजा को उन के घर लूटने का मौका नहीं मिला।

राव राम, रायसिंह और दूसरे अमीर जो दस हज़ार सवारों के साथ जोधपुर के प्रबन्ध और गुजरात के मार्ग की रक्षा के निमित्त रहते थे, उन्हें इस बात की खबर हुई कि मिरजा एक संघ को लूट कर नागोर की ओर गया है; तुरन्त ये तैयार हो कर नागोर गये। वहां से फर्रुखखां को साथ ले कर मिरजा के पीछे चले, मिरजा गांव कठोती में मुकाम किये था, जो नागोर से बीस २० कोस के अंतर पर है, बादशाही सेना को देखते हो वह वहां से भागा और दृष्टि से परे हो गया।

बादशाही सेना ने वहां तालाब पर अपना मुकाम कर दिया। अँधियारी रात्रि थी, सैनिक लोग खा पी कर निःशंक शयन करते थे; मिरजा उन पर धावा मारने का यह उत्तम अवसर समझ कर पीछे लौट आया, और अपने सैनिकों के दो विभाग कर के बादशाही सेना के दोनो ओर हो कर दोनो तर्फ़ से तीर चलाने लगा। बादशाही सेना तीरों की सनसनाहट सुनते ही उठ खड़ी हुई और अपने २ शस्त्र सँभाल कर तीरों के साम्हने तीर चलाने लगी, अन्त मे दोनों का संयोग हो गया और खूब तलवार चली; मिरजा का बल क्षीण होने लगा और उस ने देखा कि अब यहां हानि के सिवा कुछ लाभ नही है; यहां निष्प्रयोजन मर जाना नीति और बुद्धिमानी से विरुद्ध है, रणांगण को छोड़ कर भाग गया, जोधपुर वालों ने उस का पीछा किया और

उस के वहुत से मनुष्यों को मार गिराया, और १०० के अनुमान पकड़े गये उन को भी मार डाला।

संवत् १६२६ मे अख़्तियारुल् मुल्क गुजराती और मोहम्मद-हुसेन मिरजा ने वीस हज़ार २०००० सवार गुजराती पठान और राजपूत एकत्र कर के अहमदावाद की तर्फ़ आक्रमण किया, उसे ईडर के राजा ने भी सहयोग दिया था। जव ये अपनी सेना को लिये अहमदावाद के समीप पहुंचे तो कुतुवुद्दीन मोहम्मदखां और खान आजम ने जो वादशाह की ओर से अहमदावाद में हाकिम थे, किले का प्रवन्ध कर लिया। वाहिर शत्रु की सेना पड़ी है, और किले में वादशाही हाकिम घिरे हुए वैठे हैं, उन्होंने अपना वृत्तान्त लिख कर वादशाह के पास भेजा। वादशाह सुनते ही फ़तहपुर से रवाना हो कर नौ ६ दिन में अहमदावाद पहुँचे।

वादशाह ने अहमदावाद के समीप पहुँच कर खान आजम को कहलाया कि तुम घवराना मत, हम अभी शत्रुदल को दमन करते हैं, यद्यपि शत्रु की सेना वीस सहस्र के अनुमान और वादशाह के साथ केवल २००० दो हज़ार सवार थे और कुछ सेना अहमदावाद की शामिल हो गई थी। वादशाह ने शत्रु सेना पर आक्रमण किया, दोनों में विकट युद्ध हुआ; युद्ध में वादशाह की विजय हुई, वागियों का सर्दार मिरजा महम्मद हुसेन पकड़ा गया, वादशाह ने उस को राय-सिंह के सुपुर्द किया, मिरजा के पकड़े जाने पर उस के साथी निरुत्साह हो कर भाग गये। इसी अवसर में अख़्त्यारुल् मुल्क गुज-राती सेना को ले कर प्रकट में आया, और वादशाही सेना पर आक्रमण किया परन्तु वादशाही सेना ने उसे आता देख कर साम्हने प्रयाण किया, दोनों में युद्ध हुआ, जिस में वादशाही सेना का वल बढ़ जाने पर वह वहां से पड़ भागा, परन्तु वादशाही सेना ने उस का पीछा किया और रायसिंह के राजपूतों ने, जो मोहम्मदहुसेन मिरजा की निगहवानी पर नियत थे, उसे हाथी से उतार कर वर्छों से मार डाला। इस विजय के अनतर आजम और अन्य अमीर अहमदावाद में आ कर वादशाह के चरणों में उपस्थित हुए।

इसी वर्ष में राव चन्द्रसेणजी अपने अन्तःपुर के लोगों को ले कर गांव काणुजा में गये, और खीवा के पुत्र रत्नसिंह को वुलाने के लिये अपना मनुष्य भेजा, परन्तु वह रावजी के वुलाने पर उपस्थित नहीं हुआ, क्योंकि उस ने मुसलमानों से मेल करके गांव आसरलाई में अपना मुकाम कर दिया था, रावजी आज्ञा प्रतिहत होने के कारण उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उसी क्षण प्रयाण करके आसरलाई गये और गांव लूट कर विध्वस्त कर दिया।

स मुहिम में

१ ऊदावत कल्याणदास ठि० नीवाज (जैतारण) काम आया।

१. जोधा महेशदास ठि० पाटोदी (सिवाणा) ने भी अच्छी तलवार वजाई।

संवत् १६३० में अजमेर प्रान्तान्तर्गत भिणाय नगर में भील मादलिया शासन करता था, वह नामी डाकू था, इधर उधर की भूमि में जा कर लूटपाट किया करता था, राव चन्द्रसेणजी के पास आ कर प्रजावर्ग ने प्रार्थना की कि भिणाय के भील मादलिया ने देश में वड़ा उपद्रव मचा रक्खा है, हम सब उस के उपद्रव से महादुखी है, आप राव मालदेवजी के पुत्र हैं, हम आप की शरण आये हैं, आप का कर्तव्य है कि दुखी लोगों को दुःख से मुक्त करें। यह सुन कर राव चन्द्रसेणजी ने इस में दो लाभ होने की संभावना करके "एक तो प्रजा का दुःख दूर होना, दूसरा उस को मार देने से उस की भूमि हाथ आना" उस को दड देने के लिये उस की ओर प्रयाण किया, भील मादलिया भी वड़ा वीर पुरुष था, युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो गया। जिस दिवस राव चन्द्रसेणजी ने उस पर आक्रमण किया था उस दिन उस के यहां उत्सव होने के कारण भोज था, उस मे दूसरे भी भील उस के संवन्धी और कुटुंवी एकत्र हो गये थे। राव चन्द्रसेणजी ने भीलों पर यकायक हल्ला कर दिया। भील भी शस्त्र ले ले कर साम्हने हो गये, दोनों में विकट युद्ध हुआ, जिस में मादलिया के वहुत से मनुष्य मारे गये और स्वयं मादलिया भी काल का कवल हुआ। भिणाय पर राव चन्द्रसेणजी ने अपना अधिकार कर लिया।

अंग्रेजी भाषा की "लीडिंग चीफ्स् ऐण्ड फैमीलीज़् इन् राजपूताना" (Leading Chiefs and Families in Rajputana) पुस्तक में लिखा है, कि वादशाह अकवर ने इस नौकरी से सात परगनों के साथ राव चन्द्रसेण को भिणाय का राज्य दिया। परन्तु यह संभव नही, क्योंकि राव चन्द्रसेणजी ने न तो वादशाह के कहने से मादलिया भील को मारा था, और न बादशाह की वह नौकरी मानी जा सकती थी। यदि वादशाह ने भिणाय दिया होता तो चन्द्रसेण जी उस पीछे बादशाह से विरुद्ध कभी लड़ाई झगडे नही करते, और न सारण के पास सिचियावास के पर्वतपथ मे वादशाही सेना से लड कर मारे जाते। पारसी इतिहास लेखक इसी प्रकार अपना गौरव दिखाते है, उसी के अनुसार उक्त पुस्तक मे लिख दिया गया है।

संवत् १६३० में वादशाह सीरोही में पहुंचे, वहां अमीरों का प्रार्थनापत्र आया कि मिरजा इव्राहीम हुसेन पकड़ा जा कर अपने किये कर्म का फल पा चुका है। वह मिरजा पहिले पराजितहो कर

ईडर के समीप अपने भाइयों से जा मिला था, और अपने भाई मिरजा मसऊद हुसेन को साथ ले कर जालोर और जोधपुर की तर्फ़ हो कर नागोर पहुंचा था।

उस समय कलाखां का पुत्र फतहखां नागोर की हकूमत का निरीक्षण करने के लिये नियत था। वह किले के दरवाज़े बंद करके किले के अंदर दृढ़ हो कर बैठ गया, और उस ने ऐसा प्रबल प्रयत्न किया कि किले को विजय कर लेवें, परन्तु बीकानेर के राव रायसिंह, मोर ककोलाबी, मुहम्मद हुसेन और दूसरे अमीर जिन को बादशाह ने जोधपुर के प्रबन्ध व गुजरात पथ के निरीक्षणार्थ स्थापित कर रक्खा था, और राव मालदेवजी के पुत्र राव राम, जिन की जागीर में सोझत आदि प्रान्त थे, इन के अतिरिक्त नकीबखां और दूसरे अमीर, जो गुजरात की ओर जाते थे, सब मिल कर नागोर गये, मिरजा इतनी बड़ी सेना का आना सुन कर घेरा छोड कर चला गया। अमीरों ने उस का पीछा किया। गांव खातोली (परगना नागोर) में जाते मिरजा को संध्या के समय जा पहुंचे, और व्यूह रचना करके शस्त्र बांध कर खड़े रहे। प्रयोजन यह था कि मिरजा रात्रि में युद्ध करना चाहे तो ये भी तुरन्त तैयार हो जावें।

राव रायसिंह तो सेना के मध्य प्रदेश में स्थित हो गये, राव राम अपने सुभटों के साथ दाहिनी ओर खड़े हो गये, और दूसरे अमीर बाएं हाथ की तर्फ सन्नद्ध हो कर स्थिरता से डटे रहे, मिरजा के भाई ने समस्त तालावों पर अपना अधिकार कर लिया था, प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर तृषा ने बादशाही सेना को व्याकुल कर दिया, प्यास के मारे कंठ सूखने लगे, और हृदय में घबराहट ने स्थान कर दिया, तब कुछ वीर पुरुष प्यास के मारे मरना अनुचित समझ कर तालावों की ओर दौड़े और उन्होंने पराक्रम करके तालाव शत्रुओं के हाथ से छुड़ा कर समग्र सेना की रक्षा की। मिरजा ने अपनी सेना तीन विभाग करके बादशाही सेना पर हमला किया और राव राम के सुभटों से संग्राम करके कुछ सफलता भी प्राप्त की, परन्तु राव राम अपनी सेना को विचलित देख कर आगे बढ़ा और उस ने शत्रुओं को परास्त करके भगा दिया, उस रात्रि में मिरजा को अत्यन्त असहनीय कष्ट हुआ, उस का घोड़ा मारा गया, उसे बहुत दूर तक पैदल भागना पड़ा, अन्त में उस के नौकर ने अपना घोड़ा उस के अर्पण किया जिस पर सवार हो कर वह अपने बचे हुए थोड़े से मनुष्यों से भाग गया।

इस अर्से में, जब कि बादशाह अकबर अजमेर में थे, ज्ञात हुआ कि राव मालदेवजी के पुत्र चंद्रसेणजी बादशाह से विरुद्ध हैं, इधर उधर देश में लूट पाट करके सिवाने के क़िले में चले जाते हैं, जो क़िला

अजमेर सूबे के समग्र किलों से अत्यन्त दृढ़ और दुर्गम है। उस को उन्होंने अब फिर नये सिर से जीर्णोद्धार करा कर और दृढ़ बना लिया है, और उसी को आत्मरक्षा का स्थान नियत कर लिया है।

राव चन्द्रसेणजी बड़े स्वात्माभिमानी और महावीर पुरुष थे, वे किसी के प्रलोभन में आ कर अपने विचार का बदलने वाले नहीं थे, उन के रक्त में क्षत्रियत्व की तीक्ष्णता और अभिमान इतना भरा हुआ था कि कभी वे शत्रु का भय नहीं खाते थे, और उसी हेतु वे राज्य प्राप्ति की परवाह न करके बादशाह से विरुद्ध आचरण करते थे, और न परतन्त्रता में रहना उन को अभीष्ट था। वे स्वतंत्र प्रकृति के थे और बादशाह उन को अपने पादावनत करना चाहते थे, बादशाह ने राव चन्द्रसेणजी के ऊपर शाहकुलीखां महरम, राव रायसिंह, शिमालखां, मेड़तिया जैमल का पुत्र केशोदास, राय धर्मचन्द का पुत्र जगतराय और दूसरे बहादुर अमीरों को रवाने किया, और उन को यह आज्ञा सुनाई गई कि यदि चंद्रसेण नौकरी करना स्वीकार कर ले तो उस को बादशाही जागीर पाने की आशा बधा देवें और उस की तसल्ली कर देवें कि बादशाह उसे उस का राज्य प्रदान कर देंगे[१]।

वह बादशाही सेना प्रथम सोझत की ओर गई, क्योंकि राव मालदेव का पौत्र रायमल का पुत्र कल्ला राठौड़ वहां था। जब बादशाह की सेना वहां पहुंची तो कल्ला कुछ समय तक तो लड़ता रहा, परन्तु बादशाही सेना अधिक होने से सोझत का किला छोड़ कर सिरियारी के किले में चला गया, जो पहाड़ में है। बादशाही सेना ने उस को चारों ओर से घेर लिया, परन्तु अंदर प्रवेश करने का कोई उपाय न देख कर उस के चारों ओर काठ चुन कर उसे जला दिया, जब अग्नि की कराल ज्वाला उस के अन्दर पहुँचने लगी तो कल्ला उस किल्ले को छोड़ कर कोढ़ने के पर्वत में चला गया। सेना ने उस का पीछा नहीं छोड़ा और उस पर्वत में भी बादशाही सेना के मनुष्य रस्ते रोकने लगे तो कल्ला ने देखा कि अब मैं पकड़ा जाऊंगा तो उस ने सन्धि के लिये अपना दूत भेजा। बादशाही सेना नायक भी पूर्णतया हैरान और सतप्त हो चुके थे, सन्धि स्वीकार कर ली। कल्ला स्वयं तो बादशाही सेना में नहीं गया किन्तु अपने भाई केसोदास, महेशदास और पृथ्वीराज राठौड़ को सेना मे भेज दिया, और स्वयं कल्ला वहीं ठहर गया।

---

[१] अकबरनामा सन् १६ जलूर हि० सन् ९८१ सफ़ा ८० दफ़तर ३ में यह वार्ता लिखी है—"बादशाह ने शाहकुलीखां महरम, राव रायसिंह, शिमालखां, केशोदास मेड़तिया जैमल का बेटा, जगतराय धर्मचंद का बेटा और दूसरे बहादुर अमीरों को उधर रवाने किया और उन को हुक्म दिया कि जो चंद्रसेण बदगी कबूल कर ले तो उस को बादशाही इनायतों का उम्मेदवार कर दें"।

जब यह बादशाही सेना का आक्रमण सफल हुआ; तब चन्द्रसेणजी का बल कुछ घट गया। बादशाही सेना ने विजय से गर्वयुक्त हो कर राव चंद्रसेणजी के निवासस्थान सिवाने पर आक्रमण किया। किले में राव चंद्रसेणजी की ओर से रावल् महवेचा था, और किलेदार वही होने से किले का सर्व प्रवन्ध उसी के अधिकार में था। रावल् मेघराज ने अपनी कुछ सेना दे कर गोपाल दास को सिवाने के परगने में लूटपाट करने के लिये भेजा कि खर्च के लिये कुछ द्रव्य ले आवै। राव चद्रसेणजी वहां से कुछ दूरी पर थे, उन्होने रावल् मेघराज की सहायता के लिये राठौड़ सूजा और देवी दास को अपने बहादुर सुभट साथ में दे कर भेजा, जब गोपालदास कई गावों को लूट कर पोछे लौटा था उस समय रावल् मेघराज उस के जा शामिल हुआ। बादशाही के साथ युद्ध हुआ जिस में दोनों ओर के वीरों ने बड़ा पौरुष और पराक्रम कर दिखाया।

सूजा, देवीदास और रावल् मेघराज का भाई मान इस लड़ाई में काम आये। राठौड़ों ने अच्छी तलवार बजाई और बादशाही सेना को तलवार के बल छका दिया, परन्तु राठौड़ों की संख्या अल्प थी, अन्त में बादशाही सेना की विजय हुई। राव रायसिंह युद्ध के समाचार सुन कर वहां आया, परन्तु उस के पहुंचने के पहले ही विजय हो चुकी थी। रावल् मेघराज ने अब बादशाही सेना से फिर युद्ध करना अनुचित और हानिकारी समझ कर किनारा ले लिया और अपने पुत्र को बादशाही सेना में भेज दिया।

बादशाह अपने सेना नायकों के द्वारा राव चन्द्रसेणजी को प्रलोभन का जाल फैला कर फांसना चाहते थे, परन्तु जिन के हृदय में अपने कुल का अभिमान है, जिन की नसों में क्षत्रियत्व का तीक्ष्ण रुधिर का प्रवाह प्रवाहित है, जिन का मस्तक सदा आत्माभिमान से उन्नत है, जिन में इस लालच पिशाच का आवेश नहीं हुआ है, जो राज्य तृष्णा रूपी वायु के झकोरे से विचलित नहीं हुए हैं उन मेरु समान अचल विचार वाले पुरुषों के मन को कौन डिगा सकता है? बादशाह ने उन को फॉसने का प्रयत्न किया था परन्तु वह निष्फल हुआ।

संवत् १६३१ में बादशाह बंगाल विजय करके अजमेर में आए वहां सिवाने के किले से आ कर इकल्ले राव रायसिंह ने अर्ज किया कि राव चंद्रसेणजी को आधीन करने के लिये बहुत यत्न कर चुके हैं परन्तु अब तक वह तो उसी ढंग पर है, वह बादशाही आज्ञा का पालन करना पाप समझता है, उस को दंडित करने के लिये हमारे पास जो सेना है वह पर्याप्त नहीं है, हम ने सिवाने पर अधिकार कर

लिया है तो वह रामपुरा की ओर जा कर उधर बादशाही प्रजा को पीड़ित करता है, वह बिना दंड के शान्त नहीं होगा, मैं हज़रत के चरणों में इस लिये उपस्थित हुआ हूँ कि हमें सेना की सहायता और दी जाय जिस से हम हज़रत की आज्ञानुसार कार्य करने में सफल होवें। रायसिंह के इस प्रकार प्रार्थना करने पर बादशाह ने उस की सहायता के लिये फिर दूसरी सेना भेजी, जिस में सेना नेता तैयबर-खां, सैयदबेग, सुबदीनकुलखां, तुर्क खुर्रम, अजमतखां और शिवदास इतने थे।

इन्होंने चन्द्रसेणजी जिधर थे उधर प्रयाण किया, उस समय राव चन्द्रसेणजी रामपुर की ओर थे, वहाँ पहाड़ी प्रदेश है, बादशाही सेना बड़ी कठिनता से वहाँ पहुँची। राव चन्द्रसेणजी केवल शूर वीर ही नहीं किन्तु बड़े विचक्षण, दूरदर्शी और नीतिनिपुण थे, उन्होंने देखा कि ये पहाड़ों में भटकते हुए यहां आ पहुंचे हैं, और निकलने के मार्ग अल्प हैं, यदि यहां घिर गए तो निकलना कठिन हो जायगा इस लिये मुकाबला न करके यहां से निकल जाना ही अच्छा है, इस विचार से वे वहां से सघन झाड़ी वाले पहाडों की तर्फ निकल गये; बादशाही सेना भी राठौड़ों से पूरी तग हो गई थी, उस ने चंद्र-सेणजी का पीछा किया, और वहां पहुंचे जहां पहाड़ो में रावजी थे; रावजी ने अब यहां से निकलने में असुविधा देख कर मुकाबला किया ; लड़ाई हुई, इस युद्ध में चद्रसेणजी के कुछ साथी मारे गये; और आप बादशाही सेना से लड़ कर विजय पाने की आशा न देख कर वहां से निकल गये, बादशाही सेना अब उन के पीछे जाने में अपनी हानि और प्राणों को संकट में डालना समझ कर पीछे लौट गई। बादशाह को इस बात की खबर लगी कि चद्रसेणजी पहाड़ो में अन्दर घिर गए थे परन्तु बादशाही सेना प्राणो के लोभ मे आ कर पीछे लौट आई जिस से वे उस पर अत्यन्त अप्रसन्न हुए।

बादशाह ने जलालखां को सिवाने की सेना की सहायता पर भेजा जब जलालखां मेड़ते में पहुंचा, उस समय सुलतानसिंह और राम-सिंह, जो राव रायसिंह का भाई होता था, और अलीकुली, जो शाह-कुलीखां महराम का रिश्तेदार था, इन्होंने उस को कहलाया कि हम बादशाह की आज्ञा से राव चंद्रसेण पर चढ कर जाते है, परन्तु उस के पास वीर और बहादुर राजपूत बहुत हैं, और वह पहाड़ में रहता है, इस लिये आप की सहायता की आवश्यकता है, आप हमे सहायता प्रदान करें। जलालखां ने उन के कहलाने पर तुरन्त उन के साथ

अपनी सेना भेज दो। राव चंद्रसेणजी को इस बात की खबर लगी कि बादशाही सेना बड़े वेग और समारोह के साथ आती है, अपने वीर राजपूतों को कहा कि बादशाही सेना अपने ऊपर बड़े समारोह के साथ आती है। सावधान रहना। उन के राजपूत भी वैसे ही उत्साही, साहसी और विक्रमशाली थे। उन्होंने कहा कि इन तुरकों का क्या सामर्थ्य है कि हम को विजय कर लें हम भीरु कायर नहीं है कि ऐसी विभीषिका से भयभीत हो जावें आपन चला कर इन पर हमला करके इन को मार हटावेंगे। ऐसे वीर पुरुषों को साथ ले चंद्रसेणजी ने उन पर हमला करने का निश्चय किया। इतने में बादशाही सेना बिलकुल समीप आ पहुंची। बादशाही सेना को उन के अभिप्राय का किसी प्रकार पता लग जाने से इन के हमला करने से पूर्व ही उस ने रावजी पर हमला कर दिया। राव चंद्रसेणजी उन से बड़ी बहादुरी से लडे और यवन सेना के कई योधों को भूमिशायी कर दिया परन्तु बादशाही सेना बहुत अधिक थी, और इन के भी कुछ योधा मारे गये, युद्ध करते २ संध्या हो गई युद्ध का अवरोध हुआ। रात्रि हो जाने पर रावजी इस स्थान को पुनः युद्ध करने के योग्य न समझ कर अपने सुभटों को ले कनौज के पहाडों [मारवाड में के] में आगे चले गये। बादशाही सेना वहां भी आ पहुंची और वहां दोनों की मुठभेड़ हुई। दोनों ओर के वीर ललकार २ कर, युद्ध करने लगे। यहां भी महा-विकट संग्राम हुआ। बादशाही सेना के और रावजी के बहुत से मनुष्य मारे गये। सन्ध्या हो जाने पर युद्ध बन्द हुआ बादशाही सेना पूरी थक गई थी। और रावजी के सुभट भी श्रान्त हो जाने से वहां से दूसरे पहाड़ में चले गए।

इस मुहिम में भी बादशाही सेना सफल नहीं हुई तब बादशाह ने बारह के सैयदों में से सैयद इखद अहमद और सैयद हासम आदि को मारवाड़ की ओर भेजा। वे लोग बादशाह की आज्ञा पा कर सेना ले मारवाड में आए और चंद्रसेणजी का पीछा किया परन्तु पर्वतों के पथ विकट होने से दुःखित हो कर पीछे लौट गए। उन को किसी प्रकार से सफलता प्राप्त नहीं हुई।

संवत् १६३२ में सैयदों की सेना को भी असफल देख कर बादशाह अत्यन्त कुपित हुआ और बंधु से बंधु को लडाने के लिए फिर बीकानेर के राव रायसिंहजी को बड़ी सेना दे कर भेजा। उन्होंने आकर सिवाने के गढ को घेरा राव चंद्रसेणजी कुछ दिन गढ़ में बैठे लडते रहे। परन्तु गढ़ में खाने की सामग्री कहां थी? और बाहिर से आ नहीं सकती थी। इस लिए किला छोड़ कर निकल गए और पीप-लोद के पहाडों में चले गए। और गढ़ में राठोड़ नगा के पुत्र पता को

रख दिया। और उस की सहायतार्थ पता मुहता भी उस के शामिल था।

यद्यपि राव चन्द्रसेणजी सिवाने के किले में से, जो अजमेर के सूवह में के किलो में से सर्वोत्तम और मज़बूत समझा जाता था, निकल गए परन्तु उन के स्थानापन्न राठौड़ पता उस किले की रक्षा करता हुआ उस में विद्यमान था। जिस से वादशाही सेना सफल नहीं हुई। वादशाह ने इस वृत्तान्त को सुन कर कहा कि शाह—कुलीखां महरम् और राय रायसिंह ने, जो वहां नियत हैं वुद्धिमानी और दूरदर्शिता से काम नहीं किया है। और वादशाही सेना के घोड़े दाना न मिलने से मर रहे हैं। तव वादशाह ने सैयद कासम और हासम और तथा जमालखां, शमालखां और अन्य अमीरों को आज्ञा दी कि शीघ्र सिवाने पहुंच कर उस किले को विजय करने का प्रयत्न करें, और वहां जो सेना है उसे पीछे लौटा दें। वादशाह की आज्ञा पाकर जलालखां कोरचीना की अध्यक्षता में इस वड़ी सेना ने सिवाने की ओर प्रयाण किया। उस का मुकाम रामपुरा में था। उस समय एक मनुष्य ने आ कर कहा कि मै देवीदास हूँ, कुछ लोग उस के साथ थे। वहुत से लोगों के ध्यान में यह था कि वह देवीदास मेड़ते में मिरजा शर्फुद्दीन हुसेन से युद्ध हुआ उस में मारा गया था, और वह कहता था कि मै उस सग्राम में अत्यन्त प्रहार जर्जरित हो कर धरणी पर गिर गया था। और मूर्छित दशा को पहुंच कर तड़पता था। उस समय एक सन्यासी वहां आया और मुझे अपने कन्धेपर उठा कर ले गया और उस ने घावों की चिकित्सा की उस की करुणा भरी पूर्ण कृपा से मै स्वस्थ हो गया, फिर उस के साथ तीर्थों में भ्रमण करता रहा। अव उस से आज्ञा ले कर इधर आया हूं। कितने एक लोग उस के साक्षी भी हुए कि यह वार्त्ता सत्य है। किसी ने कहा कि हम ने यह वार्ता सुनी थी। और किसी ने कहा कि हम ने सन्यासी को इसे उठा कर ले जाते देखा था, और कितने एक कहने लगे कि नहीं यह सव कपट है, वह तो वहीं मर गया था। (देवीदास) जलालखां के समीप जा कर वादशाही सेना के शामिल हुआ, उस ने यह इच्छा प्रकट की कि मै वादशाह की तन मन से सेवा करके हुजूर में पहुंचूं।

वादशाह की सेना जो राव चंद्रसेणजी की तलाश में लगी हुई थी और उन का पता नहीं पाती थी उक्त देवीदास ने कहा कि "चंद्रसेण अपने भतीजे कल्ला की जागीर में छिपा हुआ है" वादशाही सेना कल्ला की जागीर में गई, परन्तु कल्ला ने अस्वीकार किया कहा कि "चद्रसेण यहां नही है" वादशाही सेना के अध्यक्षो ने समझा कि इसने हम से कपट किया है, हम को वृथा दुःख दिया है इस लिये इस को इस का प्रतिफल मिलना चाहिये, इस विचार से उन्होंने

शिमालखां को कहा कि तुम कपट से धोखा दे कर इस से मिलावट करके इस का पीछा करो और इस को मारने का प्रयत्न करो। उन के कथनानुसार शिमालखां ने उन को मिहमानी के बहाने अपने डेरे पर बुला कर पकड़ना चाहा, परन्तु वह उसके कपट से परिचित हो जाने के कारण उस के षड्यंत्र से बच कर बहादुरी से निकल गया। जब उस को यह ज्ञात हो गया कि ये म्लेच्छ मुझे कपट करके पकड़ना चाहते हैं और मेरी ख़राबी करेंगे तब वह उन बादशाही अमीरों का आश्रय छोड़ कर कल्ला के पास चला गया कल्ला ने उस का आदर करके अपने पास रख लिया और उस की बुद्धिमत्ता और वीरता को देख कर अपना मुसाहिब बना लिया। जिस दिन बादशाही सेना के बहुत से सिपाही इधर उधर चले गये थे। यह चन्द्रसेन को सूचना करके उन पर चढ़ा लाया। और उस ने भ्रम से जलालखां के डेरे को शिमालखां का डेरा समझ कर जलालखां के डेरे पर आक्रमण कर दिया। जलालखां असावधान था, अकस्मात् आक्रमण हो जाने से वह सम्हल न सका; और उस के योधा भी एकत्र नहीं थे तथापि युद्ध करने को उद्यत हुआ और उसी युद्ध में मारा गया। यह जलालखां बादशाह के मुसाहिबों में से एक था। जलालखां को मार कर राव चन्द्रसेनजी देवीदास को साथ ले कर शिमालखां के डेरे पर गये; परन्तु मेड़तिया जैमलजी के पुत्र केशवदास ने जिस का डेरा उस के समीप मे ही था, शिमालखां के डेरे पर जा उस की सहायता करके शिमालखां को वहां से भगा दिया।

जब बादशाह को इस बात की ख़बर हुई तब कोप के मारे काँपता हुआ बोला कि क्या कोई हमारे सेनापतियों में ऐसा नहीं है कि मरुस्थल के जंगली राजपूत को पकड़ लावे और उस के आत्मरक्षा के स्थान को विजय करके बादशाही क़ब्ज़ा कर ले समीप में शहबाज़ खांह बैठा हुआ था उस से कहा कि तुम जाओ और सिवाना गढ़ को विजय करके शीघ्र समाचार भेजो। बादशाह की आज्ञा पा कर शहबाज खांह सेना ले कर सिवाने की ओर चला। मार्ग में खबर लगी कि राव मालदेवजी का पौत्र राठौड़ कल्ला और वहाँ के राजपूत देवकोर (देवलयाली) के किले में जो सिवाने से सात कोस की दूरी पर उत्तर की ओर है, एकत्र हुए हैं। और बारह के सैयद और दूसरे सिपाही उस मुहिम पर रवाना हो गये हैं और देवलयाली के किले को घेरे हुए हैं, शहबाजखाँ परम उत्साह के साथ धैर्य धारण करके पहले वहाँ पहुँचा और उस किले को विजय कर लिया। किले के बहुत से मनुष्य मारे और पकड़े गये। शहबाजखां कुछ सेना उस किले के थाने पर छोड़ कर सिवाने की ओर रवाना हो गया। वहाँ से सात ७ कोस पर दूनाड़े का किला था, कुछ राठौड़ उस किले में

ो एकत्र हो कर बैठे थे, उन को बादशाही आज्ञा पालन करने के
लिये कहा गया तो उन्होंने सेवा करना स्वीकार नहीं किया। तब
यवनों ने उन पर आक्रमण कर दिया किले में के राजपूत बड़ी
बहादुरी से लड़े, परन्तु उतनी बड़ी सेना के आगे मुट्ठी भर मनुष्य
क्या कर सकते थे? मर कर अपना धर्म निबाहा, यवनों ने उस
किले पर भी अपना अधिकार कर लिया। इस किले के विजित हो
जाने से सिवाने वालो के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि अब हमारी
पारी है, अवश्य अब सेना इधर ही आवेगी। थोड़े ही अर्से मे यवन-
सेना सिवाने के समीप पहुँची और सिवाने को घेर लिया; और
पहले की सेना जो वहाँ थी उस को वहाँ से रवाना कर दिया।

इस सेना ने उद्यम और उपाय व तलवार के बल सिवाने वालों
को अत्यन्त पीडित किया। परन्तु राजपूत भी तो बड़े बहादुर और
रणकुशल थे, किले में बैठे लड़ते रहे। इन का सेनापति पता बड़ा
वीर और रणदक्ष था। इस ने कई दिनों तक युद्ध किया। इस युद्ध में
राठौड़ पता का साथी मुहता पता बड़ी बहादुरी से लड़ कर मारा
गया[१]।

बादशाही सेना युद्ध से पूर्ण परिश्रान्त हो गई थी, परन्तु उस
ने किले का ऐसा प्रतिरोध किया कि किले के अन्दर न तो कोई जा
सकता है और न आ सकता है; खान पान सब बन्द है, कोई भी
पदार्थ किले के अन्दर नही जा सकता है, इस दशा में किले के अन्दर
की सामग्री निबट गई और नयी मिलने की कोई आशा नही रही तब
अंत में बादशाही सेना के सेनापति शहबाजखाँ से बातचीत करके
राठौड़ पता सिवाना ख़ाली कर अपने सुभटों को ले कर राव चन्द्र-
सेणजी के पास चला गया। शहबाजखाँ वहाँ बादशाही अधिकार कर
उस किले को रणकुशल और वीर अमीरों के सुपुर्द करके बादशाह के
चरणो में उपस्थित हुआ। इस युद्ध में संवत् १६३२ के कार्तिक मास

---

१ इस मुहता पता के संबंध का शिलालेख गोडवाड़ प्रान्त के गाँव नांणा में जैन मन्दिर में मिला है, उस में लिखा है कि अर्जुन का पुत्र मुहता पता सिवाने के किले में युद्ध करके स्वर्ग को सिधारा। उस के साथ यह भी लिखा है कि मुहता पता के पुत्र नारायण ने जैन मन्दिर में एक रहँट सहित कूप दिया था। जिस नारायण को महाराणा अमरसिंहजी ने गाँव नाणा दिया था। लेख की प्रतिलिपि—

"उरजन तत्पुत्र मुहता पता गढ़ सिवाणै साको करि मूओ। पता पुत्र मुहता श्रीनारायण १ सादूल २ सूजा ३ सिंघा ४ सहसा ५। मुहता श्रीनाराइण नुं रांणा श्री अमरसिंहजी मया करैने गांम नांणो दोधो। मुहतै नाराइण अरहट १ साइ सुद्धौ देव श्री महावीर नुं रुतरभेद पूजा सारु केसर दीवेल सारु दीधो (स० १६५६ भाद्रवा सुदि ७ शनिवार)"

में जेसलमेर के रावल हरराजजी ने सात सहस्र ७००० सेना ले कर पोहकरण पर आक्रमण किया, उस सेना में सेनापति भाटी खेतसी था। उस समय पोहकरण मे राव चन्द्रसेणजी का सेनाध्यक्ष पचोली अणदराम था; रावल हरराज ने पोहकरण को घेर कर युद्ध का आरभ कर दिया। पचोली अणदराम भी किले में बैठा लड़ने लगा। इन के परस्पर युद्ध होते चार मास हो गये तथापि किसी को जय विजय का कुछ पता नहीं है। परन्तु इतना समय हो जाने से खाते २ अन्न का अभाव हो गया, और सोर शीशा भी नहीं रहा, तब पचोली ने हरराजजी से सन्धि के लिये कहलाया तो उन्होने प्रत्युत्तर में कहलाया कि हम पोहकरण सर्वथा नहीं छोड़ेंगे; इस के लिये यदि द्रव्य चाहते हो तो अवश्य दिया जाय। अणदराम ने ये समाचार रावजी के पास भेजे, रावजी के द्रव्य की सदा अपेक्षा रहती थी, उन्होने इस बात को स्वीकार किया परन्तु उस के साथ यह नियम रक्खा गया कि जब हम यह द्रव्य वापिस दे दे उस समय पोहकरण का क़ब्ज़ा तुम्हें छोड़ना पड़ेगा। हरराजजी ने यह सुन कर उक्त नियम को स्वीकृत कर लिया, क्योंकि वे जानते थे कि ये इधर उधर पहाड़ों मे मारे मारे फिरते हैं, इन के पास द्रव्य कहाँ? जब तक जोधपुर इन के हाथ नहीं आवै तब तक ये द्रव्य किसी प्रकार नहीं दे सकते। और यदि जोधपुर इन के हाथ आ गया तो फिर ये पोहकरण सर्वथा नहीं छोड़ेंगे, चाहे यह द्रव्य पीछा दें अथवा न दें, इस विचार से हरराजजी ने द्रव्य देना स्वीकार कर लिया। दोनों के परस्पर उक्ति नियम का अंगीकार होने पर परस्पर सन्धि ठहर गई, और हरराजी ने राव चद्रसेणजी को पोहकरण गिरवे रख कर एक लाख फदिये[1] दे दिये, और कहा कि जब आप को जोधपुर का राज्य प्राप्त हो तब हमें हमारा द्रव्य दे देना हम पोहकरण से अपना अधिकार उठा लेंगे। जब उक्त नियमानुसार सब तय हो गया राव चद्रसेणजी ने अपने विश्वासपात्र मनुष्य मांगलिया भोजा को भेजा। हरराजजी ने उस को एक लाख फदिये दे दिये और उस ने उन के साथ जा कर पोहकरण का क़ब्ज़ा करवा दिया वह उक्त द्रव्य ले कर फाल्गुन वदि चतुर्दशी को राव चन्द्रसेणजी के निकट पहुँचा।

लिख आये हैं कि संवत् १६२६ में राव चन्द्रसेणजी ने गाँव आसरलाई को लूट कर विध्वस्त कर दिया था। रावजी की इस कार्यवाही से कितने एक सरदार उन से अप्रसन्न हो गए थे, और उसी अवसर में रावजी ने जोधपुर नगर के व्यापारी लोगों से कर देने के लिये कहा कि हमें इस समय द्रव्य की अत्यन्त आवश्यकता

१ एक रुपये के आठ ८ फदिये होते हैं।

है, हमारे घोड़े और राजपूत क्षुधा से पीड़ित हैं, इसलिये हमें रुपये दो, परन्तु याचना मात्र से कौन देता है ? उस समय वे जोधपुर के शासक नहीं थे, कि जिस से वे उन का ध्यान रक्खें। जब रावजी को उन से द्रव्य नहीं मिला तब उन्होंने उन को पीड़ित करना शुरू किया। व्यापारियों ने विचार किया कि इस बला से बिना बलवान् की सहायता के मुक्त होना कठिन है; और इस समय मुसलमान प्रबल है। उन से जा कर मिलें। फिर लूँकड़, संकलेचा और भड-साली जाति के कुछ प्रतिष्ठित पुरुष मुसलमानों से जा कर मिले। ये तो नये शिकायती खड़े हुए और बीकानेर वाले तथा मेड़तिया राठोड पहले से ही इन से विरुद्ध थे, उन के अतिरिक्त ऊदावत भी रावजी से अप्रसन्न होने के कारण उन के शामिल हो गये। अब सब शामिल हो कर बादशाही सेनाध्यक्षों के पास जा कर बोले कि राव चन्द्रसेण बादशाह के अधिकृत जोधपुर की प्रजा को व्यथित करता है और सताता है। आप का कर्त्तव्य है कि उस को दण्डित करें, हम उस की खोज में आप को पूर्ण सहायता करेंगे। यह सुन कर बादशाही सेनाध्यक्ष तुरन्त तैयार हुए, जिन को प्रथम से ही चन्द्रसेणजी को पकड़ने अथवा मारने के लिये आज्ञा हो चुकी थी। वे अमीर बड़ी सेना ले कर पीपलोद के पहाड़ की ओर चले जहाँ राव चन्द्रसेणजी का निवास था। घर फूटे लोगों ने रावजी का पता लगा कर सेना-ध्यक्षों से कहा कि इस समय रावजी चन्द्रसेणजी पीपलोद के पहाड़ों में अमुक स्थान पर हैं। बादशाही सेना वहाँ पहुँची। रावजी उसे आती देख सज कर तैयार हो गये; दोनों दलों के योधा बड़ी बहादुरी से लड़े। इस युद्ध में रावजी के बहुत से योधा मारे गये। जिस से रावजी रात्रि का मौका देख वहाँ से निकल गये। इस युद्ध मे राठौड़ रणधीर का पुत्र और दूसरे कई नामी सरदार मारे गये। बादशाही सेना गाँव गुड़े को लूट कर पीछे लौट गई। इस समय रावजी के पास मेर जाति का रावत पचायण था उस ने रावजी की तन मन से सेवा की और अष्ट प्रहर चरणों में रहा।

राव चन्द्रसेणजी ने अब वहाँ रहना अयोग्य समझ कर वहाँ से गाँव काणूँजा की ओर प्रयाण किया। वहाँ मुकाम करके वहाँ से फिर सीरोही की ओर चले गये। डेढ़ वर्ष पर्यन्त वहाँ निवास किया। तदनन्तर अन्तःपुर को वहीं रहने दिया और रावजी वहाँ से रवाना हो कर डूँगरपुर के रावल आसकर्णजी के पास गये। बादशाही सेना को इस बात की सूचना मिली कि राव चन्द्रसेणजी के अन्तःपुर के लोग सिरोही मे हैं, इस ख़बर को पाते ही कुछ यवन अधिकारी और बीकानेर के राव रायसिंहजी अपनी सेना ले कर उधर की ओर गए, और चाहा कि अन्तःपुर के लोगों को पकड़ लिया जाय, परन्तु

उन लोगों को सूचना हो गई कि बादशाही सेना आती है; तुरन्त साथ के सरदारों ने जनाने को तो पहाड़ी दुर्गम स्थान में पहुँचा दिया और वे स्वयं मार्ग रोक कर युद्ध करने को तैयार हो गये, इन में राठौड़ पत्ता नगावत और चांपावत भानीदास देवीदासोत अग्रणी थे। बादशाही सेना जहाँ अन्तःपुर के लोग थे वहाँ पहुँच नहीं सकी, क्योंकि सरदारों ने उस मार्ग को रोक रक्खा था। तब बादशाही सेना उपत्यका भूमि में लूटपाट करके पीछे लौट गई। सेना के वापिस लौट जाने पर सरदारों ने पूर्ण प्रबन्ध करके अन्तःपुर के लोगों को वहाँ से निकाल कर डूँगरपुर पहुँचा दिया।

रावल आसकर्णजी का पुत्र सहँसमल्ल महाराणाप्रतापसिंहजी के चरणों में उपस्थित हुआ और उस ने महाराणा से कहा कि यदि आप पिता आसकर्णजी को डूँगरपुर से निकाल कर मुझ को डूँगरपुर की गद्दी बिठा दें तो मैं आप की उत्तम रीति से सेवा करूँगा और बनता द्रव्य की सहायता दूँगा। तिसपर महाराणा ने अपनी सेना भेजी और सहँसमल्ल को कहा कि तुम इस के साथ जाओ और कार्य सिद्धि होने पर अपना वचन पूरा करो। फिर सहँसमल्लजी गाँव चाँवडे से महाराणाप्रतापसिंहजी की सेना ले कर डूँगरपुर गये। इस सेना के वहाँ पहुँचने पर रावल आसकर्णजी अपने अन्तःपुर के लोग डूँगरपुर छोड़ कर निकल गये। अब वहाँ केवल राव चन्द्रसेणजी के अन्तःपुर के लोग डूँगरपुर में रह गये। तब उन्होंने राव चन्द्रसेणजी को "जो वहाँ से कुछ ही दूरी पर पहाड़ों में थे" कहलाया कि एक प्रतिष्ठित पुरुष को यहां भेजें, जो हम को यहां से निकाल कर ले जावे। उस की आवश्यकता इस लिये है कि हमारे पास भार बहुत अधिक है, बिना वैसे प्रबन्धकारी पुरुष के वह निभ नहीं सकता। इस ख़बर को पाते ही राव चंद्रसेणजी ने पंचोली सुरतान को भेजा, उस से कहा गया कि उन के पास भार बहुत अधिक है इस लिये उस का प्रबन्ध प्रथम कर लेना। पंचोली आज्ञानुसार उचित प्रबन्ध करके अन्तःपुर को ले आया। उस अवसर में रावल आसकर्णजी के पुत्रों ने जो सहँसमल्ल के साथी नहीं थे, अपना मनुष्य भेज कर राव चंद्रसेणजी को कहलाया कि इतने समय तक तो हमने किले को सम्हाल रक्खा है। अब आप शीघ्र आ जावें, नहीं तो हम तो किला छोड़ कर निकल जायँगे। राव चंद्रसेणजी और क्या चाहते थे, तुरन्त रवाना हो कर डूंगरपुर पहुंचे। किले के अन्दर मनुष्यों की धूमधाम सहँसमल्लजी से राणा के मनुष्यों ने कहा कि आप ने कहा था कि रावल किले में से निकल गया है, फिर इतनी धामधूम किले में कैसे दीख पड़ती है, सहँसमल्ल ने मनुष्य भेज कर जिज्ञासा की तो ज्ञात

हुआ कि रावल आसकर्णजी तो किले में से निकल गये हैं परन्तु राठौड़ राव चंद्रसेणजी किले के अन्दर हैं। इस का परिज्ञान होने से सहॅसमल्ल सेना सहित यहीं ठहर गया और राव चद्रसेणजी को कहलाया कि आप डूंगरपुर छोड़ कर चले जावें। रावलजी तो पहले ही यहां से निकल गया है, अब आप को यहां रहना उचित नहीं है; क्योंकि महाराणा ने मुझ को आज्ञा दे दी है कि तुम जा कर राज्यासन ग्रहण करो। तब चद्रसेणजी ने उस के उत्तर में कहलाया कि हम यहां आ गये है अब हम यहां से निकल कर कैसे जा सकते हैं? आप को अंदर आना है तो आ जावें। तब सेनाध्यक्ष ने मनुष्य भेज कर कहलाया कि सहॅसमल्ल के वास्ते महाराणा की आज्ञा है कि इन को गद्दी विठा दो, इस लिये एक वार तो इन को गद्दी विठा दिया जाय, फिर जैसी आप की इच्छा हो वैसा करें इस में दोनों ओर की मर्यादा रह जायगी। रावजी ने इस कथन को स्वीकृत नहीं किया और कहला दिया कि रावल आसकर्णजी के पुत्रों ने हमें बुलाया है और उन्होंने हम को रक्षार्थ यहां ठहराया है इस लिये यह संभव नहीं कि सहँसमल्ल गद्दी बैठ कर राज्याधिकारी हो जावे और रावल आसकर्णजी राज्याधिकार से वंचित रह जावें। इस मामले की ख़बर रावल आसकर्णजी को हुई तब रावल आसकर्णजी ने राव चंद्रसेणजी के पास अपना प्रतिष्ठित पुरुष भेज कर कहलाया कि आप का धर्म यही है, परन्तु मैं महाराणा से विरोध करना नहीं चाहता, इसी लिये मैं किला छोड़ कर निकल गया हूं। महाराणा प्रतापसिंहजी के पास यह ख़बर पहुंची तब महाराणा ने सेनाध्यक्ष को लिख भेजा कि राव चंद्रसेणजी किले के अंदर है तो तुम वहां से पीछे चले आओ। क्योंकि ये बड़े वीर और हटी मनुष्य हैं, कहने से सर्वथा नहीं मानेंगे, और युद्ध करने में दोनों की हानि है, प्रथम ही दुर्बल तो हो ही रहे हैं, और यवन लोग अवसर देख रहे हैं, उन को यह बड़ा अच्छा मौका मिल जायगा इस लिये तुम चले जाओ। महाराणा की आज्ञा पा कर सेनाध्यक्ष सेना ले कर पीछे लौट गया और सहॅसमल्ल भी निराश हो कर चल दिया। रावल आसकर्णजी को ज्ञात हुआ कि महाराणा की सेना वापिस लौट गई है तब अपने अंतःपुर के लोगों को साथ में ले कर वे डूंगरपुर में प्रविष्ट हुए।

संवत् १६३२ में बादशाह की सेना ने महाराणा पर चढ़ाई की। महाराणा प्रतापसिंहजी को ख़बर लगी कि बादशाही सेना आती है तब वे साम्हने गये और हलदी घाट स्थान पर दोनों की मुठभेड़ हुई।

इस युद्ध में बादशाही सेना के ७५० और महाराणा की सेना के ५०० योधा मारे गये। महाराणा के मनुष्य अधिक मरने का कारण यह हुआ कि यवन सेना ने पहले आ कर अच्छे मोर्चा देख कर उस का आश्रय ले लिया था और महाराणा की सेना पहुंची ही थी। इस को वैसा युद्ध के उपयुक्त स्थान नहीं मिला था। जिस से उन की पराजय हुई। इस युद्ध में मेड़तिया जैमलजी का पुत्र मारा गया।

बादशाह की सेना इस युद्ध को विजय करके आगे बढ़ी और गाँव चावँड को घेरा. वहां महाराणा की सेना के जो मनुष्य थे उन को निकाल कर यवनों ने अपना अधिकार कर लिया। राव चन्द्रसेणजी को सूचना मिली कि बादशाही सेना महाराणा की सेना को परास्त करके आगे बढ़ती हुई चावंड तक आ पहुंची है और आगे बढ़ने की विचार करती है: केवल विचार ही नहीं, आगे को प्रस्थान भी कर दिया है। यह सुन कर राव चंद्रसेणजी बादशाही सेना अधिक होने के कारण वहां रहना उचित न समझ कर डूंगरपुर छोड़, बांसवाड़े में चले गये। वहां के रावल प्रतापसिंहजी ने उन का स्वागत किया और पूर्ण आदर और सन्मान के साथ अपने यहां रक्खा, इतना ही नहीं किन्तु घोड़े बांधने के लिये पांच चार गांव भी दिये। तदनन्तर रावलजी राव चंद्रसेणजी के डेरे पर आये। और परम प्रीति प्रकट की। रावजी ने भी उन को मिहमानी दी और उन के साथ पूर्ण प्रेम प्रदर्शित करके उन की प्रशंसा की।

राठौड़ कल्ला, जो राव राम का पुत्र था, सोझत का प्रान्त राव राम के अधिकार में होने से सोझत में शासक था। इस ने देश में बहुत उपद्रव किया और उत्पथ चलने लगा, उस की शिकायत बादशाह के पास पहुंची तब बादशाह ने नाडोल के थानेदार शेख इमराम को लिख भेजा कि राठौड़ कल्ला की शिकायत हमारे पास आई है यदि वह सत्य हो तो उस को मार देना ही उचित होगा। थानेदार ने बादशाह की आज्ञानुसार कल्ला को सोझत से किसी बहाने नाडोल बुला कर मरवा डाला। और बादशाही सेना भेज कर सोझत पर बादशाही क़ब्ज़ा करके थाना बिठा दिया।

बादशाह के इस कृत्य से महेशदास के पुत्र सादूल कूंपावत और देवीदास के पुत्र आसकर्ण जैतावत आदि कितने एक सरदारों ने एकत्र हो कर परामर्श किया कि यवन लोग राठौड़ों की भूमि छीने जाते हैं इस लिये इस का कुछ उपाय होना चाहिये, किसी ने कहा यदि राव चंद्रसेणजी को बुला लिया जाय तो अपनी भूमि अपने अधिकार में रह सकती है। इस में सब सहमत हो गये। तब

सर्व संमति से राव चद्रसेणजी के पास विश्वासपात्र मनुष्य भेज कर कहलाया कि यवन लोग अपना अधिकार बढ़ाये जाते है, यदि ऐसा ही रहा तो राठौड़ो का मारवाड़ में नाम निशान नहीं रहेगा इस लिये यहां आ जावें। राव चद्रसेणजी उन के कथन पर मेवाड़ से मारवाड़ में चले आए। गांव सरवाड़ मे उन का मुकाम हुआ वहाँ बादशाही थाना था। उसे लूट लिया। तब थाने का अध्यक्ष सज कर आया दोनों में युद्ध हुआ। थानेदार राठौडों के आगे ठहर नहीं सका वहां से भाग गया। तब इन्होंने वहां अपना अधिकार कर लिया[१]। यह वृत्तान्त संवत् १६३६ का है।

इस युद्ध मे रावजी के निम्नलिखित सरदार काम आए—

१ ऊहड़ जैमल	१ राठोड़ रामसिह	१ राठौड़ डूगरसिह
१ राठौड़ किसनदास	१ राठौड़ करमसिंह	१ „ सांगो
१ भाटी सुरतांण	१ ईंदो वैणो	१ „ केसो
१ „ महेश	१ राठोड़ महेश	और उसके १० सुभट
१ राठौड़ जसूत	१ देवड़ा विजैराज	
२ सोनगरे	१ मूंहणोत अचला[२]	

संवत् १६३६ के श्रावण वदि ११ के दिन रावजी ने सोभत पर अधिकार कर लिया। रावजो का परिजन और अन्तःपुर के लोग गांव बीजापुर में थे उन को वहां से बुला लिया और सारण की पर्वत श्रेणी में रहने लगे। जब राठौड़ों को सूचना हुई कि रावजी सारण की पर्वत श्रेणी में अन्तःपुर के साथ निवास करते है। बहुत से राठौड़ सरदार उन की सेवा में आ उपस्थित हुए। राठौड़ वैरसल और कूंपावत उदयसिंह अपने निवास-स्थान में थे वे सेवा में उपस्थित नहीं हुए। रावजी ने उन की उद्धतता से अप्रसन्न हो कर उन पर चढ़ाई की;

---

१. पारसी इतिहास लेखक लिखते है कि राव चंद्रसेणजो राव मालदेवजी के पुत्र थे। वे एक वार बादशाही हजूर में उपस्थित हो गए थे, परन्तु फिर भी वागी हो गए, और बादशाही सेना के भय से गुप्त रहा करते थे, और इस प्रतीक्षा में थे कि अवसर मिल जाय तो जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लेवें, संवत् १६३६ मे मौका पा कर अजमेर प्रांत में उपद्रव करने लगे। बादशाह ने पायंदा मोहमदखॉ, सैयद कासम, सैयद हासम और वहॉ के दूसरे जागीरदारो के नाम आज्ञा दी गई कि सब मिल कर राव चद्रसेणजी को दंड देवे। उन्होंने एकत्र हो कर रावजी पर चढ़ाई की। राव चद्रसेण ने उन का साम्हना किया और बड़ी बहादुरी से लड़ा। परन्तु अन्त में भाग कर पहाड़ों में चला गया।

२. जोधपुर के दीवान महता विजैमल का पूर्वज।

रावजी वैरसल के ठिकाने गांव दूदोड़ पर गये। उस समय देवीदास के पुत्र राठौड़ आसकर्ण ने निवेदन किया कि यदि वैरसल को मारने की हीं इच्छा होवै तो मैं उसे मार दूंगा। परन्तु वह आप ही का राजपूत है। सेवक के ऐसे क्षुद्र अपराध पर सेवक को मारना मेरी समझ मे अनुचित प्रतीत होता है। मैं उसे समझा दूंगा, यदि वह नहीं मानेगा तो वह अपने अपराध का फल आप ही भोगेगा। आज्ञो-ल्लंघन करके वह जीवित कब रह सकता है। आप अभी त्वरा न करें, यह भाग कर कहां जा सकता है? रावजी को कुछ शान्त कर आसकर्ण वैरसल के पास गया और उस को कहा कि आप ऐसा म समझना कि मुझ को मारने वाला नहीं है, या तो आप रावजी पास चलिये, नहीं तो आप की मृत्यु मेरे हाथ होगी। वैरसल इ की विभीषिका से डर गया और उस के साथ रावजी के पास गया परन्तु उस ने रवाना होते समय आसकर्ण से कहा कि मुझे रावज का भय है, यदि रावजी मेरे घर पर भोजन करें तो मुझे विश्वास जावे। आसकर्ण ने रावजी से कहा कि यह आप की सेवा में उपस्थि हो गया है, और आप को मिहमानी देना चाहता है, यदि आप स्वीकार हो जाय तो इसे भी तसल्ली हो जावै। रावजी ने स्वीका कर लिया, उस ने बड़े ठाठ के साथ मिहमानी दी, रावजी भोज करके पीछे डेरे पर गये, और तुरन्त ही उन का स्वर्गवास हो गय जिस से जनता अनुमान करने लगी कि वैरसल ने रावजी को वि प्रयोग किया था। रावजी का अन्तकाल गांव सारण के समीप सचि यास के पर्वतीय प्रान्त में संवत् १६३७ के माघ सुदि ७ सप्तमी क हुआ था।

उन के दाहस्थान पर एक शिलालेख मकराने के पत्थर में खुद हुआ विद्यमान है। उस में एक तो घोड़े पर सवार पुरुष की मूर्ति और पांच स्त्रियां उन के साम्हने खड़ी हैं। यह चित्र बतलाता है कि राव चंद्रसेणजी के साथ पांच रानियों ने पति प्रेम के वश हो क स्वर्ग को प्रयाण किया था। उस के नीचे शिलालेख भी है। उस लिखा है कि सवत् १६३७ शक संवत् १५०२ के माघ मास की सप्तम के दिन राव चंद्रसेणजी के साथ पांच रानियां सती हुई १।

राव चंद्रसेणजी के वंशज अजमेर प्रान्त में भिणाय के राजा हैं

---

१ शिलालेख की प्रतिलिपि—"श्रीगणेशायनम. ॥ सवत् १६३७ शाके १५ [०] २ माघ मासे सु। शुक्लपक्षे सातिव (सप्तमी) दिने राय.श्री चंद्रसेणजी देवी कुला सत पंच हुई ॥ यं ब्रह्मा वरुणेंद्र रुद्र मरत सतवति (स्तुन्वन्ति) दिव्यैः स्तवैर्वेदै सांगपदक्रमोप।

वे चंद्रसेणोत जोधा कहलाते हैं।

राव चद्रसेणजी बड़े वीर और साहसी पुरुष थे। इन्होंने अपने स्वात्माभिमान रखने के हेतु जोधपुर जैसे महाराज्य की परवाह न रख कर बादशाह के साम्हने कभी अपने मस्तक को नत नहीं किया। बादशाह अकबर समस्त क्षत्रिय राजाओं को अपनी मुद्रा से अंकित करना चाहते थे परन्तु इन्होंने अपने घोड़ों के दाग नही लगाया। सीसोदियों में महाराणा प्रताप और राठौड़ों में राव चंद्रसेण दोनों एकसी प्रकृति के थे। महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेण में इतना ही अन्तर था कि महाराणा ने तो अन्त में अत्यन्त खिन्न हो कर बादशाह के नाम एक पत्र लिख भेजा था। जिस से प्रतोत होता है कि वे अन्तिम समय में कुटुम्ब की दुर्दशा देख कर घबरा गये थे और वश्यता सूचक पत्र भी बादशाह अकबर के नाम लिख कर भेज दिया था। जिसे बादशाह ने बीकानेर के राठौड़ पृथ्वीराज को दिखलाया था। पृथ्वीराज उस पत्र को पढ़ कर अत्यन्त चिन्तित हुआ और उस ने राणा प्रताप को पुनरुत्साहित और उत्तेजित करने के लिये दोहे लिख भेजे, उन में का उदाहरणार्थ एक दोहा दिखाया जाता है—

दोहा

"अकबरिये इण वार, दागल की सारी दुणी
अण दागल असवार, रहियो राण प्रतापसी" ॥ १ ॥

जिन से प्रताप पुनः उत्साहित हुआ। यह वार्ता कर्नल टाड साहिब ने लिखी है। और चन्द्रशेखर लिखित महाराणा प्रतापसिंह नामक पुस्तक में भी है। उस के साथ (पृष्ठ १४३ में) यह भी लिखा है कि "प्रतापसिंह वश्यता सूचक पत्र भेज कर सुखी नही थे, जिस तरह चिन्ता से उन का मस्तिष्क जर्जरित हो रहा था। उसी तरह यह पत्र भेज कर भी उन्होंने अपने इन सभी जर्जरित स्थानों पर और भी आघात पहुंचा लिया था। प्रताप को इस के लिये परिताप हुआ था, प्रताप अपने कर्म पर लज्जित थे और यदि सच पूछा जाय तो प्रताप अपने इतने दिनों के लक्ष्य को त्यागने के कारण बड़े ही मर्माहत हो रहे थे, परन्तु अब उपाय क्या था?

यहां पर यह कहा जा सकता है कि जैसे महाराणा प्रतापसिंह विपत् के कारण अन्त में विचलित हो गये थे वैसे राठौड़ चन्द्रसेण विपद् पर विपद् आ जाने पर भी कभी विचलित नही हुए थे। अन्तिम समय तक बादशाह अकबर की सेना से लड़ते ही रहे। परन्तु वश्यता का पैगाम उन्होंने अपने जीवनकाल में कभी नही भेजा। प्रत्युत बादशाह ने राव चद्रसेणजी को शान्त करने के लिये अपने

सेनाध्यक्षों को कहा था कि यदि चद्रसेण वश्यता स्वीकार कर ले तो उस को बादशाही इनायतों का उम्मीदवार कर दें।

इस लेख से प्रतीत होता है कि बादशाह उन से सन्धि करना चाहते थे। परन्तु राव चद्रसेणजी ने अपने जात्यभिमान को त्याग कर सन्धि नहीं की, किन्तु जीवनकाल पर्यन्त बराबर लड़ाई करते रहे।

राव चद्रसेणजी के ग्यारह ११ रानियां और तीन पुत्र थे—

१ रानी कल्याण देवी। चौहान वीका के पुत्र हम्मीर की पुत्री। यह रावजी के जीवन काल में ही स्वर्गगामिनी हुई। इन के एक पुत्र हुआ। नाम

१ उग्रसेन जिन का जन्म सवत् १६१६ भाद्रपद वदि चतुर्दशी १४ को हुआ।

२ रानी कछवाही सौभाग्य देवी। फागी के स्वामी नरूका सबलसिंह की पुत्री। इन के एक पुत्र हुआ। नाम

१ रायसिंह। जिन का जन्म संवत् १६१४ भाद्रपद सुदि त्रयोदशी १३ को हुआ।

३ रानी भटियाणी सौभाग्यदेवी। पीहर का नाम कनकादेवी। जेसलमेर के रावल हरराजजी की पुत्री। यह राव चन्द्रसेणजी के साथ अग्निस्नान करके स्वर्ग को सिधारी।

४ रानी सीसोदयणी सूरजदेवी। पीहर का नाम चदा। राणा उदयसिंह की पुत्री। इन का विवाह संवत् १६१६ के चैत्र मास में हुआ था। यह रानी सवत् १६१७ मे तीर्थयात्रा करने को मथुरा गई वहां इन का स्वर्गवास हुआ। इन के पुत्र १ हुआ। नाम

१ आसकरण। इन का जन्म सवत् १६१७ के श्रावण वदि प्रतिपदा को हुआ था।

५ रानी कछवाही कुंकुमदेवी। कछवाहा जोगसिंह की पुत्री।

६ रानी ओंकारदेवी। सीरोही के देवडा मानसिंह की पुत्री। इन का विवाह संवत् १६२४ में सीरोही में हुआ था। संवत् १६५८ में मथुरा में इन का वैकुंठवास हुआ।

७ रानी भटियाणी प्रेमलदेवी। बीकमपुर के राव डूगरसिंह की पुत्री। सवत् १६८६ में स्वर्गवासिनी हुई।

८ रानी भटियाणी सहोदरा। ससुराल का नाम हरखम देवी। बीकमपुर के स्वामी केलण भाटी, चचायण के पुत्र रामसिंह की पुत्री। यह अपनी जागीर के गांव गोपालवासणी में सवत् १६८७ में स्वर्ग को सिधारी।

९ राणी भटियाणी जगीसा। ठिकाने देरावर के स्वामी मेहा तेजसिंहोत की पुत्री। यह रावजी के सती हुई।

१० राणी सोढी मेघां, ऊमरकोट के स्वामी सोढा पाता के पुत्र हेमराज की पुत्री। यह रावजी के साथ सती हुई।

११ राणी चौहान पूरांदेवी। देवलिया प्रतापगढ के स्वामी मोकल के पुत्र इन्द्रसिंह की पुत्री। रावजी के साथ सती हुई।

राव चन्द्रसेणजी स्वर्गवासी हुए थे उस समय पट्टाधिकारी पुत्र रायसिंहजी काबुल में बादशाह अकबर के पास थे। और उन के छोटे भाई उग्रसेनजी बूंदी गये हुए थे। दोनों भाई, जो आसकर्णजी के अग्र जन्मा थे, मारवाड़ में विद्यमान न होने से आसकर्णजी को राजतिलक करके राज्याधिकारी बना दिया। इन को राज्याधिकारी करने में निम्नलिखित सरदार अग्रणी थे।

१ आसकरण ईसरदास का पुत्र।

१ रामसिंह रत्नसिंह का पुत्र।

१ सादूलसिंह महेशदास का पुत्र।

१ भोपतसिंह देवीदास का पुत्र।

राव चंद्रसेणजी के स्वार्गगमन के समाचार बूंदी में उग्रसेनजी को मिले। तब वे वहां से तुरन्त बूंदी नरेश से आज्ञा ले कर मारवाड़ को रवाना हुए, और मेड़ता में आ कर मुकाम किया। वहां वे बादशाही लोगों से मिले। और उन के साथ बातचीत करके देश में उपद्रव करने का उद्योग किया। इस बात की ख़बर राव आसकर्णजी के सरदारों को हुई, तब उन्होंने एकत्र हो कर सलाह की कि इस समय उग्रसेनजी से सन्धि कर लेना ही उचित है. यदि उन से सन्धि नहीं की जायगी तो देश में उपद्रव उठ कर देश का विध्वंश हो जायगा। और परस्पर के विरोध से दोनों दुर्बल हो जायँगे। इस में सर्वनाश होने की संभावना है। इस प्रकार परस्पर सलाह करके यह निश्चय किया गया कि ज्यों त्यों उग्रसेनजी से मेल कर लेना चाहिये। फिर अपने विश्वासपात्र प्रतिष्ठित पुरुष उग्रसेनजी के निकट भेज कर कहलाया कि आप अपने स्वाभाविक शत्रु मुसलमानों का आश्रय लेने का विचार करते है। ऐसा हमने सुना है, परन्तु इन धर्मद्रोही स्वभाव वैरी मुसलमानों का आश्रय ले कर क्या आप अपने श्रेय की आशा रख सकते है? कदापि नहीं। क्या मूषक मार्जार का स्वाभाविक विरोध मिट सकता है? इस लिये आप इन स्वभाव वैरियों का साथ छोड़ कर आ जाइये, सब आप की इच्छानुसार होगा। सरदारों का विचार दोनों भाइयों मे भूमि बाँट देने का था। उस की उन्हे कुछ सूचना भी कर दी थी, जिस से सरदारों के कहने से, उग्रसेनजी, आसकर्णजी के पास सारण पहुँचे।

सवत् १६३८ के चैत्र सुदि प्रतिपदा के दिन गाँव सारण
दूसरे मजले पर वैठे हुए दोनों भाई चौसर खेलने लगे। उस खेल
हार जीत के ऊपर आपस में विवाद हो गया। और वह बढ़ता
इतना बढ़ गया कि भाई के प्राण हानि की नौवत जा पहुँची। आस
करणजी के कुछ असह्य वचनों पर उग्रसेणजी को क्रोध ने इतन
उत्तेजित कर दिया कि उन्होंने आसकर्णजी के ऊपर कटारी क
प्रहार किया, वह ऐसे मर्मस्थल में लगा कि आसकर्णजी का काम
तमाम हो गया। उग्रसेनजी के मन में आसकर्णजी राज्य के स्वामी
हो जाने से क्रोध तो भरा हुआ था ही, और यह इन को बहाना मिल
गया। आसकर्णजी की वह दशा देख कर उन के सरदार राठोड़
शकर के पुत्र सेखा ने उग्रसेनजी के हाथ में से कटारी छीन क
उग्रसेनजी पर प्रहार किया, जिस से उग्रसेनजी का भी प्राण पर्त
फलेवर पंजर से निकल कर परलोक को प्रयाण कर गया। इस
लड़ाई में आसकर्णजी का सुभट मेड़तिया मानसिंह घायल हुआ था।

राव आसकर्णजी के स्वर्गवास करने पर उन के साथ उन की
धर्मपत्नी पति वियोग की दुःसह कराल दुःखानल के संताप को
सामान्य लौकिकानल की ज्वाला के ताप से अति तुच्छ समझ कर
प्रियतम के शरीर के साथ चिता में वैठ कर इस अस्थिर मांसादिमय
लौकिक शरीर को दग्ध कर दिव्य देह को प्राप्त हो पति के साथ स्वर्ग
को सिधारीं। आसकर्णजी का शिलालेख संवत् १६३७ शक सवत
१५०३ का मिला[1] है। उस में लिखा है कि राय आसकर्णजी देवलोक
को सिधारे उन के साथ १ सती हुई।

राव आसकर्णजी और उग्रसेनजी के इस प्रकार एक ही दिन में
मारे जाने पर इन दोनों के सरदारों ने परस्पर परामर्श करके राय

---

१ इस शिलालेख में संवत् १६३७ और शक संवत् १५०३ लिखा है और शक संवत्
के और वि० संवत् के १३५ वर्ष का अंतर है जिस से तो संवत् १६३७ नहीं,
संवत् १६३८ होना चाहिये। परन्तु मारवाड़ देश में वर्षारंभ श्रावण वदि १
प्रतिपदा से माना जाता है और पंचांग का वर्षारंभ चैत्र सुदि प्रतिपदा से गिना
जाता है। जैसा कि पंचांगों में देखने में आता है। इस लिये यहां संवत् १६३७
मारवाड़ी संवत् समझना चाहिये। शिलालेख में उसी हिसाब से सवत् १६३७
और शक संवत् १५०३ लिखा गया है।

शिलालेख की प्रतिलिपि—

"श्रीगणेशायनमः॥ संवत् १६३७ वर्षे शाके १५०३ [– –] मासे
सु (शु) क्लपक्षे पडिवा १ राय श्री आसकर्णजो (जी) देवलोक
पधारा (रि) या तत् समये सती १ हुई॥

चंद्रसेणजी के ज्येष्ठ पुत्र रायसिंहजी के पास अपना मनुष्य भेज कर कहलाया कि यहां तो दैव घटना ऐसी हुई है, राठौड़ों का कोई नेता नहीं है आप शीघ्र आ कर अपने देश की रक्षा करें। विना स्वामी के सेना कुछ नहीं कर सकती। नीति वाक्य है "हतं निर्नायकम् सैन्यम्" उस समय रायसिंहजी बादशाह अकबर की आज्ञा से काबुल की ओर अकट पार थे। सरदारों के मनुष्य ने उन के पास पहुंच कर कहा कि मारवाड़ इस समय आप को चाहती है। आप के भाई आसकर्ण और उग्रसेन की तो दैव से यह दशा हुई है, और राठौड़ बिना शिर के शरीर की भांति हो रहे हैं, आप मारवाड़ में चल कर अपनी भूमि को संम्हालें।

रायसिंहजी ये समाचार सुन कर अत्यन्त शोकाकुल हुए और देश को जाने के लिये अत्यन्त उत्कंठित हुए, परन्तु बादशाह की आज्ञा बिना आना उन के हाथ थोड़े ही था, बादशाह से सीख के लिये प्रार्थना कराई गई। बादशाह ने कृपा करके उन को देश में आने के लिये आज्ञा प्रदान की, और उस के साथ राव पदवी प्रदान करके सोभ्रत जागीर में दिया। बादशाह की आज्ञा पा कर राव राय-सिंहजी काबुल से सोभ्रत आए।

संवत् १६३६ में ये गद्दीनशीन हुए। कुछ समय के अनन्तर बादशाह काबुल का देश विजय कर के पीछे आए। बादशाह का मुकाम फतहपुर में था, वहां राव रायसिंहजी संवत् १६४० में उन के चरणों में उपस्थित हुए। उस समय उदयपुर के महाराणा उदयसिंह-जी का छोटा पुत्र जगमाल बादशाह के पास हाज़िर हुआ, जिसे बादशाह ने सीरोही का आधा राज्य का प्रदान किया था, परन्तु सीरोही के राव सुरताण ने उसे कब्जा नहीं दिया, बादशाह ने उसे सीरोही के आधे राज्य का कब्जा दिलाने के लिये राव रायसिंहजी को उस के साथ भेजा, और अपनी सेना साथ में दे कर आज्ञा दी कि इसे सीरोही के आधे राज्य का कब्जा दिला दो। ये दोनों बादशाह से विदा हो कर सीरोही के देश में आए। बादशाह ने इन को तो भेजा ही था, परन्तु गुजरात के हाकिम एतमादखां के नाम भी आज्ञा लिख भेजी थी कि जब ये वहां पहुंचे तो सीरोही का परगना जगमाल को सौंप देवें। और कुछ विलम्ब देखे तो कुछ सेना जगमाल की सहायता के लिये छोड़ कर चला जावे। एतमादखां ने वहां पहुंच कर आज्ञानुसार व्यवहार किया। वह रायसिंह, विजा देवड़ा, और जालोर वालों को जगमाल की सहायता के लिये छोड़ गया। एतमादखां के

जाने के पश्चात् देवड़ा राव वापिस आया। विजा देवडा और जालोर वाले उस से लड़ने को गये।

सीरोही का देश पर्वतमय है, राव सुरतान ने अचानक रात्रि में इन पर आक्रमण किया, इन्हें यह मालूम नहीं था कि राव सुरतान रात्रि में हमला करेगा, ये कुछ असावधान थे, और वह सज धज कर आया था, गांव दताणी में इन दोनों का मुकाबला हुआ, दोनो में महाघोर युद्ध हुआ; इस युद्ध में बादशाही सेना के सेनापति राव रायमलजी और जगमाल दोनों २८४ मनुष्यों के साथ मारे गए। और दांती वाड़े का कोली सीह १५ मनुष्यों के साथ मारा गया।

उस समय उन का समस्त परिजन और अन्तःपुर सोभत में था। संवत् १६४० के मार्गशीर्ष वदि २ को रायसिंहजी के स्वर्गवासी होने के समाचार सोभत पहुंचे उस समय उन की दो रानियां सती हुईं।

१ कछवाही रानी राजांजी। कछवाहा आसकरणजी की पुत्री।

२ सोनगरी । सोनगरा भानजी की पुत्री।

राव चन्द्रसेणजी के वंशज अजमेर प्रान्त में भिणाय के राजा हैं। वे चद्रसेणोत जोधा कहलाते हैं। राव चद्रसेणजी के पौत्र, कर्मसेन के पुत्र श्यामसिंह को भिणाय का राज्य बादशाह अकबर ने दिया था। लिख आए हैं कि अजमेर प्रान्त में भीलों का सरदार मादलिया लूट-पाट करता था। राव चद्रसेणजी ने अपनी राठोड़ सेना ले जा कर उस पर आक्रमण किया। भीलों का सरदार अपनी सेना ले साम्हने आया। दोनों मे विकट सग्राम हुआ। उस युद्ध में मादलिया रावजी के हाथ मारा गया। सेना नायक के मारे जाने पर भील भाग गये। रावजी ने भिणाय पर अपना अधिकार कर लिया था। परन्तु उस दौड़-धूप के समय में रावजी वहां स्थिर हो कर ठहर नहीं सके। रावजी के अनन्तर उन के पौत्र कर्मसेन ने जा कर फिर भिणाय पर अधिकार कर लिया था। उन के पश्चात् उस के पुत्र श्यामसिंह ने वहां स्थिर रह कर उस प्रान्त में जो उपद्रव था उस को बिलकुल मिटा दिया। तब बादशाह अकबर के पास अजमेर के सूबहदार ने श्यामसिंह की प्रशंसा करके अर्ज किया कि राठोड श्यामसिंह बड़ा बहादुर है, इस ने लुटेरों को मार कर अजमेर प्रान्त को निरुपद्रव कर दिया है। बादशाह ने सूबहदार के शिफ़ारिस करने पर उस की अनुपम सेवा से प्रसन्न हो कर श्यामसिंह को छः परगनों के साथ भिणाय का राज्य प्रदान किया जिस में ८४ गांव थे। श्यामसिंह के उदयभाण और उस के भाई गिरधारीसिंह के अखैराज पुत्र हुआ।

यामसिंह ने इन दोनों में उस जागीर को विभक्त कर दिया। उदयभाण के अधिकार में ४६ गांव और अखैराज के बंट में ३८ गांव रक्खे गये।

उदयभाण का पट्टस्थान भिणाय और अखैराज का पट्टस्थान देवलिया नियत हुआ। उदयभाण ने पुत्र न होने के हेतु अपनी छोटी अवस्था में अखैराज के पुत्र नरसिंहदास को अपने गोद ले लिया था। उसे गोद लेने के पश्चात् उदयभाण के दो पुत्र हुए। केसरीसिंह और सूरजमल। केसरीसिंह भिणाय का पट्टाधिकारी हुआ। जिस के अधिकार में चौबीस ग्राम रहे। सूरजमल को दश १० गावों के साथ बांदनवाड़ा दिया गया। और नरसिंहदास को तीन ३ गावों के साथ टांटोती ठिकाने का अधिकारी किया गया।

इस समय भिणाय राज्य के अन्तर्गत २५ ग्राम हैं। सालाना आय उस का ८०००० असी सहस्र है। तीन ठिकाने इस राज्य के मातहत है। सोलियां, सारण, और संतोला। एक कोटड़ी चारण को दी गई है।

संतोला का ठिकाना किसनगढ महाराज के गिरवे है।

भिणाय के राजा को गवर्नमेंट को सालाना सात हज़ार सात सौ सत्रह ७७१७ रुपये देने पड़ते हैं।

भिणाय के राजा को राजा की पदवी और छत्र चमर जोधपुर महाराजा विजयसिंहजी ने संवत् १८४० युद्ध मे अत्युत्तम सेवा करने के कारण दिये थे। वह वंश परंपरा प्राप्त पूर्ववत् यथावत् है।

वर्तमान राजा कल्याणसिंह हैं। इस का जन्म ई० सं० १८९१ ता० ३ मार्च (वि० सं० १९३५) में हुआ था। यह सादूलसिंह का पुत्र है। सादूलसिंह राजा मंगलसिंह का पुत्र था।

राजा मंगलसिंह सी० आई० ई० यह ऑनरेरी मजिष्ट्रेट और नायब जज था। इसे ई० स० १८७७ में राजा बहादुर की पदवी गवर्नमेन्ट से मिली थी।

ई० स० १८९२ (१९४९) तारीख २९ जून को मंगलसिंह के स्वर्गवास करने पर ज्येष्ठ पुत्र उदैसिंह राज्याधिकारी हुआ। उदैसिंह ई० स० १८९७ (१९५४) तारीख २९ जून को स्वर्गवासी हो जाने पर उस का छोटा भाई सादूलसिंह ई० स० १८९७ ता० १२ जुलाई को राज्याधिकारी हुआ। इस ने अजमेर मेओ कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी। और ई० स० १९१२ (१९६९) में राज्याधिकार प्राप्त हुआ था।

मोटाराजा उदयसिंहजी—इनका जन्म विक्रम संवत् १५९४ माघ शुक्ला त्रयोदशी १३ (ई० सन् १५३८ ता० १४ जनवरी) रविवार को हुआ था। इन के जन्म समय का ग्रहचक्र इस प्रकार है:—

जन्म कुण्डली

म ४
३ चं
२ रा
१ वृ
५
६ श
१२
७
९ शु
११ बु
८ के
१० सू

राव मालदेवजी ने इन को अपनी विद्यमानता में फलोधी का परगना दे दिया था इसलिए यह बहुधा वहां रहा करते थे। और राव चन्द्रसेणजी पिता के पास ही रहा करते। राव मालदेवजी के सं० १६१९ में स्वर्गवास करने पर राव चन्द्रसेणजी जोधपुर के स्वामी हो गए। तब ये सवत् १६१९ मे ही सेना ले कर जोधपुर की ओर चढ़ धाए राव चन्द्रसेणजी भी जोधपुर से सेना ले कर साम्हने गए। गॉव लोहावट मे, जो जोधपुर से २५ कोस के अनुमान है, दोनो में संग्राम हुआ। जिस में हार जीत किसी की नही हुई। उदयसिंहजी को लौट कर पीछे फलोधी जाना पड़ा। और चन्द्रसेणजी जोधपुर आए।

तत्पश्चात् फलोधी में निवास करते मोटा राजा ने पश्चिम की तर्फ पार्श्ववर्ती भाटियों से विरोध करना शुरू किया। कारण यह कि सिंध और थटा से जो माल इधर को आता वह वीकूंपुर हो कर आता था। व्यापारियों ने आराम देख कर वही मार्ग नियत कर रखा था जिस से वीकूंपुर वाले भाटियों को अच्छा लाभ था। मोटाराजा ने दवाव डाल कर कहा कि सिंध और थटा से माल आता है वह फलोधी में हो कर जायगा। वीकूंपुर हो कर नही जा सकता। इस के अलावा वीकूंपुर के कितने ही गांव फलोधी प्रांत के अंतर्गत कर लिए। इस बात से क्रुद्ध हो कर भाटियों ने फलोधी में आ कर उपद्रव किया। केल्हण भाटी जोधा का पुत्र रायचद फलोधी में निवास करता था, उस की गाएँ फलोधी के कोट में से ले गए। उन को वापिस लाने के लिए मोटाराजा के मनुष्य गए। दोनों का मुकाबला हुआ। लड़ाई हुई भाटी भाग गए और मोटाराजा के मनुष्य गाएँ पीछे ले आए। इस लड़ाई में मोटाराजा के निम्न लिखित सुभट मारे गए:—

१ भाटी सूरजमल, किसनावत   १ भाटी हमीर साकरोत

१ भाटी सुरतांण दुर्जन सालोत । यह केल्हण भाटी मोटा राजा का साला था ।

१ राठोड़ रायसल दुर्जणसालोत मांडणोत १ राठोड़ कान्हो दुरजन सालोत ।

शत्रुदल के कितने मरे इस का पता नही चलता । इसी सिलसिले में मोटाराजा ने सुना कि सिंध से माल ले कर ऊँटो की कतार आती है और माल भी बहुत है । मोटाराजा अपने वीर भटों को ले कर लूटने चले । उधर से भाटियों का १००० दल आया । जिस का नेता भाटी दुरजणसाल का पुत्र भानीदास था । इस समय मोटाराजा के साथ केवल २५ वीर क्षत्रिय थे, परंतु इन्होंने भाटियों के दल को मार भगाया और शत्रुदल का नेता भाटी भानीदास इस लड़ाई में मारा गया ।

भाटी भानीदास के मारा जाने पर उस का छोटे भाई डूंगरसी ने भाई का बदला लेने के लिए सेना एकत्र की । जब उस का बल बँध गया तब उस ने फलोधी पर चढ़ाई की । इधर से मोटा राजा अपने वीर सुभटों को ले कर साम्हने गए । दोनों मे घमासान युद्ध हुआ । हार जीत किसी की नही हुई । इस युद्ध में मोटा राजा के निम्न लिखित सरदार मारे गएः—

१ राठोड़ वैरो जैसा का पुत्र चांपावत.

१ राठोड़ हींगोलो वैरिसाल का पुत्र.

१ भाटी हमीर आसावत.

१ राठोड़ जोगीदास भाण का पुत्र रूपावत.

१ भाटी रतनो पीथावत.

१ भाटी रामचंद जोधावत

१ साहणी नेतसी जैसिंहोत.

राठोड़ जैमल भाण का पुत्र घायल हो कर निकला ।

शत्रुदल में—भाटी कान्ह किसनावत घायल हो कर गिर गया था उसे उठा कर लाए । राव डूंगरसी का पुत्र राव मांडा वैरसलपुर का अधिपति मारा गया ।

वि० संवत् १६२७ के श्रावण में अकबर बादशाह ख्वाजा की यात्रा के निमित्त अजमेर आया और वहां से नागोर पहुँचा उस समय जोधपुर राज्य के आकांक्षी निम्न लिखित भूपाल बादशाह के पास हाजिर हुए । जिन में राव चंद्रसेणजी को बादशाह का इशारा भी था । राव चद्रसेणजी १ उन का भाई रायमल २ बड़े भाई उदयसिंहजी और बीकानेर के राजा कल्याणसिंहजी अपने पुत्र रायसिंहजी सहित ।

राव चंद्रसेनजी ने तो बादशाह की सेवा करने से अस्वीकार किया और पीछे चल दिए। मोटाराजा उदयसिंहजी ने बादशाह की सेवा स्वीकार की और वे बादशाह के साथ रहने लगे। इन को बादशाह की सेवा में रहते कुछ समय हो गया था।

वि० संवत् १६३५ में बुंदेलखंड में ओरछा के स्वामी बुंदेला मधुकरशाह ने बुंदेलखंड में उपद्रव किया। उस को दंड देने के लिए बादशाह अकबर ने अपने सेनानायक सादिकखां को सेना दे कर संवत् १६३५ के चैत्र शुक्ल पक्ष (ई० सन् १५७८ मार्च) में बुंदेलखंड पर भेजा। उस की सहायतार्थ मोटाराजा उदयसिंहजी भेजे गए। इन्होंने वहां अपने बल और पराक्रम से शत्रुओं को पराजित कर देश को निरुपद्रव कर दिया। नरवर का किला, जो अर्से से विजित नहीं होता था, उस को विजय करने में आप ही प्रधान नायक थे। मोटाराजा की इस वीरता को देख कर जहां कहीं कठिन काम पड़ता बादशाह इन्हीं को भेज दिया करते थे। ग्वालियर प्रांत में समावली प्रदेश में गूजरों का बड़ा ज़ोर था, वे हर समय लूट पाट करते और उपद्रव किया करते थे। बादशाह के पास उन की शिकायत गई तब बादशाह ने उस उपद्रव को शांत करने के लिए मोटाराजा को भेजा। इन्होंने वहां जा कर गूजरों को तंग किया। गूजर लोग भी बड़े वीर थे, सान्हने आ कर डट गए। दोनों में लड़ाई हुई। गूजर राठोड़ों की तलवार का ताप कब सह सकते थे? कितने ही भाग गए और जो रणभूमि में डटे रहे वे मारे गए। मोटा राजा की विजय हुई। इस लड़ाई में मोटाराजा का कृपापात्र वीर गेहलड़ा अचला धूरमा का पुत्र मारा गया। महाराज ने समावली प्रदेश में अपना अधिकार कर लिया और वहां की कोतवाली का अधिकार सोभा को दे दिया गया।

वि० संवत् १६३९ के चैत्र वदि १ (ई० सन् १५८३ ता० ९ मार्च) को बैरमखां के पुत्र मिर्जाखां (खानखाना अबदुर्रहमान) को बादशाह ने गुजरात के बागी मुजफ्फरशाह का उपद्रव मिटाने के लिए भेजा। उस की सहायता के लिये मोटाराजा भेजे गए। बादशाह ने मोटाराजा को मिर्जाखां के साथ जाने की आज्ञा देने के साथ राजा पदवी और एक हजारी जात व सवार का मन्सब दे कर जोधपुर दे दिया। और उस के साथ मारवाड़ के ३ परगने दिये।

१ सोजत १ सिवाणा १ जैतारण १ और चौथा।

और हाड़ोती का कोटा व चमारी१। मोटाराजा को जागीर मिलते ही कोटा पर अधिकार करने के लिए भंडारी मना को भेजा।

---

(१) किसी ख्यात में चमारी के स्थान में बधनोर लिखा है।

वहां वालों ने मुकावला किया। लड़ाई हुई जिसमें मोटा राजा का सुभट हुलवंशी कमा मारा गया।

मोटाराजा बादशाह के मन्सबदार बन, उस से आज्ञा पा कर जोधपुर आए। और संवत् १६४० के भाद्रपद मास की वदि १२ (ई० स० १५८३ ता० १५ अगस्त) को अपने पितृसिंहासन पर विराजमान हुए। मार्गशीर्ष मास मे मिर्जाखां का मुकाम सोजत के समीप हुआ उस समय मोटाराजा भी उन के शामिल हुए। उस समय सोजत मे राव चन्द्रसेणजी का परिजन और राव मालदेवजी के आश्रित मनुष्य भी सोजत मे थे। उन मे से कुछ मनुष्य आ कर मोटा राजा से मिले। और उन्होने अपना दुःख निवेदन किया। तव मोटाराजा ने उन को धैर्य दे कर कहा कि तुम घवराओ मत हम सव प्रबंध करे देते हैं।

मोटाराजा ने यह वृत्तांत नवाव से कहा तव नवाव ने सोजत का अधिकार मोटा राजा को दे दिया। और कहा कि अब तुम अपनी इच्छानुसार प्रबंध कर सक्ते हो।

उस समय वगड़ी का अधिकार राठोड़ पृथ्वीराज के पुत्र वाघ को वादशाह का दिया हुआ था।

कंटालिये पर राठोड़ देवीदास के पुत्र भोपत का अधिकार था।

इन ठिकानों के सिवा सर्व प्रांत पर मोटाराजा का अधिकार हुआ। तव मोटाराजा ने सोजत के निम्नलिखित ठिकाने अपने सामंतों को दिए:—

१ पीपाड़ का ठिकाना राम[1] को दिया गया।

१ आसकरण ने जो मांगे वे गांव दिए।

१ धिणले का ठिकाना प्रयागदास को दिया गया।

राठोड़ खींवा का वरताव ठीक न रहने से उसे निकाल दिया।

कह आए हैं कि राव चन्द्रसेणजी का परिजन वहीं था उन में से कुछ नाम लिखे मिलते हैं:—

१ ठाकुर राठोड आसकरण देवीदासोत, १ राठोड खींयो मांडणोत
१ राठोड़ राम रतनसीयोत १ पचोली नेतो
१ राठोड प्रयागदास मांडणोत १ भंडारी मनो

ये लोग जव तक राव रायसिंहजी विद्यमान रहे तव तक उन के साथ रहे। और वि० सं० १६४० के कार्तिक मास में दताणी के मुकाम पर सीरोही के राव सुरतांण के मुकावले में उन के मारा जाने

(1) राव मालदेवजी का पुत्र रतनसिंह और उस का पुत्र यह राम है।

पर सोजत में चले आए थे। मोटाराजा ने इन को मार्गशीर्ष मास में जोधपुर पहुँचा दिया[1]। इन के साथ राव मालदेवजी के मनुष्यों को भी, जो मलियाकोट मे थे, जोधपुर पहुंचा दिया।

वि० संवत् १६४० के मार्गशीर्ष मास में नवाब और मोटाराजा सोजत से रवाना हो कर गुजरात की ओर बढ़े। पौष वदि ८ को इन दोनो सेनानायको ने सेना ले कर मुजफ्फरशाह पर आक्रमण किया। राजपीपली के मुकाम पर घोर युद्ध हुआ। मुजफ्फर भाग गया। बादशाह की विजय हुई। इस युद्ध में मोटाराजा अग्रणी थे। इन के निम्नलिखित सुभट मारे गए :—

१ भाटी सादूल मानावत। यह भाटी गोविददास का भाई था।
१ भाटी गोपालदास राणावत रूपसीयोत।

वि० संवत् १६४१ के ज्येष्ठ मास में मैणा हरराजिया १६ मनुष्यों के साथ मरवा दिया गया। कारण यह हुआ कि यह किले की चौकी पर था, मोटाराजा को उस के विषय में संदेह हो गया था।

इसी वर्ष में मोटाराजा ने सीरोही के राव सुरताण पर चढाई की। उस का कारण पहले कहा जा चुका है कि उक्त राव ने राव चद्रसेणजी के पुत्र रायसिंह को मार डाला था। उस का वदला लेने के लिए मोटाराजा ने उस पर चढ़ाई की। मोटाराजा ने जालोर के शासक जामवेग को सहायता में चाहा। वादशाह अकबर ने उसे आज्ञा दे दी। फिर चढ़ कर दोनों सीरोही पर गए। राय सुरताण ने इस समय उन से मुकावला करने में अपना कल्याण न समझ कर प्रणत हो दड देना स्वीकृत किया। ख्यातो में लिखा है कि दो लाख फीरोजी और १३ घोड़े दड मे दिये। और दो आसामी ओल में दीं। एक तो देवड़ा सोवतसी तोगा की माता राठोड किसनां। और दूसरा देवडा सूजा का पुत्र सामदास, जो देवडा पृथ्वीराज का भाई था। इन ओल की आसामियों को मोटाराजा ने अपने विश्वास-पात्र ऊहड गोपालदास और राठोड पता के पुत्र भोपत के साथ जोधपुर भेज दिया था[2]।

---

(१) मिर्जाखां को वादशाह ने संवत् १६३९ के चैत्र मास में गुजरात पर जाने की आज्ञा दी थी परतु सेना की तैयारी करने में उसे विलम्ब हुआ। और मोटाराजा को भी सेना एकत्र करने के लिए समय की आवश्यकता थी। मार्गशीर्ष मास में इनका मुकाम सोजत में हुआ।

(२) यह वृत्तांत महाराजा जसवतसिहजी प्रथम के समय की (वि० सं० १७२४—२५) लिखी पुरातन पुस्तक से लिया गया है। पडित गौरीशकरजी

वि० संवत् १६४२ के भाद्रपद वदि १० को बादशाह अकबर लाहोर से काबुल गया उस समय मोटाराजा और उन के पुत्र सूरसिंहजी बादशाह के पास लाहोर मे थे। बादशाह के कहने से मोटाराजा ने अपने प्रिय पुत्र सूरसिंहजी को बादशाह के साथ काबुल भेज दिया। और महाराजकुमार के साथ राठोड़ देवीदास के पुत्र आसकरण को भेजा। महाराज कुमार को बादशाह की सेवा में भेज कर महाराज जोधपुर आए।

वि० संवत् १६४३ में मोटाराजा का जनाना फलोधी से आ रहा था। रथ के बैल थक गए। तब राजकीय मनुष्य एक चारण की बैलों की जोड़ी ले आया। चारण उस समय कूप पर नही था। यह कूप पर आया और जोड़ी नही देखी तो अपने मनुष्य से पूछा कि बैल की जोड़ी कहां गई? उस ने कहा कि राजकीय मनुष्य ले गया। सुनते ही वह तुरंत रथ के पास पहुँचा और बलात्कार करके अपनी जोड़ी ले गया। राजकीय पुरुषों ने चारण समझ कर उसे छोड़ दिया। जब जनाना जोधपुर पहुँचा और मोटाराजा को चारण की धृष्ठता ज्ञात हुई तो चारण को बुला कर धमकाया। जिस पर उस ने और बदमाशी की। और अन्य चारणों को उत्तेजित किया कि आज मेरे साथ यह बरताव हुआ है, कल आप लोगों के साथ होगा। जिस पर चारणों ने मोटाराजा के विषय मे अश्लील और निंद्य कविता निर्माण की। मोटाराजा को ज्ञात होने पर चारणों के गांव जब्त कर लिए। उनमें से जिन गांवों के नाम मिले है वे लिखे जाते है:—

१ दुणलो २ रीसांणियो ३ जोगड़ावस ४ पलासलो ५ गुजरावस ६ विठोरो खुर्द ७ बुटेला ८ हापित ९ जाइबो १० कोटड़ो।

चारणों ने अपने गांव जब्त होने पर आउवे के ठिकाने में, जहां मोटाराजा का मुकाम था, एकत्र हो कर मोटाराजा से प्रार्थना की कि हम आप के याचक हैं आप को हमारी ओर कृपा दृष्टि रखनी चाहिए। परन्तु मोटाराजा ने उन की प्रार्थना पर ध्यान नही दिया। तब चारणों

ओझा ने इस घटना को तो छोड़ दिया है और वि० सं० १६४४ की घटना को सीरोही के इतिहास में लिखा है (देखो पृष्ठ २३४)। पंडितजी ने जो घटना लिखी है वह दूसरी बार की है। फरिस्ता इस घटना का समय १६५० लिखता है। और वीरविनोद इतिहास का लेखक कविराजा श्यामलदास इस घटना को संवत् १६४८ में बतलाता है।

ने आउवे के ठाकुर चांपावत गोपालदास मांडणोत से कहा कि आप महाराज से अर्ज करें और हमारा सकट निवृत्त करें। चांपावत गोपालदास ने भी महाराज से अर्ज की परन्तु वह निष्फल हुई। तब उस ने चारणों से कहा कि मैं तुम्हारे शामिल हूं, अब तुम्हारी इच्छा हो वह करो। तब आउवे के महादेव के मदिर में, जो बहुत पुरातन है, सब चारण एकत्र हुए। उस मामले में चारणों ने राजगुरु पुरोहितों को भी अपने शामिल कर लिया था। सब एकत्र हुए। और चांदी याने आत्मघात (खुदकुशी) करने का निश्चय किया। इन चारणों में चारण अखा और आढा दुरसा अग्रणी[1] थे। इन्होंने अपने गले में छुरी मारी। अखा तो कारगीर लगने से मर गया और दुरसा नहीं मरा। वह मारवाड छोड़ कर सीरोही के राज्य में चला गया[2]। चांपावत गोपालदास ने कहा था कि मै तुम्हारे शामिल हूं इस लिए वह भी मारवाड छोड़ कर चला गया। चारणों के इस हठ पर मोटा राजा ने उन के और ब्राह्मणों के भी, जो उन के शामिल हो गए थे, गांव जब्त कर लिए। उन गावों के नाम ये लिखे मिलते हैं:—

१ बाहडसां २ मोवावस ३ आकडावस ४ रैहनडी ५ नेवली ६ वासणी ७ वोरनडी ८ खारियो ९ गोडांगढी १० सुमालियो ११ गिरवरियो १२ विणवाडो ये १२ बारह गांव ब्राह्मणों के जब्त किये गए। और अन्य गांवों में दड लेना नियत किया।

---

(१) कविराजा श्यामलदास ने वीरविनोद नामक इतिहास ग्रथ में आउवे में एकत्र होने वाले चारणों की सख्या दो हज़ार २००० लिखी है।

(२) पडित गौरी शकरजी ओझा सीरोही के इतिहास (पृष्ठ २३२) में लिखते है कि "चारण कवि आढा दुरसा को, जो राव रायसिहजी के साथ था, जखमी हुआ पाया। महाराव के एक राजपूत ने उस को देख कर कहा कि इस सर्दार को भी दूध पिलाना (मार डालना) चाहिए। इस पर दुरसा ने कहा कि मैं राजपूत नहीं, किन्तु चारण हूं, राजपूतों को मेरा मारना उचित नहीं है। इस पर महाराव ने कहा कि यदि तुम चारण हो तो इस समरा देवड़ा की तारीफ़ में, जो अभी मारा गया है, कोई दोहा कहो। इस पर उस ने तत्क्षण यह दोहा कहा-"धर राजा जस डूंगरा, ब्रद पोतां सत्रहाण। समरे मरण सुधारियौ, चहुँ थोकां चहुँवांण" यह दोहा सुनते ही महाराव बहुत प्रसन्न हुए और उस की यहां तक कदर की कि उस को पालकी में विठला कर अपने साथ ले गए और उस के घावों का इलाज करवाया। फिर उस के आराम होने पर उस को अपना पोलपात बना कर अच्छी जागीर दी।" यह असंभव है कि सीरोही का पोलपात चारण मारवाड में आकर खुदकुशी करे। यदि वह उस समय मारवाड़ में आ गया हो तो कदाचित् संभव है।

वि० संवत् १६४३ में राजकुमार भगवानदास, भोपत दलपत और जैतसिंह मोटा राजा की आज्ञा ले कर सींधलों पर चढ़ कर गए। सींधलो के महाराणा की मदद थी उसी से वे जोधपुर राज्य में उपद्रव किया करते थे। राज कुमारो ने उन पर आक्रमण किया। सींधल मुकाबला मे आए और लडाई हुई। अन्त में सींधल भाग कर मेवाड की तर्फ चले गए। उन की भूमि पर राजकुमारो ने अपना अधिकार कर लिया। इस लड़ाई मे ऊहड़राम जैमलोत ग्राम का द्वार तोडता मारा गया। इसी वर्ष मे राठोड़ कूंपा के पुत्र मांडण को आसोप की जागीर दी गई।

वि० संवत् १६४४ में बादशाह अकबर ने कछवाहा दुर्जनसाल को कहा कि मोटाराजा का पुत्र सूरसिंह होनहार है और तुम्हें अपनी कन्या योग्य वर को देनी है यह संबध करने योग्य है। बादशाह के कहने से दुर्जनसाल ने अपनी कन्या सौभाग्यदेवी सूरसिंहजी को लाहोर मे व्याह दी।

इसी वर्ष में देवड़ा विजा को बादशाह ने सीरोही का फरमान लिख दिया। और उस की सहायतार्थ मोटाराजा उदयसिंहजी और जालोर के शासक जामबेग को भेजा। ये दल बल सहित सीरोही पर गए। फाल्गुन सुदि ५ को इन्होने नीतोडा गांव लूटा। एक मास पर्यंत उन्होंने वहीं मुकाम कर दिया। राव सुरतांण इन का प्रबल आक्रमण और दृढ़ विचार देख कर सीरोही छोड़ पहाड़ो मे चला गया। और उस ने मोटाराजा से सधि करने के लिए उन के पास अपने सरदारों को भेजा। उन्होंने बगडी के ठाकुर जैतावत पृथ्वीराज के पुत्र वैरसल से मिल कर निश्चय कर लिया था कि मोटाराजा के समीप जाने में इन को किसी प्रकार की हानि नही होगी। परन्तु मोटाराजा ने काबू में आये हुए शत्रु को छोड़ना उचित न समझा और राम रतनसिंहोत को इशारा कर दिया कि ये जीते न चले जायं। राम ने मोटाराजा की इच्छानुसार उन को अपने वीरसुभटों से घेर लिया और वहीं मार डाला। उन के नाम ये हैः—

१ देवड़ा सांवतसी सूरावत	१ देवड़ा तोगा सूरावत।
१ देवड़ा पता सूरावत	१ राडधरा हमीर कुंभावत,,
१ राडधरा वीदा सिकरावत	१ चीबा जैता,,

राठोड़ वैरसल की इच्छा के विरुद्ध यह कार्य हुआ जिस से वैरसल पेट में छुरी मार कर मर गया। उस वैरसल का स्मारक चिन्ह (चबूतरा) गांव नीतोड़ा में विद्यमान है।

तत्पश्चात् विजा ने सुरतांण का पाप काटने के लिए जामवेग से कहा कि राव सुरतांण आबू पहाड़ में छिपा हुआ है उस का अंत न हो जाय तब तक सीरोही पर अधिकार करना कठिन है इस लिए उसे किसी प्रकार मार डालना चाहिए। यह विचार कर दोनों सेना लेकर वास्थानजी के पास पहुंचे, जहां महादेव का मंदिर है। इन्होंने वहां जाकर मुकाम किया। राव सुरतांण वहीं कहीं छिपा हुआ बैठा था। रात्रि में अचानक इन के ऊपर आ पड़ा। रात्रि का समय था, ये असावधान थे, सुरतांण सज कर आया था, विजा सुरतांण के हाथ मारा गया। और जामवेग का भाई घायल हुआ। जिसे डोली में डाल कर लाए। बादशाही सेना वहां से लौट आई॥

मोटाराजा ने विजा के मारा जाने पर राव कल्ला को सीरोही की गद्दी पर दुबारा बिठा दिया। और अपनी सेना को लेकर पीछे मारवाड़ चले आए।

मूहणोत नैणसी इस वृत्तांत को इस भांति लिखता है। "फिर देवड़ा विजा हरराजोत बादशाह के पास पुकारने गया। और मोटा-राजा को जोधपुर मिला जिस से इन का भी दावा था। बादशाह ने जालोर के शासक जामवेग और मोटाराजा को सीरोही पर भेजा। इन्होंने सीरोही के राज्य में आकर उपद्रव किया। और देश को लूटा। देवड़ा पता सांवतसीयोत, तोगो सूरावत, सूर नरसिंहोत, चींबो जैतो पींवावत इन को दगे से मरवा डाला इसी मौके पर राठोड़ बैरसल पृथ्वीराज का पुत्र (बगड़ी ठाकुर) कटारी खाकर मरा। उस समय देवड़ा विजा और जामवेग मोटाराजा से अलग फ़ौज लेकर गए वहां देवड़ा विजा राव सुरतांण के हाथ मारा गया।"

मोटा राजा ने बादशाह अकबर की सेवा करते वीरता के कार्य किये थे परन्तु उसी वीरता को रखते हुए यवनों से लड़ कर जोधपुर का राज्य पुनः प्राप्त करते तो इन का भी नाम मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के समान चिरस्मरणीय होता। इन्हीं के समय (वि० सं० १६४४ में) मारवाड़ पर मुसलमानों का आंतरिक प्रभाव पड़ा। और उसी से कल्ला रायमलोत अप्रसन्न हुआ।

कल्ला (कल्याणदास) अपने पिता रायसिंह की जागीर नागोर पर अधिकार करता था। वह नागोर छिन जाने पर बादशाही नौकर हुआ। बादशाह ने उसे लाहोर में रख दिया था। कल्ला स्वतंत्र प्रकृति का वीर पुरुष था। मुसलमान अधिकारियों की वह परवाह नहीं करता था। लाहोर के किसी बादशाही मन्सबदार यवन ने कल्ला की छेड़ छाड़ की। कल्ला को वह कब सहन हो सकता था? कल्ला ने उस को ललकारा। उस ने भी कल्ला को कुछ दुर्वचन कहे

जिस से क्रुद्ध हो कर कल्ला ने उसे मार दिया। और वह वहां से चल कर सिवाने के किले में आ बैठा। बादशाह को यह ज्ञात हुआ तब बादशाह ने सिवाना मोटा राजा को लिख दिया और कहा कि कल्ला को जा कर मार दो। मोटा राजा ने राजकुमार सूरसिंहजी और भंडारी मना को वही वार्ता लिख भेजी। और लिखा कि बादशाह का कल्ला के ऊपर अत्यंत अधिक कोप है और उसे मारने की आज्ञा दी है इसलिए शीघ्र सेना भेज कर सम्राट की आज्ञा का पालन करो। महाराजकुमार ने सेना एकत्र कर सिवाना पर भेजी। जिस में ये अग्रणी थे :—

१ कूँपावत भोपत। १ कूँपावत जैतसिंह १ रावल मेघराज।

१ राठोड़ नरहरदास मानसिंहोत १ राठोड़ आसकरण देवीदासोत।

१ राठोड़ किशोरदास रामोत। १ राठोड़ भोजराज कलावत

१ देवड़ो भोजराज जीवावत

१ महमदखां जालोरी १ भंडारी मनो।

मोटा राजा की सेना ने जा कर किले को घेरा। कल्ला किले के अंदर था। वह अवसर ताकने लगा कि शत्रु सेना पर ऐसा धावा किया जाय कि इन के पैर उखड़ जायँ। बाहर की सेना यथासाध्य लड़ती रही। और भीतर के लोग भी उस का प्रतीकार करने लगे। इस तरह लड़ाई होते कुछ दिन हो गए। एक दिन कल्ला ने रात्रि के समय शत्रु सेना पर ऐसा प्रबल आक्रमण किया कि शत्रु सेना सम्हल न सकी, बहुत से वीर योधा मारे गए। तब उस को किले का घेरा छोड़ कर भागना पड़ा। इस रात्रि के आक्रमण में निम्नलिखित योधा मारे गए :—

१ राठोड़ राणो मालावत पातावत

१ राठोड़ कलो जैसा का पुत्र चांपावत

१ राठोड़ कलो वैरसल का पुत्र कूँपावत।

१ देवड़ो पर्वतसिंह मेहाजलोत, राव कल्ला का भाई।

१ राठोड़ पीपाड़ो कान्हो दुर्जनसाल का पुत्र भोपत का चाकर।

१ राठोड़ ईसरदास नेतसीयोत।

१ राठोड़ जसो जगमाल का पुत्र, घीदा का पौत्र बालाउत

और कल्ला की ओर का भायल कुल का लाला मारा गया।

जब बादशाह के पास यह ख़बर पहुंची तो बादशाह ने मोटा राजा से कहा कि तुम खुद वहां जाओ और जहां तक हो सके कल्ला

को मार आओ। बादशाह की त्वरा देख कर मोटा राजा मारवाड मे आए और सेना एकत्र करके सिवाना पर गए। जाते ही किले को घेर लिया। और कल्ला को कहला भेजा कि सावधान रहना अब तुम्हारी मृत्यु निकट आ गई है। कल्ला ने उत्तर मे कहा कि कल्ला ऐसी विभीषिकाओं से डरने वाला नही है। आप से हो वह कर लीजिए। यह सुन कर मोटा राजा ने घेरा बहुत सख्त लगाया और चारों ओर से तोपें लगा कर किले को ध्वंस करना चाहा। परन्तु यह क़िला बड़ा विकट है उस को विजय करना मज़ाक नहीं है। मोटा राजा ने कई उपाय किये एक भी सफल नही हुआ। मोटा राजा विचार मे पड़े कि अब क्या करना चाहिए। मोटा राजा का दैव अनुकूल था। जब दैव अनुकूल होता है कोई द्वार भी मिल जाता है। किले के अंदर एक नाई नौकर था। उस की ससुराल सिवाणा के पास गांव पादरडी में थी। वह कभी २ ससुराल जाया करता तब एक गुप्त मार्ग से जाया करता। मोटा राजा के मनुष्यों ने उसे आते जाते देखा और स्वार्थ-सिद्धि के लिए उस से प्रेम पूर्वक वार्तालाप किया। बातों ही बातों मे उसे पूर्ण लोभ देकर किले में जाने का गुप्त मार्ग पूछा तो उस ने कहा कि मैं जिधर से आता जाता हूँ उधर से भीतर जाने की सुविधा है। आप के मनुष्य उस स्थान पर आवें छीकों द्वारा वे अंदर ले लिये जायँगे। मोटा राजा के मनुष्यों ने वह वार्ता अपने स्वामी से कही। मोटा राजा और क्या चाहते थे, उन्होंने अपने मनुष्य उस स्थान पर भेज दिये। नाई ने उन को छीकों द्वारा किले के अंदर ले लिया। जब कुछ आदमी अंदर पहुँचे तो द्वार खोल कर सेना को जाने का मार्ग खोल दिया। कला ने मोटा राजा की सेना को किले के अंदर प्रविष्ट देख कर सोचा कि अब क्या करना चाहिए। घर फूट गया है, शत्रु सिर पर आ गया है ऐसा न हो कि कहीं स्त्रियों को पकड कर न ले जायँ। इस विचार से उस ने स्त्रियों के तो अपने हाथ से मस्तक काट दिए। और आप अपने वीर सुभटों को साथ में लेकर मोटा राजा के मनुष्यों पर बाज की तरह टूट पडा। दोनों में घोर संग्राम हुआ। कल्ला की तलवार से कई योधा मारे गए। मोटा राजा की सेना में खीची गणेशदास भी था, जिस की उम्र १४-१५ वर्ष की थी, तलवार उठा कर कल्ला पर चला। उसे देख कर कल्ला हँसा और बोला कि तू बच्चा है अगाडी क्यों आता है? मारा जायगा। परतु गणेशदास ने उस के कहने पर ध्यान नहीं दिया और कहा कि यहां उम्र से क्या प्रयोजन है? आप अपना कार्य करिये। परन्तु कल्ला बालक समझ उसे छोड आगे बढ गया। बडी जोर की तलवार चली। कई मनुष्य मारे गए। मोटा राजा की

सेना बहुत अधिक थी और कल्ला के पास मनुष्य अल्प थे तथापि उल ने सेना को भली भाँति थका दिया और अन्त मे कई भटों को स्वर्ग का मार्ग दिखला कर वीरगति को प्राप्त हुआ। मोटा राजा की विजय हुई। कहा जाता है कि कल्ला का मस्तक कट जाने पर भी वह ५० पैंड तलवार लिए चला और उस की तलवार से एक मनुष्य उस दशा में मारा गया। कल्ला के वशज ठिकाना लाडणू आदि मे शासन करते है। कल्ला के पौत्र नरसिहदास के पुत्र केसरीसिंह से केसरीसिहोत शाखा चली। केसरीसिंहोत जोधों के ६३ ठिकाने[1] हैः—

वि० सवत् १६५० में मोटा राजा ने मालानी प्रांत के राव वीरमदेव को जसोल से निकाल दिया और वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया।

तत्पश्चात् वालोतरा नगर के समीप लूनी नदी के तट पर, जिसे तलवाडा कहते हैं, रावल मल्लिनाथजी के नाम से एक मेला लगवाना शुरू किया। इसे तलवाड़े का मेला कहते है। यह मेला लगवाने का प्रयोजन यह था कि भिन्न भिन्न प्रांतों के चौपाए एकत्र हो जावें जिस से सब प्रांतों के निवासी मनवांछित चतुष्पद प्राप्त कर सकें। यह मेला हर साल चैत्र मास में कृष्णपक्ष की एकादशी से लगता है पन्द्रह दिन वरावर रहता है इस मेले मे वैल, ऊँट, घोड़े हर प्रांत से आते हैं और उन का क्रय विक्रय होता[2] है।

---

(१) लाडणू २ खीवतांणो ३ लेड़ी ४ गोराऊ ५ सांमपुरो आधा ६ सामपुरो आधा ७ तीतरी ८ तुवंरो वडो ९ तुवंरो वडो १० गोदराल ११ वालसमंद १२ मडांम १३ वीठूडो १४ छाजोली १५ धानणी दो भाग १६ तिपनी १७ वांठड़ी १८ खगार आधा १९ खंगार आधा २० घुड़लो २१ धानणी षष्ठ भाग २२ धानणी षष्ठ भाग २३ छपारो आधा २४ छपारा आधा २५ पाटण २६ नंदवाणी २७ रणसीसर आधा २८ आसोटो २९ वामणो आधा ३० वामणो आधा ३१ भैणावाद ३२ भवादियो ३३ कसूँबी ३४ टालणियाऊ ३५ खारडियो आधा ३६ खारडियो आधा ३७ लोडसर ३८ सीकराली ३९ मांजरो आधा ४० मांजरो आधा ४१ भडारी आधी ४२ कुंवासियो ४३ रायधणो आधो ४४ भडारी आधी ४५ हीरावती ४६ कांगसियो ४७ लाछडी ४८ रायधणो आधा ४९ सिंगरावट ५० भांडासरी ५१ सावां ५२ जांणी ५३ गिरधारीपुरो ५४ वीचावो ५५ खुणखुणडो ५६ गुरारे ५७ हुसनपुरो ५८ थांणु आधा ५९ थांणु आधा ६० रायसिहपुरो ६१ खाटू खुर्द तृतीयांश ६२ खाटू खुर्द तृतीयांश ६३ खाटू खुर्द तृतीयांश।

लाडणू नं० १ को हात का कुरब और लेड़ी नं० ३ व गोराऊ नं० ४ को बांह-पसाव का कुरब है।

(२) मेले का प्रवन्ध एक कमेटी द्वारा होता है जिस में परगनात के हाकिम, सुपरिटेंडेंट आदि संमिलित होते हैं। इस मेले में अनुमान १ लक्ष रुपये राज्य में आते है।

वृद्धावस्था में इन महाराज का शरीर बहुत मोटा हो गया था, यहां तक कि बादशाह के दरबार में खड़े होते तब इन को सहारे के लिए आसा (काष्ठ का एक प्रकार का यंत्र) रखना पड़ता था। बादशाह ने इन का बदन अत्यंत मोटा देख कर इन को मोटा राजा कहा तब से ये जगत् में मोटा राजा के नाम से विख्यात हुए। कई लोग ऐसा भी कहते हैं कि इन्होंने ब्राह्मण और चारणों के शासन जब्त किए थे जिस से इन का नाम न लेकर मोटा राजा कहते थे।

उस दशा में भी मोटा राजा बादशाह की सेवा में तत्पर रहते थे। यहाँ तक कि आप का स्वर्गवास बादशाह की सेवा करते लाहोर में ही हुआ था। वि० संवत् १६५२ आषाढ़ सुदि १५ (ई० सन् १५९५ ता० २३ जोलाई) को प्रतिपदा के सूर्योदय से ४ घडी पूर्व श्वास रोग से आप का अंतकाल हुआ। दूसरे दिन (प्रतिपदा को) नदी के तट पर दाह क्रिया हुई। यहां तीन ३ रानियों ने अग्नि स्नान करके पति के साथ गमन किया। बादशाह अकबर को यह सुन कर बड़ा विस्मय हुआ। उस दृश्य को देखने के लिए वह नाव में बैठ कर उस स्थान पर गया, जहाँ सतियाँ गई थी। परन्तु बादशाह उस दृश्य को देख नही सका। क्योंकि बादशाह उस स्थान पर पहुँचा जिस से पूर्व चिता जला दी गई थी। बादशाह ने राजकुमार सूरसिंहजी को अपने पास बुला कर सांत्वना की और धैर्य बँधाई। और कहा कि तुमारे जो कार्य करना हो वह करो और जब उस कार्य से निवट लो तब हमारे हुजूर में हाज़िर होओ।

ये महाराजा बड़े वीर और स्वामिभक्त थे। इन्होंने कई लड़ाइयां लड़ी थी। और जहां गए वहां सफलता प्राप्त हुई।

इन के १७ पुत्र हुए :—

१ नरहरदास—इस का जन्म वि० संवत् १६१३ माघ वदि १ (ई० सन् १५५६ ता० १६ दिसंबर) को हुआ था[१]। नरहरदास के पुत्र जगन्नाथ से जगन्नाथोत शाखा चली। इस शाखा का १ ठिकाना मोररा मेड़ता प्रांत में है।

२ भगवान्दास—इस का जन्म वि० संवत् १६१४ आश्विन वदि १४ (ई० सन् १५५७ ता० २३ सितंबर) को हुआ था। इस के पुत्र गोविंददास से गोविंददासोत शाखा फटी। इस शाखा के खेरवा आदि ६ ठिकाने हैं:—

(१) प्राचीन ख्याति पुस्तक में उक्त संवत् है, परन्तु जन्मपत्रियों के संग्रह में वि० सं० १६१४ कार्तिक वदि २ लिखा गया है।

१ खेरवो २ बलाड़ो आधा ३ खारड़ी ४ बूटिवस ५ बावरो ६ रोईसो।

खेरवा ठिकाने को हाथ का और बावरा ठिकाने को बांहपसाव का कुरव है।

भगवान्दास के पुत्र गोपालदास से गोपालदासोत शाखा हुई। इस का १ ठिकाना खातोलाई मेड़ता प्रांत में है।

३ सगतसिंह—इस का जन्म वि० संवत् १६२४ पौष सुदि १४ (ई० सन् १५६७) सोमवार को हुआ था। इस से सगतसिंहोत शाखा चली। इस शाखा का अजमेर प्रांत में ताजीमी इस्तमरारदार ठिकाना खरवा है। और कृष्णगढ़ राज्य में रघुनाथपुरे का ठाकुर है।

४ दलपत—इस का जन्म वि० संवत् १६२५ श्रावण वदि ६ (ई० सन् १५६८ ता० २१ जोलाई) को हुआ था। यह बादशाह का मन्सबदार था। इस को जागीर में जालोर मिला था। इस के वंशज दलपतोत जोधा है। इस के पुत्र महेशदास हुआ। इस ने भी कितने ही अर्से तक जालोर पर राज्य किया। महेशदास का पुत्र रतनसिंह। पहले यह पैतृक जालोर पर शासन करता रहा। इस का शिलालेख वि० संवत् १७०४ का और ताम्रपत्र उसी संवत् का परगना जसवंतपुरा के गांव कासतां मे मिले[१] है जिस से प्रमाणित होता है कि पहिले इन का अधिकार जालोर पर था। वहां से मालवे में गए।

---

(१) ताम्रपत्र की प्रतिलिपि :— श्री

श्री रांमजी



सही

स्वस्तश्री महाराजाधिराज महाराजा श्री रतनजी वसनाइतं मइ करिनो गांव १ परगना जालोरी मोजा कासतां पटी हवेली रो श्री जलधर जी रै थांन सडायो पुन रो वासतै उदक करी थांन सडायो आपह दतु जो मेटता वेसंधरा ते नरका नरका जावत जव लग ओ दत्त देकर हुकम हा ॥

नुर परवालगी आयस रुघनाथः। संवत् १७०४ रा पोस सुद २

ओ दत उथापे तो सरज गरण चंद्र गरण ऊपर लो बोज उठावः॥

लीपती मेहता जगसी ॥ मुकाम भमराणी ॥ सेवग जोगी वडनाथ ॥

(पोठ में) श्री ॥

सम्राट् शाहजहां की इन पर पूर्ण कृपा थी उसी ने इन को मालवे की जागीर दी। जहां इन्होंने वि० सं० १७०९ में अपने नाम से रतलाम नगर बसाया। रतलाम राज्य से दो राज्य और फटे। सीतामऊ और सैलाना। सीतामऊ का संस्थापक केशवदास और सैलाना का संस्थापक जयसिंह। सीतामऊ राज्य की स्थापना वि० सं० १७१२ में और सैलाना राज्य की स्थापना वि० सं० १७९३ में हुई। परन्तु उससे पूर्व वि० सं० १७८७ में रावटी राज्य की स्थापना हुई थी।

रतलाम राज्य के संस्थापक राठौड़ रतनसिंह वि० संवत् १७१४ में उज्जैन की लड़ाई में महाराजा जसवंतसिंहजी प्रथम के स्थानापन्न हो कर शाहजादा औरंगजेब के मुकाबला में गए थे और वहां बड़ी वीरता से लड़ कर स्वर्ग को सिधारे।

५ भोपत—इस का जन्म विक्रम संवत् १६२५ कार्तिक सुदि ६ (ई० सन् १५६८ ता० २६ अक्टोबर) मंगलवार को हुआ था। इस के वंशज भोपतोत जोधा हैं। कृष्णगढ़ राज्य में इन के दो ठिकाने हैं। नराणा और भठूण।

६ सवाई राजा सूरसिंहजी—इन का जन्म वि० सं० १६२७ वैशाख वदि अमावास्या ३० (ई० सन १५७० ता० ४ अप्रैल) को हुआ था। इन का इतिहास क्रमानुसार आगे लिखा जायगा।

७ माधोसिंह—इस का जन्म वि० संवत् १६३८ कार्तिक वदि ५ (ई० सं० १५८१) का हुआ था। इस के वंशज माधोदासोत जोधा हैं और सुजाणसिंहोत जोधा शाखा भी इसी से फटी है। माधोदासोत जोधा अजमेर प्रांत में जूनियां, पिसांगण और मसूदा के इस्तमरारदार हैं।

८ कृष्णसिंहः—इन का जन्म वि० संवत् १६३९ ज्येष्ठ वदि ३ (ई० सन् १५८२ ता० १० मई) को हुआ था। इन के वंशज कृष्णसिंहोत जोधा हैं। इन को बादशाह जहांगीर ने अजमेर के निकट जागीर दी थी। उसी स्थल में इन्होंने अपने नाम से वि० संवत् १६६६ में कृष्णगढ़ नामक नगर बसाया। उन्हीं के वंशज राठौड़ वहां के राजा हैं।

९ जैतसिंह—इस का जन्म समय नहीं मिला। जैतसिंह के पोत्र[1] रतनसिंह से रतनोत शाखा चली। इस शाखा को नीम्बा आदि २० ठिकाने[2] हैं।

---

(१) जैतसिंह का पुत्र हरिसिंह, उस का पुत्र रतनसिंह।

(२) १ नींबो २ बांसूवाली ३ पटाणांरी बास आधा ४ पटाणांरी बास आधा ५ दुधोला ६ झाडोली ७ नींबाड़ा ८ कमेड़ियो ९ दुगोली १० गोजा ११ चांवली १२ गुड़ा रायली आधा १३ गुड़ा रायली आधा १४ खारी १५ डावड़ो १६ खांवर १७ खांमियाद १८ लोटोती १९ बांजा कुड़ी २० गावड़ियास। इन में दो ठिकाने हाथ व कुरब वाले हैं। दुगोली नं० ९ और लोटोती नं० १८।

१ गांव वरसडांरी वासणी तर्फे हवेली, वरसड़ा गोपालरामदासोत को दिया।

१ गांव चारणवासणी तर्फे हवेली, खिड़िया भैरवदास हरखावत को दिया।

१ गांव आंगदोस परगना सोजत, वारठ सांकर तेजसीयोत को दिया।

दसोंधी भाट को १ गांवः—

१ बुझड़ो तर्फे पीपाड़, भाट मदनरूपसीयोत को दिया।

राठोड़ लेड को १ गांवः—

१ गांव ढेलांणो परगना फलोधी, राठोड़ शिवराज देवीदासोत लेड को वि० सं० १६७६ में कँवरपदा में दिया।

मोटा राजा उदयसिंहजी के समकालीनः—

दिल्ली का बादशाह

बादशाह अकबर स० १६१२ से १६६२ तक

बीजापुर का बादशाह

इब्राहीम आदिलशाह सं० १६३७ से १६७४ तक

बुरहानपुर का बादशाह —

हशनखां फासकी। संवत् १६३२ से १६५३ तक।

उदयपुर के महाराणाः—

प्रतापसिंहजी (प्रथम) संवत् १६२८ से १६५३ तक

आंबेर के महाराजाः—

राजा भगवानदासजी सं० १६३० से १६४६ तक

राजा मानसिंहजी स० १६४६ से १६७१ तक

जैसलमेर के रावलः—

रावल हरराजजी संवत् १६१८ से १६४७ तक

रावल भीमसिंहजी संवत् १६४७ से १६८० तक

सीरोही का महाराव

राव सुरताणजी संवत् १६२८ से १६६७ तक

बीकानेर का राव—

राव रायसिंहजी संवत् १६२८ से १६६८ तक

बूंदी का राव —

राव सुरजनजी सवत् १५६८ से १६४१ तक

राव भोज सवत् १६४१ से १६६८ तक

सवाई राजा सूरसिंहजी

जन्म कुण्डली

१२ शु	के १०	
बु १ म सू	११ बृ	९
२ चं		८
३	५	७ श
४ रा		६

इन महाराज का जन्म वि० संवत् १६२७ वैशाख वदि ३० (ई० सन् १५७० ता० ४ अप्रेल) चन्द्रवार को हुआ था। जन्म-पत्री संग्रह में यह ग्रह चक्र है :—

मोटा राजा उदयसिंहजी का स्वर्गवास लाहोर में हुआ उस समय महाराजकुमार सूरसिंहजी जिन को सूरजसिंहजी भी कहते थे, लाहोर में पिता के चरणों में विद्यमान थे। पिता की और्ध्व दैहिक क्रिया करके उस से निवृत्त होने पर ये बादशाह के हुजूर में हाज़िर हुए। वि० संवत् १६५२ के श्रावण वदि १२ को राज्याधिकारी किये गए। इन के राज्याधिकार का तिलक बादशाह अकबर ने अपने कर कमल से किया था। और उस समय इन को दो हजारी जात व सवा हज़ार सवार का मन्सब देकर राजा का खिताब दिया गया। और गुजरात की सूबहदारी दी गई।

तत्पश्चात् ये लाहोर से जोधपुर में आए और राजपूताने की प्रथानुसार माघ सुदि ५ को राज्याभिषेक का कार्य हुआ।

यद्यपि बादशाह ने इन को शुरू मे दो हज़ार का मनसब दिया था परंतु फिर इन का मनसब बढ़ते २ पांच हजारी जात व पांच हज़ार सवार हो गया था। जो इन महाराज की अंतिमावस्था तक बना रहा। इन महाराज की जागीर का व्यौराः—

मारवाड़ में :—

जोधपुर, मेड़ता, सोजत, फलोधी, जैतारण, सिवाणो, जालोर, सांचोर, पोहकरण, तेरवाड़ो।

अजमेर में—

पीसांगण, समेल, नाड, भडसूरियो, जडवासी, अड़वालो, मेरवाड़ो।

गूजरों काः—

वडनगर,

गुजरात मेः—खिरालू

मालवे मेः—धराड़

दक्षिण मेंः—

भालोद, बोरगांव, बोरगांव खुर्द, ...,

लिख आए हैं कि महाराज को वि० सं० १६५२ में गुजरात की सूबहदारी दी गई थी। वि० संवत् १६५३ में बादशाह अकबर ने

सुलतान मुराद को गुजरात की हकूमत पर नियत किया। उस समय गुजरात का शासक मुजफ्फरखां था। वह उत्पथ चलने लगा तब उस को शासित करने के लिए बादशाह अकबर ने काजी हसन दीवान और अबदुल्ल.खां बख़्शी को आज्ञा की कि मुजफ्फरखां आज्ञोल्लंघन करता है इसलिए उसे वहां से हटा दिया जाय। और इसी कार्य के लिए बादशाह ने आम दरबार करके पान का बीड़ा ग्रहण करने के लिए कहा। वह बीड़ा वही ग्रहण कर सकता था, जो मुदफ्फरखां पर चढ़ कर जावै और उसे उस स्थान से हटा देवै। बीड़ा सब के साम्हने किया गया परन्तु किसी का हियाव नही हुआ कि उस बीड़े को ग्रहण करै। राठोड राजा सूरसिहजी ने उस बीड़े को बडे आदर के साथ ग्रहण किया। बादशाह राठौर राजा पर अत्यंत प्रसन्न हुए और उसी समय उन के सन्मानार्थ कड़ा, किलगी, मोतियो की माला और अमूल्य रत्न तथा फ़ौज ख़र्च के लिए दस लाख रुपये देकर इन को रवाना किया। महाराज बादशाह की आज्ञा पाकर वहां से रवाना हुए। इन के साथ बादशाही सेना तो थी, परतु महाराज ने अपने मौलिक वीर सामन्तों को साथ में लेना आवश्यक समझ कर मारवाड़ में आए। और एक मास मारवाड़ में ठहरे। यहां से अपने सामंत और परीक्षित वीर सुभटो को लेकर गुजरात को रवाना हुए। मार्ग मे सीरोही का राज्य पड़ता है। वहां महाराज का मुकाम हुआ। उस समय किसी ने राव चंद्रसेणजी के पुत्र रायसिंह के वध का स्मरण दिला दिया। उस का स्मरण होते ही क्रोधाविष्ट होकर महाराज ने सीरोही का प्रांत लूट लेने की आज्ञा दे दी। बडी भारी लूट हुई। उस समय महाराज के साथ तीस हज़ार सेना थी। जिस में आधी तो बादशाही और आधी राठोड़ सेना थी। सीरोही का राव सुरताण घबराया और भयभीत हो कर पैरो पड़ा। वैर के बदले में महाराव ने एक रुपये और अपनी बेटी व्याह कर[1] वैर का प्रतिशोध किया। महाराव ने पूर्ण प्रेम दिखाते महाराज का भलीभांति आतिथ्य किया। महाराज ने भी उसे अभय देकर कहा कि आप प्रसन्न रहना हम गुजरात को जाते है। महाराज सीरोही से रवाना हो कर गुजरात गए।

महाराज ने अहमदाबाद पहुँच कर नगर को घेर लिया। मुजफ्फरखां भी बडा वीर पुरुष था, वह अपनी सेना को सज कर युद्धार्थ रणांगण में आ उपस्थित हुआ। उस के साथ तीन लडाइयां

---

(१) मूदियाड की ख्यात में सूरसिहजी के १६ रानियां लिखी है उन में एक देवड़ी भी है। परन्तु उसे देवड़ा कल्ला की बेटी लिखी है। इस का उल्लेख उस में नहीं है। और उस का विवाह सं० १६६० में मथुरा में होना लिखा गया है।

हुईं। परन्तु सफलता एक में भी नही हुई। चौथी लड़ाई अत्यंत भीषण हुई, जिस में राठोड़ो ने ऐसी तलवार बजाई कि मुजफ्फरखां की बहुत सी सेना तो मारी गई और शेष रही वह मुजफ्फरखां के साथ भाग गई। महाराज की विजय हुई। युद्ध के पश्चात् लूट की गई जिस में बहुत सी अमूल्य वस्तु हाथ लगी वे बादशाह के पास भेजी गईं। बादशाह ने सहर्ष स्वीकृत की। अब तो गुजरात में बादशाह का पूर्ण अधिकार हो गया है, महाराज सूबह का कार्य करते हैं। इस युद्ध में महाराज के साथ प्रधान पुरुष ये थे :—

करमसोत हरिदास, ठिकाना आसोप, खीवसर और कंटालिया।

करणोत नीबकरण ठिकाना कोरणा (परगना पचपदरा में)।

शेखावत अजबसिंह गांव लालासरी परगना डीडवाणा)।

जोधा हरिसिंह, ठिकाना दुगोली (परगना नागोर)।

मेड़तिया जगतसिंह।

वि० संवत् १६५४ में मुजफ्फर के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर ने गॅवारों की सेना एकत्र करके वहां के गांवो को लूटना शुरू किया। तब उसे दंड देने के लिए महाराजा सूरसिंह उस के पीछे गए। महाराज के प्रबल प्रताप के आगे वह ठहर नही सका। कायर की तरह रणभूमि छोड़ कर भाग गया। महाराज की विजय हुई।

सुलतान मुराद के साथ महाराज सूरसिंहजी गुजरात मे थे और सूबहदारी का कार्य करते थे। सुलतान मुराद का संवत् १६५४ मे अंतकाल हो गया तब बादशाह ने उस के स्थान पर सुलतान दानयाल को भेजा। और उस की सहायता के लिए भी महाराज सूरसिंहजी नियत हुए। महाराज गुजरात में चार वर्ष सूबहदार रहे। वि० संवत् १६५५ में सुलतान दानयाल दक्षिण की तरफ़ गया तब महाराजा सूरसिंहजी भी उस के साथ दक्षिण में गए। जहां अहमद-नगर वालों के साथ सुलतान दानयाल के घोर युद्ध हुआ था। उस युद्ध में राठौड़ राजा नें बड़ी वीरता का कार्य किया जिस से बादशाह की विजय हुई और शत्रु अपना स्थान छोड़ कर भाग गए।

इस के पश्चात् राजू दक्षिणी ने दक्षिण मे बडा उपद्रव किया, देश को लूटना शुरू किया। उस का दड देने के लिए शाहजादह ने महाराजा सूरसिहजी को भेजा। इन्होने उस का अनुधावन कर क उस को पराजित किया जिस से देश में शांति स्थापित हुई इस मुहिम में दौलतखां लोदी भी था।

वि० संवत् १६५५ में महाराज अहमदाबाद के सूबह पर थे। बादशाह की आज्ञा से आप दक्षिण की ओर जाते समय सोझत

आए। और कई दिन सोझत में ठहरे। बादशाह महाराज को इस शिथिलता के कारण महाराज पर अप्रसन्न हुआ। और सोझत का परगना उन के भाई सकतसिंह को दे दिया। उस समय सोझत में मना भंडारी था। यह अवसर देख कर सोझत सगतसिंह के आधीन कर जोधपुर चला आया। सोझत पर एक वर्ष पर्यंत सगतसिंह का अधिकार रहा। उस समय सकतसिंह सोझत का राव कहलाता रहा।

बादशाह अकबर उस समय बुरहानपुर (दक्षिण) में था। भाटी गोविन्ददास मानसिंह का पुत्र और राठौड़ राम रतनसिंह का पुत्र बादशाह के पास गए और बादशाह से सोझत का परगना महाराज सूरसिंहजी के नाम लिखा कर ले आए। परवाना के आते ही सकतसिंह को सोझत छोड़ कर जाना पड़ा। महाराजा सूरसिंहजी ने बादशाह की आज्ञा उपलब्ध होने से पूर्व ही सोझत पर अपनी सेना भेज दी थी। उस ने जाकर सोझत को घेर लिया। सकतसिंह के मनुष्य किले के भीतर थे, उन के साथ युद्ध हुआ। कुछ दिन युद्ध होता रहा। अंत में महाराजा की सेना ने अधीर हो कर रात्रि में शत्रुओं पर आक्रमण किया। परंतु किले के भीतर राठौड़ किशनदास बड़ा वीर पुरुष था उस ने उस समय तो किले की रक्षा की। परन्तु अंत मे उन को सोझत छोड़ना पड़ा।

वि० संवत् १६५८ में दक्षिण की तर्फ़ हवशी (अमरचंपू[१]) का उपद्रव उठा। उस का दमन करने के लिए बादशाह ने नवाब खानखाना अबदुर्रहीम और उस के पुत्र एलच सरदार को बादशाही सेना देकर भेजा। और महाराजा सूरसिंहजी के नाम आज्ञा-पत्र लिखा गया कि तुम दक्षिण में जाने के लिए तैयार हो जाओ और नवाब खानखाना के पुत्र एलच के शामिल होओ। अब गुजरात में शांति है। दक्षिण मे यह नया बखेड़ा उठ खड़ा हुआ है उसे मिटाना चाहिए बादशाह की आज्ञा पाकर महाराजा सूरसिंहजी अपनी सेना ले कर अहमदाबाद दक्षिण में गए। अहमदाबाद से सूरत पहुंचे। वहां से आगे बढ़े तो शत्रुओं का पूर्ण उपद्रव दृष्टिगोचर हुआ। उन मे अग्रणी अमरचंपू है। और उस के साथी फरहतखां और सरदारखां आदि हैं। उस के पास बारह हज़ार सवार हैं। बादशाही सेना ऐसी तैयार नहीं कि जैसा शत्रु दल था। परंतु महाराज के साथ एक हज़ार सवार ऐसे थे कि जो बिजली का सा कार्य करें। हर समय लड़ाई होती रहती है छः मास हो गए हैं। नवाब खानखाना और

(१) कविराजा श्यामलदासजी वीरविनोद नामक इतिहास में खुदावंदखां नाम लिखते हैं। मारवाड की ख्यातो मे अमरचपू नाम मिलता है।

सुलतान दानयाल घिर गए है। सामान सब क्षीण हो गया है, यहां तक कि भोजन के लिए अन्न मिलना कठिन हो गया है, ख़र्ची बिलकुल लूट गई है, राजपूत सब क्षुधा के मारे अत्यंत व्याकुल हैं। धान्य रुपया १) का तीन पाव बिकता है। वह भी हाथ आना कठिन हो गया है। योधा लोग बकरे खा खाकर अपना निर्वाह करते है। इस दशा मे बाघ के पुत्र कुंभकर्ण ने महाराज के समीप आ कर कहा कि हम लोग क्षुधा के मारे अत्यत पीड़ित है आज आठवां लंघन है। चाहे तो आप आक्रमण करैं चाहे हमें आज्ञा दें कि हम करैं। यह सुन कर महाराज ने अपने भोजन करने का थाल और तीन रकेबी, जो सुवर्ण की थी, राजपूतों को दिया। और कुंभकर्ण से कहा कि यदि तुम भूख के मारे मरते हो तो शत्रु दल पर जाओ। भूख से मरने की अपेक्षा युद्ध करके मरना अत्यंत श्लाघनीय है। यह सुनते ही कुंभकर्ण अपने ५ सवारों के साथ शत्रु सेना पर बिजली की तरह टूट पड़ा। उस के हाथ से शत्रु सेना के ५० मनुष्य मारे गए। और कुंभकर्ण घायल हुआ। महाराज के मनुष्य उसे पालकी में बिठा कर ले आए। और महाराज ने अपने वीर की यह गति देखकर शत्रु सेना पर आक्रमण किया।

वि० संवत् १६५८ के ज्येष्ठ वदि अमावस्या के दिन महकर स्थान पर दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ। बादशाही सेना पीछे पड़ने लगी उस समय महाराजा ने अवसर समझ कर अपनी राठौड़ सेना को अगाड़ी लेकर शत्रु सेना पर एक साथ हल्ला कर दिया और ऐसी तलवार चलाई शत्रु सेना के पैर उखड़ गए। और अमरचंपू भाग गया। बादशाह की विजय हुई। अमरचंपू का नीशान महाराजा सूरसिंहजी छीन कर ले आये तब से जोधपुर के नीशान में लाल रंग मिश्रित हुआ है। इस विजय से प्रसन्न हो कर बादशाह ने महाराज को सवाई राजा की पदवी प्रदान की। उसी अवसर पर भाटी गोविन्ददास मानसिंह के पुत्र और भंडारी मना ने बादशाह से विनय पूर्वक निवेदन किया कि बादशाह की आज्ञानुसार दक्षिण का प्रबंध हो गया है। अब हमें घर जाने की आज्ञा मिलनी चाहिए। जब देश जाने की आज्ञा हुई उस समय दोनों ने करबद्ध हो, थाल मे भुरट (जगली अन्न) रख, खूमपोश से आच्छादित कर बादशाह को दृष्टिगोचर करा कर निवेदन किया कि यह धान्य रुपये एक का एक मन बेच कर चावल सात सेर ख़रीद कर खाते हैं और हज़रत की नौकरी करते हैं यह अर्ज़ सुन बादशाह ने कृपा करके जेतारण का परगना

इनायत किया। और मेड़ता आधा तो पहले मेड़तिया जगन्नाथसिंह से जब्त करके महाराजा को दे दिया गया था। इस समय शेष आधा मेड़ता किसनदास से छुडा कर महाराजा को दिया गया। अब पूरा मेड़ता महाराजा के अधिकार में हो गया—

इस के पश्चात् नवाब खानखाना नासिक अम्बक की तर्फ़ सेना ले कर गया। महाराजा सूरसिंहजी उस के साथ थे। उस प्रांत में पीडारा नामक किला था शत्रुदल उस में जा घुसा। महाराज ने उस किले को विजय कर के बादशाह की आज्ञा प्रवृत्त की। इस विजय मे खानखाना को एक विष्णु की मूर्ति मिली। खानखाना ने वह मूर्ति महाराज को दी। महाराज कुछ समय तक तो उस मूर्ति को अपने साथ लिये रहे। वि० संवत् १६६२ में महाराज जोधपुर आए तब उस चतुर्भुज मूर्ति को चैत्र वदि ५ के दिन किले में स्थापित किया। उस का पुजारी सेवग लोटण था।

वि० संवत् १६६० माघ वदि ६ षष्ठी को पुष्करणा ब्राह्मण श्रीपत दामोदर जोधपुर में आया और उस ने महाराजा को यज्ञ करवाया जिस में एक लाख रुपये व्यय हुए। और उतना ही ब्रह्मभोज में हुआ।

इस साल में महाराजा जोधपुर में आए तब भंडारी मना को भेज कर जैतारण और मेडते पर अपना अधिकार किया। और जैतारण में कोट करवाया। तब से जैतारण में हाकिम रहता है। प्रधान स्थान जैतारण और कुछ गांव खालसे में रखे गए। और अन्य भूमि ऊदावतों के अधिकार में रखी गई।

वि० संवत् १६६१ कार्तिक सुदि १४ (ई० सन् १६०५ ता० २५ अक्टोबर) को बादशाह अकबर का अंतकाल हो गया तब दिल्ली के राजसिंहासन पर बादशाह जहांगीर बैठा। बादशाह अकबर के समय में गुजरात के समस्त बागी शांत हो गए थे परन्तु उस के मरते ही वहां पुनः उपद्रव उठ खड़ा हुआ। उसे शांत करने के लिए बादशाह जहांगीर ने महाराज सूरसिंहजी को गुजरात का सूबहदार नियत करके गुजरात पर भेजा। बादशाह बहादुरशाह ने मांडव का मेवासा (लुटेरो का स्थान) बांध रखा था। प्रथम उसे नष्ट करना आवश्यक समझ कर महाराजा अहमदाबाद पहुच कर वहां से मांडवा स्थान पर सेना ले कर गए। मांडवे के निकट पहुचते ही आप ने अपनी सेना के दो विभाग किए। उन में से एक विभाग का अध्यक्ष भाटी गोविंददास और दूसरे संघ का अध्यक्ष राठोड़ जैतमाल का पुत्र सूरजमल चांपावत आउवे का स्वामी नियत किया गया।

दोनों अनियों में और भी बडे २ सरदार शामिल थ। महाराज ता अपने डेरे में थे और इन्होंने दोनों ओर से कोलियों पर हमला किया जिन में लाला नाम का कोली अग्रणी था। कोली भी सज कर आए और युद्ध हुआ। बहुत से कोली मारे गए और जो अवशिष्ट रहे वे झाड़ी जंगलों में भाग गए। राठोडों ने उन का पीछा करना चाहा उस समय राठोड़ गोपालदास ईडरिया ने उन से कहा कि अपनी विजय हो गई है, शत्रु भाग गए हैं पीछा करने में लाभ तो कुछ नहीं, हानि की सम्भावना अवश्य है। मेरी तो इस में संमति नहीं है। क्यों-कि स्थान बड़ा विकट है। इस प्रकार गोपालदास के मना करने पर भी राठोडों ने उन का पीछा किया। आगे बहुत गहरी सघन झाड़ी थी, शत्रुदल को उस का आश्रय मिल गया जिस से शत्रुदल का बल बढ़ गया और राठोड बहुत से उस युद्ध में मारे गए और घायल हुए। कोली लोग पैदल थे और राठोड घोड़ों पर सवार थे जिस से राठोड़ों का दाव नहीं लगा वृथा मारे गए। इस मुहित में निम्न लिखित सुभट मारे गए:—

राठोड सूरजमल चांपावत आउवे का ठाकुर।

,, गोपालदास मांडण जैतावत। पाली ठाकुर।

,, जयसिंह कर्मसिंह का पुत्र चांपावत।

मेड़तिया राठोड़ हरिसिंह बलूँदा ठाकुर चांदावत।

राठोड गोपालदास ईडरिया।

राठोड राघवदास पाली ठाकुर गोपालदास का पुत्र।

ईसरदास नींबावत करणोत।

जसवंत कला का पुत्र, जैसा का पौत्र।

किसनसिंह मेहाजल का पुत्र।

रायसिंह ईसरदासोत

इन सरदारों के मारे जाने से महाराज को अत्यंत शोक हुआ, परन्तु भवितव्य जो होता है हो ही जाता है। महाराज आषाढ़ सुदि पूर्णिमा को वहां से अहमदाबाद आए।

और बादशाह के पास प्रार्थना पत्र लिख भेजा कि आप के प्रताप से कोलियों का मेवासा लूटा गया है। अब गुजरात के सूबह में कोई उपद्रव नहीं है। मै एक बार घर जाना चाहता हूँ आज्ञा हो तो घर जा आऊँ। बादशाह ने प्रार्थना स्वीकार करके घर जाने की आज्ञा दी। महाराज अहमदाबाद से सवत् १६६३ की पौष सुदि पूर्णिमा को प्रयाण कर फाल्गुन सुदि ७ को जोधपुर आए। आते ही महाराज ने

उन सरदारों के ठिकानों में, जो मांडवे के युद्ध में मारे गए थे, अपने कृपापात्र जोशी पता के पुत्र गोपाल और मुहता सुखदत्त को भेज कर ख़ातिर की।

इसी वर्ष मे महाराज ने भाटी गोविन्ददास के द्वारा सूरसागर तालाब करवाया और उस तालाब के तट पर महल और उस के साथ बाग भी करवाया गया। तदनंतर सूरजकुंड नामक बावडी करवाई गई।

महाराज ने इसी वर्ष में चार लाख पसाव दिये।

१ एक लाख बारहठ को   १ सादूँ माला को

१ एक भट गोपाल को   १ कवियट भानीदास को।

प्रत्येक लाख पसाव में पचीस हज़ार रुपये नक़द दिये गए।

सं० १६६३ के फाल्गुन सुदि ७ को महाराज मांडवा विजय करके जोधपुर आए उस समय बादशाह जहांगीर आगरा में था। वहां से बादशाह ने महाराणा अमरसिंहजी पर सेना भेजी। और सीसोदिया सगर को, जो महाराणा उदयसिंह का पुत्र था, अपने मुख से कहा कि हम तुम को उदयपुर का स्वामी बना देंगे। इसलिए उस सेना में अग्रणी सगर था। मोहबतखां की अध्यक्षता में सेना मेवाड पर रवाना हुई, मोहबतखां ने मेवाड़ मे पहुँच कर जिज्ञासा की कि महाराणा का परिजन भाग कर कहाँ गया है? जिन को ज्ञात था उन्होंने मोहबतखाँ से कहा कि महाराणा का परिजन अंतःपुर सहित सोझत में है। यह सुनते ही मोहबतखां ने सोझत पर सेना भेजी। परंतु वहाँ महाराणा का लोक बहुत था और मारवाड़ का लोक भी शामिल हो गया था। इसलिए मोहबतखाँ ने बादशाह के चरणों में प्रार्थनापत्र लिख भेजा कि महाराणा का परिजन सोझत में है। और यहां महाराणा का लोक बहुत है और मारवाड़ के राजपूत भी उन के शामिल हैं। इसलिए इस समय सोझत ज़ब्त होने की आज्ञा होनी चाहिए। क्योंकि जब तक सोझत जोधपुर महाराज के अधिकार में है तब तक उन का बल क्षीण होना कठिन है। बादशाह ने उस के अर्ज करने पर उसी की शिफ़ारिस से सोझत का परगना राव चन्द्रसेणजी के पुत्र कर्मसेन के नाम वि० संवत् १६६४ के वैशाख सुदि ३ को महाराज सूरसिंहजी से ज़ब्त करके लिख दिया। तब महाराणा का परिजन वहाँ से चला गया। महाराजा उस समय आगरा में थे। वहाँ से दक्षिण को भेजे गए। मार्ग में जाते महाराजा को ख़बर मिली कि सोझत कर्मसेन को दे दिया गया है। तब महाराज ने भाटी गोविन्ददास को मोहबतखाँ के पास भेजा उस ने मोहबतखां से बहुत

कुछ कहा सुनी की परन्तु उस ने कुछ भी ध्यान नही दिया। सोभत पर कर्मसेन का अधिकार छः ६ मास और दो दिन रहा। वि० सवत् १६६५ के कार्तिक सुदि ५ को मोहवतखां सूवह के अधिकार से हटाया जा कर उस के स्थान में अवदुल्ला सूवहदार नियत हुआ। उस समय कर्मसेन सोभत में था। उसे जाने का कहा गया परन्तु वह नहीं निकला। अवदुल्ला ने सेना भेज दी। कर्मसेन के पास छः सौ के अनुमान सवार थे। सोलकी कुभा कर्मसेन के पास बड़ा वहादुर सरदार था वह वादशाही सेना से वड़ी वीरता से लड़ कर स्वर्ग को सिधारा। उस के साथ उस की स्त्री सती हुई जिस के हाथ का चिन्ह सोभत के भीतरी प्राकार के द्वार के पार्श्व में विद्यमान है। कर्मसेन ने भी वड़ी वीरता से युद्ध किया। अत में अपना टिकाव होता न देख कर वहाँ से चला गया। और सोभत पर वादशाही अधिकार हो गया।

महाराजा सूरसिंहजी विशेषतया दक्षिण के युद्ध स्थल में ही रहा करते थे। वहाँ शत्रु को विजय करने से लूट में द्रव्य भी मिलता था जिस से महाराजा को यश और द्रव्य दोनों का लाभ हुआ करता था। वि० संवत् १६६५ में महाराजा के कोष में निनानवे लाख रुपये जमा हो गए थे। और दैव अनुकूल था जिस से मारवाड़ में भी वर्षा अच्छी होती थी। दोनों ओर से अच्छा द्रव्य संग्रह हुआ।

इसी वर्ष में महाराज वादशाह जहांगीर के हुजूर में आगरा में हाज़िर हुए। वादशाह ने इन को सेवा से प्रसन्न हो कर चार हज़ारी जात व दो हजार सवार का मन्सव कर दिया।

महाराज वादशाह के हुजूर में गए तव आप के साथ अमरसिंह जी के चचे का पुत्र श्यामसिंह भी था। और एक चारण कवि भी था। वादशाह ने इन दोनों व्यक्तियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "सूरजसिंह दरवार में हाज़िर हुआ। अमर के चचे के पुत्र श्याम को साथ लाया। यह कुछ योग्यता रखता है। हाथी की सवारी करता है। सूरजसिंह एक चारण कवि को भी साथ लाया था। उस ने मेरी प्रशंसा में इस विषय का एक कवित्त बना कर कर्णगोचर कराया। यदि सूर्य के कोई पुत्र होता तो सदा दिन ही वना रहता। कभी रात्रि होती ही नही। क्योंकि जव सूर्य छिप जाता है तो उस का पुत्र उस के स्थानापन्न हो जाता और जगत को प्रकाशित रखता। ईश्वर को धन्यवाद है कि उस ने आप के पिता को ऐसा पुत्र दिया कि उस की मृत्यु के अनतर जनता को शोक का दुःख जो रात्रि के समान है, नही उठाना पड़ा। सूर्य संतप्त होता है कि यदि मेरे ऐसा पुत्र होता तो मेरे स्थान में स्थित हो कर रात्रि नही होने देता। जैसा कि आप के

भाग्य और न्याय रूप प्रकाश से ऐसी महती घटना (अकबर की मृत्यु) होने पर भी जगत् ऐसा प्रकाशित और आनंदित है कि दुःख-रूप रात्रि का कहीं चिन्ह भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

मैंने ऐसे अनुपम विषय की कविता कम सुनी है। इस के पारितोषक मे चारण को एक हाथी दिया गया।

बूँदेला दला बादशाह की आज्ञा पालन करने में त्रुटि करता था और उत्पथ चलता हुआ देश मे उपद्रव करता था। उसे दंड देने के लिए बादशाह ने मोटा राजा उदयसिंहजी के पुत्र भगवानदास को आज्ञा की कि दला को दंड दे कर सीधा कर दो। भगवानदास आज्ञानुसार दला पर गया। वह अत्यंत उद्दण्ड और उद्धत था। भगवानदास ने उस पर आक्रमण किया। संग्राम हुआ। उस में भगवानदास मारा गया। वह राठौड़ों के मन में बहुत खटकता था। परन्तु अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दिन दला बादशाही दरबार मे जाने को घर से निकला उस समय उस के नकीब ने दला की बड़ाई में यह कहा "भगवानदास के भुजों का भांगणहार" और वह दरबार मे चला गया। भगवानदास का पुत्र गोविंददास भी दरबार में गया[1]। वहाँ से पीछे लौटे उस समय किसी ने गोविंददास से कहा कि आज तो दला के नकीब ने ऐसे अक्षर कहे थे "भगवानदास के भुजों का भांगणहार" यह सुनते ही गोविन्ददास आगबबूला हो गया। और उसे वहीं अंबखास के द्वार के बाहिर ही मारने का विचार किया। परन्तु मुकुन्ददास साङ्गलोत ने कहा कि यह बादशाह के अंबखास का द्वार है, यहाँ पर ऐसी घटना न होनी चाहिए। अभी यहाँ से चलिये। इस का उत्तर दे देंगे। दला तुरत ही बुंदेलखंड चला गया। गोविंददास और मुकुन्ददास दोनों महाराज के पास गए। महाराज से निवेदन किया तो महाराज ने गोविंददास के साथ जाने के लिए मुकुन्ददास से कहा। ये दोनों बुंदेलखंड में जा गंगा को पार कर दला के डेरे पर गए। वहाँ पहरेदार खड़ा था उसे मार कर दला के समीप पहुँचे। वह निद्रा मे था। जाते ही लात मार कर जगाया। और कहा कि हम भगवानदास के वैर का बदला लेने आए हैं, उठ खड़ा हो। वह भी बड़ा वीर पुरुष था तुरत उठ खड़ा हुआ और गोविंददास के ऊपर कटार का प्रहार किया, परन्तु वह छिलती सी लगी। इतने में मुकुन्ददास ने उस पर पेशकब्ज का प्रहार किया जिस से दला का काम तमाम हो गया। ये दोनों वीर अपना काम कर उसी रास्ते पीछे लौट आए। दला के मनुष्यों ने उन का पीछा किया था परन्तु उन्हें पहुंच नहीं सके। वे दोनों उदयपुर हो कर

(१) यह बादशाही मन्सबदार था। पांच सौ जात और ढाई सौ सवार का मन्सब था।

मारवाड मे आए। उस समय महाराज मारवाड़ मे थे। ये दोनों महाराजा के चरणो में उपस्थित हुए तव महाराजा ने उन की वहुत प्रशसा की और योग्य सन्मान से सन्मानित किया।

वि० संवत् १६६७ में भाटी गोविन्ददास को वुला कर सूवहदार ने कहा कि महाराजा सूरसिहजी तो दक्षिण मे वादशाह की सेवा मे लगे हुए हैं। यदि महाराजकुमार गजसिहजी सेवा करें तो इस समय उन को सोभत मिल सकता है। सेवा यह है कि महाराजकुमार नाडोल के थाने पर जाना स्वीकार करें और हम से मिलें। गोविद्-दास ने महाराजकुमार के पास आकर समस्त वृत्तान्त कहा। महाराजकुमार सूवहदार के कहने से गोविन्ददास को साथ मे ले कर अवदुल्लाखां के पास मुकाम मोही गए और अवदुल्लाखां से मिले। अवदुल्लाखॉ ने महाराजकुमार से कहा कि तुम्हारे पास सेना का संग्रह अच्छा है यदि तुम नौकरी करना स्वीकार करो और नाडोल के थाने पर जाओ तो सोभत तुम को दे दिया जाय। महाराजकुमार उस के कथन से नाडोल के थाने पर गए जहॉ जालोर के शासक गजनीखान के मनुष्य थे। महाराज कुमार गजसिंहजी सवत् १६६७ आश्विन सुदि ५ को नाडोल पहुँचे। गजनीखान के मनुष्य महाराज-कुमार को आए देख कर जालोर से अवदुल्लाखां के पास चले गए। महाराजकुमार ने थाने पर अपना अधिकार कर लिया।

वादशाह जहांगीर के समय का गजनीखान का शिलालेख वि० संवत् १६६६ का गोडवाड़ परगने के नाडोल नगर में नीलकंठ महादेव के मदिर की पूठ में गोख मे लगा हुआ मिला है। उस मे लिखा है कि गजनीखान ने नाडोल के थाने के आगे कोट करवाया और नगर का नाम नूरपुर रखा[1]।

महाराजकुमार ने थाने पर अधिकार करके वहां पर छोटे बड़े ५६ अधिकारी रखे। और उन के साथ ६०० सवार, ५०० तोपची और ६०० पैदल रखे गए।

वि० संवत् १६६८ वैशाख वदि ४ को महाराजकुमार गजसिंहजी नाडोल से पाणिग्रहण करने के लिए रामपुरा गए। और भाटी गोविंददास गूंदोच गया उस समय नाडोल के थाने का प्रबन्ध इन तीन मनुष्यों के आधीन किया:—

---

(1) शिलालेख की प्रतिलिपि:—"सवत् १६६६ व्र (व) षै जे (ज्ये) ष्ठ सुदि १५ वुधवार पातसाह श्री सलेमसाह नूरदी महमद ज्यांहगिरराज्ये जाहलोरपति महाखांन श्री गजनी खांनजी उबरा १०० संयुक्त नाडोल थांणे आगा कोट करावी गांम नो नाम नूरपार राखू छै। आसु वद ११ वार व्रसपति छै।

राठोड़ जैतसिंह उदयसिंहोत १ भाटी ईसरदास हरदासोत १ पचोली चतुभुज। और उन की आधीनता में २४०० सवार और २०० तोपची रखे गए। विवाह करके महाराजकुमार और भाटी गोविंददास जोधपुर आए। मेड़ता, सोझत व जैतारण का प्रबन्ध किया।

इसी वर्ष में पौष सुदि ११ को सीसोदिया भीम गांव ईसाली को लूट कर निकला, तब उस के पीछे राठोड लछमण, नारायणदास और अमरसिह सांकरोत गए। ये उसे मार्ग में ही पहुंच गए, वहां दोनों में युद्ध हुआ। जय पराजय किसी की नही हुई। भीम अपने स्थान को लौट गया।

इसी वर्ष में एक घटना फिर वैसी ही हुई। जिस समय महाराजकुमार गजसिहजी तो जोधपुर मे थे। और भाटी गोविंददास नाडोल के थाने में था। अहमदाबाद से एक कतार आगरे को जा रही थी। महाराणा अमरसिहजी ने उसे लूट लेने के लिये प्रथम से ही अपने जासूस लगा रखे थे। जब वह कतार मारवाड राज्य की सीमा मे पहुँची उस समय महाराणा ने अपने पुत्र अर्जुनसिंह को दो हज़ार सवार दे कर भेजा। और वे दूनाड़ा तक आए। दैवी घटना ऐसी हुई कि कतार तो आगे निकल गई और ये पीछे पहुंचे। इन के हाथ कुछ न लगा खाली हाथ पीछे लौटे। पीछे जाते ये लोग गांव मूलेवां, मालगढ़ पहुचे, जो भाद्राजण के समीप है, भाटी गोविंददास को नाडोल के थाने में सूचना मिली कि महाराणा का लोक आगरे जाने वाली कतार को लूटने आया था। वह तो उन के हाथ नही लगी और पीछे जाते है। यह सुनते ही भाटी गोविंददास तुरन्त उन के पीछे गया और जा लिया। दोनों मे सग्राम हुआ। गोविंददास वडी वीरता से लड़ा, महाराज की विजय हुई। इस युद्ध में उरजनोत भाटी आसकरण का पुत्र गोपालदास भी था। और उस ने वडी वीरता का कार्य किया था जिस से प्रसन्न हो कर महाराजा ने उस को खेजडला का पटा इनायत किया। और राठोड खीवा मांडणोत को मेडता प्रांत का गांव ईड़वा, और खिदमतगार मान को जैतारण का गांव रतनपुरा दिया गया।

वि० संवत् १६६६ में भाद्रपदि ११ को बादशाह स्वय सेना ले कर उदेपुर पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ और अजमेर में आ कर ठहरा।

उस समय महाराजा सूरसिंहजी नाडोल के थाने में थे। वहां एक शिल्पकार विष्णु की मूर्ति महाराज के दृष्टिगोचर कराने को लाया। वह पचोली जीव राज से मिला। उस ने भाटी गोविंददास

से कहा कि एक शिल्पकार विष्णु की मूर्ति लाया है। महाराज के दृष्टिगोचर कराना चाहता है। मूर्ति अत्यंत ही सुन्दर है। गोविंददास ने महाराज से अर्ज़ किया तो महाराज ने कहा कि हम देखेंगे। मूर्ति को देख कर महाराज अत्यत प्रसन्न हुए। और वह मूर्ति रख ली। शिल्पकार को पारितोषिक दिया गया। वह मूर्ति जोधपुर के किले मे स्थापित की गई। ठाकुरजी का नाम आनन्दघनजी रखा गया। पहले शालिग्राम शिला लक्ष्मीनारायण की मूति थी। आनन्दघनजी के पुजारी व्यासनाथो, तापो, रघुपत और पद्मनाभ नियत हुए।

भाटी गोविंददास का सहोदर भाई सुरतांण महाराणा का मातहत था। उस पर संवत् १६६६ में राठोड गोपालदास भगवानदासोत, राठोड़ रामदास चांदावत, सबलसिंह, सुन्दरदास, सूरसिंह और नरसिंह केसरीसिंहोत जोधा चढ़ कर गए। सुरतांण भी अपने सुभटों को ले मुकावला मे आया। गांव वर के समीप युद्ध हुआ जिस में सुरतांण भाटी मारा गया परन्तु मरता २ राठोड सुन्दरदास, सूरसिंह और नरसिंह को ले बैठा। गोपालदास घायल हो कर निकल गया। भाटी गोविंददास को ख़बर लगी कि गोपालदास सुरताण को मार कर जाता है। तुरन्त महाराजकुमार गजसिंहजी को ले कर गोपालदास के पीछे गया। मेडते के गांव खाखड़की के पास जाता उसे पहुंचा। और उसे मार लिया। इस युद्ध में नरसिंह के ५० और सुरतांण के ५३ मनुष्य मारे गए।

महाराजा नाडोल के थाने में थे वहां महाराजकुमार गजसिंहजी और भाटी गोविंददास महाराज के पास थे। सीरोही के राव राजसिंहजी ने चंद्रसेणजी के पुत्र रायसिंहजी का वैर मिटाने के लिए अपने छोटे भाई सूरसिंह के द्वारा यत्न किया। और उस से पूर्व भाटी गोविंददास से परामर्श भी कर लिया था। राव ने सूरसिंह के द्वारा कहलाया कि चंद्रसेणोत रायसिंह के वैर को मिटाने के लिये मै प्रस्तुत हूं। किसी प्रकार उस वैर की शुद्धि हो जानी चाहिए। अब तो उसे समय भी वहुत हो गया है। सूरसिंह के यह प्रस्ताव करने पर भाटी गोविंददास ने महाराज से अर्ज़ किया कि राव का कथन उचित ही है। समय बहुत हो गया है रूठे कौन से नही मनाये जाते है। वैर की शुद्धि हो जाना भला ही है। इस प्रार्थना पर महाराज ने गोविंददास के लिहाज़ से स्वीकार किया। परन्तु उस के साथ इतनी शर्तें तय हुईं। महाराजकुमार गजसिंहजी को कन्या दी जावै।

और दताणी के युद्ध मे जो रायसिंहजी के साथ २९ सरदार मारे गए थे उन को देवडो की कन्या व्याही जावें । इस के सिवा

बारहठ दुरसा और कल्याणराय के द्वारा राव के छोटे भाई सूरसिंह ने जो महाराज को लिख दिया है उस की तामील की जावै। और सुरताण के समय की चांदी की चौकी दी जावै। यह लेख वि० संवत् १६६९ फाल्गुन वदि षष्ठी को हुआ था। इस मे हस्ताक्षर देवडा पृथ्वीराज और भैरोदास के हैं। सूरसिंह के द्वारा यह लेख लिख कर राव राजसिंह ने महाराजा को मिहमानी दी।

और महाराज की ओर से भी उसी विषय का विश्वासार्थ लेख लिखा गया जिस मे गढवी (चारण) दुरसा और जोसी कल्याण के हस्ताक्षर[1] है।

---

(१) पंडित गौरीशंकरजी हीराचंदजी ओझा सीरोही के इतिहास में इस लेख को स्वीकार करते है परन्तु उक्त लेख का होना महाराव राजसिंह की ओर से नहीं, किंतु उस के छोटे भाई सूरसिंह की ओर से कहते है। उन का लेख यह है।— "राव राजसिंह सीधे साधे भोले राजा थे। जिस से इन का छोटा भाई सूरसिंह इन से राज्य छीनने का प्रपंच करने लगा—और सीरोही का राज्य छीनने के लिए जोधपुर के महाराज सूरसिंह को अपना सहायक बनाना चाहा। महाराव सुरताण ने दताणी की लड़ाई में राव रायसिंह चंद्रसेणोत को मारा था जिस का वैर उस ने मिटाना चाहा। और उस के लिए यह बात तय हुई कि महाराव (ज) सूरसिंह के कुंवर गजसिंह का विवाह देवडा सूरसिंह की लडकी से हो और उसी दिन २९ दूसरे राजपूतों के, जिन के रिश्तेदार दताणी की लड़ाई में मारे गए थे। सूरसिंह के पक्ष के राजपूतों की लडकियो से हो। देवडा विजा का जड़ाऊ कटार कुंवर गजसिंह के नज़र किया जाय। और राव रायसिंह के डेरे का सब सामान तथा उनका नक्कारा, जो महाराव सुरतान ने छीना था, पीछा दे दिया जावें। इस की एवज में महाराज सूरसिंह देवड़ा सूरसिंह को सीरोही की गद्दी पर बिठलावै। और बादशाह के पास ले जाकर उस को बादशाही सेवा में दाखिल करावै। और उस (सूरसिंह) का पुत्र सीरोही के राज्य से कभी न निकाला जाय इस का प्रबंध करे। यह बात आपस में तय हुई। जिस की तहरीर वि० स० १६६८ (ई० सन् १६१२) के फाल्गुन महीने में हुई। और जोधपुर के महाराज सूरसिंह ने देवडा सूरसिंह को सीरोही का मालिक क़बूल कर लिया। इस खटपट से महाराव राजसिंह और सूरसिंह के बीच द्वेषभाव बढता गया।" उक्त लेख को पंडितजी केवल देवडा सूरसिंह की ओर से होना लिखते हैं परंतु उक्त लेख के अंत में हस्ताक्षर देवडा पृथ्वीराज और भैरवदास दोनों के हैं। जिस से यह लेख केवल सूरसिंह की ओर से ही हुआ हो यह नहीं कह सकते। क्योंकि स्वयं पंडितजी देवडा पृथ्वीराज को महाराव के पक्ष में और भैरवदास को

.. ..त् १६७० मे महाराज अजमेर जा कर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए उस समय बादशाह ने पांच हजारी जात व सवार का मन्सब दिया। और आज्ञा की कि शाहजादा खुर्रम महाराणा को पथ पर लाने के लिए उदयपुर गया है तुम भी जाकर उन के शामिल होओ। महाराज ने आज्ञा को शिरोधार्य कर के मेवाड की ओर प्रयाण किया। और शाहजादा की सेवा मे जा उपस्थित हुए। शाहजादा खुरम ने मेवाड़ के प्रबध के वास्ते वहां चार पांच थाने रखना निश्चित किया। और एक थाना गांव सादड़ी में रखा गया। वहां का जल वायु अस्वास्थ्यकारी होने से थाने के लोग अत्यंत व्याकुल हुए। तथापि महाराजकुमार गजसिंहजी और भाटी गोविन्ददास ने उस थाने में एक मास पर्यंत निवास किया। जिस से सरदारों को भी रहना पडा। जब वहां का प्रबन्ध उत्तम हो गया तब शाहजादा ने कहा कि इस समय नाडोल में जो थाना है उस के तीन विभाग कर दिये जायँ। नाडोल, साई और राणपुर। इन तीनों थानो में दृढ़ प्रबंध हो जाने से महाराणा ने विचार किया कि मारवाड़ का राजा सूरसिह शाहजादा के साथ है और उधर बादशाही क़ब्ज़ा हो गया है इसलिए महाराजा सूरसिह से बात चीत कर के सधि का यत्न किया जाय। तदनुसार महाराणा ने सूरसिहजी द्वारा संधि का प्रस्ताव किया। शाहजादा ने महाराजा सूरसिहजी के बीच मे पड़ने से सधि करना स्वीकार किया जब सधि की वार्ता निश्चित हो गई तब महाराणा अमरसिंहजी गांव गोघूंदे में आकर शाहजादा से मिले। जहां पहले से बैठक की रचना कर रखी थी। शाहजादा तख्त पर बैठा। महाराणा उस के पार्श्व में बैठे। महाराजा सूरसिहजी और अबदुल्ला ख़ां भी इस सभा में विद्यमान थे। महाराणा की शाहजादा से मुलाकात हुई। दोनों ओर से कुशल प्रश्न पूछे गए। तत्पश्चात् साधारण वार्तालाप हो कर सधि विषय की वार्ता हुई और महाराणा अपने डेरे पर गए। जो वहां से दो कोस की दूरी पर था। तदनन्तर महाराजकुमार करन शाहजादा के पास अजमेर में हाज़िर हुआ। तब मेवाड मे जो बादशाही थाने थे उठा दिये गए।

मूहणोत नैणसी लिखता है कि महाराणा अमरसिंह शाहजादा खुर्रम से गांव गोघूंदा मे मिले और एक हज़ार १००० सवार की

सूरसिंह के पक्ष में बतलाते हैं। और उक्त लेख के अंत मे दोनों के हस्ताक्षर हैं जिस से तो यही जाना जाता है कि उक्त लेख महाराव राजसिंह और छोटा भाई सूरसिंह दोनों भाइयो की ओर से हुआ था। और इसी मामले में दोनों भाइयों के पास में अनबनत हो गई हो और उस के पश्चात् सूरसिह ने राज्य छीनने का प्रपंच किया हो।

चाकरी स्वीकार की। और उस के साथ यह भी लिखा है कि अमर सिंह शाहजादा खुर्रम से गोघूंदे में मिले तब महाराणा को मेवाड मे मांडलगढ़, बदनोर और नीमच आदि कई परगने जागीर में देकर महाराणा का पचहजारी सवार का मन्सव किया गया। महाराणा अमरसिंह ने ९ वर्ष विपत् में व्यतीत किये। अंत में उपर्युक्त संधि हुई। तत्पश्चात् महाराजकुमार करण शाहजादा के साथ अजमेर गया और बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुआ।

इसी वर्ष में पुरोहित करण नाडोल से शाहपुरे को जा रहा था राणपुर के मंदिर के निकट नवाब अबदुल्लाखां का डेरा था, उस ने अपने मनुष्यों से पूछा कि यह जो इधर से जा रहा है कौन है उन्होंने नवाब को कहा कि यह करण जा रहा है। नवाब ने करण सीसोदिया के भ्रम से मंदिर के बाहिर निकलते उसे मार डाला उस के साथ उस के १३ मनुष्य मारे गए।

इसी वर्ष में भाटी गोविंददास को महाराजा सूरसिंहजी ने प्रधानामात्य नियत किया। यह पुरुष महाबुद्धिमान्, नीतिविशारद और प्रबंध के कार्य में अत्यंत ही निपुण था। इस ने बादशाहत के प्रबंधानुसार जोधपुर के राज्य का प्रबंध किया। दीवान, बख्शी, हाकिम, कारकून, पोतदार, वाकानवीश, खानसामा, प्यादबख़्शी आदि ओहदेदार नियत करके समस्त कार्य को एक तंत्र में बांध कर राज्य कार्य्य की प्रणाली का परिवर्तन कर नवीन युग प्रवृत्त किया। और मारवाड राज्य के अधीश रावरणमलजी, जोधाजी आदि की संतान, जो विस्तृत हुई, उस को यथायोग्य सन्मान सूचक चिन्ह (कुरब) देकर राज्य के उमराव (सामंत) पद से अलंकृत किया। और उन उमरावों की बाई और दाहिनी दो पंक्ति (मिसल) नियत की। जिन में रावरणमलजी के वंशज तो दाहिनी पंक्ति में बैठने के अधिकारी बनाए गए। और जोधाजी के वंशजों को वाम भाग में बैठने का अधिकार दिया गया। और दाहिनी पंक्ति में शीर्ष स्थान (सिरो) आउवा के अधिपति चांपावतों को, और वाम भाग की पंक्ति में शीर्षस्थान रीयां के ठाकुर मेडतिया को इनायत किया गया। इस के सिवा प्राचीन यह रीति चली आती थी कि जब कभी कोई रईश स्वर्गगामी होता तो सहानुभूति के लिए सरदार और मुत्सद्दियों की स्त्रियां रोती हुई किले पर जाती थीं। जैसे साधारण प्रजा के घर पर संबंधी और मित्र वर्ग की स्त्रियां जाती है। उस रीति को भाटी ने बिलकुल बंद कर दिया। और खवास पासवान भी नियत किये गए। जिन में खीची तो रईस को तलवार बंधावें। अथवा अपने हाथ में रखे। धांधल चमर धारण करे। इत्यादि अनेक प्रकार के कार्य पृथक् २ नियत कर दिये गए। राव मालदेवजी आदि के समय में मारवाड़ का राज्य पूर्ण संपन्न और

समृद्ध था तथापि राज्य रीति कोई प्रचलित नहीं थी। भोमीचारे के समान सब रीत रश्म थीं। भाटी ने सब का परिवर्तन कर के बादशाहत की रीति के अनुसार जोधपुर राज्य का प्रबंध बांध दिया। तब से जोधपुर राज्य में वह प्रबंध अविच्छिन्न चला आता है। राज्य में सुविधा के साथ इस प्रकार का परिवर्तन कर के बादशाहत की शोभा दिखाना उसी बुद्धिमान् प्रधानामात्य का काम था। उस समय के प्रबंध के विषय में एक प्राचीन निशानी छंद का वाक्य मिलता है :—

"गोवँद्दास गरजियौ सूर हदै वारै।
के थापे के ऊथपे मेवासा मारै॥

इसी वर्ष में फलोधी का परगना महाराजा सूरसिंहजी को बादशाह ने उनकी सेवा से प्रसन्न हो कर लिख दिया। जो बीकानेर के अधिपति राव रायसिंह के पुत्र सूरसिंह के अधिकार में किया गया था। इस प्रांत के प्राप्त होने पर महाराजा ने कार्तिक सुदि पूर्णिमा को चंद्रग्रहण में रौप्य का तुलादान किया। यह तुलादान सूरसागर में किया गया था।

वि० संवत् १६७१ में महाराज शाहजादा के पास उदयपुर में थे उस समय महाराजकुमार गजसिंहजी और भाटी गोविंददास को साथ में ले कर सीरोही पर गए और सीरोही के राव राजसिंह से दंड लिया। इस बात की शाहजादे को खबर हुई तब शाहजादा इन पर अप्रसन्न हुआ, परंतु महाराज की सेवा के कारण इस अपराध को क्षमापन किया।

बादशाह जहाँगीर पुष्कर में था और महाराजा सूरसिहजी अजमेर मे थे। महाराजकुमार गजसिंहजी और भाटी गोविन्ददास भी महाराजा के पास थे। लिख आए है कि भाटी गोविददास ने महाराजा उदयसिंहजी के पौत्र, भगवानदास के पुत्र गोपालदास को, जो कृष्णसिंहजी का भतीजा होता था, मार दिया था। कृष्णसिंहजी ने उस का बदला लेने के लिए भाटी गोविददास को मार डाला। और उसी सिलसिले मे स्वयं कृष्णसिंहजी भी मारे गए। प्रथम कृष्णगढ़ के महाराज कृष्णसिहजी, राव चंद्रसेणजी का पौत्र— उग्रसेन का पुत्र कर्मसेन, और मोटा राजा उदयसिहजी का पौत्र—सगतसिह का पुत्र करणसिंह आदि अपनी सेना सज कर गोविन्ददास के डेरे पर गए। अरुणोदय का समय था, गोविन्ददास सोया था, ये लोग वहाँ पहुँचे। और गोविददास को घेर लिया।

गोविददास वडा वीर पुरुष था, उस समय भी तलवार उस के पास थी। तुरंत तलवार ले कर साम्हने चला, इतने मे उसके राजपूत भी आ पहुँचे। परस्पर तलवार चली, गोविददास मारा गया[1]। जिस समय यह घटना हुई थी महाराजा निद्रा मे थे। आप जागृत हुए और इस घटना के समाचार सुने तो अत्यंत चिताग्रस्त हुए और विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिए। इतने मे महाराजकुमार गजसिहजी प्रणामार्थ आए। उन्हें देख कर महाराज ने कहा कि हमारे प्रधानामात्य भाटी गोविंददास को कृष्णगढ़ाधीश कृष्णसिह मार कर चला गया है। तुम उस का अनुसरण करो और उसे पकड़ो। यदि पकड़ा न जाय तो मार डालो। महाराजकुमार कृष्णगढ महाराज के डेरे पर गए परतु वे वहां से कृष्णगढ़ की तर्फ चल पडे थे। महाराजकुमार ने उन को मार्ग में ही जा लिया। कृष्णसिहजी वहीं डट गए। और दोनो में तलवार चली। इस लड़ाई में कृष्णसिह जी महाराजकुमार के हाथ मारे गए। महाराज की विजय हुई।

तुजक जहांगीरी[2] में यही वृत्तांत इस भांति लिखा है। "एक अद्भुत घटना हुई कि राजा सूरसिह का भाई कृष्णसिह राजा सूरसिह के वकील भाटो गोविददास से विरोध रखता था। क्योंकि उस ने उस के भतीजे गोपालदास को किसी कारण से कुछ समय पहले मार डाला था। उस का वृत्तांत वडा विस्तृत है। कृष्णसिंह के मन में विश्वास था कि गोपालदास जैसे मेरा भतीजा था राजा सूरसिह का भी भतीजा था। उस के वैर का वदला लेने में राजा सूरसिह भी सहानुभूति प्रकट करेंगे। इतना ही नहीं, किन्तु उसे वे स्वय मार डालेगे। परंतु राजा ने गोविददास की योग्यता पर ध्यान रख कर उस वात से उदासीनता धारण की। कृष्णसिह ने महाराज को उदासीन देख कर विचार किया कि मै अपने भतीजे के वैर का वदला लूं। इस प्रकार का विचार उस के मन में कई दिनों से था परतु उस के सिद्ध होने का अवसर भी तो मिलना चाहिए। अत में एक रात्रि में अपने भाई वधु और नौकर चाकरों को एकत्र कर के कहा कि आज ही रात्रि में गोविददास को मारने के लिए जाना चाहिए। जो हो सा हो। उस के ध्यान में यह वात ठसी हुई थी कि महाराज को कुछ हानि पहुँचावै। परतु महाराज को इस वात की ख़वर नहीं थी।

---

(१) कविराजा श्यामलदास इस घटना का होना वि० स० १६७२ ज्येष्ठ सुदि ८ को मानते हैं। और ख्यातों मे स० १६७१ लिखा है वह मारवाड़ी संवत् के अनुसार है। मारवाडी सवत् का आरभ श्रावण वदि १ से होता है।

(२) यह पुस्तक स्वयं वादशाह जहांगीर को रची हुई है।

पिछली रात्रि मे अपने भतीजे करण और दूसरे साथियों को लेकर कृष्णसिंह रवाना हुआ। जब महाराज की हवेली के समीप पहुंचा तब अपने साथियों में से कई बहादुर और रणकुशल मनुष्यों को पैदल करके गोविंददास के घर पर, जो राजा की हवेली के पास था, भेजा और आप दरवाजे पर खडा रहा। उन पदाति मनुष्यों ने गोविंददास के घर में जा कर पहरेदार सिपाहियों को, जो पहरे पर थे, मार डाला। इस मारकूट में गोविंददास जागृत हुआ और घबरा कर तलवार उठा कर बाहर निकला कि वह घर के बाहर चौकीदारों तक पहुँच जावै। वे पदाति जब पहरेवालों का वध कर चुके तो गोविंददास के अन्वेषण में इधर उधर दौड़ने लगे इतने में गोविंददास मिल गया। उन्होंने उस को मार डाला। कृष्णसिंह गोविंददास के मारे जाने की सूचना पहुँचने से पूर्व घोड़े से उतर कर हवेली में जाने लगा, तब उस के साथियो ने उसे बहुत समझाया कि इस समय पदाति होना योग्य नही है परंतु उस ने उन के कथन पर ध्यान नही दिया और हवेली में चला गया। यदि वह कुछ विलम्ब करता और शत्रु के वध के समाचार सुन लेता तो सम्भव था कि अपना कार्य सिद्ध कर के सवार होने के हेतु अखंड निकल जाता। परंतु उस के भाग्य में तो उसी समय उस की मृत्यु लिखी थी। जब यह पैदल होकर हवेली में पहुँचा तो, उस के पहुँचते ही महाराज सूरसिंह सोया था, सहसा कोलाहल सुन कर नंगी तलवार लेकर बाहर आया और उस के सैनिक सावधान होकर चारो ओर से आ एकत्र हुए। और उन लोगो पर जो भीतर गए थे, हमला कर के कृष्णसिंह के थोड़े से मनुष्यो को घेर लिया और एक एक मनुष्य पर दस दस टूट पड़े। इस आक्रमण में कृष्णसिंह और उस का भतीजा महाराजा के भवन के बराबर पहुँचते ही मारे गए। इस समय कृष्णसिंह ने ७ और करण ने ८ मनुष्यों को खड्ग से आहत किया था। इस लड़ाई में ६६ मनुष्य मारे गए। ३० महाराज के और ३६ शत्रु पक्ष के। प्रातःकाल होने पर वह वार्ता विदित हुई कि महाराज ने अपने भाई भतीजे और ऐसे सेवक को, जिसे वे अपने प्राणों से भी प्रिय समझते थे काल के गाल में फँसे देखा। अन्य लोग इधर उधर भाग गए।

यह समाचार मुझ को पुष्कर में मिले। मैंने उस समय यह आज्ञा दी कि शवों की उन उन की रीत्यनुसार दाह क्रिया की जावै और मुक़दमे की जांच हो। यह उपरि लिखित सर्व वृत्तांत निर्णय कराने पर ज्ञात हुआ।

महाराजा सूरसिंहजी बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए उस

समय उन्होंने अपूर्व उपहार अर्पण किया। बादशाह ने उस में
केवल ४२ हज़ार रुपयों की भेट स्वीकार की, अन्य सब महाराज के
पीछे लौटा दिया गया। तुज़क जहांगीरी पृष्ठ १३०)।

इसी पुस्तक में फिर लिखा है कि रायसूरसिंह ने अपनी जागी
से हाज़िर होकर एक हज़ार १००० मुहरें नज़र कीं। और एक बहु
बड़ा हाथी, जो उस के नामी हाथियों में से था, रणरावण जिस क
नाम था, लाकर अर्पण किया। वास्तव में यह अत्यंत प्रशस्त हाथ
है। ख़ास्सा हाथियों के शामिल किया गया। फिर राजा सूरसिंह ने
साठ हाथी और नज़र किये। जो सब ख़ास्सा हाथियों में रखे गए।

फिर कई दिन पीछे उस ने एक हाथी आगरे में भेट किया।
यह हाथी भी उत्तम है। और ख़ास्सा हाथियों में शामिल भी किया
गया। परंतु पहले जो भेट किया था वह और ही वस्तु है। संसार
की अद्भुत वस्तुओं में से है। बीस हज़ार रुपयों के मूल्य का है।
इन्हीं दिनों में फ़ौज़सिंगार हाथी के बदले में एक ख़ास्सा हाथी, जो
दस हज़ार रुपयों के मूल्य का है राजा सूरसिंह को इनायत हुआ।

उसी पुस्तक में लिखा है कि महाराजा सूरसिंह दक्षिण की युद्ध
यात्रा में भेजे गए उस समय उन को कानों में पहनने के वास्ते
मोतियों की जोड़ी और परमनरम ख़ास्सा इनायत किया गया। युद्ध
यात्रा में जाने से प्रथम महाराज दो मास की छुट्टी लेकर अपनी जन्म-
भूमि मारवाड़ में गए। और दो मास के अनन्तर पीछे बादशाह के
हुज़ूर में हाज़िर हुए। उस समय उन्होंने एक हज़ार मुहर और एक
हज़ार रुपये नज़र किये। बादशाह ने महाराज को रवाना करते
समय तीन हज़ार सवारों का मनसब दिया। अब महाराज का मंसब
पांच हज़ारी ज़ात तीन हज़ार सवार हुआ। बादशाह ने जो खिलत
दिया था, लेकर दक्षिण को रवाना हुए[२]। और वहां पहुंच कर
बादशाह के शत्रुओं को ध्वस्त करके वहां का अत्युत्तम प्रबंध किया
और जीवन पर्यंत वहीं निवास किया।

नागोर नगर पर महाराजा सूरसिंह जी का अधिकार था।
उस से पूर्व उस पर बादशाही अधिकार था। बादशाह जहांगीर ने
उस पर बादशाही अधिकार होना उचित समझा। क्योंकि यह नगर
जोधपुर और बीकानेर राज्य के मध्य में है। इसीलिए बादशाह ने
नागोर पर बादशाही अधिकार कर के प्रबंध के लिए आसफखान को
रख दिया। दूसरा कारण यह भी था कि महाराज प्रायः बाहिर सूबों
पर रहा करते थे।

---

(१) सन् १० हि० सन् १०२४ (वि० सं० १६७१)।
(२) तुज़क जहांगीरी पृष्ठ १८० जलूस १० हिजरी सन् १०२४ (वि० संवत् १६७१)।

महाराज गुजरात के सूबह पर थे। प्रबन्ध के लिए आप ने अपने विश्वासपात्र योग्य पुरुषों को रख छोड़ा था। जैसे बड़नगर (गुजरात में) के थाने पर मूहणोत जैमल भेजा गया था। जो मूहणोत नैणसी का पिता था। इस ने नाडोल, नारलाई, फलोधी और जालोर आदि नगरों में जैन की मूर्तियां स्थापित की थीं और उन के साथ शिलालेख भी खुदवाए थे। इस के सवत् १६८६ के जालोर के शिला लेख से जाना जाता है कि महाराजा गजसिंहजी ने इस को राज्य के कार्य का सर्वाधिकार दे दिया था और जिस समय इस ने नाडोल में जैनमूर्ति स्थापित की थी उस समय नाडोल में महाराणा जगतसिह का आधिपत्य था।

इसी वर्ष में भंडारी माना को दीवान का कार्य सौंपा गया। उस ने अपना कार्य बड़ी बुद्धिमानी से किया जिस से राज्य की आय में वृद्धि हुई।

वि० संवत् १६७३ में बादशाह जहांगीर अजमेर में आया। वहां महाराजकुमार गजसिंहजी सेवा में उपस्थित हुए। बादशाह ने महाराजकुमार से कहा कि जालोर का परगना तुम को देते है तुम वहां जा कर विहारी पठानों को निकाल कर अपना अधिकार कर लो। बादशाह की आज्ञा पा, सेना एकत्र करके महाराजकुमार ने जालोर पर चढ़ाई की। जालोर को घेर लिया। विहारी भी बड़े वीर और साहसी थे, उन्होंने महाराजकुमार के साथ युद्ध करना ठाना। कई दिनों तक लड़े। अंत में राठोडो की तलवार के ताप से तप्त हो गए और जालोर छोड़ कर पालनपुर चले गए। जालोर विजय के विषय में यह प्राचीन दोहा मिलता है —

"बारह वरस अलावदी, पड़ फीटौ पतशाह।
चढियां घोड़ां सोनगढ, तैं लीधौ गजसाह॥"

इस युद्ध में विहारियों के ६ सरदार और महाराजकुमार के १९ सुभट मारे गए।

महाराजा सूरसिंहजी को जालोर मिला। तब महाराज ने उस का प्रबन्ध करने के लिए भाटी गोपालदास आसावत और भाटी-गोविददास के पुत्र दयालदास को जालोर में नियत किया। इन्होंने राव राजसिह के कहने से देवड़ा पृथ्वीराज को निकालना स्वीकृत किया। परन्तु इन्होंने राव से कहा कि पृथ्वीराज को निकालने में

मनुष्य मरेंगे उस के बदले में क्या देते हो ? तब राव ने लूणी परगने के चौदह १४ गांव महाराज को देना स्वीकार किया । देवड़ा पृथ्वीराज ने राव को गद्दी से अलग कर दिया था इसी से उस ने १४ गांव देने का स्वीकार किया था ।

गांवों के नाम ये लिखे मिलते हैं—

१ कोरटो २ कालंद्री ३ पालडी ४ नादयरो ५ देलंदर ६ झाड़ोली ७ रायपुर ८ विरामणो ९ सिलोदो १० वाडीवाव ११ मोचीली १२ रांवाड़ा १३ मामी[१] १४ देलवाड़ा ।

भाटी दयालदास राजसिंह से इन गांवों के देने की शर्त कर कर सेना ले कर देवड़ा पृथ्वीराज पर चढ़ कर गया दोनों में विकट संग्राम हुआ । देवड़ा पृथ्वीराज भी सहज की बला न थी, जिस के अगाड़ी राव राजसिंह को राज्य करना कठिन हो गया था, परन्तु राठौड़ों की सेना के आगे उस की कुछ भी नहीं चली और उस को रणभूमि छोड़ कर पहाड़ों में जाना पड़ा । उस के भाग जाने पर दयालदास ने राजसिंह को सिरोही की गद्दी पर बिठा दिया ।

इन गांवों की आय बांट चींट होने से पूर्व सिरोही राज्य के कोष में जमा हो चुकी थी इसलिए नौ हजार ९००० फदिये और तेरह सहस्र मन गेहूं महाराजा को दिये गए ।

इसी वर्ष में बादशाह जहांगीर ने फलोधी का परगना बीकानेर के राजा सूरसिंहजी को दे दिया था । और बीकानेर की ओर से मुहता मानचंद और कल्याणदास सेना ले कर अपना अधिकार करने के लिए फलोधी गए । उस समय फलोधी में महाराज की ओर से मूहणोत जैमल था । उस ने किला नहीं छोड़ा और युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया । दोनों में संग्राम हुआ जिस में महाराज की विजय हुई । मुहता परास्त हुआ ।

वि० संवत् १६७५ में दक्षिण में फिर उपद्रव उठा । तब महाराज बादशाह के पास थे । बादशाह ने महाराज को दक्षिण की मुहिम पर जाने की आज्ञा दी । महाराज दक्षिण को रवाना हुए । बालापुर के मुकाम पर महाराज ने राज्य का कार्य निरीक्षण करने के लिए महाराजकुमार गजसिंहजी को आज्ञा की और उन के साथ कार्यकर्ता मूहणोत जैमल रखा गया । महाराज मारवाड़ से रवाना हो कर

(१) पंडित गौरीशंकरजी ओझा ने सिरोही के इतिहास में (पृ० २४८) ये नाम लिखे हैं कोरटा, पालड़ी, नांदिया, मंढवाड़ा, मोंबाड़ा, झाड़ोली, पोसालिया, वांकली, देलंदर, झूंडीयां, देव, अरठ, अटवाड़ा और नागदरा ।

दक्षिण में पहुँचे। जहां दक्षिणी पठानों ने बुरहानपुर को घेर लिया था। महाराज बादशाही सेना के शामिल हुए नवाब खानखाना सेना-नायक था। बादशाही सेना उन से लड़ती रही परन्तु जब लड़ते २ अर्सा हो गया किले के अंदर का सामान खूट गया। महाराज ने नवाब खानखाना से कहा कि अब भोजन की सामग्री बिलकुल नहीं है, लोग भूख के मारे घबड़ा रहे हैं अब इस तरह भूख से मरना तो अच्छा नहीं, शत्रु पर धावा करना चाहिए जो होना है होगा। खानखाना ने उन का कहना मान लिया और किले के बाहिर निकल कर पठानों पर ऐसा हल्ला किया कि पठान भाग निकले। इस हल्ले में महाराज ने बडी वीरता का कार्य किया और उसी से बादशाह की विजय हुई।

महाराज अंतिम अवस्था में विशेषतया दक्षिण में रहे और वहीं बुरहानपुर जिले के महकर नामक स्थान में वि० संवत् १६७६ की भादों सुदि ६ (ई० सन् १६१६ ता० १६ सितम्बर) को स्वर्गवास हुआ।

ये महाराज बड़े वीर, साहसी, बुद्धिमान्, प्रजा ,वत्सल और उदार प्रकृति के थे।

बादशाह जहांगीर को इन का बड़ा भरोसा था। और वह इन का बड़ा आदर और सन्मान करता था। बादशाह को इन के स्वर्गवासी होने के समाचार मिले उस समय उस ने अत्यंत शोक किया और कहा कि मुझे राजा सूरसिंह की दक्षिण में मृत्यु होने का समाचार मिला। यह राजा राव मालदेवजी का पौत्र था। इस ने अपने वीर्य और पराक्रम से अपना नाम प्रसिद्ध करके दर्जा स्वयं हासिल किया था। इस के पिता और पितामह के समय से भी इस के समय में अच्छी उन्नति हुई। इस ने अपने पुत्र गजसिंह को अपने जीवन काल में ही राज्य की देखभाल करने का कार्य सौंप दिया था।

इस का मुख्यामात्य भाटी गोविंददास भी बड़ा बुद्धिमान्, नीति निपुण और दूरदर्शी था। उस ने इस राजा के राज्य का प्रबंध बादशाहत के ढंग पर बांध दिया था। मारवाड़ में सब से प्रथम सरदारों के कुरब और बैठने ऊठने के नियम प्रभृति सब प्रकार की रीति का आरभ इसी ने किया था। वही प्रबंध और नियम आज तक बराबर चले आ रहे हैं॥

बादशाह ने महाराजा सूरसिंहजी के लिहाज़ से उन के ज्येष्ठ पुत्र गजसिंहजी के राज्याभिषेक का तिलक अपने हाथ से बुला कर किया।

और छोटे बेटे किशनसिंहजी को दो हजारी जात व डेढ़ हजार सवार का मनसब और गुजरात में जागीर दी थी। और महाराजा सूरसिंहजी ने इन्हीं किशनसिंह को फलोधी का परगना दे रखा था।

इन महाराजा ने जोधपुर शहर में तलहटी के महल, सूरजकुंड बावड़ी और सूरसागर तालाब बनवाया था।

इन्होंने राज्य पा कर जैसे अन्य उत्तमोत्तम कार्य किए थे वैसे दान दे कर परलोक का साधन भी इकट्ठा कर लिया था।

इन्होंने १६ गाँव दान किए थे, जिन में ब्राह्मणों को २:—

१. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना जोधपुर श्रीमाली ब्राह्मण [illegible] किशनदास के पुत्र को दिया।

२. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना मेड़ता ब्राह्मण [illegible] के पुत्र को सं० १६६६ में दिया।

चारणों को १४—

१. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना जोधपुर गाडण [illegible] को दिया।

२. [illegible] को [illegible], तफ़ै [illegible], परगना जोधपुर रतनू [illegible] को दिया।

३. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible] परगना जोधपुर, [illegible] को सं० १६[illegible] में दिया।

४. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना जोधपुर, रतनू [illegible] को दिया।

५. गाँव [illegible] तफ़ै [illegible], परगना जोधपुर, सं० १६[illegible] में [illegible] को दिया।

६. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना मेड़ता, बारहठ [illegible] को सं० १६[illegible] में दिया।

७. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना मेड़ता, बारहठ [illegible] को दिया।

८. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना मेड़ता, रतनू [illegible] को सं० १६[illegible] में दिया।

९. गाँव [illegible], तफ़ै [illegible], परगना मेड़ता [illegible] को संवत् १६[illegible] में दिया।

१०. गाँव [illegible], परगना [illegible], बारहठ [illegible] को संवत् १६[illegible] में दिया।

१ गांव नापावस परगना सोजत, दधवाड़िया माधोदास चूंडावत को दिया।
१ गांव लोलावसरो वधारो परगना सोजत आसिया वैरा करमसीयोत की स्त्री देवी लिगा आढी को संवत् १६६४ में दिया।
१ सीघणानडी, परगना जैतारण का बारहठ लाखा नांदणोत को सं० १६७२ में दिया।

दसौंधी भाट को १—

१ गांव मोघावस, तफै देघांणो, परगना मेड़ता दसौंधी भाट दमन रूपसीयोत को सं० १६६२ में दिया।

इन महाराजा के समकालीन राजाः—

दिल्ली के बादशाहः—

बादशाह अकबर संवत् १६१२ से १६६२ तक

बादशाह जहांगीर संवत् १६६२ से १६८४ तक

बीजापुर के बादशाहः—

इब्राहीम आदिल शाह दूसरा संवत् १६३७ से १६७४ तक

मोहम्मद आदिलशाह दूसरा संवत् १६७४ से १७०७ तक

बुरहानपुर के बादशाह

राजा अलीखां और उसका पुत्र बहादुरखां। राजा अलीखां से संवत् १६५६ में अकबर की सेना ने आसेर का किला ले लिया।

अहमदनगर के बादशाह

बहादुरशाह सं० १६५२ से १६५५ तक

मुरतिज़ा सं० १६५५ से

गुजरात के भूतपूर्व बादशाहः—

मुजफ्फरशाह और उस का पुत्र बहादुर। (बागी)

उदयपुर के महाराणाः—

प्रतापसिंहजी (प्रथम) सं० १६२८ से १६५३ तक

अमरसिहजी संवत् १६५३ से १६७६ तक

जैपुर के महाराजाः—

मानसिंहजी सं० १६४६ से १६७१ तक

मिर्ज़ा राजा भावसिंहजी सं० १६७१ से १६७८ तक

जैसलमेर के रावलः—

भीमसिहजी संवत् १६४७ से १६८० तक

सीरोही के महाराव:—

राव सुरताणजी संवत् १६२८ से १६६७ तक

राव राजसिंहजी संवत् १६६७ से १६७७ तक

बीकानेर के राव:—

राव रायसिंहजी संवत् १६२८ से १६६८

राव दलपतसिंहजी संवत् १६६८ से १६७० तक

राव सूरसिंहजी सं० १६७० से १६८८ तक

कृष्णगढ़ के राजा:—

कृष्णसिंहजी संवत् १६६६ से १६७१ तक

सहसमलजी सं० १६७१ से १६८५ तक

दक्षिण का वीर

हवशी अमर चंपू

बूंदी के राव:—

राव भोज संवत् १६४१ से १६६४ तक

सर्वलन्द राव रत्नसिंहजी स० १६६४ से १६८८ तक।

॥ महाराजा गजसिंहजी ॥

ये महाराजा सूरसिंहजी के पट्टाधिकारी थे। इन का जन्म संवत् १६५२ कार्तिक सुदि अष्टमी ८ (ई० सन् १५९५ ता० ११ नवंबर) गुरुवार को हुआ था। इन के जन्म समय का ग्रहचक्र यह है:—

जन्मकुंडली

९ ८ बु शु ७ के
१० चं ६
११ ५ श
१२ वृ २ ४
१ मं रा ३

इन्होंने अपने पिता की विद्यमानता में अनेक वीरता के कार्य किये थे। जालोर का किला बिहारी पठानों से कवरपदे में इन्होंने ही लिया था। और दक्षिण की लड़ाइयों में भी इन्होंने पिता के साथ रह कर बादशाह की सेवा करने में कमी नहीं रखी थी।

महाराजा सूरसिंहजी महकर के थाने में बीमार हुए। इन को इस बात की खबर हुई तब बादशाह जहांगीर से अर्ज़ किया कि मेरे पिता दक्षिण में बीमार हैं मुझे आज्ञा हो जाय कि मैं पिता के चरणों में उपस्थित होऊं। बादशाह ने दक्षिण में जाने की आज्ञा दी और कहा कि अब तुम वहीं रहना। ये दक्षिण में गए जहां संवत् १६७६ के भादों सुदि ९ को इन के पिता का स्वर्गवास हो गया। इन्होंने पितृ-भक्ति से उन की और्ध्वदेहिक क्रिया की।

बादशाह जहांगीर को ज्ञात हुआ कि महाराजा सूरसिंहजी का स्वर्गवास हो गया है और गजसिंहजी वहां पहुंच गये है तो बादशाह ने नवाब खानखाना के पुत्र दुराबखां को लिखा कि राजा सूरसिंहजी के पुत्र गजसिंहजी के राज्य का तिलक कर देना । और टीके के लिए आगरा से सिरोपाव, हाथी, घोडा सोने की सागत तोग और नक़ारा बुरहानपुर भेजे गये। दुराबखां ने बादशाह की आज्ञा के अनुसार वि० संवत् १६७६ के आश्विन सुदि १० को महाराज को बुरहानपुर में गद्दी बिठा कर राज्याधिकार का तिलक किया। और बादशाह ने इन को राजा पद के साथ तीन हजारी जात व दो हज़ार सवार का मन्सब दे कर निम्नलिखित जागीर दी।

८ मारवाड़ के परगने ८ जिन में जालोर भी शामिल था[१]।

७ गुजरात के ७ सात। १ मसूदा और १ झिलाय। सब मिला कर १७ परगने थे।

महाराजा सूरसिंहजी के स्वर्गवासी होने पर हसम लेने के लिए बादशाही मनुष्य आए परंतु राठोड देवीदास के पुत्र आसकरण ने हसम देने से इन्कार किया। और दूसरे राजपूत भी सहमत रहे। बादशाह के पास शिकायत गई तो बादशाह ने हसम इनायत कर दी।

उस समय दिल्ली की बादशाहत महकर तक थी। आगे अहमदनगर के बादशाह अलीबुराहन निजामुल्मुल्क का अधिकार था। उस का सेनानायक अंबरचंपू नामक हवशी जाति का एक बड़ा वीर योधा था। महकर के थाने में दुराबखां सेनानायक था। पचास साठ हज़ार के अनुमान उस के पास सेना थी। अंबरचंपू के पास भी तीस हज़ार के अनुमान सेना थी। अंबरचंपू ने आकर दुराबखां को घेर लिया। तीन महीने हो गए परंतु घेरा उठने की कोई सूरत नही है। हमेशा लड़ाइयां होती रहती है। पांच सात लड़ाइयां बडी ज़ोर की हुईं जिस के हरवल (अग्रभाग) पर महाराजा गजसिंहजी थे। जब कभी संग्राम होता, हरवल (अग्रभाग) में महाराजा गजसिंहजी ही रहा करते थे।

संवत् १६७६ और १६७७ दो वर्ष पर्यंत बराबर संग्राम होता रहा। जिस में समस्त बादशाही सेना के अग्रभाग पर महाराजा गजसिंहजी ही दिखाई देते थे। और इन्ही की वीरता और रणकुशलता से बादशाह की विजय हुई और अंबरचंपू परास्त हुआ।

---

(१) जोधपुर, सोजत, जैतारण, सिवाणो, सातलमेर, पोकरण, सूराचंद और जालोर ये मारवाड़ के ८।

इस समय अंवरचंपू को रण छोड़ कर जाना पड़ा परन्तु वह भी एक वड़ा साहसी और कट्टर वीर था। फिर उस ने वगावत शुरू की। परन्तु महाराजा गजसिंहजी ने उस को सव तरह से स्तब्ध कर दिया जिस से प्रसन्न हो कर वादशाह ने इन को चार हज़ारी जात व तीन हज़ार सवार का मन्सव दिया और शत्रु सेना को रोकने से वादशाह ने इन को 'दलथंभन' पद प्रदान किया। इस विषय में यह प्राचीन दोहा पढ़ा जाता हैः—

"गजवंधी आलोचियो,[१] करि भेला वरियाम[२]।
पतसाही राखूं पगै, तो दलथंभण नाम" ॥

महाराजा गजसिंहजी ने महावली योधों को एकत्र करके विचार किया कि यदि मैं वादशाहत को क़ायम रखूं तो मेरा नाम दलथंभन कहा जाय।

वि० संवत् १६७६ में वादशाह ने शाहजादह खुर्रम को दक्षिण में भेजा। उस ने अंवरचंपू से संधि कर ली।

जब अंवरचंपू के साथ संधि हो गई और किसी प्रकार का झगड़ा नहीं रहा तव महाराजा गजसिंहजी खुर्रम से आज्ञा ले कर वादशाह के पास फतहपुर सीकरी में आए। वादशाह ने इन का वहुत सन्मान किया और तारीफ़ की। इन को वाहर रहते वहुत समय हो गया था इसलिए इन्होंने वादशाह से घर जाने के लिए प्रार्थना की। वादशाह ने प्रसन्न हो कर घर जाने की आज्ञा दी। संवत् १६७६ के भाद्रपद सुदि १० को ये जोधपुर आए।

वादशाह ने इन को रवाना करते समय कहा कि जालोर का परगना तुम को इनायत किया गया है। इन्होंने प्रणाम करके स्वीकार किया। परन्तु उस समय जालोर पर शाहजादह खुर्रम का अधिकार था। महाराजा के मनुष्य फ़रमान ले कर वहां पर अधिकार करने गए परन्तु खुर्रम के मनुष्यों ने ख़ाली करने से इन्कार कर दिया और कहा कि हम तो खुर्रम के आज्ञाकारी हैं उस की आज्ञा हो तो हम ख़ाली कर सकते हैं। गजसिंहजी के मनुष्यों ने आकर वहां का वृत्तांत कहा तो सुन कर चुप लगा गए। क्योंकि वह अवसर वैसा ही था।

वादशाह ने फिर महाराजा गजसिंहजी को खुर्रम के पास जाने की आज्ञा दी। तव ये वहां से रवाना हो कर खुर्रम के पास गए। उस समय वह गुजरात में था। यहां गुजराती लोगों ने उपद्रव कर

---

(१) विचार किया। २ वरियांम = ज़बर्दस्त।

रखा था उसे शांत करने के लिए ही खुर्रम दक्षिण से यहां आया था। महाराजा ने इस उपद्रव को मिटाने में बड़ी सहायता की जिस से खुर्रम इन पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस ने जालोर तो दिया ही, जो पहले बादशाह दे चुका था, परन्तु उस के साथ साचोर का परगना भी दे दिया।

बादशाह जहांगीर और शाहजादा खुर्रम के परस्पर नूरजहां बेगम के निमित्त वैमनस्य हो गया। खुर्रम बादशाह को तंग करने और दुःख देने के लिए बागी हो गया और जहां तहां लूट पाट करने लगा। बादशाह ने उसे दबाने के लिए संवत् १६८० ज्येष्ठ वदि ५ (ई० संवत् १६२३ ता० १८ मई) को शाहजादह परवेज और महावतखां को तैयार किया। और उन के साथ बड़ी सेना दे कर महाराजा गजसिंहजी को सहायतार्थ भेजा। इन को रवाना करते समय इन का मन्सब पांच हजारी जात व चार हज़ार सवार कर दिया गया। और पहली तरकी में जालोर और दूसरी तरकी में फलोधी का परगना दिया गया। और इसी वर्ष में शाहजादह परवेज की शिफ़ारिस से इन को मेड़ता भी मिल गया[1]।

इसी वर्ष में महाराजकुमार अमरसिंहजी का विवाह उदयपुर मेवाड़ में हुआ जिस समय अमरसिंहजी की उम्र ८ वर्ष की थी। वि० सवत् १६८१ के कार्तिक सुदि १५ (ई० सन् १६२४ ता० २६ नवम्बर) के दिन गंगा के तट पर हाजीपुर पटने के पास दोनो भाइयों का मुकाबला हो गया। उधर खुर्रम की सेना में तो अग्रणी महाराणा अमरसिंहजी का पुत्र भीम था। और बादशाही सेना में

---

[1]) मेड़ता अजमेर के अतर्गत है। और अजमेर परवेज की जागीर में था। उस की इच्छा मेडता सैदों को देने की थी। परन्तु मोहबतखां ने परवेज से अर्ज़ करके महाराज को दिलवा दिया। संवत् १६८० मे राठोड़ कान्हो खीवावत और भंडारी लूणा ने वहाँ जा कर क़ब्ज़ा किया। कर्नल टाड साहिब अपने इतिहास में लिखते है "गजसिंह के उत्साह और धैर्यप्रद वचनों से बादशाह जहाँगीर का हृदय बहुत कुछ शांत हुआ। वह राठौर राजा पर इतना संतुष्ट हुआ कि उस से केवल हाथ ही नहीं मिलाया वरन उस के हाथ को चूमा भी। (वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित भाग २ का पृष्ठ ७४) एक ख्याति पुस्तक में लिखा है कि महाराज को इस मन्सब के साथ बराड़ परगने का जलगाँव भी जागीर में मिला था। जिस की आय दो लाख की थी। महाराज ने वहाँ पर भाटी रूपसिंह के पुत्र सिंघ को फ़ौजदार नियत करके भेजा था।

सेनामुख पर आमेर के राजा जयसिंहजी को रखा। कारण यह कहा जाता है कि उस समय उन के पास सेना का संग्रह बहुत अधिक था। महाराजा गजसिंहजी को, जो हमेशा सेनामुख पर रहा करते हैं, उन के स्थान पर दूसरे को नियत कर दिया जिस से महाराजा गजसिंहजी नाराज हो गए और अपने ४००० हज़ार सवारों को ले कर अलहदा गंगा के तट पर जा खड़े हुए। खुर्रम और पर्वेज के परस्पर महाघोर युद्ध हुआ। उस में एक वार तो पर्वेज और जयसिंहजी का पक्ष विजयी हुआ, परन्तु फिर खुर्रम की ओर से जो आक्रमण हुआ उस में शाहजादह खुर्रम का पक्ष प्रबल रहा और पर्वेज अति क्षीण हो गया। यहाँ तक कि बादशाही सेना भाग निकली। भीम शत्रुदल में अग्रणी था उसी के पराक्रम से शत्रु पक्ष की विजय हुई थी, उसे इस बात से बड़ा गर्व हुआ। और उस गर्वान्वित भीम ने महाराजा गजसिंहजी को गंगा तट के एक कोने में अछूत देख कर खुर्रम से कहा कि शत्रु की अन्य सेना तो भाग गई है परंतु राजा गजसिंहजी अपनी सेना को लिए नदी के किनारे अलहदा खड़े हैं, इन को ललकारना चाहिए। खुर्रम ने देखा कि ये हिन्दू आपस में लड़ कर मरते हैं, हम को तो लाभ ही है। यह समझ कर उस ने भीम से कहा कि यदि तुम्हारी इच्छा है तो जाओ। भीम ने महाराजा गजसिंहजी की बाग मोड़ी। उस समय महाराजा गजसिंहजी पेशाब को बैठे थे और शत्रु की सेना सिर पर आन पहुँची। महाराज को उठते न देख कर कूँपावत गोरधन ने महाराज से कहा कि आप पेशाब करने को कब बैठे थे, क्या पेशाब ही करते रहेंगे? यह सुन कर महाराज उठे। और अपने सामंत पर अप्रसन्न न हो कर उस से कहा कि मैं देखता था कि आप की मनशा कैसी है? महाराज तुरंत घोड़े पर सवार हुए। और भीम को आता देख कर अपनी सेना को आज्ञा दी। फिर क्या देरी थी, शत्रु सेना पर एक साथ टूट पड़े। सीसोदिया भीम हाथी पर सवार था। महाराजा ने उसी को लक्ष्य बनाया। उस समय महाराज के साथ तीन सामंत वीर थे। कूँपावत गोरधन, खीची शंकरदास और गोविंददास हाथी से कुछ दूर रह गया और शत्रुओं से लडता मारा गया। कूँपावत गोरधन तलवार चलाता हुआ महाराज के आगे बढ़ा। खीची शंकरदास दोनों हाथों में दो तलवार रखता और दोनों तलवारों से काम लेता। कूँपावत गोरधन शंकरदास से हमेशा मज़ाक किया करता कि यह दुगुना लोहे का भार क्यों उठाते हो? वह उत्तर में हँस कर कहता कि कभी काम पड़े तब देख लेना। यहाँ तलवार चलाते २ महाराज की तलवार टूट गई तब शंकरदास ने अपने बाएँ हाथ की तलवार महाराज को दे दी। यद्यपि सिलहखाने का दारोगा लवेरा ठाकुर साथ में था

परंतु वह उस मारामारी मे पीछे रह गया था। महाराज ने भीम को पीछे से हाथी पर से गिरा कर उसी खीची की तलवार से भीम का काम तमाम किया। बादशाह को विजय हुई। खुर्रम भाग गया। महाराज ने उस सेवा से प्रसन्न हो कर खीचियों के अधिकार में सिलहखाना (शस्त्रागार) दिया। वह अब तक खीचियों के अधिकार में है।

महाराज वहां से पीछे लौट कर प्रयागराज में आए और त्रिवेणी में स्नान किया। और वहा पर रौप्य का तुलादान किया।

खुर्रम, भीम के मारे जाने पर भाग कर उड़ीसा के पहाड़ों में होता हुआ दक्षिण में पहुँचा। वहां राजपीपले के पहाड़ों में कई दिन रहा। फिर वहां से आकर उस ने लूट पाट करनी शुरू की तब उस के पीछे बादशाह ने महाराजा गजसिंहजी और बूंदी के हाडा राव रतन को भेजा। ये बुरहानपुर में ठहरे। और कितने ही योधों को आगे भेजा। उस समय शाहजादह खुर्रम ने कहीं से आकर बुरहानपुर के क़सबों पर धावा मारा। राव रतन उस के मुक़ाबला में गया, लड़ाई हुई जिस में राव रतन के कई योधा मारे गए। महाराज को ख़बर लगी तब महाराजा गजसिंहजी चढ़ कर गए खुर्रम महाराज को आते देख भाग गया।

आसेर का किला निकट था खुर्रम आसेर के किले में जा घुसा। गोड़ गोपालदास खुर्रम से मेल रखता था इस लिए इस अवसर पर अपने १४ पुत्रों के साथ आसेर के किले में खुर्रम के पास पहुंचा। उस के साथ तीन हज़ार सवार थे। आसेर का किला बडा विकट है, खुर्रम अंदर बैठा लड़ रहा है। बादशाही सेना उसे घेरे लड़ रही है। दो वर्ष का अर्सा हो गया और अंदर का सामान खूट गया तब खुर्रम दरवाजे खोल कर बाहिर निकला उस के साथ गोड़ भी समरांगण मे आए। घमासान युद्ध हुआ जिस में गोड़ गोपालदास और बलराम मारे गए। और महाराजा गजसिंहजी के भी सुभट स्वर्ग को सिधारे। बादशाह की विजय[1] हुई।

---

(१) एक ख्याति में लिखा है कि खुर्रम आसेर का किला छोड़ कर भागा उस समय उस के जनाना के साथ गोपालदास और बलराम थे। इन्होंने खुर्रम के जनाना को विट्ठलदास[1] गोड़ के साथ बूंदी और मेवाड़ की तर्फ भेज दिया। खुर्रम और गोपालदास आदि बुरहानपुर आए। यहां हाडा राव रतन सेना लिये बैठा था। राव रतन से इन के युद्ध हुआ। वहां से चल कर ये कुरमघाट गए। वहां भी बादशाही सेना पड़ी थी। उस के साथ युद्ध हुआ। इस युद्ध में गोड़ गोपालदास और उस का पुत्र बलराम मारे गए। खुर्रम वहां से भाग कर जुनेर गया। रामदास ने तो पिता और भाई की और्ध्वदेहिक क्रिया की और वीठलदास ८००० सवार से खुर्रम के पास जुनेर गया।

---

(१) गोपालदास का पुत्र।

वि० संवत् १६८२ में महावतखां[1] की ओर से बादशाह के मन में संदेह उत्पन्न हो जाने से बादशाह ने महावतखां को तो दरगाह बुलाया और उस के स्थान में फिदाईखां को भेज दिया। महावतखां की प्रबल शक्ति थी, शाहजादह परवेज आदि सब उस की शक्ति मानते थे। महावतखां ने ऐसा षड्यंत्र रचा कि उस के बिना दक्षिण में रहना किसी को मंजूर नहीं हुआ। महावतखां के रवाना होते ही समस्त अमीर और स्वयं शाहजादह परवेज महाबतखां के साथ रवाना हो गए। केवल एक महाराजा गजसिंहजी अपने डेरे में अपने राजपूतों के साथ बैठे रहे। इन्होंने स्वामि भक्ति के वशवर्ती हो कर महावतखां के विरुद्ध प्रयत्न किया कि महावतखां के साथ एक भी न जावे। महाराज के समझाने से शाहजादह परवेज, राजा जयसिंह-जी, हाडा राव रतन राव चांदा और राजा बरसिंह आदि, जो महावतखां के साथ रवाना हो गए थे, मार्ग में से लौट कर पीछे आए।

महावतखां दरगाह को रवाना हुआ तब महाराज ने फिदाईखां से कहा कि यह हम से पूरा नाराज़ है, बादशाह के पास ज़रूर बुराइयां करेगा, यदि आप उस मौके वहां जाय तो ठीक होगा। फिदाईखां महाराज का कहना यथार्थ समझ बादशाही कार्य के बहाने से कूंपावत राजसिंह को साथ में ले कर दरगाह में पहुंचा। महावतखां ने महाराज के मन्सब का हिसाब देखने के लिए दीवान खोज अबदुलहुसेन से कहा, वह भी महाराज से राजी नहीं था। उस ने महाराज के मन्सब में मेडता नहीं रखा। तब राजसिंह ने फिदाईखां कहा तो उस ने बादशाह से दक्षिण का समस्त वृत्तांत कह कर कहा कि यदि महाराजा गजसिंह वहां नहीं होते और यदि प्रयत्न न करते तो दक्षिण से शाहजादह और अमीर सब आ जाते और दक्षिण का देश शत्रुओं के हाथ में चला जाता। महाराजा वहां थे, और उन्ही के प्रयत्न से शाहजादह आदि सब वहां ठहरे हैं। ऐसे स्वामिभक्त सेवक की जागीर यदि ज़ब्त की जायगी तो फिर नौकरी कौन करेगा? बादशाह ने फिदाईखां के कहने से मेड़ता बहाल रखा। तब दीवान ने मेडता दो लाख की आय का था। उस की आय चार लाख लिखी। तब फिर अर्ज होने पर ढाई लाख की आय में मेड़ता रखा गया। और राजसिंह अपने घर गया।

तदनंतर महावतखां ने आसफखां वज़ीर की अदावत से बादशाह जहांगीर को क़ैद कर लिया। बड़े पुरुषों की क़ैद नाम मात्र की होती है। उन के आदर मान आदि में किसी प्रकार की न्यूनता थोड़ी ही

(१) मोहावतखां भी लिखा मिलता है।

होती है। इस अवस्था में वादशाह के हस्ताक्षर नहीं होते थे। वाक़ी काम सब पूर्ववत् होता था।

इस के कुछ दिनों पीछे महावतखां वादशाह को कश्मीर ले गया। यद्यपि महावतखां जहांगीर का अदब वादशाह के समान ही रखता है परन्तु क़ैद का नाम ही बुरा। वादशाही नौकरों का वह बहुत बुरी लगती थी परन्तु वश नहीं चलता था। एक दिन महावतखां के मनुष्यों के और वादशाही शिकारी लोगों के आपस में लड़ाई हो गई और वादशाही लोग आपे से वाहिर हो गए, महावतखां की क्या सामर्थ्य थी कि उन को रोके, वस वादशाह का इसी मामले में छुटकारा हो गया।

वि० संवत् १६८३ के कार्तिक मास में शाहजादह परवेज़ की मृत्यु हो गई और महावतखां वादशाही दरवार से निकाल दिया गया। परन्तु वह वड़ा चालाक और प्रपंची पुरुष था उस ने वाहिर निकल कर उपद्रव करना शुरू किया। तव उस के पीछे वडगूजर अणीराव और आगानूर को सेना देकर भेजा। और उन की सहायता के लिए महाराजकुमार अमरसिंहजी और राठोड़ राजसिंह कूंपावत को जाने की आज्ञा दी गई। और अमरसिंहजी को जागीर में नागोर दिया गया। ये दोनों १५०० सवार ले कर उन के साथ गए। नागोर में हाकिम मुहता रामा रखा गया।

देवलिया में डेरे हुए वहां तक तो ये दोनों उन के साथ रहे, फिर क्या हुआ ये दोनों वडगूजर और आगानूर से इजाज़त ले कर पीछे चले आए। और उन के साथ मूहणोत जैमल को भेज दिया। बाद में जैमल को तो बुला लिया और उस के स्थानापन्न राठोड माधोदास पूरणमलोत और सिंघवी सुखराज को भेजा। मदसोर के पास गांव लखमाड़ी में खानाजंगी हुई जिस में माधोसिंह मारा गया।

कंवर अमरसिंहजी और राठोड राजसिंह बादशाही सेना में से चले आए इस बात की ख़बर बादशाह को हुई तब बादशाह उन पर अप्रसन्न हुआ। और नागोर की जागीर ज़ब्त कर ली। और उस परगने की छः ६ पटी बीकानेर के राजा सूरसिंहजी को दे दी।

संवत् १६८४ की कार्तिक वदि १३ को काश्मीर से पीछे आते मार्ग में ठिकाना भभोर में बादशाह जहांगीर का अंतकाल हो गया[१]।

वज़ीर आसफ़खां, ने जो नूरहजहां का भाई और खुर्रम का श्वसुर था, बादशाह जहांगीर के अनन्तर शाहजादह दावरबख़्श

---

(१) कोई राजोर स्थान में मृत्यु होना लिखता है।

को तख्त पर बिठा दिया। परन्तु यह कार्य उस की इच्छानुकूल नहीं हुआ था। उस ने गुप्त रूप से खुर्रम को सूचना भेजी। जिस समय खुरम जुनेर के किले मे था। सूचना मिलते ही खुरम जुनेर से रवाना हुआ। महावतखां भी उस के पास आ पहुंचा। ये दोनों बुरहानपुर को दाहिना रख कर गुजरात में आए। वहां से ईडर होते हुए उदयपुर पहुँचे। और महाराणा करण से मिले। महाराणा ने इन को प्रसन्न रखने के लिए अपने पुत्र जगतसिंह को इन के साथ भेजा। ये तीनों अजमेर आए। उस समय नागोर महावतखां के अर्ज करने से महावतखां को दिया गया। उस ने अवसर देख कर खुर्रम से कहा कि महाराजा गजसिंहजी को नागोर की जागीर मेरा मस्तक काटने के लिए मिली थी इस लिए नागोर मुझे मिलना चाहिए। नागोर उसे मिल जाने पर उसने अपने मनुष्य भेज कर नागोर पर अपना अधिकार कर लिया। राजा वीठलदास गोड अजमेर में खुर्रम के पास हाज़िर हुआ। खुर्रम ने इस को राजा पद देकर अजमेर दिया। वहां से ये सवाड गए। वह भी वीठलदास को दिया गया। वहां से मालपुरा होते हुए गढ़रोहे पहुंचे। वह भी वीठलदास को दिया गया। वहां से रणथभोर[1] के पास हो कर आगरा नगर पहुचे। सवत् १६८४ के माघ सुदि १० को खुर्रम तख्तनशीन हुआ। और अपना नाम शाहजहां रखा।

इस ने तख्त पर बैठते ही अपने चचा और चचेरे भाई १८ शाहजादों के प्राणहरण किये। किसी कवि ने ऐसे अवसर पर एक दोहा कहा था:—

"सबल सगाई ना गिणै, नहिँ सबलां में सीर।
खुरम अठारै मारिया, के का का के वीर" ॥ १ ॥

जबर्दस्त मनुष्य रिश्तेदारी की परवाह नहीं करते। उन से रिश्तेदारों को कोई लाभ नहीं होता। दखिये, खुर्रम ने १८ बधुओं को मार डाला। जिन में कई चचा और कई भाई थे।

शाहजहां बादशाह हो जाने पर दक्षिण का सूबहदार खानजहां उस से विरुद्ध हो गया। और उस ने बालाघाट का समस्त इलाका अहमदनगर के शासक निजामुल्मुल्क को दे दिया। महाराजा जयसिंहजी और गजसिंहजी उस के पास थे। जब इन दोनों महाराजों को ख़बर लगी कि खुर्रम अजमेर पहुंच गया है इन्हों ने खानजहां का साथ छोड़ दिया। राजा जयसिंहजी तो अजमेर पहुंचे। और महाराजा गजसिंहजी जोधपुर चले आए। और खानजहां मालवे की तर्फ चला गया।

(१) रणथभोर भी वीठलदास को दिया गया।

महाराजा गजसिंहजी का बादशाह शाहजहां के पास न जाने का ारण यह था कि महाराज ने बादशाह की स्वामिभक्ति के वश हा कर खुर्रम के साथ हमेशा विरोध किया और उसे परास्त किया था। परन्तु शाहजहां इस बात को जानता था कि महाराजा गजसिंहजी स्वामिभक्त है। उन का अलग रहना भला नहीं है। बादशाह के इस अभिप्राय की सूचना मिलने पर महाराज आगरे गए फाल्गुन वदि ३ को डेहर के बाग में डेरा किया। महाराज के साथ राठोड़ राजसिंह, महेशदास पृथ्वीराज और भींव कल्याणदासोत आदि सामंत थे। फाल्गुन वदि ४ को बादशाह शाहजहां के पास हाजिर हुए। बादशाह ने इन की ख़ातिर की और महाराज से कहा कि तुम गद्दी के स्वामिभक्त हो, तुम्हारे बरताव से हम प्रसन्न है। तुम ने जैसी सेवा हमारे पिता की की है वैसी ही हमारी करोगे। स्वामिभक्त सेवक का यही धर्म है कि गद्दी से विमुख न होवै। इस प्रकार पूरी खातिर करके हाथी, घोड़े, जड़ाऊ शस्त्र और खिलत वगैरा देकर पहले मिले हुए मन्सब को बहाल रखा।

संवत् १६८४ में महाराज गजसिंहजी बादशाह की हुजूर में आगरा में थे। उस समय खानवा के पवार राजपूत भोमियों ने आगरा के इर्द गिर्द आ कर लूटपाट करनी शुरू की। तब बादशाह ने उन का दमन करने के लिए मुगल सिरदारखां की अध्यक्षता में सेना भेजी। और महाराजा गजसिंहजी को भी कहा कि तुम्हारी ओर से राठोड़ भेजो। महाराज ने बगड़ी ठाकुर भगवानदास वाघोत और पंचोली बलु को सेना देकर उस के साथ भेजा। हाडा राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को सेना सहित भेजा। इन्होंने जा कर गढ को घेरा। उधर पंवार सज कर युद्धार्थ तैयार हो गए। इन्होंने गांव को जला दिया। और गढ़ पर हल्ला करने के विचार में थे। परन्तु आग जल रही थी जिस से ये कुछ ठहर गए। सरदारखां ने ताकीद की जिस से ये जलती आग के साम्हने गए, पीछे से पवार एक दम आकर टूट पड़े जिस से बादशाही सेना के पैर उखड़ गए। इस युद्ध में भगवानदास वाघोत बगड़ी ठाकुर मारा गया। और दूसरे भी बहुत से राठोड़ मरे और घायल हुए।

पहले हल्ले में तो यह दशा हुई। फिर बलु पंचोली ने अग्रणी हो बड़ी सेना ले कर गढ़ी पर आक्रमण किया और गढ़ ले लिया। पवार मारे गए और बादशाह की विजय हुई। बादशाह से विजय की अर्ज़ की गई तो बादशाह ने महाराज से कहा कि वहां बादशाही थाणा रख दिया जावै और उस मे तुम अपने भरोसे के आदमी को रख दो। तब महाराज ने शंकरदास को वहां रखा और गढ़ की मरम्मत

संवत् १६८२ के वर्ष में एक अद्भुत घटना हुई। आंबेर राजा सवाई जयसिंहजी पुष्कर यात्रा के लिए संवत् १६८२ में पुष्कर पर थे। मान के महलों में डेरा किया था। समय पर दरबार हुआ जिस में बहुत से सामंत बैठे हैं, इधर उधर की बातें हो रही हैं। बात ही बात में किसी ने कह दिया कि आज बदला लेने में राठोड़ों के तुल्य कोई भी नहीं है। राठोड़ इस बात में बड़े पक्के हैं। कछवाहों में यह बात नहीं है। अभी गोड़ों ने कछवाहा बीजल को मारा उस का बदला किसी ने नहीं लिया। गोड़ हमेशा दिल्ली और आगरा जाते हैं तब अपनी भूमि में हो कर आते जाते हैं। परन्तु किसी कछवाहा ने बदला लिया? राजा जयसिंहजी को यह बुरी लगी और कहा कि हम ने किस को मना किया? तब सामोद ठिकाने के स्वामी नाथावत रामसिंह ने निवेदन किया कि राठोड़ों के तो यह रीति है कि भला बुरा कोई कर आवे, चाहे छोटे दर्जे का भी क्यों न हो? जोधपुर का राजा उसे अंगीकृत कर लेता है। यह सुन तमक में आ कर सवाई राजा ने कहा कि हम ने किस को अंगीकृत नहीं किया, और किस को निकाल दिया? दरबार बरखास्त हुआ। तब अपने २ ठिकाने गए।

बादशाह शाहजहां दिल्ली के तख्त पर बैठा और गोड़ों का बल बढ़ा उस समय में गोड़ किसनसिंह ५० सवारों के साथ आगरे जाता हुआ ढुंढाड़ की सरहद में सामोद के पास २ कोस की दूरी पर ठहरा। उस समय सामोद के रावल रामसिंह के पास आकर किसी ने कहा कि गोड़ किसनसिंह आगरे जाता है आज उस ने सामोद के पास मुकाम किया है। यह सुनते ही रामसिंह उठा और २०० सवार और ५०० पयादे योधों को ले कर किसनसिंह के ऊपर गया। उस के मनुष्यों ने इन का विपरीत ढंग देख कर पूछा कि आप कौन हैं और कहां जाते हैं? तब रामसिंह के मनुष्यों ने कहा कि ये सामोद के रावल रामसिंह हैं। पहले गोड़ों ने कछवाहा बीजल को मारा था उस वैर का बदला लेने आये हैं। यह सुनते ही गोड़ सब तैयार हो गए और परस्पर तलवार चली, महाघोर युद्ध हुआ, किसनसिंह बड़ी बहादुरी से लड़ा परन्तु नाथावतों के मनुष्य बहुत अधिक थे, गोड सिर्फ ५० ही थे, किसनसिंह मारा गया। रणखेत कछवाहों के हाथ रहा।

आंबेर के राजा जैसिंहजी ने यह वार्ता सुनी तब वे मन में बहुत घबराए उन के मन में इस बात का भय पैठ गया कि आज बादशाह के पास गोड़ों का चलन है, बादशाह उन पर प्रसन्न है, ऐसा न हो कि कहीं बादशाह मुझ पर अप्रसन्न न हो जावें। और गोड़

आंवेर पर चढ़ कर न आ जावें। इस घबराहट के मारे जैसिंहजी ने सामोद के रावल रामसिंहजी को कहलाया कि तुम ने यह बहुत बुरा काम किया है इस लिए हमारे राज्य में से चले जाओ। हमारे घर में ऐसा उपद्रवी नही रह सकता। उस के उत्तर में रामसिंहजी ने आंवेर राजा को कहलाया कि हम ने पहले ही कहा था कि आप राठोड़ों की तुलना नही कर सकते। यदि किसी राठोड़ ने ऐसा काम किया होता तो जोधपुर का राजा उस के साथ ऐसा व्यवहार कभी नही करता, वलिक उस को अपने घर में रखता और उस का मान बढ़ाता। और हमारा तो जैसा होना है होगा हमारा अन्न जल ही इस भूमि से उठ गया है तो हम यहां कैसे रह सकते हैं। परन्तु यदि दरगाह में न्याय है तो आंवेर का बोल कभी ऊचा नहीं रहेगा। इतना कह कर सामोद का स्वामी अपने परिजन को लेकर मेवाड़ में चला गया।

राजा जैसिंहजी बादशाह की हुजूर में गए तब उन्होंने अपनी सफ़ाई के लिए बादशाह से अर्ज़ किया कि सामोद के रावल रामसिंह ने गोड़ किसनसिंह को निष्कारण मार डाला उस अपराध के हेतु हम ने उसे अपने देश से निकाल दिया है।

उधर गोड़ विट्ठलदास ने अपने बन्धु का मारा जाना सुना कि सामोद के रावल रामसिंह ने निष्कारण किसनसिंह को मार दिया है। सुनते ही उस के हृदय में क्रोध की ज्वाला व्याप्त हो गई। तुरन्त ही उस ने रणथंभोर में गोड़ों को निमन्त्रित कर इकट्ठा किया। आंवेर का राजा उस समय आगरे में था उस पर वीठलदास ने चढ़ाई की। किसी ने बादशाह के पास यह बात कह दी तब बादशाह ने वीठलदास को लिख भेजा कि आंवेर के राजा का इस में कुछ भी अपराध नही है, तुम किसी प्रकार का बखेड़ा मत करना। सामोद के रावल ने किसनसिंह को हमारी सेवा में आते हुए को मारा है यह तो उस ने हमारा अपराध किया है उसे हम दंड देंगे, तुम सब्र करो। विट्ठलदास को बादशाह की आज्ञा मान कर पीछे रणथभोर में जाना पड़ा।

नाथावत रामसिंह राणा जगत्सिंहजी के पास मेवाड़ में है। महाराणा ने उस को जागीर दे दी है। और उस का बड़ा आदर मान रखता है। मेवाड़ के राज्य में यह रीति है कि आश्विन सुदि १० दसहरे के दिन मिट्टी की आंवेर बनाई जाकर उस का विध्यस किया जाता है। उस समय भी सदा की रीति के अनुसार मिट्टी की आंवेर बनाई गई और महाराणा ने उस का विध्यंस करने के लिए सवारी

की तैयारी की। नाथावत रामसिंह ने यह सुना तब उस ने कहा कि आंबेर हमारी जन्म भूमि है, हमारी माता है उस पर दूसरा आक्रमण करै और उस का विध्वंस करै यह हम कैसे देख सकते हैं। हम तो खड़े रहें और हमारी माता की यह दशा हो, यह कभी नहीं होगा। ऐसा कह कर रामसिंह शस्त्र धारण कर सन्नद्ध हुआ और उस के साथी राजपूत भी तैयार हो गए और जहां मिट्टी की आंबेर बनाई थी वहां जा खड़े हो गए। और कहा कि अब जिसे आना है आ जावै हमारे जीते जी आंबेर के साम्हने कोई नहीं देख सकता। महाराणा को इस बात की ख़बर लगी तब उन्होंने कहलाया कि यह रीति परंपरा से चली आती है, कोई नई बात नहीं है, आप को इस पर ऐसा विचार नही करना चाहिए। आंबेर के राजा जैसिंहजी ने तो आप के साथ वह बरताव किया और आप उस के लिए मरने को तैयार हुए हो आप वृथा मत मरो। अब आप के आंबेर से क्या प्रयोजन? इस के उत्तर में रामसिंह ने कहलाया कि जैसिंहजी ने हमारे साथ किया उसी से तो हम आप के पास आए और आप ने जो आश्रय दिया उस के लिए हम आप के ऋणी हैं, ईश्वर करै और हम ऋण से अनृण होवें। आप ने फ़रमाया वह सब कुछ ठीक है परन्तु हमारी विद्यमानता में आंबेर का विध्वंस हो यह हम नहीं देख सकते। यह सुन कर महाराणा ने रामसिंह के प्रसन्न रखने के लिए कहा कि आज से न तो मिट्टी की आंबेर बनाई जायगी और न कभी ऐसा दृश्य दिखाया जायगा। आप आ जाइये। महाराणा के इस कथन पर रामसिंह महाराणा के पास चला आया। और आंबेर का वह बखेड़ा उसी दिन से उठा दिया गया। यद्यपि महाराणा ने आंबेर का दृश्य बंद तो कर दिया परन्तु मन में कुछ खटका रहा। रामसिंह के कहने से महाराणा ने सब्र कर ली, परन्तु रामसिंह के मन में भी खटका उत्पन्न हो गया कि कभी शायद महाराणा इस का बदला न लें। रामसिंह ने महाराणा से वहां से जाने के लिए आज्ञा मांगी तो महाराणा ने बहुत आग्रह किया और रहने के लिए समझाया भी परन्तु रामसिंह आज्ञा ले कर चल दिया।

अब वह अपने राजपूतों के साथ आगरे आया। महाराजा गजसिंहजी की फ़ौज के निकट डेरा किया। समीप में रहने से आउवा ठाकुर उदयभाण चांपावत के साथ प्रीति का व्यवहार हो गया। एक दिन नाथावत रामसिंह और आउवा ठाकुर उदयभाण चांपावत घोड़े फेरने और सैर करने गये थे। गोड़ विट्ठलदास ने इन को देख लिया तब उस ने बादशाह से अर्ज़ किया कि मेरे बन्धु किसनसिंह गोड़ को मारने वाला यहां आ गया है तब बादशाह ने हुक्म दिया कि रामसिंह को पकड़ लाओ। और फ़ौजदार को हुक्म भी दे दिया। जब रामसिंह

को ज्ञात हुआ कि बादशाह का मुझ को पकड़ने का हुक्म हुआ है उस ने चांपावत उदयभाण आउवा ठाकुर से कहा कि अब आप तो यहां से जाइये और हमारी तो आ लगी है यदि जीते रहे तो फिर मिलेंगे। परन्तु इस समय एक मेरा यह कहना है कि मैं मर जाऊं तो दाह क्रिया आप करना, महाराज जैसिंहजी के हाथ से न हो। तब उदैभाण ने नाथावत से कहा कि ठाकुर! आप को छोड़ कर हम कहां जाय? अब तो आप और हम शामिल हैं, अच्छा बुरा जो होना है साथ होगा। फिर उदैभाण ने एक सवार भेज कर डेरे पर कहलाया कि मेरे सब राजपूत सज कर जल्दी आ जावैं। आउवे के डेरे के राजपूत सज कर सन्नद्ध हुए तब दूसरे चांपावत भी उन के साथ सज कर तैयार हो गए। महाराजा गजसिंहजी को इस बात की ख़बर लगी तब महाराजा ने कहा कि मेरे सामंत मेरे प्राण हैं मैं उन से अलग कैसे रह सकता हूं, नक्कारा बजा दो और फ़ौज तैयार करो। हम उन के साथ हैं। रामसिंह को कोई पकड़ने न पावे। बादशाह को इस बात की ख़बर लगी कि रामसिंह के वास्ते मामला बहुत बढ़ गया है। राठौड़ सब उस के साथ हो गए हैं। और महाराजा गजसिंहजी ने भी अगर मामला पड़ जाय तो फ़ौज को हुक्म दे दिया है। और दूसरे हिन्दू राजा भी गजसिंहजी के शामिल हैं। बादशाह ने मामला बढ़ता देख कर उस हुक्म को मुलतवी रखा। और गजसिंहजी को कहलाया कि तुम दरबार में आओ तब रामसिंह को लेते आना। रामसिंह ने महाराजा गजसिंहजी की इस कृपा से अत्यन्त नम्र हो कर निवेदन किया कि आप लोगों को मेरे वास्ते इतना परिश्रम हुआ जिस के लिए मैं क्षमा चाहता हूं। इस के साथ मेरी एक यह प्रार्थना है कि मेरा और आंबेर नाथ का मुक़ाबला बादशाह के रोबरू हो जाना चाहिए। जिस से प्रकट हो जाय कि इसमें अपराध किस का है? महाराज ने कहा कि ठीक है। महाराजा जैसिंहजी भी वहीं थे। महाराजा गजसिंहजी दरबार में गए। रामसिंह को साथ ले गये। बादशाह से उस का मुजरा हुआ। बादशाह ने रामसिंह से पूछा कि तुम ने मार्ग जाते गोड़ किसनसिंह को क्यों मारा? तब हाथ बांध कर रामसिंह ने निवेदन किया कि यदि हज़रत इस बात को स्वीकार करें कि इस मामले में सजा किसी को नहीं दी जायगी तो मैं सत्य २ हाल अर्ज़ करूं। बादशाह ने स्वीकार किया तब उस ने आदि से अन्त तक सब वृत्तांत कहा। और अन्त में स्पष्ट कह दिया कि मैंने यह काम महाराजा जैसिंहजी की अनुमति से किया था। यदि सजा देनी हो तो मुझे दिरावैं, महाराजा जैसिंहजी को इस मामले में कुछ भी न कहें। मैंने जो इतनी बात कही है वह भी मन के ऊपर हो कर कही है। क्योंकि महाराजा जैसिंहजी हमारे मालिक हैं और आप मालिक के

भी मालिक हैं। इस वृत्तांत को सुन कर बादशाह ने जान लिया कि वास्तव में बात यही है। इस में रामसिंह का कोई अपराध नहीं है। क्योंकि राजपूतों में वैर का बदला लेने की रीति परंपरा से चली आती है। फिर गौड़ों को समझाया और इन के परस्पर के वैर का अंत करके दोनों को आपस में राज़ी कर दिया। और रामसिंह को उस की जागीर सामोद दे दी गई। और हाथी सिरोपाव दे कर रुख़सत दी गई[1]।

इसी अर्से में बादशाह ने महाबतखां को दक्षिण की सूबहदारी पर भेजा। और खानजहां लोदी को मालवे का सूबहदार नियत किया। परन्तु बादशाह को इस के विषय मे कुछ संदेह उत्पन्न हो गया था जिस से अपने पास बुलाया। उस समय तो वह बादशाह की हुज़ूर में हाज़िर हो गया। परन्तु उस का मन साफ़ नहीं था, और बादशाह को भी अंदेशा था जिस से वह संवत् १६८६ के फाल्गुन वदि ६ को रात्रि के समय भाग कर निज़ामुल्मुल्क के पास दक्षिण में पहुंचा। बादशाह ने उस के वहां जाने से दक्षिण का प्रबंध बिगड़ जायगा इस भावना से दक्षिण में जाने को स्वयं प्रयाण किया। और उस से पहले महाराजा गजसिंहजी, बूंदी का हाडा राव रतन और बीकानेर का राजा सूरसिंह, इन को पन्द्रह पन्द्रह हज़ार सेना दे कर अगाड़ी भेजा। ये सब फौजें बुरहानपुर में एकत्र हुईं। और शाहजहां भी वहां पहुंच गया।

टि०—(१) इस वृत्तांत में कई बातें शिक्षाप्रद हैं। प्रथम तो राठोड़ वैर का बदला लेने में अग्रसर हैं। राजपूतों का कर्त्तव्य है कि वे राठोड़ों का अनुसरण करें दूसरा अपना सामंत अथवा भृत्य जो कुछ कर आवै स्वामी को उस के पक्ष का अवलंबन कर उस का मन बढ़ाना चाहिए। तीसरा स्वामी को ऐसा न चाहिए कि अपनी इच्छानुसार कार्य करने वाले को आश्रय न दे कर उस को स्थान भ्रष्ट कर देवै चौथा किसी से मैत्री हो जाय तो उस का साथ न छोड़े चाहे प्राण जाय परन्तु प्रीति को निवाहे। पांचवां जहां एकता होती है वहां ज़बर्दस्त भी कुछ नहीं कर सकता। छठा राजा का धर्म है कि यदि कोई प्रतिष्ठित बड़ा आदमी कहीं से स्थान भ्रष्ट हो कर अपने पास आ जावे तो उस को आश्रय देवै और उस का सत्कार करे। सातवां मुख्य उपदेश ग्रहण करने योग्य यह है कि किसी सामंत अथवा भृत्य का स्वामी नाराज़ हो कर उसे निकाल देवे तो भी सामंत और भृत्य का कर्तव्य है कि परोक्ष में भी कहीं यदि अपने पूर्व स्वामी का अपमान होता हो तो उसे सहन नहीं करे और उस को मिटाने का प्रयत्न करे। जैसें आंबेर के विषय में रामसिंह नाथावत ने किया था।

शाहजहां ने आसेर के किले से हिन्दू मुसलमानों की सेना को बुला कर महाराजा गजसिंहजी के आधीन किया। और उन को दौलताबाद की ओर भेजा। जहां खानजहां लोदी था। उस ने महाराजा गजसिंहजी को आते देख कर किले का आश्रय लिया। खानजहां के और महाराजा गजसिंहजी के अनेक लड़ाइयां हुई। खानजहां भी बड़ा वीर पुरुष था। परन्तु राठोड़ों की तलवार के आगे किस की चली? उसे वहां से भागना पड़ा।

बादशाह की आज्ञा बड़ी कठिन थी कि खानजहां को जहां मिले मार दिया जावै। वह इधर उधर भ्रमण करता संवत् १६८७ में कालंजर के पास पहुंचा। वहां राव रतन हाडा का पुत्र माधवसिंह कहीं समीप में था उस ने इस पर आक्रमण किया बडा घोर संग्राम हुआ जिस में हाडा माधवसिंह के हाथ खानजहां लोदी मारा गया।

संवत् १६८६ के वर्ष मे काबुल की सेना हिन्दुस्तान की तर्फ़ आई, पजाबी सिख भी उस सेना के शामिल हो गए जिस से वह सेना बहुत अधिक सख्या में हो गई। बादशाह शाहजहां के पास इस बात की खबर पहुंची तब बादशाह अपनी सेना ले कर उमरावों के साथ मुक़ाबला में गया। महाराजा गजसिंहजी भी बादशाह के साथ थे। जब दोनों सेनाओं का मुक़ाबला हुआ, तलवार चली और बाणों की वर्षा होने लगी वीर लोग आगे बढ़ बढ़ कर अपना २ पराक्रम दिखाने लगे। महाराजा गजसिंहजी सेना के वामभाग में थे। और सेना के दक्षिण भाग की तर्फ़ युद्ध का आरंभ हुआ दक्षिण भाग शिथिल हो जाने से सेना भागने की नौबत पहुंची। बादशाह हाथी पर सवार है, सेना चल विचल हो गई है उसे देख बादशाह ने हाथी को पीछे हटाने का इरादा किया उस समय एक सवार बादशाह के हाथी के पास पहुंचा। यह मेडतिया राठोड़ है, रघुनाथसिंह उस का नाम है। पूंदलोता गांव के जागीरदार का पुत्र हे। बाप बेटो के आपस में अनबनत हो गई जिस से यह नाराज हो गांव छोड कर दिल्ली आया। यहां एक नवाब के यहां सवारों में नौकर हो गया। नवाब की फ़ौज में एक यह भी था। इस ने बादशाह की यह गति देखी तब हिम्मत करके बादशाह के हाथी के समीप गया और हाथी के मत्थे में तीर का प्रहार किया जिस से हाथी रुक गया। उस समय राठोड़ रघुनाथसिंह ने बादशाह को कटुवचन कहे। चरखा! भाग कर कहां जाता है? तेरे रहने के लिए कौन सा स्थान है। पीछा फिर और सेना को संभाल। मारवाड़ में कहावत है "धणी विना ढोर सूना" यह दशा आप की सेना की हो रही है। जल्दी सम्हलो। बादशाह ने सोचा कि यह सत्य कहता है मै चला जाऊगा तो सेना का एक मनुष्य भी नहीं

ठहरेगा। इस विचार से बादशाह हाथी को सम्हाल कर ठहर गया। रघुनाथसिंह सीधा महाराजा गजसिंहजी के पास पहुंचा जहां ५००० सवार लिये महाराज खड़े थे। उस ने महाराज से कहा कि यह अवसर खड़े २ देखने का नहीं है। आज वह दिवस फिर आ गया है जो भीम सीसोदिया को मारने का था। यह सुनते ही महाराज वाम भाग में ५००० सवारों से खड़े थे, घोड़ों की वागें उठाईं और एक साथ शत्रु सेना पर टूट पड़े। और दामिनी सी दमकती हुई तलवारों से शत्रु सेना का संहार किया। शत्रु भाग निकले। बादशाह की विजय हुई। बहुत सा धन माल हाथ लगा। बादशाह महाराजा गजसिंहजी पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और महाराजा कहने का हुक्म दिया। और इजाफा तीन हज़ार का मन्सब देने के लिए कहा तब महाराज ने अर्ज़ किया मैं विचार कर समय पर निवेदन करूंगा।

बादशाह जनाना में गया वहां रघुनाथसिंह की चर्चा की तो हुरम लोगों ने कहा कि ऐसे आदमी को अवश्य एवजाना मिलना चाहिए कि जिस के वचन से आप को इतना लाभ हुआ। बादशाह ने कहा कि बहुत अच्छा। दूसरे दिन बादशाह ने दरबार किया और बख़्शी से कहा कि हम को जिस ने रणांगण में कटुवचन कहे थे उसे हम देखना चाहते हैं। बख़्शी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि उस का क्या पता? यदि आप उसे पहचानते हैं और पहचान सकें तो समग्र सेना हज़रत के साम्हने आ जावे यह हो सकता है। बादशाह ने कहा कि हम उसे पहचान सकते हैं परंतु वह उसी वेष में आवे। बख़्शी ने सब सेना में आज्ञा प्रवृत्त कर दी कि सेना के सब लोग रणांगण में जिस वेष से गए थे उसी वेष को धारण कर के बादशाह के हुज़ूर में हाज़िर होवें। बादशाह हाज़री लेंगे। तदनुसार सब आए। रघुनाथसिंह भी उसी वेष से आया। घोड़े पर सवार हैं, ढोवड़ का घुमाला मुंह पर बंधा हुआ है। उसे दूर से देखते ही बादशाह ने पहचान लिया। और उसे अपने निकट बुलाया। बख़्शी ने रघुनाथसिंह से कहा कि चलो, बादशाह बुलाते हैं। रघुनाथसिंह मन में विचार करने लगा कि बादशाह मुझे क्यों बुलाते हैं? परंतु वह बड़ा निर्भीक और साहसी पुरुष था बादशाह के पास गया। बादशाह ने उस से कहा कि तुम को स्मरण है रणांगण में तुम ने मुझ को क्या कहा था? वह वाक्य मैं फिर सुनना चाहता हूं। तब रघुनाथसिंह ने हाथ जोड़ कर बादशाह से कहा कि वह वाक्य उसी समय का था, अब उस से क्या प्रयोजन? तब बादशाह ने विशेष आग्रह कर के रघुनाथसिंह को कहा कि तुम डरो मत, हम तुम से खुश हैं. वह वाक्य पीछा कहो। तब उस ने कह दिया। बादशाह

उस के निडरपन से बहुत प्रसन्न हुआ और ११२ गांवों से मारोठ की जागीर दी। और सांभर के १८ गांव दिये। और तीन हजारी मन्सबदार बना दिया।

सं० १६८७ में शाहजहां ने बुरहानपुर से बीजापुर के बादशाह मोहम्मद आदिलशाह पर सेना भेजी। इस सेना में भी अग्रणी महाराजा गजसिंहजी थे। इन्होंने जा कर बीजापुर को घेर लिया आदिलखां मुकाबला में आया। घोर युद्ध हुआ। जिस में आदिलशाह परास्त हुआ। महाराज के पराक्रम से शाही सेना विजयिनी हुई। इस युद्ध के पश्चात् महाराज जोधपुर आए।

संवत् १६८९ के वर्ष में बादशाह लाहोर गया तब महाराजा गजसिंहजी उस के साथ लाहोर गए। महाराजा के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंहजी महापराक्रमी और रणकुशल थे। इन्होंने दक्षिण की मुहिम में पिता के साम्हने कई ठौर वीरता के कार्य किये थे। परंतु इन का स्वभाव तीक्ष्ण बहुत था, हर एक को तुच्छ वचन कह देते जिस से महाराजा गजसिंहजी का विचार ऐसा हुआ कि जोधपुर का राज्य तो इन के छोटे भाई जसवंतसिंह को दिया जाय और इन को दूसरी जागीर दिला दी जाय। इसी विचार से महाराजा ने अमरसिंहजी को लाहोर बुलाया। महाराज इन के स्वभाव को भली भांति जानते थे कि अमरसिंह जोधपुर में है वहां से लाहोर आवे या न आवै। इसलिए उन्होंने प्रथम अमरसिंहजी को लिखा कि तुम मेड़ते जाओ। अमरसिंहजी सवत् १६९० में मेड़ते गये। वहां उन के पास कूंपावत राजसिंह था। महाराज ने लाहोर से कूंपावत राजसिंह को लिखा कि अमरसिंह के वास्ते हम ने बाकशाह को कह लिया है बादशाह ने उसे जागीर देने का स्वीकार कर लिया है इसलिए अमरसिंह को ले कर तुम जल्दी लाहोर आ जाओ। राजसिंह ने अमरसिंहजी से कहा कि आप के वास्ते महाराजा ने बादशाह से कह कर जागीर की तज़वीज की है चलना चाहिए। अमरसिंहजी संवत् १६९१ आश्विन सुदि १० को मेड़ते से लाहोर जाने के लिए रवाना हुए। कार्तिक सुदि १२ को गांव पदमावती कलां डेरे हुए। पदमावती के डेरों से राठोड़ राजसिंह रुख़सत ले कर मेड़ते चला आया। और महाराजकुमार अमरसिंहजी अपने नौकरों के साथ लाहोर की तर्फ़ रवाना हुए। संवत् १६९१ के पौष वदि ६ को लाहोर पहुँचे। और पिता के चरणों में जा कर प्रणाम किया। दूसरे दिन महाराज अमरसिंहजी को अपने साथ बादशाह के दरबार में ले गए। बादशाह इन को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और महाराज की शिफ़ारिस से

ढाई हज़ारी जात व डेढ़ हज़ार सवार का मन्सब और जागीर में ५ पांच परगने दिए। १ वाजुवो, २ आंतरोल ३ खारोल ४ जीपाल ५ वेहरोल। यह जागीर उस के एवज़ाने में मिली थी, जो काबुल की सेना के मुकाबले में महाराजा गजसिंहजी ने विजय पाई थी और बादशाह ने उस समय तीन हज़ार का मन्सब देने का कहा था। जब अमरसिंहजी मन्सबदार हो गए और जागीर भी पूरी मिल गई तब महाराज ने उन के जनाना को अमरसिहजी के पास भेजने के लिए लिखा कि अमरसिंह को यहां अच्छी जागीर मिल गई है इसलिए उस के जनाना को यहां भेज दो। महाराज की आज्ञानुसार सं० १६६१ के चैत्र वदि ६ को जोधपुर से जनाना रवाना हो कर लाहोर को चला। लाहोर के अतर्गत वेहरोल का प्रांत अमरसिंहजी को जागीर मे मिला था वहां आया। जब महाराज की इच्छानुसार अमरसिहजी को जागीर और मन्सब मिल गया तब महाराज इसी वर्ष में बादशाह से आज्ञा ले कर जोधपुर आए। सवत् १६६२--९३ दो वर्ष महाराज ने जोधपुर में निवास किया। और सवत् १६९२ में महाराजकुमार जसवतसिहजी का विवाह जेसलमेर के रावल भाटी मनोहरदास की कन्या से हुआ।

संवत् १६९४ में बादशाह ने महाराज को बुलाया। महाराज सेवा में उपस्थित हुए। बादशाह महाराज पर अत्यंत प्रसन्न है। महाराज सदा दरबार मे उपस्थित होते हैं। उन का बड़ा मान किया जाता है। महाराजकुमार जसवतसिंहजी महाराज के साथ हैं। महाराज की मनशा अपना उत्तराधिकारी जसवतसिंहजी को करने की है। महाराज अकस्मात् आगरा में ही बीमार हो गए। ज्वर की बीमारी थी। जब बीमारी ज़्यादा बढ़ गई और रोग असाध्य प्रतीत होने लगा तब बादशाह महाराज का आराम पूछने के लिए महाराज के डेरे पर आया। और उस ने कुशल पूछ कर कहा कि शरीर सब का नाशवान् है चाहे आज पड़े चाहे १० वर्ष के बाद पड़े चिन्ता नहीं करनी चाहिए। और इस समय आप के मन में जो कुछ हो कहिए। तब महाराज ने बादशाह से कहा कि मेरे मन में यही है कि मेरा उत्तराधिकारी जसवतसिंह होना चाहिए। इस के लिए मैंने पहले भी अर्ज़ किया था। और अब भी वही प्रार्थना है। इस पर बादशाह ने कहा कि पट्टाधिकारी ज्येष्ठ पुत्र होने से अमरसिह है। परतु तुम्हारी यही इच्छा है तो वैसा प्रबध कर दिया जायगा। तुम अपने मन में तसल्ली रखो। तुम्हारी इच्छानुसार ही होगा। ऐसे महाराज को तसल्ली कर के बादशाह वापिस गया। उस ने दूसरे ही दिन अमरसिहजी को बुलाया और प्रसग चला कर उन से कहा कि तुम को अपने बुजुर्गों के नाम याद हैं? तो अमरसिंहजी ने कहा हां,

याद है। बादशाह ने कहा कि अच्छा उन के नाम बतलाओ। तब अमरसिंहजी ने अपने पिता का नाम कहा 'राजा गजसिंहजी' दादे का नाम कहा, राजा सूरसिंहजी, परदादे का नाम कहा राजा उदयसिंहजी और उन के पिता का नाम कहा 'राव मालदेवजी' तब बादशाह ने कहा कि आप के खानदान की असली पदवी क्या है? तो राव अमरसिंहजी ने कहा कि असली तो राव पदवी है। तब बादशाह ने कहा कि हम तुम को तुम्हारे खानदान की असली राव पदवी देते हैं और तुम्हारे छोटे भाई जसवंतसिंह को राजा पदवी देते हैं। अमरसिंहजी इस बात से राज़ी हो गए। तब बादशाह ने अमरसिंहजी को तो राव पदवी दे कर नागोर की जागीर दी और चार हजारी जात व तीन हज़ार सवार का मन्सबदार किया। और जसवंतजी को राजा की पदवी और जोधपुर का राज्य दिया।

महाराजा गजसिंहजी ने बादशाह से तो महाराजकुमार जसवंतसिंहजी को जोधपुर मिलने का प्रबंध कर दिया था परंतु अपने सामंतगण को भी साक्षी करने और उन के पक्ष में रहने के लिए यह तजवीज की कि अपने सामंतगण और मंत्रिवर्ग को अपने पास बुला कर कहा कि मेरी इच्छा जसवंतसिंह को उत्तराधिकारी करने की है और मैं अपने मन से उसे अपना उत्तराधिकारी कर चुका हूँ, इस का कारण तुम जानते ही हो अब आप लोगों को मेरा कहना यह है कि जसवंतसिंह मेरा उत्तराधिकारी किया जाय। यदि किसी प्रकार का मामला भी आ पड़े तो जसवंतसिंह के पक्ष में रहना यही मेरी अंतिम शिक्षा है। सरदार और मुत्सद्दी प्रभृति ने महाराज के वचन को शिरोधार्य किया और प्रतिज्ञा की कि चाहे कुछ भी हो हम जसवंतसिंहजी के पक्ष में रहेंगे और राज्याधिकारी जसवंतसिंहजी ही होवेंगे। यह सुन कर महाराज प्रसन्न हुए और कहा कि मुझे भरोसा है कि तुम अपने वचनों का यथावत् पालन करोगे।

फिर महाराज ने बहुत कुछ दान पुण्य किया। हाथी दान दिये। बारहठों को १४ लाख पसाव[१] दिए। और आठ ८ गांव शासन दिए।

---

(१) लाखपसाव का व्यौरा कविराजा श्यामलदास ने इस प्रकार लिखा है। "राजपूताना में लाखपसाव देने का यह क़ायदा है कि पांच हज़ार का ज़ेवर अपने पहनने का, पांच हज़ार का ज़ेवर घोड़े हाथियों का और एक हाथी व घोडे, जो दो से कम न हों। और नक़्द पचीस हज़ार से ले कर पचास हज़ार तक, बाक़ी

संवत् १६९५ के ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सन् १६३८ ता० २७ मई) रविवार को आप का स्वर्गवास हो गया। उस समय महाराजकुमार जसवंतसिंहजी आगरा में पिता की सेवा में विद्यमान थे। राजरीत्यनुसार दाह क्रिया की गई। जहां दाह क्रिया हुई थी वहां यमुना के तट पर उन के चिरस्मरणार्थ एक छतरी बनाई गई थी वह वहां अब तक विद्यमान है। प्राचीन ख्यात में यह भी लिखा है कि उस के चारों ओर बाग है। और महाराज के साथ सतियां हुईं उन की पूजा जोसी श्रीकम के सुपर्द की गई थी। और महाराजा जसवंतसिंह जी प्रभात के समय में जोसी भगता पूजा करता था।

ये महाराजा बड़े वीर दानी और प्रतापशाली हुए। इन्होंने छोटी बड़ी ५२ लड़ाइयों मे अग्रणी रह कर विजय प्राप्त की थी। पांच हज़ार सवार सदा इन के साथ रहते थे। ये सारी सेना के मनुष्यों को उन के नाम से पहचानते थे। क्योंकि सेना की हाज़री माहवार स्वय महाराज रोबरू बैठ कर लेते थे। इसीलिए सुभट सब महाराज से परम प्रसन्न थे। और सेना में जो सामत बंधुगण में से होता उस का बडा आदर करते और भोजन के समय उन को अपने शामिल ले कर भोजन करते जिस से परस्पर दिन पर दिन प्रेम बढ़ता रहता।

बादशाह के दरबार में भी इन का बड़ा मान था। बादशाह ने इन को महाराजा की पदवी दी थी और घोड़ों के जो बादशाही चिह्न लगाया जाता था इन के वास्ते वह भी मुआफ़ कर दिया गया था।

के एवज़ में गांव एक हज़ार रुपये सालाना की आमदनी से पांच हज़ार रुपये सालानह तक की आमदनी का दिया जाता है। और उस कवि को हाथी पर राजा ख़ुद हाथ पकड़ कर सवार कराता है। बाज वक्त अपने कंधे पर कवि का पैर दिला कर भी चढ़ाते थे। और जलेब मे मर्ज़ी हो तो कुछ दूर तक राजा चले। वर्नह अपने बड़े सरदार या प्रधान को मकान तक जलेब में भेजे। यह वर्ताव राजा की मर्ज़ी पर कम या ज़ियादह हो सकता है। लेकिन दान में कमी करने का क़ायदा नहीं है।

(२) ऐसा भी लिखा मिलता है कि महाराजा गजसिंहजी के अनारां नामक प्रीतिपात्र खवास थी। उस का जसवन्तसिंहजी पर प्रेम था। उस ने भी जसवंतसिंह जी के लिए महाराजा गजसिंह को शिफ़ारिस की थी। अनारां के विषय में कहा जाता है कि वह किसी नवाब की स्त्री थी। उस ने महाराजा को राज मार्ग में जाते देखा, और महाराज की भी उस की ओर दृष्टि गई। बस परस्पर प्रेम बंधन हो गया। और वह महाराज के पास चली आई। महाराज ने उस को जोधपुर भेज दिया। वह महाराज के जनाना में रही।

इन्होंने नौ ९ गांव शासन दिये थेः—

१ गांव रूपावास तफैपाली। परगना जोधपुर, बारहठ राजसी अखावत को दिया।

१ गांव जालीवाड़ा खुर्द, तफै पीपाड़ परगना जोधपुर, बारहठ राजसी प्रतापमलोत को दिया।

१ गांव वसी तफै भाद्राजण, परगना जोधपुर, आसिया माना रामावत को सं० १६८२ में दिया।

१ गांव हींगोलो खुर्द, तफै खैरवा, परगना जोधपुर, आढा किसना दुरसावत को स० १६८८ में दिया।

१ गांव भाटेलाई, तफै कोरणा, परगना जोधपुर, लालस चारण खेतसी परवतोत को दिया।

१ गांव पीथावस, तफै मोकालो, परगना मेड़ता, बारहठ राजसी प्रतापमलोत को स० १६८६ में दिया।

१ गांव पांचेटियो, परगना सोजत, आढा दुरसा मेहाउत को और किसना दुरसाउत को सवत् १६७७ में दिया।

१ गांव राजगियावास, परगना सोजत, दधवाडिया खेमराज जैतमलोत को सं० १६९४ में दिया।

१ गांव सोभड़ास, परगना सोजत, गाडण केशोदास सादूलोत को सं० १६८३ में दिया।

इन महाराजा के तीन पुत्र हुए। १ अमरसिंह २ जसवंतसिंह ३ अचलसिंह। यह बाल्यावस्था में पित्रीश्वरों की गति को गया।

इन महाराजा के समकालीन राजाः—

दिल्ली के बादशाहः—

१ जहांगीर सं० १६६२-१६८३

२ शाहजहां सं० १६८४-१७१५

बीजापुर के बादशाहः—

१ मोहम्मद आदिलशाह सं० १६७४-१७०७

अहमद नगर के बादशाहः—

१ मुरतिजा निजामशाह सं० १६५५

२ अलीबुराहन निजामुल्मुल्क सं० १६८० तक

३ अम्बरचम्पू। यह मुरतिज़ा निज़ामशाह का वज़ीर और सेनानायक था।

यपुर के महाराणाः—

महाराणा करणसिंहजी १६७६-१६८४

महाराणा जगत्सिंहजी १६८४-१७०६

महाराणा अमरसिंहजी का पुत्र भीम कवरपदे में।

बीकानेर के राजाः—

सूरसिंहजी १६७०-१६८८

करणसिहजी १६८८-१७२५

जयपुर के राजा :—

भावसिहजी १६७१-१६७८

जयसिहजी १६७८-१७२४

कृष्णगढ़ के राजाः—

सहसमलजी सवत् १६७२-१६८५

जगमालजी स० १६८५

हरिसिंहजी संवत् १६८५-१७००

जैसलमेर के रावल

भीमसिंहजी सं० १६३४-१६८०

कल्याणसिहजी सं० १६८०-१६९०

मनोहरदासजी १६९०-१७०६ तक

बूंदी के महाराव

सर्वलन्द राव रत्नसिंहजी सं० १६६४-१६८८

राव शत्रुसालजी सं० १६८८-१७१५

सीरोही के रावः—

राव राजसिहजी १६६७-१६७७

अखैराजजी दूसरे १६७७-१७३०

गोड़ गोपालदास

महाराजा गजसिहजी के समय के ६ शिलालेख मिले हैं। उन में से संवत् १६८६ के दो, संवत् १६८८ का एक, संवत् १६८९ का एक और सवत् १६९० के दो।

राव अमरसिंहजी

ये महाराजा गजसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इन का जन्म वि० सं० १६७० पौष सुदि १० को हुआ था। इन के जन्म समय का ग्रहचक्र यह है। संवत् १६८१ के आश्विन सुदि १० को ये बादशाही नौकर हुए। उस समय इन को ५ परगने दिये गए उन का उल्लेख पहले कर चुके हैं।

जन्म कुण्डली

४ । २ । १ चं रा । ५ । ३ । ६ । १२ श । ९ सू मं बु । ७ वृ के । ८ । १० शु । ११

महाराजा गजसिंहजी का आगरे में स्वर्गवास हुआ। उस समय बादशाह ने इन को राव पदवी और नागोर का परगना चार लाख की आय का जागीर में दिया था। बादशाहनामा आदि फ़ार्सी इतिहासों में लिखा है कि महाराजकुमार अमरसिंहजी शाहजादा सुलतान शुजाअ के साथ काबल गए थे जिस से उन को तीन हजारी जात व तीन हज़ार सवार का मन्सब मिला था। राव अमरसिंहजी महावीर और उद्दंड बहुत थे। किसी की परवाह नहीं करते थे। यदि किसी ने कुछ कह दिया तो उस का बदला उसी क्षण भुगता देते। और राजा को नर्म गर्म अवसर देख कर व्यवहार करना चाहिए। अमरसिंहजी में यह बात नहीं थी। केवल उद्दंडता ही भरी थी, जिस से सब को तृण समान समझते थे। और व्यभिचार का भी दोष था। कविराजा श्यामलदास ने वीरविनोद इतिहास में बीकानेर के इतिहास का हवाला देकर लिखा है कि "रीवां के राजकुमार के साथ गजसिंह की बेटी की शादी हुई थी वह जोधपुर आया और ज़बानी तकरार में अमरसिंह के हाथ से मारा गया। और उस ने यह भी लिखा है कि "अमरसिंह ज़ियादह बदकार था उस की दोस्ती किसी शाहजादी के साथ हो गई, महाराजा ने उस का ऐसा बुरा काम देख कर उसे गद्दी से ख़ारिज किया।"

राव अमरसिंहजी अधिकतर बादशाह के पास ही रहा करते थे। संवत् १६९९ में रावजी बादशाह के पास आगरा में थे। नागोर और बीकानेर की सीमा सटी हुई है। गांव जाखणियो सीमा पर आ गया है। उधर बीकानेर के राजा करणसिंहजी ने महेश्वरी जाति के महाजन मुंता कल्याण के पुत्र रामचंद्र को सेना दे कर भेजा। उस के पास सवार और पैदल मिल कर चार तथा साढ़े चार सेना थी। इधर से अमरसिंहजी का दीवान सिंघवी भैरव का पुत्र सीहमल सेना ले कर गया। इस के पास तीन हज़ार के अनुमान सेना थी। सीहमल चढ़

कर शत्रु सेना पर गया। गांव सीलवे में युद्ध हुआ। कार्तिक वदि
रविवार को यह युद्ध हुआ था। एक प्रहर तलवार चली। इस
नागोर की सेना का पराजय हुआ। रणखेत वीकानेर वालो के हा
रहा। नागोर की सेना के ८५ सुभट स्वर्ग को सिधारे। जिन में
नामी वीर थे। सीहमल के ३ तीर लगे। किसी के वरछी, किसी
तलवार, किसी के तीर ऐसे वहुत से सुभट घायल हुए।

वीकानेर वालों के और अमरसिंहजी के इस प्रकार वैर भा
चलता था। करणसिंहजी के और वख़्शी सलावतखां के परस्प
मित्रता थी जिस से सलावतखां हर वात में करणसिंहजी का प
लेता था। परन्तु अमरसिंहजी किसी की परवाह नहीं करते थे।

संवत् १७०१ के श्रावण सुदि २ गुरुवार को राव अमरसिंहज
बादशाह के दरबार में मुजरा करने गए। सध्या का समय था
अमरसिंहजी ने वख़्शी सलावतखां से कहा कि हमारा मुजरा मालू
करो। वह ठहरो कह कर अदर गया परन्तु उसे मौक़ा न मिला जि
से देरी हो गई। अमरसिंहजी ने उसे पीछे आते न देखा तब खु
अन्दर चले गए और ६ मुहर नज़र करके अपनी मिसल पर ख
हो गए। सलावतखां वीकानेर के राजा करणसिंहजी के सबब से पहल
ही से अदावत रखता था, उस ने करणसिंहजी का पक्ष ले कर नागो
पर अमीन भेजने की तजवीज ठहराई थी। क्योंकि वह इन पर जलत
ही रहता था[1] उसे इन का अपमान करने का यह अच्छा अवस
मिल गया। एक दम मुंह से 'गॅवार' शब्द कह दिया। उस वीर पुरु
को यह कब सहन हो सकता था, उस क्षुद्र वचन के मुख से निकलते
ही अमरसिंहजी ने उस के कलेजे में कटार भोंक दिया[2]। सलावतखा
वहीं ढेर हो गया। वादशाह भाग कर अन्दर घुस गया और हुक्म
दिया कि जाने न पावै। परन्तु उस भूखे सिंह के सदृश उस वीर के

---

(१) अदावत रखने का कारण कहीं यह भी लिखा है कि अमरसिंहजी सलावतखां के जनाना में पहुंच गए थे। इसे उस वात की सूचना भी हो गई थी। परन्तु विना देखे क्या कर सकता था? मन में अवश्य जला करता था।

(२) इस विषय में प्राचीन यह दोहा पढ़ा जाता है:—

उन मुख तें गागो कह्यौ, उन कर लियौ कटार।
'वार' कहन पायो नहीं, जमधर ह्वो गइ पार ॥ १ ॥

वख़्शी अमरसिंह को 'गॅवार' कहना चाहता था। परन्तु उस के मुख से प्रथम अक्षर 'ग' निकला और 'वार' ये पिछले अक्षर कहने न पाया, इतने में तो वीर अमरसिंह ने कटार से उसे यमलोक को पहुंचा दिया।

सामने जाने को किस का साहस था। राव अमरसिंहजी दरबार में से निकल कर जाने लगे। उन के पीछे पठान खलीलुल्लाहखां लपका और तलवार का प्रहार किया परन्तु वह निष्फल गया। फिर गोड़ विट्ठलदास का पुत्र अर्जुन रावजी के पीछे आया। रावजी ने पीछे फिर कर देखा तो गोड़ अर्जुन आ रहा है। रावजी ने टेढ़ी नज़र से देखा तो उस ने कहा कि मैं तो आप ही का हूं। रावजी ने उस की परवाह नही की और चल दिये। गोड़ ने अपना दाव देख कर तलवार का प्रहार किया वह कारगीर हुआ उस समय भी रावजी ने कटार से दो तीन मनुष्यों को मारा और अर्जुन गोड़ के भी कान के पास कटारी लगी। इतने में गुर्जवर्दारों का दल आ पहुंचा रावजी उन से लड कर वीर गति को प्राप्त हुए।

बादशाह को अमरसिंहजी के मरने की ख़बर हुई तब हुक्म दिया कि अमरसिंह के आदमियों को कह दो वे उस का शव उठा ले जावें। रावजी के मनुष्य उस स्थान पर पहुंचे जहां अमरसिंहजी मरे पड़े थे। देखते ही उन के मन में बडा क्षोभ हुआ और तलवारें म्यान बारे ले कर बादशाही लोग पर टूट पड़े। रावजी के १४ राजपूत बादशाही ३६ मनुष्यों को मार कर स्वर्ग को सिधारे। उन मे एक मीरखान तीन हजारी मन्सबदार था और दूसरा पचोली मलूकचंद नामी मनुष्य था।

अमरसिंह की कटारी जगत् में प्रसिद्ध हो गई। जोधपुर के राजा बखतसिंहजी ने जयपुर के सवाई राजा जयसिंहजी को, जिन के पास एक लाख सेना थी, पांच हज़ार सवारों से परास्त किया था। उस समय किसी कवि ने बख़्तसिंहजी तलवार की प्रशंसा में एक दोहा कहा उस समय भी उसे अमर सिंहजी की कटारी का स्मरण हो आया था।

दोहा यह है:—

"एक कटारी आगरै, हर वाही अमरेस।
गगवांणारै गोरवें, खग वाह्यौ वगतेस॥"

इसी कटारी के विषय में किसी कवि ने यह कवित्त कहा है:—

"शाह को सलाम करि मार्यो थो सलावतखां,
दिखाई मरोर सूरवीर धीर आगरो।
मीर उमरावन की कचेरी धुजाय सारी,
खेलत सिकार जैसे मृगन में वाघ रो।
कहै पानराय गजसिंह के अमरसिंह,
राखी रजपूती मजबूती नव नागरो।
पाव सेर लोह तें हिलाई सारी पातसाही
होती समशेर तो छिनाय ले तो आगरो"॥ १॥

रावजी के मनुष्य मारे जाने पर बादशाह ने उन का शव जमना में फेंकवा दिया और उन के डेरे पर बादशाही लश्कर भेजा। इधर चांपावत बलू[१] गोपालदासोत, कूंपावत भावसिंह कान्होत, व्यास गिरधर गांगावत देरासरि पोकरणा ब्राह्मण, और राठोड़ नरहरदास रामसिंहोत मेडतियो आदि समस्त सरदार और राजपूत केसर से रगे वस्त्र पहन, मरणोन्मुख हो, अपने सवारी के कीमती घोडों को समाप्त कर हाथ में तलवारें ले बादशाही सेना के साम्हने चले। महाविकट संग्राम हुआ। राठोड़ सरदार और उन के राजपूत प्रायः सब स्वर्ग को सिधारे। उन की संख्या ६४ कही जाती है। और बादशाही २५० मनुष्य मारे गए। जिन मे सैयद खानजहां का भतीजा विजली खान तीन हजारी मन्सबदार था। और दो दो दो हजारी मन्सबदार मारे गए। और १०० घायल हुए[२]।

---

(१) बलू चांपावत बडा वीर पुरुष था। उदयपुर के महाराणा जगत्सिहजी के समय में यह नाराज़ हो कर मारवाड़ से मेवाड मे चला गया था। महाराणा ने इस का वड़ा सन्मान किया। और जागीर भी दे दी। एक दिन महाराणा शिकार गए। वहां के सामत महाराणा के साथ थे। बलू भी साथ में था। एक सिह वन में दृष्टिगोचर हुआ। महाराणा ने उस पर गोली चलाई। वह उस से बच गया और महाराणा के ऊपर लपका। सामत सब चित्र के से खडे रह गए। उस के साम्हने जाने की किसी की हिम्मत नही हुई। बलू उस के ऊपर गया। और उसे मार गिराया। महाराणा इस बात से बलू पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और जागीर में और कुछ बढती की। फिर वहां से मारवाड मे चला आया। और अमरसिहजी के पास रहने लगा। इन दोनों की प्रकृति एक सी थी जिस से इन के परस्पर परम प्रीति हो गई। कहा है:—"समानशील-व्यसनेषुमैत्री।" मित्रता एक सी प्रकृति वालों मे ही होती है। जब बलू आगरा मे अमरसिहजी के पास था तब महाराणा ने एक बहुमूल्य घोडा बलू की सवारी के लिए भेजा था। उस के उत्तर में बलू ने कहलाया कि कभी आप के काम पड़ेगा तब बलू इसी घोडे पर सवार हो कर सेवा में उपस्थित होवेगा। बलू के वशज बलुओत चांपावत है। इन के हरसोलाव आदि ७ ठिकाने है हरसोलाव ठिकाने को हाथ का कुरब है।

(१) कूंपावत भावसिंह इस युद्ध में जीवित रह गया था। अमरसिहजी का सब सामान उसी के पास रहता था उस ने वह सामान अमरसिहजी के छोटे बेटे ईसरसिंह के पास पहुंचा दिया।

(२) किसी ने अमरसिहजी के सरदारों पर सेना भेजने का कारण यह बतलाया है कि अमरसिंह के सरदारों ने अपने डेरे से अर्जुन गोड के डेरे पर बदला लेने को जाना चाहा था। उन के रोकने को बादशाह की फ़ौज आई थी।

और वह उसी दिन से "अमरसिंह फाटक" के नाम से प्रसिद्ध हुआ उस दिन से वह द्वार बहुत दिनो तक बद रहा था। अन्त में जाज स्टील नामक एक अंग्रेज ने सन् १८०६ में उसे खोला।' इस के टिप्पण में फिर यह लिखा है कि "इस के विषय में कप्तान स्टील साहब ने टॉड महोदय से कहा था कि जब वह अमरसिंह नामक फाटक खुलवाते थे तब नगर वालों ने उन को रोक कर कहा "आप इस को न खुलाइये इस में एक बडा भारी अजगर इस का रक्षक बन कर रहता है। फाटक खोलने से निश्चय ही आप को विपद मे पडना होगा।" कप्तान साहब ने इस को उन सब मनुष्यो की भूल समझ कर उस बात पर ध्यान नही दिया। फाटक तुड़वाते २ थोडा सा रह गया कि उसी समय एक बडा भारी सर्प उस के भीतर से बाहर को निकला और उस ने स्टील साहब पर आक्रमण किया। साहिब बडी मुश्किल से उस के काटने से छुटकारा पा कर भागे और दूर जा खड़े हुए।

परन्तु मारवाड का इतिहास और शाहजहां की तवारीख के अनुसार यह घटना किले में आम खास मे नही हुई किन्तु यमुना के तट पर शाहजादह दारा शिकोह की हवेली मे हुई थी। जहां बादशाह कुछ दिन पहले कारण विशेष से जा कर रहा था। राव अमरसिहजी की और इन के वशजो की छत्रियां नागोर नगर के झड़ां नामक तालाव के तट पर अब तक विद्यमान है। उन में कोई शिलालेख नही मिला।

अमरसिह के दो पुत्र हुए। रायसिह और ईसरसिंह।

रायसिंह का इतिहास लिखा जायगा। ईसरसिंह बादशाही नौकर हुआ। पांच सदी ३०० सवार। इस को राजा की पदवी थी। संवत् १७१५ में फतियाबाद के युद्ध मे बड़ी वीरता से लड़ कर स्वर्ग को सिधारा।

ईसरसिंह के दो पुत्र हुए। अनोपसिह और हठीसिह। हठीसिह का मन्सब सात सदी और ५०० सवार था। इस की जागीर में बचावाणो और रडमोड़ा था।

अनोपसिंह भी बादशाही नौकर था। इस का मन्सब पांच सदी और ३०० सवार था। नागोर की दो पटी इस की जागीर में थी।

अमरसिहजी के वशज अमरसिंघोत जोधा है। उन के अधिकार में डीडवाणा परगने का केवल १ ऐवा नामक ग्राम है। इस गांव में प्रतीहार [पड़िहार] क्षत्रिय भोज का वि० संवत् ९०० का ताम्रपत्र

मिला था। इस ताम्रपत्र मे प्रतीहारों की ५ पीढ़ी का नाम है देवशक्ति, वत्सराज, बागभट, रामभद्र और भोजदेव। इस ताम्रपत्र से वह नवीन वार्ता जानी जाती है कि डीडवाणा नगर जो मारवाड़ मे जाता है उस समय [संवत् ९०० में] गुजरात की भूमि थी। उस मे यह लेख है:—'गुर्जरत्राभूमौ डेरड्वानक विषय संबद्ध सिव ग्रामाग्रहारे" । यह ताम्रपत्र महाराजा श्री सरदारसिंहजी साहिब ने अजमेर म्यूजियम मे उपहार रूप दे दिया था। इस समय वह अजमेर अद्भुतालय में है।

राव रायसिंहजी

इन का जन्म संवत् १६९० के आश्विन सुदि १० बुधवार को हुआ था। इन के जन्म समय का ग्रहचक्र यह है।

जन्म कुंडली

श ८   बु के ६
९   ७ सू   शु ५ म
१० चं   ४
११   १   ३ बृ
१२ रा   २

संवत् १७०२ में रायसिंहजी बादशाह की हुजूर में हाज़िर हुए। इन को अपने पिता की जागीर नागोर की ४ पटी जागीर मे मिली। रूण, जायल, कोलू, उदैपुर। ये जब से नौकर हुए बादशाह शाहजहां की पूर्ण प्रेम के साथ सेवा की। संवत् १७१५ बादशाह शाहजहां औरंगज़ेब के बिगडी और औरंगज़ेब शाहजहां को क़ैद करके बादशाह बन गया तब उस ने संवत् १७१५ में रायसिंह की वीरता और स्वामिभक्ति को देख कर पूरा नागोर का प्रांत दे दिया। जिस की आय चार लाख गिनी जाती थी। तदनंतर प्रयाग के पास गांव कुरड़ा में शाहजादह सूजा के साथ औरंगज़ेब के युद्ध हुआ। उस में सूजा का पक्ष कुछ प्रबल होने लगा उस समय रायसिंह ने अपने घोड़े उठा कर सूजा की सेना पर आक्रमण किया इसी हल्ले में सूजा की सेना छिन्न भिन्न हो कर भाग निकली और औरंगज़ेब की विजय हुई जिस से प्रसन्न हो कर औरंगज़ेब ने इन को पारितोषिक में हाथी, हथनी, मोतियों की माला, डुगडुगी, घोड़ा और खोजा मुश्की इतना दिया। इन का मुख्य सुभट ईंदा दयालदास इस लड़ाई में पूर्ण घायल हुआ। उस के तेरह घाव लगे थे।

तत्पश्चात् महम्मद अमीखां के साथ इन को जोधपुर पर भेजा। जिस सेना में बाईस उमराव थे। राव रायसिंहजी ने बंधु भाव से महाराजा जसवंतसिंहजी को समझाया कि दिल्ली का मालिक औरंगज़ेब हो गया है और आप सदा से गद्दी के भक्त हो इसलिए

आप को अपने धर्म पर अटल रहना चाहिए। स्वामिभक्ति से विमुख न होना चाहिए। इस प्रकार महाराजा जसवंतसिंहजी को समझा कर राव रायसिंहजी ने बादशाह के साथ महाराज का मेल करवा दिया। जिस से बादशाह इन पर बहुत प्रसन्न हुआ। और इन को साढा चार हज़ार का मन्सब दिया। राव से राजा पदवी दी और तोग व नक्कारा इनायत किया।

संवत् १७२१ में महाराजा जसवंतसिंहजी दक्षिण से सूबह से वापिस बुलाये गए[1] और उन के स्थान मे जैपुर के राजा जयसिंहजी को भेजा। उन की सहायता मे राव रायसिंहजी गए[2] थे।

संवत् १७२७ मे दलेलखां गुजरात भेजा गया तब रायसिंहजी उस के साथ थे। जब दलेलखां गुजरात पहुचा तब रावजी वहां से पीछे लौट आए। इस से बादशाह कुछ नाराज हुआ परंतु वेतन में किसी प्रकार की हानि नहीं हुई।

तत्पश्चात् उसी वर्ष मे फाल्गुन वदि ७ को रावजी नागोर से रवाना हो कर दक्षिण में बहादुरखान के शामिल हुए। वहां पांच सात वडी लडाइयां हुईं जिन मे बादशाह की विजय हुई।

संवत् १७३१ में रावजी के पास मूहणोत करमसी उपस्थित हुआ। रावजी ने उसे नौकरी में रख लिया। रावजी की उस पर पूर्ण कृपा है। वह भी पूर्ण प्रेम से सेवा करता है। संवत् १७३३ में रावजी का मुकाम शोलापुर के गांव पेड में था। रावजी को अकस्मात् मृत्यु हो गई। लोग कठिन विचार में पड गये कि यहयका यक कैसे हुआ? राव जी के पास एक गुजराती वैद्य नौकर था। उस ने साधारण भाव से अपनी भाषा में कहा कि "करमांनो दोष छे" अर्थात् रावजी की अकस्मात् मृत्यु हो जाना यह कर्मों का दोष है। तात्पर्य यह है कि इन के कर्म ऐसे ही थे। लोगो ने उक्त वाक्य का अर्थ यह तो नही समझा किन्तु यह समझ लिया कि इस में करमसी मंत्री का दोष है अर्थात् इस ने राव रायसिंहजी को विष प्रयोग से मार दिया है। फिर तो इस का विचार कौन करै? तत्क्षण करमसी पकड़ा जा

---

(१) औरंगज़ेब नामा में लिखा है (पृष्ठ ६१) कि "महाराजा जसवंतसिंह ने सेना को सजा देने और उस के किलों को फ़तह करने में मिहनत तो बहुत की थी लेकिन जो बात बादशाह चाहते थे वह नहीं हुई इस वास्ते राजा जैसिंह को दूसरे नामी अमीरों के साथ उस के ऊपर विदा किया।" इस लेख से स्पष्ट है कि महाराजा सेवा से मिल नहीं गए थे।

(२) औरंगज़ेब नामा में लिखा है कि राजा जैसिंह का बेटा रामसिंह जो हज़ूर में था, दिलेरखां, दाऊदखां, रायसिंह और कीर्तिसिंह वग़ैरः पर भी मिहरबानियां हुईं।

कर मारा गया और उस का कुटुंब भी उसी गति को गया। रावजी का स्वर्गवास दक्षिण में संवत् १७३३ आषाढ़ वदि १२ सोमवार को हुआ था।

इन के स्वर्गवासी होने के समाचार नागोर में आषाढ सुदि १५ गुरुवार को मिले। उस समय इन के पुत्र इंद्रसिंहजी गांव रातगा में थे, जो नागोर से १२ कोस की दूरी पर है। वहां से ये नागोर आए। और इन की जो रानियां सती हो गई थी उन का ऋण इंद्रसिंहजी ने अपने सिर लेकर सफाई की।

आषाढ वदि १३ के दिन दाह क्रिया होने के पश्चात् नवाब वहादुर खान राव रायसिंहजी के डेरे पर आया और उस ने समस्त राजपूतों को धैर्य बधाते हुए आश्वासनाजनक वचनों से सांत्वना की। उन की जागीर बहाल रखी गई। और प्रधान स्थान पर राठोड प्रतापसिंह को नियत किया। वहां जितने राजपूत थे सब को आश्वासना दी गई और उन के निर्वाह के लिए २१०००) रुपये नक़्द दिये गए। नवाब ने उन के ५०० सवार वहां रख कर ३२ उमरावों के हाथ में उन का प्रबंध कर दिया। और डेरे पर चला गया।

राजपूत बड़े विचार में पड़े हुए है कि अब क्या करना चाहिए। विचार इस बात का है कि हसम देवैं या नहीं? कोई कहता है हम हसम नहीं देवेंगे, कोई कहता है देनी चाहिए। इसी अवसर में नवाब बहादुरखान को ख़बर मिली कि बीजापुर के बादशाह का उमराव बहलोलखां २२०० घोडों से भीवडा नदी के परली तर्फ आया है। तब बहादुरखान ने अपने साथी समस्त उमरावों को बुला कर कहा कि शत्रु सेना भीवडा नदी के परले तट पर आ गई है अब मेरी लज्जा आप लोगों के हाथ है, शीघ्र उस का प्रबध होना चाहिए। नवाब के ऐसे प्रेम भरे कोमल वचन सुन कर सब हिन्दू मुसलामान तैयार हो गए, मुसलमानों में रोमी पिता पुत्र और दूसरे बहुत से उमराव हरावल हुए। हिन्दुओं में:—

१ राठोड़ अनोपसिंह करण का पुत्र,	१ राठोड़ प्रतापसिंह करणोत
१ राठोड़ केसरीसिंह करणोत	१ बुंदेला इंद्रमण
१ कछवाहा भोजराज खंगारोत	१ राठोड़ राइसिंह रतनोत

१ राठोड़ गोवर्धन चंद्रावत के पौत्र २ १ राठोड़ जूंझारसिंह
१ चाहवाण सकतसिंह १ राठोड़ राव रायसिंहजी के सवार ५०

यह सब समुदाय भीवड़ा नदी के तट पर एकत्रित हुआ। उध शत्रुदल भी सजा हुआ था। दोनो ओर से बाणो की वृष्टि होने लगी वीरगण बढ़ बढ़ कर शत्रुदल पर आक्रमण करते है। तलवार च रही है, मुंड उड उड़ कर आकाश में गेंद का दृश्य दिखा रहे हैं लोथो से रणांगण छा गया है। गिद्ध आदि पक्षी मांस के खंडले कर जा रहे है। शृगाल आदि मांस भक्षक पशु अनूठा भोजन पा क नाच रहे है। लोहू से सारी भूमि सिंची जा कर रक्तवर्ण हो गई है कई कवंध हाथ मे तलवार लिए रणांगण में भूम रहे है। इस महाघो युद्ध मे तुरकों की अनी पर शत्रुओं का दवाव पड़ा और वीर शिरो मणि रोमी पिता पुत्र मारे गए उस समय वादशाही सेना भयभीत हो भागने लगी और शत्रुदल सिर पर आने लगा उस समय राव रायसिंहजी के ५०० सवार और राठोड अनोपसिंहजी करणसिंहजी के पुत्र ने अपने घोडे उठाए और शत्रुओं पर एक साथ टूट पडे इस आक्रमण से शत्रु सेना ५० क़दम पीछे हटी, तब तो राठोड़ो का बल और वढ़ा और जय के उत्साह से आगे वढ़ कर वादशाही हाथी को जो शत्रुदल से घिर गया था, छुडा लिया और शत्रुओं को ऐसा सम्हाला कि वे रणभूमि छोड़ कर भाग गए। इस युद्ध में राठोडो के नामी वीर ८ स्वर्ग को सिधारे। और ५ पूर्ण घायल हुए।

इस युद्ध के समाचार वादशाह के हुजूर में मालूम हुए। खबर-नवीशो ने यह खबर दी कि यदि इस मुहिम में राव राइसिंहजी की सेना न होती तो शत्रु वहुत प्रवल हो जाते और हज़रत को वहुत हानि पहुंचती। इस सेवा के कारण उस के पुत्र इंद्रसिंह के वह जागीर बहाल रहनी चाहिए। और उसे सांत्वना दे कर परितुष्ट किया जाय कि जिस से भविष्य में तन मन से सेवा करे। वादशाह ने इंद्रसिंह को बुलाया और सांत्वना दे कर कहा कि जैसी तुम्हारे पिता ने स्वामिभक्ति से सेवा की है वैसे सेवा करो नागोर की जागीर तुम्हें दी जाती है। और हसम तुम्हें वख़्शा गया अब उस के लिए निश्चिंत रहो। फिर वादशाह ने इंद्रसिंहजी को दक्षिण में भेज दिया।

राव रायसिंहजी की जागीर में नागोर नगर कसवा समेत और उस के समग्र १६ ही प्रांत थे। और नागोर के सिवा उदैपुर के सताईस २७, अमरसर के बारह १२ और अजमेर के पांच ५ ग्राम थे। इन का मन्सब पांच हजारी तक पहुंच गया था।

इन के पुत्र इंद्रसिंहजी का जन्म संवत् १७०७ ज्येष्ठ सुदि १२ शनिवार को बुरहानपुर मे हुआ था। इन के जन्म समय का ग्रहचक्र यह है:—

जन्म कुंडली

८ ७ ६
कं चं बृ
९ ५
१० ४
सू
बु शु
११ १ रा ३
श
१२ २ म

लिख आए है कि बादशाह ने इन को दक्षिण मे भेज दिया था। वहां दक्षिण का सूबहदार बहादुरखान था। ये बहादुरखान के पास जा कर हाज़िर हुए। बहादुरखान ने इन का स्वागत किया। और बड़े सन्मान से रखा। वहां दक्षिण मे दो तीन लड़ाइयां हुई जिन में इंद्रसिंहजी अग्रणी थे। बादशाह की विजय हुई जिस से बहादुरखान इन का बड़ा मान रखता था। तत्पश्चात् नलदुरंग पर बादशाही फ़ौज गई वहां भी ये रावजी अग्रणी थे।

वहां भी इन की वीरता से बादशाह की विजय हुई। इंद्रसिहजी वही थे और बहादुरखान के स्थान में दक्षिण के सूबह पर दलेलखान आया। उस ने शत्रु पक्षीय बहलोलखान से संधि कर ली। इस संधि मे उस ने हाथी, घोड़े और नक़द रुपये दिये वह सब बादशाह के हुजूर मे पहुंचाया गया। तत्पश्चात् भाग नगर के ऊपर बादशाही सेना गई। उस में भी हरवल राव इंद्रसिंहजी थे। वहां इन को बहुत समय तक लड़ना पड़ा। लड़ते २ यह दशा पहुंची कि पांच ५) रुपये का एक १ सेर धान्य मिलना भी दुर्लभ हो गया और सेना क्षुधा के मारे व्याकुल हो गई उस समय रावजी ने शत्रु सेना पर अपने घोड़े उठाए और एक साथ टूट पड़े इस हल्ले में दक्षिणी भाग निकले और बादशाह की विजय हुई। शत्रुओं को उस समय जी की पड़ी थी नीशान झंडे सब छोड़ भागे इंद्रसिहजी ने वे लाकर सूबहदार को दिए। सूबहदार इन की वीरता से परम प्रसन्न हुआ।

इस युद्ध में राठोड़ रामचंद्र बलू का पुत्र चांपावत स्वर्गगामी हुआ। राठोड देवीदास पूर्ण घायल हुआ।

राव इद्रसिंहजी दक्षिण मे थे और संवत् १७३५ में महाराजा जसवंतसिहजी का स्वर्गवास हो गया तब इद्रसिंहजो ने सिकदार (कोनवाल) डूंगरसी और चारण गोविददास को जोधपुर भेज कर कहलाया कि राणीजी के गोद हमारा पुत्र ले कर बादशाह के हुजूर में उपस्थित होओ, इस में तुम्हारा भला है परन्तु मारवाड़ के सामत और कार्यकर्ताओं ने यह बात मजूर नही की।

इस के पीछे बादशाह ने इद्रसिहजी को दक्षिण से बुलाया। बादशाह उस समय अजमेर में था। ये बादशाह के पास अजमेर के मुकाम पर नही पहुचे। यह अवसर चूक गए। यदि इस अवसर पर इद्रसिहजी बादशाह के निकट पहुंच जाते तो तत्क्षण इन को जोधपुर का राज्य मिल जाता। और बादशाह को अजमेर मे स्थिति होने से इन का राज्य जोधपुर मे स्थिर हो जाता। परन्तु होता वही है जो ईश्वर को अभिप्रेत है। इद्रसिंहजी बादशाह के पास मनोहरपुर के निकट सीकर में जाते पहुंचे। फिर क्या होना था। वह तो वही अवसर था। इंद्रसिहजी बादशाह के साथ जहानाबाद (दिल्ली) गए। इद्रसिंहजी के ५०० सवार तो अजमेर अथवा जोधपुर में रहते और ५०० सवार दक्षिण में कवर मोहकमसिंहजी के पास रहते। और उन खुद के पास भी सेना रहती ही थी। इन का आगे का इतिहास महाराजा अजीतसिहजी और अभयसिंहजी के इतिहास में समय समय पर आता रहेगा।

इद्रसिंहजी के ७ पुत्र थेः—

१ मोहकमसिंह १ महासिह १ श्यामसिह १ मोहनसिह १ अजब सिंह १ फतैसिह १ भीमसिह।

महाराजा जसवंतसिंहजी प्रथम

लिख आए हैं कि महाराजा जसवंतसिंहजी महाराजा गजसिंहजी के द्वितीय पुत्र थे। इन को राज्य मिलने का कारण प्रथम लिखा जा चुका है। इन का जन्म वि० संवत् १६८३ माघ वदि ४ (ई० सन् १६२६ ता० २६ दिसंबर) मंगलवार को बुरहानपुर (बरार) में हुआ था। इन के जन्म समय का ग्रहचक्र यह हैः—

जन्म कुण्डली

२   १२   के
३   १   ११   शु
४   १०   बु
चं   ७   ६
रा। ५   सू
श   ६   मं   ८   बृ

इन के पिता का स्वर्गवास आगरा नगर में संवत् १६९५ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सन् १६३८ ता० ६ मई) को हुआ था। उस समय ये बूंदी व्याहने गये हुए थे। पिता की मृत्यु के समाचार पाते ही बूंदी से सीधा आगरे गए। सुलतान मुराद ने मातमपुरसी की।

बादशाह शाहजहां ने जोधपुर का राज्य इन को देने का इन के पिता के समक्ष में स्वीकार कर लिया था इसलिए बादशाह ने इन के राजतिलक अपने हाथ से किया। यह विधि संवत् १६९५ की आषाढ़ वदि ७ (ई० सन् १६३८ ता० २५ मई) शुक्रवार को हुई थी। उस समय बादशाह शाहजहां ने इन के तलवार और कटारी बंधा कर सिरोपाव दिया। और उस के साथ जड़ाऊ जमधर (कटार), सुनहरी जीन का घोड़ा, हाथी, निशान व रूपे का नक्कारा दिया। और बड़े २ उमरावों को भी सरोपाव दिये गये। महाराजा ने भी एक हज़ार मुहरें, १२ हाथी और कुछ जड़ाऊ शस्त्र समर्पित किये। उस समय महाराजा का मन्सब चार हजारी जात व चार हज़ार सवारों का हुआ। और राजा की पदवी प्राप्त हुई। प्रथम श्रावण सुदि १२ को फिर खिलअत दिया।

राज्याधिकार के समय महाराज की अवस्था १२ वर्ष की थी परन्तु होशिला पूरा था। राज्य का कार्यकर्त्ता पंचोली बलू था। बादशाह ने इन की उम्र कम होने से मारवाड के राज्य कार्य का निरीक्षण करने के लिए आसोप के ठाकुर कूंपावत राजसिंह को इन का प्रधानामात्य बना दिया था। कूंपावत राजसिंह पहले महाराजा

गजसिंहजी का प्रधानामात्य था। और बादशाह ने भी इसे एक हजारी जात और चार सौ सवारों का मन्सबदार कर दिया[१] था।

उसी के तीसरे दिन महाराजा को सवारी के लिए बादशाह ने अपने तबेले में से सुनहरी जीन वाला एक घोड़ा दिया।

तदनंतर बादशाह काबुल जाने के लिए लाहोर की तर्फ रवाना हुआ तब महाराजा जसवंतसिंहजी को भी अपने साथ ले गया। महाराज मार्ग में कुछ दिन दिल्ली में ठहर गए। जब बादशाह पालमपुर परगने के गांव बाकड़वाड़े में पहुंचा उस समय महाराजा आश्विन वदि १२ को उस के शामिल हो गए। आश्विन सुदि ६ को इख्तियार-पुर पहुंच कर बादशाह ने खिलअत और सुनहरी जीन का खासा घोड़ा दे कर इन को फिर सन्मानित किया।

माघ वदि ४ वि० सवत् १६६६ (ई० सन् १६३६ ता० १३ जनवरी) को महाराजा का मन्सब बढ़ा कर पांच हजारी जात और पांच हज़ार सवारों का कर दिया गया[२]। चैत्र सुदि ११ को फिर एक खासा हाथी दिया गया था।

संवत् १६६६ के वैशाख सुदि २ (ई०सन् १६३६ ता० २५ अप्रेल) को सम्राट् पेशावर से जमरुद की तर्फ गया तो ये भी उस के साथ गये। आश्विन सुदि ६ को बादशाह ने इन के कार्य से प्रसन्न हो कर खिलअत और सुनहरी जीन का घोड़ा दिया। तत्पश्चात् फाल्गुन सुदि ६ को बादशाह ने इन को घर जाने की आज्ञा दी। और विदा करते समय इन को खिलअत और एक सुनहरी जीन वाला खासा घोड़ा दिया।

संवत् १६६७ में एक अद्भुत घटना हुई। महाराज की पन्द्रह वर्ष की अवस्था थी परन्तु आप का ध्यान प्रजा की ओर बहुत ही अधिक था। मेरी प्रजा सुखी है, कोई दुखी तो नहीं है, इस का अवलोकन करने के लिए महाराजा स्वयं रात्रि में गुप्त रीति से नगर में जाया करते। एक दिन महाराजा उसी गुप्त रीति से नगर में गए। उधर से कोतवाल भी गश्त करता चला आया। महाराजा ने देखा कि इस की भेंट होने में हमारा भेद खुल जायगा। निकट ही तापी बावड़ी आ गई, आप उस के अंदर चले गए। कोतवाल गश्त करता चला गया। कहा जाता है कि उस बावड़ी में एक भूत का

(१) इस विधान का समय भाद्रपद वदि २ कहा जाता है।

(२) उस समय अमीरों का ऊंचे से ऊंचा मन्सब यही मिला करता था। उस की जागीर की आमदनी क़रीब २५ लाख की होती थी। इस मन्सब वृद्धि के साथ इन को जैतारण का परगना जागीर में मिला था।

निवास था। अर्ध रात्रि का समय था। भूत महाराजा के शरीर में प्रविष्ट हो गया। और महाराजा बेहोश हो गये। पिछली रात्रि में लोग वहाँ नहाने गए। महाराजा की वह दशा देखी। तुरत राज्य में ख़बर दी गई। प्रधानामात्य, दीवान कोतवाल आदि आये और महाराजा को उठा ले गये। मंत्रवादियों को बुला कर उपचार किया गया तो प्रेत क्या कहता है कि मेरे रमण समय में यह राजा आया इस लिये इसे नहीं छोड़ूगा। परतु मत्रवादियों के दबाव से उसे यह स्वीकार करना पड़ा कि यदि इन के समान का कोई आ जावे तो मैं इस राजा को छोड दूं। प्रधानामात्य कूंपावत राजसिंह ने कहा कि महाराजा के एवज में मेरे प्राण बलिदान हो जायं तो अहोभाग्य है। फिर मंत्रित जल महाराजा पर भ्रमण करा कर राजसिंह को पिलाया गया। उसी से राजसिंह की मृत्यु हुई[१]। इस का देह त्याग संवत् १६६७ के पौष वदि ५ की ८ घड़ी रात्रि व्यतीत हुए हुआ था। इस स्वामिभक्त सामत पर राज्य की ओर से बड़ी शानदार एक पत्थर की छत्री (मंडप) जोधपुर के कागा नामक बाग में बनवाई गई। जहां उस का शव जलाया गया था। उस के पीछे तीन सतियां हुईं। जिन के साथ राजसिंह की पत्थर में खुदी हुई मूर्ति छत्री के मध्य में स्थापित की गई। जिस की प्रतिष्ठा संवत् १७०१ आषाढ़ सुदि १ मंगलवार को हुई थी। यह छत्री अब तक जोधपुर के कागा नामक बाग में विद्यमान है। मूर्ति के नीचे शिलालेख खुदा हुआ है। उस में उस के मरण का समय लिखा हुआ है। इस का दूसरा शिलालेख इस के ठिकाने आसोप नगर में भी खुदवाया गया था। वह वहां विद्यमान है।

राजसिंह ने मरते समय अपने वंशजों के लिये यह कह दिया था कि भविष्य में कोई भी मेरा वंशज प्रधानामात्य का पद वह ग्रहण करे जिस में मेरे जैसा साहस और सामर्थ्य हो। और उस के वंशजों ने उस आज्ञा का पालन किया और करते हैं। राजसिंह का पूजनीय स्थान आसोप की हवेली में जोधपुर में है। वह देवों की भाँति पूजा जाता है।

इन महाराजा के समय का सं० १६८६ का शिलालेख फलोधी नगर में कल्याणरायजी के मन्दिर के सभामंडप में खुदा हुआ है। वह निज मन्दिर के अगाड़ी रंगमंडप बनाया गया उस विषय का[२] है।

---

१ नास्तिक इस पर श्रद्धा न होने से विष प्रयोग का अनुमान करते हैं।

२ यह रङ्गमण्डप मुहणोत नैणसी के पिता जैमल ने पञ्चायत से करवाया था।

राजसिंह के पश्चात् महाराजा का प्रधानामात्य चांपावत महेशदास[1] सूरजमलोत नियत किया गया। वह भी बादशाही मन्सबदार था इस को सं० १६९५ के कार्तिक सुदि में ८०० जात और ३०० सवारों का मन्सब मिला था। पहले यह महाराजा गजसिंहजी की सेवा में रहा हुआ था, बादशाह ने सं० १६९६ के आषाढ़ में इसे महाराजा के प्रधान पुरुषों में जान कर एक घोडा इनायत किया था।

संवत् १६९८ में वैशाख वदि ३ (ई० सन् १६४१ ता० १८ मार्च) को महाराजा आगरे गये। शाहजहां ने उस समय भी खिलअत और जडाऊ धोप (किरच) भेजा। और वैशाख सुदि १२ को महाराजा के मन्सब के ५००० सवारों में से एक हज़ार सवार दुअस्पा[2] से अस्पा[3] किये गये।

प्रथम ज्येष्ठ मास में बादशाह ने महाराजा के लिये एक खासा हाथी और आषाढ़ में सुनहरी जीन का खासा घोड़ा भेजा। तत्पश्चात् आश्विन मास में महाराजा की सवारी के लिये एक बहुमूल्य घोडा भेजा, जो बसरे से आये हुए घोड़ों में से चुना हुआ था। बसरे के घोड़े बहुत सुन्दर होते हैं।

महाराजा को इस बात की बड़ी ख़ुशी हुई। उस ख़ुशी में महाराजा ने अपने सामन्तों और प्रीतिपात्रों को तीन हाथी और २२ घोड़े दिये।

संवत् १६९९ में ईरान के बादशाह शाह सफ़ी ने कंधार पर चढ़ाई करने का विचार कर के अपने सेनापतियों को कहा कि तुम नेसापुर जाओ। बादशाह शाहजहां को शाह सफ़ी का विचार विदित हुआ तब बादशाह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को सेना दे कर कंधार की तर्फ़ भेजा। और उस के सहायतार्थ महाराजा जसवन्तसिंहजी भेजे गये। उस समय बादशाह ने इन को ख़ासा खिलअत, जड़ाऊ जमधर (कटार) फूलकटार, सुनहरी साज समेत ख़ासा घोड़ा और ख़ासा हाथी दिया। इन के ग़ज़नी में पहुंचने से पहले ही शाह सफ़ी मार्ग में ही मर गया। यह समाचार इन को ग़ज़नी में ज्ञात हुआ तब ये वहां से लौट आये।

१—कोई लेखक महेशदास को मोटाराजा का पौत्र और रतलाम बसाने वाले रतनसिंहजी का पिता बतलाता है। यह भूल है। क्योंकि यह महेशदास जालोर का राजा था। तीन हजारी मन्सबदार था। वह प्रधानामात्य बनने को क्यों आता?

२—द्विगुण वेतन पाने वाला।

३—तीन घोड़ों की तनखा पाने वाला।

सं० १७०० आषाढ़ सुदि १४ (ई० सन् १६४३ ता० २० ... को महाराजा मारवाड़ को रवाना हुए। इस समय श्री ... महाराजा को खिलअत दिया। चांपावत महेशदास महाराजा प्रधानामात्य बना था। परन्तु उसे अधिकतर बादशाह की नौकरी रहना पड़ता था। क्योंकि वह भी मन्सबदार था। जब मह... जोधपुर पहुँचे तब महेशदास के स्थान में रीयां के ठाकुर ...ति गोपालदास सुन्दरदासोत को नियत किया।

इसी वर्ष मारवाड़ के पहाडी प्रदेश के मेर बागी हो कर लूट करने लगे। उन का दमन करने के लिये मुहणोत नैणसी को से... दे कर भेजा। इस ने उन के १५ गांव जला दिये और मेरो के रक्षास्थान विध्वस्त कर दिये। और बहुत से मेरों को मार कर उस प्रान्त को निरुपद्रव किया।

इसी वर्ष में राड़दड़े का महेचा राठौड महेशदास बागी हो गया। मारवाड़ देश को बहुत हानि पहुँची। तब उस के दमन के लिये मुहणोत नैणसी के पिता जैमल को सेना दे कर राडदड़े पर भेजा। उस ने वहां जा कर राड़दडा लूट लिया और किला व रहने के स्थानों को गिरवा दिया। महेशदास और वीरम वहां से चले गये। और वह प्रान्त महेवे के रावल तेजसी के पुत्र महाराउल जलमाल को दे दिया गया[1]।

१—किसी आधुनिक लेखक ने महेवे के रावल जगमाल को भारमल का पुत्र लिख दिया है। वह भूल है। क्योंकि उक्त जगमाल भारमल का पुत्र नहीं, किन्तु तेजसी का पुत्र था। और भारमल उक्त जगमाल का पुत्र था। लेखक ने पिता को पुत्र और पुत्र को पिता बना दिया है। संवत् १६८६ का रावल जगमाल का शिलालेख मालानी प्रान्त के नगर ग्राम में रणछोडजी के मदिर में खुदा हुआ है उस में जगमाल का पुत्र भारमल लिखा हुआ है। इस शिलालेख मे सीहाजी को सूरजवशी कनौजिया राठोड लिख कर सीहाजो से कुंवर भारमल तक की वशावली लिखी है। सीहो, आसथान, धूहड रायपाल, कान्हपाल, जालणसी, छाडा, तीडा, सलखा, माला (मल्लिनाथजी), राउल जगमाल, भोजराज, वीदो, नी (वी) सल, वरसींग, हीपा, मेघराज, दुरजणसल्ल, तेजसी, जगमाल, कुंवर भारमल। शिलालेख में प्रस्तुत अंश यह है—"राउः श्रीतेजसी द्वितीय भार्या सत्यवती रांणी श्रीसीसोदणी दाड़िमदेजी कुक्षिपुत्र रत्न छत्रीस राजकुली सिणगार गोत्र गोआल प्रजापाल परम दयाल गौ ब्राह्मण प्रतिपाल कठ शोभित विय श्री वरमाल महाराउल श्री जगमालजी विजयराज्ये तद्गृहे रांणी भठियांणी जिवतदे, चहुयाणि जमुनादे, सोढी चतुरगदे, देवड़ी अमोलकदे, भटीयांणी सुजाणदे राणी ५, पटराणी देवड़ी कुक्षिरत्न प्रधानकुंवर श्री भारमलजी उदयभाने।" यह शिलालेख रणछोड़जी का मंदिर करवाया उस विषय का है। "श्रीरिणछोड़देवगृहं कारापित चिर स्थेयात्।"

बादशाह जियारत के लिये अजमेर आया तब महाराजा जोधपुर से चल कर अजमेर गये। मार्ग शीर्ष सुदि ६ को बादशाह से मिले। एक सप्ताह वहां ठहर कर बादशाह आगरे को जाने लगा तब महाराजा को खिलअत दिया। महाराजा विदा ले कर जोधपुर आये।

घर सम्हालना मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। महाराजा ने राजधानी में स्थिति कर के समस्त राज्य कार्य को सम्हाला। और योग्य पुरुषों को अधिकारी नियत किया। प्रधानामात्य तो वही रीयां ठाकुर मेड़तिया गोपालदास है। अन्य कार्य मियां फरासत के अधिकार में किया गया है। आप सब की देख भाल करते है। इसी अर्से में बादशाह का आज्ञापत्र आया कि कुछ आवश्यक कार्य है जल्दी आओ। महाराजा बादशाह के पास रूपावस के डेरे पहुंच कर बादशाह से मिले। बादशाह सं० १७०१ में लाहोर की तर्फ़ गया तब महाराजा भी उस के साथ लाहोर गये[1]।

इसी वर्ष में बादशाह शाहजहां लाहोर से काश्मीर गया। और सं० १७०२ मार्गशीर्ष वदि प्रतिपदा (ई० सन् १६४५ ता० २५ अक्टोबर) को बादशाह काश्मीर से लौट कर पीछा लाहोर आया[2]। और लाहोर

---

१ किसी आधुनिक लेखक ने लिखा है कि "वि० सं० १७०१ की माघ सुदि २ (ई० सन् १६४५ की १६ जनवरी) को जब बादशाह लाहोर की तर्फ़ रवाना हुआ, तब उस ने वहीं पर इन्हें खिलअत दे कर इन का सन्मान किया और साथ ही अकबराबाद के सूबेदार शेख फ़रीद के आने तक आगरे की देख-भाल करते रहने और बाद में अपने पास चाले आने का आग्रह किया। इस के अनुसार वह उस के साथ न जाकर वहीं ठहर गये।" परन्तु माघ सुदि २ को महाराजा का आगरा में होना और आगरे की देख-भाल के लिये महाराजा को आगरा में बादशाह का ठहराना, यह लिखना सही नहीं जाना। क्योंकि महाराजा का पत्र जो फरासत के नाम लिखा गया है वह सं० १७०१ पौष सुदि २ का है। उस मे मुकाम 'लाहोर' लिखा है। और वह महाराजा की मुहर सहित है। इस पत्र को देखते आधुनिक लेखक का लेख असत्य प्रतीत होता है। उक्त पत्र गांव जेलवा के जागीरदार जोसी मदनलाल मगदत्त जोधपुर निवासी के पास है।

२ किसी आधुनिक लेखक ने लिखा है कि "लाहोर से कश्मीर को जाते हुए बादशाह ने इन्हें लिखा कि उस के कश्मीर से लौट आने तक इन्हें अवश्य ही लाहोर पहुँच जाना चाहिये। इसी के अनुसार जिस समय वि० सं० १७०२ की मगसर वदि १ (ई० सन् १६४५ की २५ अक्टोबर) को बादशाह लौट कर लाहोर आया उस समय ये भी वहां जा पहुँचे।" यह लेख भी असंगत है। क्योंकि महाराजा जसवन्तसिंहजी की सनद चारण आढा महेशदास किसनाउत को गांव गोधावस (परगना सोजत) शासन देने की स० १७०२ आश्विन

से पेशावर की तर्फ़ प्रयाण किया। सं० १७०३ की वैशाख सुदि ५ (ई० सन् १६४६ ता० १० अप्रेल) को बादशाह का मुकाम चनाब नदी के तट पर हुआ उस समय बादशाह ने महाराजा को जड़ाऊ जमधर, फूलकटार और सुनहरी जीन वाला अरबी घोड़ा दिया। और ज्येष्ठ सुदि १० को महाराजा के सवारों में से दो हज़ार सवार दुअस्पा से अस्पा कर दिये गये। इस के दूसरे ही दिन महाराजा बादशाह का इशारा पा कर पेशावर से प्रयाण कर के बादशाह की सेना से एक मुकाम अगाड़ी चलने लगे। उस समय आंबेर के महाराजकुमार रामसिंहजी भी इन के साथ भेजे गये थे। महाराजा के अगुआ होने से बादशाह के मार्ग में कहीं विघ्न नहीं हुआ। आराम से काबुल पहुंच गया। मार्ग में महाराजा ने जो प्रबन्ध किया था उस से प्रसन्न हो कर बादशाह ने भाद्रपद वदि २ को महाराजा की सवारी के लिये सुनहरी जीनवाला एक खासा घोड़ा दिया। और माघ वदि ११ को इन के मन्सब के ढाई हज़ार घोड़े दुअस्पा से अस्पा कर दिये गये। इस के पश्चात् महाराजा लाहोर गये। संवत् १७०३ की चैत्र वदि ७ की लिखी हुई ख़्वाजा[1] फरासत के नाम की सनद मिली है उस में मुकाम लाहोर लिखा है। संवत् १७०४ में इन के तीन हज़ार सवार दुअस्पा से अस्पा किये गये। और हिन्डौन का परगना जागीर में दिया गया।

सुदि ६ की लिखी हुई मिली है। उस में मुकाम 'लाहोर' लिखा है। इस से स्पष्ट है कि सं० १७०२ आश्विन सुदि ६ (दशहरे) के दिन महाराजा लाहोर में थे। मगसर वदि १ को महाराजा का आगरे से लाहोर आना लिखना सर्वथा असंगत है। इन सनदों से पाया जाता है कि इन वर्षों (सं० १७०१-१७०२) में महाराजा की स्थिति लाहोर में थी।

१ लिख आये हैं कि महाराजा ने ख़्वाजा फरासत को, जिसे महाराजा गजसिंहजी ने राजा बहादुर से मोल लिया था, राज्य का प्रबन्ध निरीक्षण करने के लिए जोधपुर भेजा था। किसी लेखक ने ख़्वाजा के विषय में लिखा है कि "ख़्वाजा फरासत को सं० १७०२ में जोधपुर के प्रबध की देख-भाल के लिये भेजा, परतु उस के इस कार्य में सफल न हो सकने से अगले वर्ष राज्य का प्रबध उस से ले लिया गया।" यह लिखना असत्य जाना जाता है। प्रथम तो फरासत सं० १७०२ में नहीं भेजा गया था। किन्तु उस से पूर्वकाल में वह प्रबन्धक था। सं० १७०१ की पौष सुदि २ की सनद में लिखा है 'फरासत दिसे सुप्रसाद बाँचजो' जिस से सं० १७०१ में फरासत का राज्य प्रबन्धक होना पाया जाता है। उक्त सनद में यह भी लिखा है "जोसियाँ रे गांव जेसलवस नै जैतीवस भा॥ सुन्दरदास रै गाँव सींव रो झगड़ो छै सु थे सुरे देखि नै च्यारां ही तरफां आदु सींव यांनु कढाय देजो"। इस लेख से फरासत का राज्य प्रबन्धकर्ता होना स्पष्ट

संवत् १७०५ में पातावत और रूपावत राठोड़ों के परस्पर किसी बात पर वैर बध गया था। वह गृह कलह कब मिटा जिस का पता नही।

संवत् १७०६ में ईरानियों के आक्रमण की सूचना मिली कि वे कन्धार पर आते हैं तब बादशाह ने शाहजादह औरगज़ेब को कन्धार की ओर भेजा। और उस को मदद में महाराजा जसवन्तसिंहजी को भेजा। शाहजादह काबुल पहुंचा उस समय बादशाह शाहजहां की आज्ञा पहुंची कि तुम वही ठहर जाओ जिस से औरंगज़ेब को वही रुकना पडा और महाराजा भी वहीं ठहर गये। बादशाह का विचार स्वय जाने का हुआ जिस से इन को वही रोक दिया। और स्वय वहां पहुंचा। महाराजा २००० सवार ले कर बादशाह के साम्हने गये।

सवत् १७०६ के कार्तिक सुदि १५ को जेसलमेर के स्वामी रावल मनोहरदास का स्वर्गवास हो गया। तब उस का पुत्र रामचन्द्र[१] जेसलमेर का स्वामी हुआ। वह बहुत ऊधमी और उद्दण्ड था। इसी से समस्त प्रजामण्डल और सामन्तगण उस से प्रसन्न नही थे। उन्हों

है। और उक्त लेखक सं० १७०२ के विवरण में उस का प्रबन्धक होना लिख कर अगले वर्ष उस की कार्याक्षमता दिखाता है। परन्तु स० १७०३ की चैत्र वदि ७, जो उस वर्ष का अन्त है, तक के समय का लिखा सनद का लेख संवत् १७०३ के अन्त तक फरासत का प्रबन्धकर्ता होना स्पष्ट दिखाता है। सनद का लेख— "स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री जसवन्तसिंहजी वचनातु फरासत दिसे सुप्रसाद बांची जो। अठारा समाचार भला छै थांहरा देजो। तथा जेसलवस मारग आवै छै अटवड़ा था तठै नींब रे नाकै सिवरांम जोसी तलाव बधावै छै सु उवा धरती म्हे सिवरांम नु दी छै देजो। दोइ हलवा, धरती तलाव रै आगौर नै दोइ हलवा पाछोर तलाव वांसे धरती छै तिण सू दखल मत करो। सवत् १७०३ रा चेत वदि ७ मुं॥ लाहोर दुवे श्रीमुख परवांनगी राठ (ठोड़) गोपालदासजी।" इस से स्पष्ट प्रकट होता है कि संवत् १७०३ के अन्त तक फरासत कार्यकर्ता था। और उक्त लेखक ने इस वर्ष में उस का कार्य ले लेना लिखा है वह उक्त प्रमाण के देखते असत्य प्रतीत होता है।

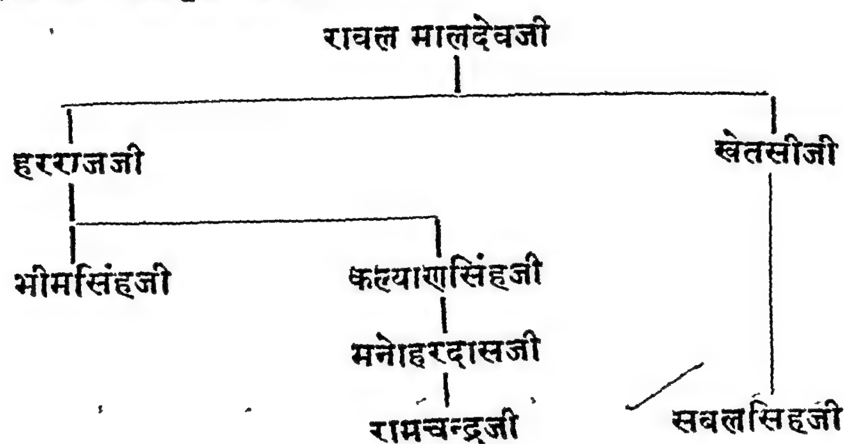
जोधपुर शहर के पश्चिमी चांदपोल नामक दरवाज़े के बाहिर 'मियां का बाग़' नामक स्थान प्रसिद्ध है वहॉ उस का शव गाड़ा गया था।

१ प्रकृत लेखक ने लिखा है कि "जेसलमेर रावल मनोहरदासजी का स्वर्गवास हो गया उस समय वहॉ के सर्दारों ने सबलसिंह के हक का कुछ भी विचार न कर रामचन्द्र को वहां की गद्दी पर बिठा दिया।" परंतु यह लिखना असंगत तथा अप्रमाणित है। क्योंकि रामचन्द्र मनोहरदास का औरस पुत्र था। जेसलमेर के इतिहास (पृष्ठ ६६) में व्यास हरिदत्त ने रामचन्द्र को मनोहरदास का पुत्र

ने रावल मालदेवजी के तृतीय पुत्र खेतसी के पौत्र व
राज्याधिकारी करने का विचार किया। सबलसिंह बादशाह
के हजूर में उपस्थित हुआ। सामन्तगण उस के पक्षपाती थे ह
और यह भी पहले बादशाह की पेशावर की मुहिम में नियुक्त
चुका था। बादशाह इस से परिचित था। उस ने महाराजा
सिंहजी से कहा कि पोकरण नगर आदि तुम्हारा है। राव
ने रावल हरराज के गिरवे रख दिया था। जब से पोकरण
भाटियो का क़ब्ज़ा चला आता है। अब हम पोकरण तुम को
करते है। जा कर अपना क़ब्ज़ा कर लो। और रावल मनोहरदास का
पुत्र रामचन्द्र उच्छृङ्खल है। प्रजा उस से राज़ी नही है। उसे वहां से
निकाल कर सबलसिंह को जेसलमेर का रावल बना दो। बादशाह ने
पोकरण का आज्ञापत्र लिख दिया। और सबलसिंह को महाराज के
साथ भेज दिया।

महाराजा संवत् १७०७ के आषाढ़ वदि ३ को जोधपुर आये।
और पोकरण का फ़रमान दे कर राठोड़ सादूल गोकुलदासोत और
हरिदास राघोदासोत को जेसलमेर भेजा। रावल रामचन्द्र ने उस
फ़रमान को देख कर कहा कि "गढ़ मांगने से हाथ नही आता। भाटि-
यों के दस आदमी मरने से पोहकरण मिलेगा।" महाराजा ने यह
समाचार सुन कर अपने सामन्तगण को बुलाया और दरबार के
अन्दर उन से कहा कि बादशाह ने सबलसिह के वास्ते यह आज्ञा की

लिखा है। तब "सबलसिंह के हक का विचार न कर" यह लिखना भूल है।
रामचन्द्र मनोहरदास का पुत्र था। उस की विद्यमानता में कुटुम्बी सबलसिंह
का हक कैसे हो सकता था ? सबलसिंह रावल मालदेवजी के तृतीय पुत्र खेतसी
का पौत्र था। वंशवृक्ष यह है:—



है कि जेसलमेर के वर्तमान रावल रामचन्द्र को गद्दी से उतार कर सवलसिंह को गद्दी विठा दो। अब जेसलमेर पर जाना है आप सब सन्नद्ध हो जावें। और पोकरण का भी परवाना मिल गया है उस पर भी अधिकार करना है। सामन्तगण यह समाचार सुन वहुत प्रसन्न हुए। वीर पुरुषों को युद्ध का अवसर मिले इस से बढ़ कर क्या आनन्द! सब ने महाराजा से अर्ज़ किया कि हम सब कई दिनों से उत्सुक हैं कि कभी युद्ध करने का अवसर आवै। यह वहुत ही उत्तम अवसर मिल गया है। यह कह कर महाराजा से विदा हो कर अपने २ स्थान पर गये। महाराजा ने इस अवसर पर तीन सामन्तों को पोकरण पर जाने की आज्ञा दी उस के साथ पन्द्रह हज़ार सेना भेजी। और मन्त्रिवर्ग में से सिंघवी प्रतपामल भेजा गया। सेना के तीन विभाग किये गये। एक का मुखिया रीयां ठाकुर मेड़तिया राठोड़ गोपालदास सुन्दरदास का पुत्र था। दूसरे में अग्रणी चांपावत वीठलदास पाली ठाकुर और तीसरे में कूंपावत राजसिंह का पुत्र नाहर खान आसोप ठाकुर था।

महाराजा ने भाटी सवलसिंह को ख़र्च के लिये पचास रुपये प्रति दिन के नियत करके फलोदी भेज दिया था। जब महाराजा की सेना पोकरण के पास पहुंची उस समय भाटी सवलसिंह भी अपने राजपूतों को साथ में ले कर राठोड़ों की सेना के शामिल हुआ[1]।

उन्होंने जाकर डूंगरसर पर डेरा किया और आश्विन सुदि १५ को पोकरण को घेरा। कोट के अन्दर रावल रामचन्द्र के २५० सुभट थे। भाटी सवलसिंह ने उन से वातचीत करके वहुतों को निकाल दिया। कुछ नहीं निकले वे सज कर रणांगण में आए। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। भाटी अल्प संख्या में थे, महाराजा की सेना अधिक थी। युद्ध में कितने ही भाटी तो मारे गये। और वाकी के गढ़ छोड़ कर जेसलमेर की ओर भाग गये। महाराजा की विजय हुई। पोकरण पर स० १७०७ कार्तिक वदि ६ को अधिकार कर लिया गया।

पोकरण पर अधिकार करके वही सेना भाटी सवलसिंह को साथ में ले कर जेसलमेर गई। कुछ दिन युद्ध होता रहा। जब राठोड़ सेना ने मोरचा निकट जमाया और किले वालों को पूरा तंग किया तब रावल रामचन्द्र किला छोड़ कर भाग गया। और राठोड़ सेना ने सवलसिंह को जेसलमेर की गद्दी पर विठाया। सवलसिंह ने महाराजा के इस उपकार को आजन्म स्मरण रखा। और यह कहा कि महा-

१ किसी ने लिखा है कि मुहणोत नैणसी भी इस सेना के शामिल था

राजा जसवन्तसिंहजी के वास्ते मेरे प्राण, चार घोड़े और तैयार हैं। जिस समय आप आज्ञा करेंगे उसी क्षण सेवा में ॰ हो जाऊंगा।

संवत् १७०८ में एक ब्रह्मचारी नर्मदा से जोधपुर आया। ॰ के साथ नर्मदेश्वर महादेव का लिंग था। किसी ने महाराजा आगे ब्रह्मचारी की चर्चा की, और कहा कि उस के पास नर्म॰ का लिंग अति चमत्कारी है। महाराजा ने मन्दिर करवा दिया पूजा करने के वास्ते श्रीमाली ब्राह्मण वेणा अचलावत को किया और पुत्र-कामना से उस श्रीमाली से अनुष्ठान कराया गया संवत् १७०६ आषाढ़ सुदि ५ गुरुवार को महाराजा के पुत्र हुआ इस का नाम पृथ्वीसिंह रखा गया। इन के जन्म समय का च॰ इस भांति था—

पृथ्वीसिंहजी की जन्म कुण्डली

११   ९   १२ रा   १०   ८   १   ७   ६ चं के   २   ४ श सू   मं ३ बु   ५ शु

पुत्र जन्म के उत्सव में महाराजा साठी का नाम का गांव अर्पण किया श्रीमाली को डोउवाल नाम ग्राम जुदा दिया। और महादेव का नाम रामेश्वर रखा गया। वह रामेश्वर का मन्दिर जोधपुर के चान्दपोल दरवाज़े के बाहिर विद्यमान है।

संवत् १७१० में महाराजा का मन्सव छः हजारी जात व पांच हजारी सवारों का कर दिया गया। और पांच हज़ार ही सवार दुअस्पा से अस्पा किये गये। इस के साथ इन को अजमेर सूबे का मलारना प्रान्त भी दिया गया।

इसी वर्ष में बादशाह ने शाहज़ादह दाराशिकोह को बड़ी सेना दे कर कन्धार विजय करने के लिये भेजा। क्योंकि संवत् १७०५ में ईरानियों ने कन्धार पर अपना कब्ज़ा कर लिया था। उसे अर्सा हो गया तब शाहज़ादह को भेजा और उसकी सहायता के लिये महाराजा जसवंतसिंहजी को भेजा। इस यात्रा में बादशाही सेना सफल नहीं हुई।

संवत् १७११ में बादशाह ने मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के ४ परगने ज़ब्त कर लिये थे। उन में से बदनोर का परगना कार्तिक सुदि ५ को महाराजा के आधीन किया गया। और मेरूंदे का परगना भी महाराजा की जागीर में हो गया।

संवत् १७१२ में महाराजा का मन्सब छः हजारी जात और छः हज़ार सवारों का कर दिया गया। जिन में पांच हज़ार सवार दुअस्पा से अस्पा हुए। और इस के साथ इन को 'महाराजा' का पद प्रदान किया।

इसी वर्ष में सीसोदिया सर्वदेव[1] की कन्या का पाणिग्रहण करने के लिये महाराजा मथुरा गये और वहां से जोधपुर आये। और पंचोली मनोहरदास को रोहतक ज़िले की जागीर का प्रबन्ध करने के लिये भेजा। यह जागीर इन का मन्सब बढ़ा तब दी गई थी।

महाराजा उदैसिंहजी के प्रपौत्र रतनसिंहजी, जिन्होंने मालवा में अपने नाम से रतलाम नगर बसाया था, पहले जालोर में थे। संवत् १७११ तक उन का जालोर में राज्य रहना उन के उक्त वर्ष के ताम्रपत्र[2] से निश्चित होता है। तदनन्तर उन को मालवे में जागीर मिल गई तब वे जालोर छोड़ कर मालवा में चले गये। बादशाह ने जालोर की जागीर महाराजा जसवन्तसिंहजी को मलारना प्रान्त के एवज़ में दी। जिस पर महाराजा का अधिकार स० १७१२ में हुआ।

संवत् १७१४ में बादशाह शाहजहां बीमार हुआ। बीमारी की ज़्यादा तकलीफ़ होने से बादशाह के मरने की अफ़वाह उड़ी। वह बंगाल औ दक्षिण तक फैल गई। उस समय उस का ज्येष्ठ पुत्र दारा-शिकोह उस के पास दिल्ली में था। उस के क्या ध्यान में आया कि वह बादशाह को जमना के प्रवाह द्वारा आगरे ले आया। उस समय बादशाह के द्वितीय पुत्र शुजा ने बादशाह को मरा समझ बंगाल में अपने को बादशाह घोषित कर दिया। और वहां से चल कर पटना के मार्ग आगरे आने को उद्यत हुआ। उधर दक्षिण में तृतीय पुत्र औरंगज़ेब था। उस ने भी बादशाहत के लोभ से लालायित हो कर बड़ी सेना के साथ आगरे आने को प्रयाण किया। चौथा पुत्र मुराद गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में था। बादशाह के मरने की ख़बर सुन कर वह वहां तख़्त पर बैठ गया। दाराशिकोह तो बाद-शाह के पास है। अन्य तीनों भाई यह चाहने लगे कि बादशाह मैं हो जाऊं। दाराशिकोह ने जब उपद्रव सुना तो शाहजादह शुजा को

१ इस का नाम वीरमदेव भी लिखा मिलता है।

२ ताम्रपत्र की प्रतिलिपि—"श्री परमेश्वरजी स्त छै। श्रीरांमजी सही। सीध श्री महाराजाधिराज महाराज श्री रतनजी वचनातु पुन अर्थे भारथी माधोजीनु गांव १ प्रगनै जालोर पटी तलसर रा (टी) मौ॥ खारा उदक कर दीध॥ आपदतं परदत जे मेटंत वसधरा ते नरानंकं जायती जां लग चंददिवाकराः हुकम हुजरा दुवो श्रीमुख मुकाम पाइतखत जालोर सं। १७११ दुतीक भादवा वद ३ लः सा हमीर लोढा।"

रोकने के लिये अपने ज्येष्ठपुत्र सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह को बड़ी सेना दे कर पटने की तर्फ़ भेजा। और जो के राजा जसवन्तसिंहजी को, जो हिन्दुस्तान के राजो में मुख्य जाते थे, शाहजादह औरंगज़ेब को रोकने के लिये उज्जैन की त भेजा। उस समय दाराशिकोह ने बादशाह से अर्ज करके इन मन्सब ७००० जात ७००० सवारो का करा दिया। उन में ५ सवार दुअसपा से असपा किये गये। और रवाना करते समय इन १०० घोड़े, जिन मे एक सोने के साज का महाराजा की सवारी लिये था, चांदी की अम्बाड़ी वाला एक हाथी, हथनी, एक ल रुपये नक़्द दिये गये। और मालवे की सूबहदारी भी दी गई। कासिमखां को एक जुदी सेना दे कर कहा कि वह महाराजा के उज्जैन जावे और जो आवश्यकता हो तो गुजरात मे पहुंच मुरादबख़्श को वहां से निकाल दे।

महाराजा जसवन्तसिंहजी की अध्यक्षता मे बादशाही सेना से रवाना हो कर मालवे की तर्फ़ चली। उधर औरंगज़ेब अ से माघ सुदि २ को रवाना हो कर फाल्गुन वदि ११ को ह। पहुंचा। और वहां से बादशाह के शरीर स्वास्थ्य पूछने के लिये अर्ज़ी भेजी उस का १ महीने तक उत्तर नही आया और बुरी २ ख़बरें उड़ने लगी तब औरंगज़ेब ने चैत्र वदि १२ को आगरे की तर्फ़ जाने को प्रयाण किया। सवत् १७१५ के वैशाख वदि ८ को देपालपुर पहुंचा।

इधर महाराजा जसवन्तसिहजी आगरे से रवाना हुए उस समय उन के साथ ७ हिन्दु राजा और १५ मुसलमान अमीर थे। कासिमखां उन का संचालक था। महाराजा सेना ले कर माघ वदि ४ को उज्जैन पहुंचे। इस बात की खबर औरगज़ेब को मिली तब उस ने शाही अमीरो को फॅटाना शुरू किया। उन को खिलअत और मन्सब दे कर अपने पक्ष मे कर लिया। और अपने छोटे भाई मुराद को भी बादशाहत का लालच दे कर अपने शामिल कर लिया। बर्नियर लिखता है—"मुराद बख़्श राज्य लोभ मे अंधा हो रहा था और इधर उस के कुटिल भाई के आशापूर्ण पत्र प्रतिदिन आ रहे थे कि मै तुम्हारे कामों में पूर्ण अनुरक्त हूं। मुराद ने सोचा कि वह काम, जिस मे बादशाही और राज्य मिल जाने की आशा है, अकेले नही हो सकेगा। अतएव अहमदाबाद से, जहां वह डेरे डाले पडा था, कूच कर दिया। और गुजरात से चल कर पहाड़ो और जंगलों का सीधा मार्ग लिया कि जिस में वह जल्दी से उस जगह पहुंच जाय जहां औरंगज़ेब कुछ दिन पहले ही आ कर उस की प्रतीक्षा कर रहा था। इस की सूचना मांडू के किलेदार राजा सेवाराम ने की। जिस के मिलते ही महाराजा

मुराद को रोकने के लिये उज्जैन से रवाना हुए। महाराजा खाचरोद के निकट पहुंचे उस समय इन की और मुराद की सेना के १८ कोस का अन्तर रह गया था। मुराद ने वहां मुकाबला नहीं किया और दूसरे मार्ग पहुंच कर औरंगज़ेब से मिलने की चेष्टा की। उधर औरंगज़ेब तो देपालपुर से चला और यह इधर से चला। दोनो की एक स्थान में भेंट हो गई। दोनों मिल कर परस्पर परम प्रसन्न हुए। उस समय कुटिल औरंगज़ेब ने भाई मुराद को धोका देते यह कहा—"भाई! बादशाही और सल्तनत की मुझे ज़रा भी इच्छा नहीं है। यह सेना संग्रह मैं ने इस लिये किया है कि जिस तरह बन पड़े दाराशिकोह से जो मेरा और आप का मशहूर जानी दुश्मन है, लड़ भिड़ कर आप के तख़्ते सल्तनत पर जो ख़ाली पड़ा है, बिठा दूं।" राजधानी की ओर बढ़ते समय रास्ते में औरंगज़ेब ऐसा ही कहता गया। और क्या अकेले मे और क्या सब के साम्हने मुराद को वह 'हज़रत' और 'जहांपनाह' आदि संबोधन करता रहा। मुराद ने उस के कपट को बिलकुल नहीं पहचाना। कारण यह कि वह राज्य लोलुपता से ऐसा अंधा हो गया था और उस की बुद्धि पर ऐसा पर्दा पड़ गया था कि उसे कुछ भी न सूझा।

महाराजा ने दोनो शाहज़ादों की गति विधि जानने के लिये बहुत कुछ चेष्टा की परन्तु उस कुटिल के जाल के आगे इन को कुछ भी पता नहीं लगा। और औरंगज़ेब और मुराद बढ़ते ही चले आये। महाराजा भी खाचरोद से पीछे उज्जैन लौट आये। इतने में दोनो शाहज़ादे धर्मतपुर में आ पहुँचे, जो उज्जैन से ७ कोस की दूरी पर[१] है। महाराजा ने भी उन से एक कोस के अन्तर पर अपना डेरा कर दिया।

उस समय धूर्त शाहज़ादे ने दूत भेज कर महाराजा को कहलाया कि हम अपने पिता का स्वास्थ्य पूछने के लिये जाते हैं। आप हमें क्यों रोकते हैं? इस पर महाराजा ने कहलाया कि यदि आप पिता का सुख पूछने जाते हैं तो जाइये, आप को कोई नहीं रोकता। परन्तु आप सेना ले कर नहीं जा सकते, इकल्ले जा सकते हैं। महाराजा के इन वचनों से औरंग ने समझ लिया कि यहां ऐसे दाव पेंच नहीं चल सकते। उस ने दूसरा षड्यन्त्र रचा। बादशाही मुसलमान सेना के नामक कासिमख़ां को अपनी ओर कर लिया।

महाराजा जसवन्तसिंहजी को यह ज्ञात नहीं हुआ था कि कासिमख़ां शाहज़ादो से मिल गया है। संवत् १७१५ के वैशाख वदि ८ को

१—मारवाड़ की ख्यातों में चोरनराणा नाम लिखा है। और कोई फतियाबाद बतलाते हैं।

युद्ध का आरम्भ हो गया। दोनो ओर से तोपखाने से गोले उड़ने लगे। धूमचक्र से आकाश मण्डल आच्छादित हो गया। दोनों ओर से तोपो के फ़ैर होते २ शाही तोपखाना बंद हो गया। इस का कारण स्वामिद्रोही कासिमखां हुआ। उस ने अपने मनुष्यो के द्वारा शोर शीशा रेते में गड़वा दिया। जिस से शाही तोपख़ाना निकम्मा हो गया। और ख़ुद कासिमख़ां बादशाही मुसलमान अमीरो को अपने साथ में ले कर रणाङ्गण छोड़ चला। उस समय सात हिन्दू राजो ने महाराजा का साथ दिया[१]। जिन के नाम ये हैः—

१ रतलाम का राजा राठौड़ रतनसिंहजो,

२ कोटा का राजा हाडा मुकनसिहजो

३ रणथम्भोर और राजगढ़ का राजा गोड़ अर्जुन

४ झाला दयालदास

५ शाहपुरा का राजा किसनसिंह

६ बुंदेला राजा सुजाणसिंह

७ टोडे का राजा सीसोदिया रायसिंह

क़ासिमख़ां के चले जाने से औरगज़ेब का होशिला बहुत बढ़ गया। क्योकि तीस हज़ार मुसलमानी सेना उस के चले जाने से किनारा दे गई। बर्नियर कहता है कि इस समय महाराजा के अधीन केवल ८००० सेना रह गई[२] थी। अवसर देख कर शत्रु सेना एक साथ इन के ऊपर टूट पडी। इधर महाराजा की आज्ञा पाते ही राजपूत सेना सिह के समान गरज उठी। और प्रचण्ड पहाड़ी नदी के समान शत्रु सेना की ओर बढ़ने लगा। महाराजा जसवन्तसिंहजी ने भयानक भाला हाथ में अपने रण तुरङ्ग महबूब के ऊपर चढ़ बादशाह

१—बर्नियर लिखता है कि—"प्रारम्भ में घोर सग्राम हुआ। राजा जसवन्तसिंह ने बड़ी ही वीरता और युक्ति से शत्रुओं को पद पद पर रोका। परन्तु कासिमखां ने, यद्यपि उस के एक वीर योद्धा होने में किसी को कुछ संदेह नही, तथापि इस अवसर पर न तो कुछ वीरता ही दिखाई, न कुछ सामरिक युक्ति ही प्रकट की। वरन् उस पर यह संदेह किया जाता है कि इस अवसर पर उस ने विश्वासघातकता की। और लड़ाई से पहले ही रात के समय अपनी ओर की सब गोली बारूद रेते में छिपा दी। जिस का यह परिणाम हुआ कि लड़ाई के समय बड़े बाढ़ दागने के बाद इधर की सेना के पास इस प्रकार का कोई सामान न रहा। परन्तु युद्ध घमासान हुआ। इस समय कासिमखां जसवन्तसिंह को घोर संकट में छोड़ कर बड़ी अप्रतिष्ठा के साथ लड़ाई के मैदान से भाग निकला।

२—टॉड साहिब सेना की संख्या ३०००० बतलाता है।

के दोनो पुत्रों पर आक्रमण किया । राठौड रतनसिंह आदि ने उस समय महाराजा के पक्ष का अवलम्बन कर वड़ी वीरता दिखाई । और महाराजा ने शत्रु सेना का सहार करने में कुछ कमी नहीं रखी । आप का घोडा महवूव और आप लोहू से भीग[१] गये थे। और असख्य शत्रु सेना वढ़ी चली आने लगी। उस समय महाराजा के हितैषी राठौड़ रतनसिंह आदि ने महाराजा के पास आकर अर्ज़ किया कि स्वामिद्रोही कासिमखां ने सव वात विगाड़ दी है।इस महती शत्रु सेना के आगे विजय होना असंभव है। वल्कि इस रणक्षेत्र में सव के सव राजपूत मारे जायँगे। इस लिये आप को इस रणभूमि से अलग हो जाना चाहिये। क्योंकि आप हमारे स्वामी हैं। आप के विद्यमान रहने से सव कुछ रह सकता है। आप के विना सव का समूल नाश हो जायगा। इस लिये हमारा कहना मान कर आप यहां से हट जाइये। वृक्ष का यदि मूल रह जाता है तो शाखा, पत्र, पुष्प, फल सव हो सकते हैं। यदि मूल का नाश हो जाय तो न तो शाखा है और न पत्र पुष्पादि हैं।आप हमारे मूल हैं। हम सव आप के शाखादि स्थानापन्न हैं। मूल की रक्षा अवश्य कर्त्तव्य है। नीति मे कहा भी है "मूल नास्ति कुतःशाखा"। इस प्रकार वहुत समझाने और आग्रह करने पर भी वीर राजा ने वहां से हटने से इनकार किया और कहा कि मै राजपूत हूं, क्षत्रिय हूं, तुम जानते हो क्षत्रिय का धर्म क्या है? "युद्धे चाप्य-पलायनम्"। तिस पर रतनसिंहजी और महाराजा के सरदारों ने घोड़े की वाग पकड़ कर घोड़े को वहां से हटाया और महाराजा से कहा कि यहां मर मिटने में आप का भला नहीं है। आप के यहां मर मिटने से राठोड़ सव मर जायँगे और देश का सत्यानाश हो जायगा, इस वात को सोचें और यहां से हट जायं। ऐसे कह महाराजा की मर्ज़ी न होने पर भी चांपावत महेशदास और करणोत आसकरण (दुर्गादास का पिता) आदि सरदार महाराजा को ले वहां से ६०० सवारो के साथ चल पड़े[२]। महाराजा के ध्वज़ का सेना सचालन का भार राठोड़ रतनसिंहजी ने अपने सिर पर लिया। और अपने

१—वाक़याते आलमगीरी में लिखा है कि "राजा जसवन्तसिंह के दो ज़ख़्म लगने पर भी वह वहादुरी के साथ रणस्थल में खड़ा रह कर जहां तक हो सका अपने वीरो को उत्साहित करता रहा।

२—फतूहाते आलमगीरी के लेख से इस की पुष्टि होती है। उस में लिखा है कि—"जसवन्तसिंह सन्मुख युद्ध में लड़ कर प्राण देना चाहता था परन्तु महेशदास आसकरण आदि उन के प्रधान घोड़े की लगाम पकड़ कर वल पूर्वक वहां से इन्हें ले आये।" आलमगीर नामा में महाराजा के साथ २०० सवार होना लिखा है।

वंश के मूल और नायक महाराजा को वहां से निकल जाने पर किया।

महाराजा अपने सरदारों के साथ शाहज़ादों की बांई हो बड़े ठाट के साथ निकले। उस समय शाहज़ादों के सैनिकों ने उन पीछा करने का विचार किया और औरगज़ेब से आज्ञा मांगी। ७ समय में औरंगज़ेब ने उन को अनुधावन करने की आज्ञा नहीं दं क्योंकि वह राठोड़ों की तलवार के ताप को भली भांति देख था[१]।

महाराजा के निकल जाने पर राव रतन (रतलाम का राजा महाराजा के स्थानापन्न हुआ। और अन्य समस्त हिन्दु राजा उस सहायक हुए। और युद्ध स्थल में बड़ी वीरता से लड़े। राव रतन इस युद्ध में अच्छी तलवार बजाई और उस के साथी राजाओं ने भं ऐसा घोर सग्राम किया कि औरंगज़ेब चकित हो गया। औरंगज़ेब नामा में लिखा है कि इस युद्ध में ६००० राजपूत मारे गये[२]। और बर्नियर लिखता है कि ८००० राजपूतों में से ६०० बचे। ख्यातों से जाना जाता है कि इस युद्ध में औरंगजेब की सेना के १०००० मनुष्य मारे गये थे। परन्तु रणक्षेत्र औरंगज़ेब के हाथ रहा। क्योंकि मुसलमानी सेना तो पहले ही विमुख हो गई थी। पीछे हिन्दु राजाओं की सेना रही उन के भी मुखिया राजा लोग सब के सब मारे गये। राजा रायसिंह सीसोदिया, राजा सुजानसिंह बुंदेला और चन्द्रावत अमरसिंह ये तीन इस युद्ध में से निकल गये। ख्यातों से पता चलता है कि इस युद्ध में निम्नलिखित वीर शत्रु सेना का संहार करके वीर गति को प्राप्त हुए थे—

राव रतन रतलाम का राजा

राव रतन का भाई फतैसिंह महेशदास का पुत्र

१—आलमगीर नामा मे लिखा है कि "युद्धस्थल से लौटते हुए महाराजा अपने ३०० सवारों के साथ शाहज़ादों की बांई ओर से बड़े ठाट के साथ निकले तब सैनिकों के उकसाने पर भी औरगज़ेब की इन्हें छेड़ने की हिम्मत नहीं हुई। इस के बाद भी वह अक्सर कहा करता था कि 'खुदा की मनशा हिन्दुस्तान में मुसलमानी मज़हब क़ायम रखने की थी इसी से उस दिन वह (जसवतसिंह) युद्ध से चला गया। यदि ऐसा न हुआ होता तो मामला मुश्किल था।"

२—औरंगज़ेब नामा (१३३) देवीप्रसाद का हिन्दी अनुवाद।

कोटा का राजा हाडा मुकनसिंह। और इस के तीन भाई—

जूंझारसिंह, कान्हसिंह और मोहणसिंह

गोड़ अर्जुन, विट्ठलदास का पुत्र, राजगढ़ और रणथम्भोर का राजा।

झाला दयालदास नरहरदास का पुत्र

झाला राघोदास दयालदास का भाई

सीसोदिया किसनसिंह, सगतसिंह का पुत्र, शाहपुरा का राजा और उस के तीन पुत्र

चांपावत राठौड़ विट्ठलदास, गोपालदास का पुत्र, पाली ठाकुर,

" " गिरधारीदास मोहनदास का पुत्र, आउवा ठाकुर। इस ने युद्ध में जाते महाराजा से कहा था कि मैं वीरगति को पा जाऊ तब आउवा महेशदास को देना।

कूंपावत कल्याणदास विहारीदासोत

ऊदावत बलराम दयालदासोत, वदनोर इस के जागीर था।

" खीवकर्ण बलराम का पुत्र, रायपुर ठाकुर

जैतावत—राठौड़ करण, सुजाणसिंहोत वगड़ी ठाकुर

करमसोत राठौड़ पृथ्वीराज दलपतोत

मेड़तिया सावन्तसिंह उदयासिंहोत

जोधा राठोड़ प्रतापसिंह कदमसिंहोत

सोनगरा माधोदास केसोदासोत

भाटी महेशदास अचलदासोत वीकूंकोर ठाकुर

ऊहड़ मेघ उरजनोत कोरणा ठाकुर

राजगुरु प्रोहित दलपत, तिवरी का स्वामी। २२ वर्ष का, विवाह किया ही था।

इन के अतिरिक्त ख्यातों में बहुत से वीरों का उल्लेख किया है परन्तु विस्तार भय से नहीं लिखे गये है[१]।

---

१ वर्नियर ने राजपूतों के विषय मे लिखा है कि राजपूत मृत्यु की कुछ भी परवा न करके भयानक से भयानक मारकाट में लग जाते हैं। यदि कोई राजा स्वयं शूर वीर हो तो उस के मन में कभी यह संदेह नहीं उत्पन्न हो सकता कि मेरे राजपूत कभी किसी अवसर पर मेरा साथ छोड़ देंगे। युद्ध के समय ये लोग कोई उन का सरदार वा परिचालक हो अपने स्वामी को शत्रुओं के हाथों में छोड़ देने की अपेक्षा उस के आगे अपना जीवन दे देने में वे अधिक मान समझते हैं।

महाराजा मानसिंहजी रणाङ्गण से निकले उन के ८
सवार थे। उन में मुखिया चांपावत महेशदास सू ।
जब महाराजा आउवे के पास पहुंचे उस समय महेशदास
कि इस गांव का नाम क्या है। महेशदास ने कहा कि "
महाराजा ने गिरधारीदास के वचन को स्मरण कर आउवा
को दे दिया। महाराजा के साथ राठोड़ ६, गहलोत २,
जिन में भण्डारी नारायणदास देश दीवान था। महाराज
सोजत में आये। वहां ४ दिन ठहर कर जोधपुर आये[1]।

कुछ दिन तो आप के मन में उदासी ने स्थान दिया।
उस से जब राज्य का कार्य बिगडता देखा तो उस की ओर
दिया। मुहणोत नैणसी दीवान नियत किया गया। और
का पद मियां फरासत को दिया गया। और अपने राज्य के
के कार्य मे लगे।

उधर औरंगज़ेब रणस्थल से रवाना हो आगरे की तर्फ़

१—बर्नियर ने राजपूतानियों की प्रशंसा के प्रसंग में यह लिखा है कि—
अवसर पर जसवन्तसिंह की रानी ने, जो राणा के कुल की थी, अपने
के साथ जो व्यवहार किया वह भी सुनने योग्य है। महाराजा को रणाङ्गण
पीठ दे कर आता सुना तो उस ने बडी निष्ठुरता से आज्ञा की कि किले के
फाटक बन्द कर दिये जांय मैं ऐसे निन्दित पुरुष को किले के अन्दर नही
दूंगी। यदि वह युद्ध में शत्रुओ को हरा नहीं सका तो यहां आने की क्या
श्यकता थी? वही युद्धक्षेत्र में वीरता के साथ लड़ कर प्राण देना उचित था
फिर तुरन्त ही उस के मन मे दूसरा विचार उत्पन्न हुआ—और उस ने
'अरे कोई है जो मेरे लिये चिता तैयार करे।' और पागल सी हो कर जी
सो कहने लगी। ८-६ दिन तक उस की यही दशा रही। इस बीच में
से वह एक वार भी नहीं मिली। अन्त में जब उस की माता उस के निकट
और उस ने समझाया कि घबराओ नही, राजा ज़रा विश्राम ले कर और न
सेना एकत्रित करके पुनः औरंगज़ेब पर आक्रमण करेगा और इस की
और साहस की लोग फिर प्रशंसा करेंगे। तब वह कुछ शान्त हुई टॉड साहिब
भी बर्नियर के लेखानुसार लिखता है। वीरविनोद के कर्ता कविराजा श्यामलदास
ने सीसोदनी रानी नहीं, बूंदी के राजा हाडा शत्रुसाल की कन्या हाडी का इस
प्रकार से व्यवहार करना लिखा है। परंतु दोनों लेखकों का लेख परस्पर विरुद्ध
होने से प्रामाणिक नही हो सकता। एक ने सीसोदनी और दूसरे ने हाडी रानी
लिख दी है। अब किस का कथन सत्य माना जाय। वास्तव में यह कथा कल्पित
है। जिसे बर्नियर ने सुन कर लिख दी है। बर्नियर वहां विद्यमान नही था जिस
ने आंखों से देखा हो।

उस समय उस के पास ८०००० के अनुमान सेना[1] थी। इस महती सेना को लिये औरंगज़ेब और मुराद समूगढ (फतेहाबाद) पहुचे, जो आगरे से साढ़े सात कोस है। यहां पर दारा और औरंगजेब का मुकाबला हुआ और महाघोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में दारा के वामभाग की सेना के सेनानायक[2] राठोड रामसिंह ने बड़ा ही वीरता का काम किया। उस ने शत्रु सेना की पंक्तियों को चीर कर मुरादबख़्श को बड़ी वीरता और फुर्ती से घायल कर डाला। इतना ही नहीं वरन् वह अम्बारी का रस्सा काट कर उसे हाथी पर से गिरा देने की चेष्टा कर रहा था। मुराद घायल हो गया था। और चारों ओर से राजपूतों में घिरा हुआ था। और रामसिंह उस पर भूखे सिंह के समान जा पहुचा था इतने मे उस के एक तीर मर्म स्थान में ऐसा लगा कि वह अपने कार्य में सफल न हो सका। और स्वर्ग के मार्ग को चल पड़ा।

इसी प्रकार उधर औरंगज़ेब पर महाराजा जसवन्तसिंहजी का चचेरा भाई राठोड़ रूपसिंह चला। वह वीर आगे बढ़ औरंगजेब के हाथी के पास जा पहुंचा। और वहां घोडे से उतर ऐसा पराक्रम किया कि औरंगज़ेब उस की रणकुशलता, फुर्ती और साहस को देख कर चकित हो गया। और इस वीर को जीवित पकडने की आज्ञा की। परन्तु ऐसे वीर क्या पकड़े जा सकते हैं, उस ने ऐसा वीरता का कार्य किया कि सैनिकों को अपने स्वामी की आज्ञा लोप कर उस पर टूट पडना पडा। और वह (रूपसिंह) भी शत्रु सेना को मारता हुआ टुकड़े टुकड़े हो कर रणभूमि में गिरा।

इस प्रकार राजपूतों ने अपना धर्म निबाहते हुए स्वामिभक्ति का पूर्ण परिचय दिया। और उन्हीं के समान लड़ने वाले मुसलमान वीरों ने, जिन का आदर बादशाह राजपूतों की अपेक्षा अधिक करता था, विश्वासघाती हो कर स्वामी का सर्वनाश किया। खलीलउल्लहखां, जिस के पास ३०००० सेना था, युद्ध के समय निश्चेष्ट रहा, और उसी से दारा का पराजय हुआ[3]। दारा भाग कर आगरे गया।

१—बर्नियर ४०००० सेना बतलाता है।

२—दारा ने अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त की थी। दक्षिण पार्श्व में खलीलउल्लहखां सेनानायक था। इस के पास ३०००० सेना थी। वामपार्श्व में रुस्तमखां दक्षिणी, राव छत्रसाल (बूंदी) और राठोड़ रामसिंह ये तीन सेनानायक थे।

३—औरंगजेबनामा (पृ० ३३) में लिखा है कि—"दाराशिकोह के सरदार रुस्तमखां, राव शत्रुसाल और राजा रामसिंह प्रभृति बहुत सी लड़ाई करके मारे गये। अभी और भी बहुत से लोग उस के लश्कर में जान देने को मौजूद थे मगर वह ऐसा घबरा गया था कि हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हुआ। इस बेमौक़ा हरकत

वहां के ख़ज़ाने से क़ीमती जवाहरात और आवश्यक सामान
और वहां से दिल्ली चला गया।

से उस की फ़ौज बिखर कर भाग निकली। और औरंगज़ेब की फ़तह हो
किसी आधुनिक लेखक ने राजा रायसिंह सीसोदिया का भाग कर देश
लिखा है "राजा रायसिंह सीसोदिया राजा सुजानसिंह बुंदेला और
चन्द्रावत आदि कुछ सरदार औरंगजेब के हमले से घबरा कर अपनी २ फ़
साथ अपने अपने देशों की तर्फ़ भाग निकले।" परंतु राजा रायसिंह
का भाग निकलना लिखना उक्त औरंगज़ेबनामा के लेख से विरुद्ध है। वह
रायसिंह का इसी युद्ध में मारा जाना लिखता है।

बर्नियर पराजय का कारण यह लिखता है कि—"दाहिनी ओर के सैन्
के सरदार खलीलउल्लहखां की अधीनता में ३०००० मुगल थे जो ऐसे शिक्षित
केवल वही औरंगज़ेब के समस्त सैनिकों को हरा सकते थे। परन्तु जिस समय
बड़ी वीरता और साहस से बांई ओर लड रहा था उस समय उस सरदार ने
भी उस की सहायता नहीं की। वरंच लोगों से यह बहाना कर दिया कि
सेना के लिये यह आज्ञा है कि जब तक विशेष प्रयोजन न हो और आज्ञा न दी
तब तक एक डग भी आगे न बढ़े और एक तीर भी न छोडा। उस सम
का बहाना करना विश्वासघातकता और बेईमानी से भरा हुआ था।"

इस के आगे फिर लिखता है—बात यह थी कि कई वर्ष पूर्व दाराशिक
इस सरदार का कुछ अपमान किया था। वह अपमानरूपी आग अब तक इ
हृदय को जला रही थी। अतएव उस ने सोचा कि बदला लेने के लिये यह उ
समय है। परन्तु दाराशिकोह की जो हानि उस ने अपने अलग रहने में सोच
वह नहीं हुई। क्योंकि दाहिनी ओर के लोगों की सहायता के बिना ही उस (द
ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली थी, अब इस (खलीलउल्लहखां) वि
घाती ने एक और चाल चली। अर्थात् जब दारा मुरादबख्श के दबाने के
से अपने सैनिकों की सहायता को जा रहा था, तब शीघ्रता से अपने सहाय
सहित आगे बढ़ कर उस दुष्ट ने उसे पुकारा और कहा—"मुबारकबाद हज़रत
मत, अहमदुलिल्लाह!" हजूर को बख़ैर व सलामती बादशाही व फ़तह
हो। लेकिन हजूर यह तो फ़रमावें कि ऐसे ख़तरनाक मौक़े पर जब अमारी के
बान से कई गोलियां और तीर पार हो चुके है इतने बड़े हाथी पर क्यों सवार
ख़ुदा के वास्ते जल्दी उतरिये। और घोड़े पर सवार हो लीजिये। इस दुष्ट के
से यदि दारा हाथी पर से उतरने में अपनी हानि समझता, यदि वह सोचत
हाथी ही की कृपा से आज वह कैसे २ काम कर सका है और सैनिकों को
दिखाई देते रहने से कितना साहस हुआ है तो वही अपने पिता के सुविस्तृत
का अधिकारी होता। परन्तु ख़लीलउल्लहख़ां की बातों का विश्वास किया जि
उस की दुर्दशा हुई।

औरंगज़ेब वहां से सीधा आगरे गया और अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद को भेज वहां के किले पर अपना अधिकार कर बादशाह शाहजहां को क़ैद कर दिया। औरंगज़ेब ने विचार किया मैंने मुराद-बख़्श को बादशाहत का लोभ दे कर अपने शामिल किया था। बादशाह को तो क़ैद कर लिया है परन्तु यह एक कण्टक बाक़ी है इस की भी सफ़ाई होनी चाहिये। इस बात को मन में रखा। और दारा के पीछे चला, मार्ग मे जाते मथुरा पहुंच वहां मुराद को खूब शराब पिला कर ग़ाफ़िल कर दिया और उस दशा में उस को भी क़ैद कर लिया। अब इधर तो एक दारा ही कण्टकी था उसे उखेड़ने के लिये वह दिल्ली आया इतने में दारा दिल्ली छोड़ कर लाहोर की तर्फ़ चल पड़ा। औरंग उस के पीछे गया। मार्ग में जाते सं० १७१५ की श्रावण सुदि १ (ई० सन् १६५८ ता० २१ जुलाई) को अज्ञाबाद मे तख़्त पर बैठा। और बादशाह संवत् १७१५ के भाद्रपद वदि ११ (ई० सन् १६५८ ता० १४ अगस्त) को औरंगज़ेब ने आम्बेर के राजा जयसिंहजी की मारफ़त महाराजा जसवन्तसिंहजी को अपने पास बुलाया। लिख आये है कि इस समझोता में राव अमरसिंहजी के पुत्र रायसिंहजी भी शामिल थे। महाराजा के पास बादशाह ने पत्र भेजा उस मे लिखा कि तुम स्वामिभक्त हो, मैं भी ऐसे स्वामिभक्तो को चाहता हूं। हमारे हजूर मे हाज़िर होवो। और खर्च के लिये सांभर के ख़ज़ाने से पांच लाख रुपये और पचास हज़ार की हुंडियां भेजी गई। महाराजा ने भी समय की गति देख कर तदनुसार व्यवहार किया। जोधपुर से चल कर पञ्जाब में जहां बादशाह का मुक़ाम था, वहां पहुँचे। बादशाह ने उस समय इन का भली भांति सत्कार किया। ख़ासा खिलअत, जरदोजी झूल और चांदी के साजवाला एक हाथी और हथनी व एक क़ीमती जडाऊ तलवार दी। तत्पश्चात् सतलज नदी पर पहुंचा तब उस ने महाराजा को फिर खासा खिलअत, जडाऊ जमधर, मोतियों का एक गुच्छा, और एक परगना, जिस की आमदनी ढाई लाख सालियाना थी, दिया। और महाराजा से कहा कि अब तुम दिल्ली जावो और वहां की निगरानी करते रहो। महाराजा बादशाह की आज्ञा पाकर वहां से पीछे लौटे और सं० १७१५ की आश्विन सुदि १ को दिल्ली पहुँचे।

औरंगज़ेब दारा के पीछे चला। दारा ने लाहोर में किलेबन्दी करने की चेष्टा की थी परन्तु वह निष्फल हुई। अब वह पञ्जाब से मुलतान की तर्फ़ गया। उस समय उस के हितैषियों ने उस को काबुल जाने की सलाह दी थी। क्योंकि काबुल का अमीर महाबतख़ां, जिस के पास दस हज़ार से अधिक फ़ौज थी, दारा की सहायता करने को तैयार था। क्योंकि औरंगज़ेब के साथ उस के बनती नही

थी। परंतु दुर्भाग्यवश दारा ने काबुल जाना स्वीकार नहीं किया। और कच्छ मे होता हुआ अहमदाबाद आया। उस समय अहमदखां, जो औरंगज़ेब का श्वसुर था, अहमदाबाद का सूबहदार था। उस ने दारा के साथ बहुत अच्छा बरताव किया। औरगज़ेब को ख़बर मिली कि दारा अहमदाबाद मे है। उस ने एक बार तो दारा के पीछे अहमदाबाद जाने का विचार किया। परन्तु इतने में उसे यह ख़बर मिल गई कि शुजा दिल्ली पर आता है। सुनते ही उस ने दारा के पीछे जाने का विचार छोड़ दिया और शुजा को रोकने के लिये तत्क्षण संवत् १७१५ के मार्गशीर्ष में मुलतान से रवाना हो दिल्ली आया। महाराजा दिल्ली से औरंगजेब के स्वागत के लिये साम्हने गये। उस समय फिर उस ने महाराजा को खासा खिलअत और एक सदरी दी। और नौ रोज़ के उत्सव पर मार्ग सुदि ६ को एक जड़ाऊ तुर्रा दिया।

शाह शुजा ने खजुआ नामक एक छोटे गांव के निकट तालाब के किनारे उत्तम स्थान देख कर अपना डेरा डाल दिया और औरग-ज़ेब की राह देखने लगा। क्योंकि उस को सूचना मिल गई थी कि औरगज़ेब ने अपने पुत्र सुल्तान मोहम्मद को बड़ी सेना दे कर मुक़ाबला के लिये रवाना कर दिया है। ज्योंही सुलतान मोहम्मद सेना लिये वहां आया, त्योंही स्वय औरगज़ेब भी वहां पहुंच गया। शुजा इलाहाबाद के समीप कड़ा नामक नगर में, जो इलाहाबाद से ४ कोस के अन्तर पर है, था। संवत् १७१५ के माघ वदि ६ (ई० सन् १६५८ ता० ४ जनवरी) को खजवे के पास लड़ाई के योग्य एक विशाल मैदान था उस को बीच में रख कर युद्ध की तैयारी हुई। उस समय महाराजा जसवन्तसिहजी औरगज़ेब की दक्षिण पार्श्व की सेना के संचालक थे।

इसी अर्से में शाह शुजा ने महाराजा के पास पत्र भेजा उस मे लिखा कि आप जैसे स्वामिभक्त राठोड़ वीरों के विद्यमान होते हुए औरगज़ेब ने अपने वृद्ध पिता (शाहजहां) को बंदी कर दिया है और भाई भतीजों को भी मारने के विचार मे है। ऐसे महापापी कुटिल हत्यारे की सहायता न करके आप मेरी सहायता करे और वृद्ध बादशाह को संकट से बचावें। महाराजा ने शुजा की प्रार्थना पर ध्यान दिया और कहलाया कि आज रात्रि के पिछले प्रहर मे मैं शाहजादह मोहम्मद की सेना पर पीछे से आक्रमण करूँगा। आप भी उसी समय साम्हने से आ कर टूट पड़ें। रात्रि के छापे से औरंगज़ेब का बल एक साथ क्षीण हो जायगा और अपना मनोरथ सफल हो सकेगा। महाराजा ने वैसा ही किया। उसी रात्रि में राठोड़ महेश-

दास, रामसिंह, हरराम और चौहान बलदेव आदि वीरों के साथ मोहम्मद सुलतान की सेना पर पीछे से हमला किया। रात्रि समय था और यकायक आक्रमण हुआ जिस से बादशाही सेना कर इधर उधर भागने लगी। कहा जाता है कि आधो के क़रीब . . विखर गई थी। परन्तु शुजा उस नियत समय पर नहीं पहुंचा। यदि वह वहां उस समय पहुँच जाता तो विजय हाथ की धरी थी औ वह बादशाह हो जाता। परन्तु बादशाही का तख़ औरगजेब भाग्य में बदा था। शुजा वहां कैसे पहुंच जाता? महाराजा ने से.. को तितर-बितर हुआ देख बादशाही ख़ज़ाना और सामान लूटा। और शुजा की इन्तज़ार में कुछ दूर हट कर ठहर गये। जब शुजा आता न देखा तो प्रातःकाल होते ही महाराजा ने मारवाड की ओर प्रयाण कर दिया। शुजा देरी से पहुँचा। इतने में महाराजा तो चल दिये थे। परन्तु इस ने उस घबराई हुई सेना पर आक्रमण किया जिस से औरंगज़ेब की सेना और व्याकुल हो गई थी। उसी अवसर पर औरंगज़ेब के हाथी के महावत के एक तीर लगा जिस से वह मर गया। अब औरंगजेब को उस संकट मे हाथी को सम्हालना कठिन हो गया था और वह हाथी से उतर घोड़े पर सवार होना चाहता था उस समय मीरजुमला ने उसे रोका और कहा कि—"हज़रत! क्या ग़ज़ब करते हैं? क्या भाग कर दक्षिण जायगे?" उस के कहने पर औरगज़ेब हाथी पर बैठा रहा। यदि वह हाथी से उतर जाता तो समूगढ़ में जो दशा दारा की खलीलउल्लहखां के कहने से हुई थी वही इस की होती। परन्तु मीरजुमला औरंग का हितैषी था, खलील-उल्लहखां के जैसा द्रोही नही था। उस हितैषी का कहना मानने से कैसा परिणाम अच्छा हुआ कि पराजय विजय में परिणत हुई। दैव की बड़ी विचित्र लीला है। उसी स्वामि द्रोही खलीलउल्लहखां ने उस घोर संग्राम में शुजा को हाथी से उतरने की सलाह दी और उस ने उस का कहना मान कर हाथी से उतर घोड़े की सवारी की। सैनिको ने शुजा को हाथी पर नही देखा तब उन को यह भ्रम हुआ कि शुजा या तो मारा गया है अथवा पकडा गया है। इस भ्रम के होते ही सेना विचलित हो गई। कहा है 'हत निर्नायकं सैन्यम्।' फिर क्या था? शुजा को रणक्षेत्र छोड़ कर भागना पड़ा। रणक्षेत्र औरंग के हाथ में रहा।

महाराजा जसवन्तसिंहजी अपने सैन्य दल के साथ आगरे के पास पहुँचे। उस समय आगरे में बडी खलबली मच गई थी। क्योंकि वहां ऐसी जनश्रुति फैल गई थी कि मीरजुमला के साथ औरगज़ेब पकड़ा गया है और शुजा आगरे को आ रहा है। उस समय आगरे में सूबहदार औरंगज़ेब का मामा शाइस्ताख़ां था। वह ऐसा घबराया

कि भय के मारे उस ने विष पान कर आत्महत्या करने का निश्चय कर हाथ में विष का प्याला लिया। उसे उस के हाथ से यदि बादशाही अन्तःपुर की बेग में न छीन लेती तो वह वहीं ढेर हो जाता। परन्तु उस की आयु अवशिष्ट थी जिस से बच गया।

बर्नियर ने लिखा है कि "यदि राजा जसवन्तसिंह साहस कर के इस बीच में लोगों को धमकाते और भविष्य के लिये कुछ अच्छा भरोसा देते तो अवश्य ही शाहजहां को क़ैद से छुड़ा सकते। परन्तु यह बात वह अच्छी तरह जानते थे कि समय कैसा है, स्थिति कैसी है और ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिये? अतः आगरे में अधिक ठहरना उचित न समझ कर अपने पूर्व विचारानुसार अपने राज्य को चले गये।" और संवत् १७१५ के माघ वदि १० को जोधपुर पहुँचे।

औरंगजेब शुजा से निपट कर फ़तहपुर आया। अब महाराजा को अपना परम शत्रु समझ कर बदला लेने के लिये संवत् १७१५ माघ[१] सुदि ४ (ई० सन् १६५६ ता० १६ जनवरी) को ६००० सवारों की सेना दे कर अमीनखां मीरबख़्शी को जोधपुर पर भेजा। और जोधपुर का राज्य राव अमरसिंहजी के पुत्र राव रायसिंहजी के नाम लिख कर राजा और फ़तहजंग की पदवी दी। और उन का मन्सब चार हज़ारी जात व चार हज़ार सवारों का कर एक लाख रुपये ख़र्च के लिये नक़द दे उन को अमीनखां के साथ जोधपुर भेजा। और रवाना होते समय खिलअत भी दिया गया। अमीनखां और राव रायसिंहजी ने कृष्णगढ़ के राज्य के गांव बानरसींदरी में आ कर डेरा डाल दिया। औरंगज़ेब को महाराजा की ओर का बड़ा भय था इस लिये वह ख़ुद अजमेर आने का इरादा कर वहां से रवाना हुआ। और बानरसींदरी गांव में बादशाही सेना का डेरा था उस के शामिल हो गया। महाराजा को ख़बर लगी कि जोधपुर राव रायसिंहजी को लिख दिया गया है और उस की तामील कराने के लिये अमीनखां बड़ी सेना ले कर आता है। महाराजा ने आसोप ठाकुर कूंपावा नाहरखां राजसिंहोत और मूहणोत नैणसी को दस हज़ार सेना के

१—किसी आधुनिक लेखक ने वि० संवत् १७१६ माघ सुदि ४ लिखा है और उसी ने उस के आगे की दारा के पराजय की घटना का समय संवत् १७१६ चैत्र सुदि २ लिखा है जिस से वि० संवत् १७१५ लिखना चाहिये था। वि० संवत् १७१६ की माघ सुदि ४ लिखना अशुद्ध है।

साथ बादशाही सेना से मुक़ाबला करने के लिये भेजा। उस ने मेड़ता नगर में जा कर मुक़ाम कर दिया, जो अजमेर से २० कोस के अन्तर पर है। इस के पश्चात् महाराजा भी अपनी सेना ले कर सग्राम करने के निमित्त सिवाना से जोधपुर आये और जोधपुर से रवाना हुए। आप का मुक़ाम गांव बीलाड़े में हुआ। इसी अर्से में दाराशिकोह गुजरात में था। उस ने अहमदाबाद में से सूबहदार को निकाल दिया था। गुजरात से दाराशिकोह ने सहायता के लिये महाराजा के नाम पत्र लिख भेजा कि यह समय है हमारी सहायता करें। महाराजा ने सहायता देना स्वीकार भी कर लिया। तत्पश्चात् दाराशिकोह वहां से बड़ी सेना ले अजमेर को रवाना हुआ। वह अजमेर पहुंचा इस अर्से में महाराजा क़रीब २५ हज़ार सेना के साथ बीलाड़े पहुँचे। महाराजा का डेरा बीलाड़ा में था। उस समय दाराशिकोह ने अपने पुत्र सिपहशिकोह को ५००० सवारों के साथ महाराजा के पास भेजा। चैत्र वदि ५ को वह महाराजा के पास बीलाड़ा मुकाम पर आया। उस ने दाराशिकोह की ओर से बड़ी नम्रता के साथ प्रार्थना की। महाराजा ने उसे दो दिन अपने पास रखा और उसे रवाना करते समय कहा कि आप तो अपने पिता के पास अजमेर जाइये, हम आते हैं। महाराजा के कहने से वह अजमेर चला गया। महाराजा ने बीलाड़े से आगे बढ़ जैतारण परगने के गांव रावडियास में मुकाम किया। औरंगजेब को खबर लगी कि महाराजा जसवन्तसिंहजी दाराशिकोह की सहायतार्थ जाते हैं, वह बहुत घबराया और उस कुटिल ने भेद-नीति का अवलम्बन कर अपना कार्य साधने का उपाय किया। क्योंकि उज्जैन के संग्राम में वह राठोड़ों के हाथ देख चुका था। उस ने तुरन्त आम्बेर के राजा जयसिंहजी को बुला कर कहा कि यह बड़ा विकट समय है। इस समय किसी उपाय द्वारा महाराजा जसवन्तसिंहजी को दारा से पृथक् कर देना चाहिये। ऐसा न हो कि ये दोनों शामिल हो जायँ। तब जयसिंहजी ने उस से कहा कि आप को किसी के कहने से सदेह हो गया था कि महाराजा शुजा से मिल गये हैं और उन को इस बात की सूचना मिल गई तब वे चले गये। वास्तव में वे स्वामिभक्त हैं। आप उन के नाम पत्र लिख कर दीजिये मैं सब बात बना दूंगा। बादशाह ने महाराजा के नाम फ़रमान लिखा और उस के साथ यह लिखा कि मैं किसी के कहने से तुम से नाराज़ हो गया था परन्तु तुम उस बात को याद मत करो। अपनी स्वामिभक्ति की ओर ध्यान दो। मैं तुम्हारी स्वामिभक्ति देख कर बहुत ख़ुश हूँ। अभी तुम कूच करके जोधपुर चले जाओ। मैं तुम को बहुत लाभ पहुँचाऊँगा। उस फ़रमान को अपने पत्र के साथ जयसिंहजी ने अपने प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ महाराजा के पास भेजा। महाराजा ने उस पत्र और

फ़रमान को पढ कर विचार किया कि ये चार भाई थे। उन में से इस ने दो भाइयों (मुराद और शुजा) को तो मार लिया है और दारा भागा भागा फिरता है। तब इस के हाथ आता प्रतीत होता है। और इस ने चाहे किसी तरह से लिखा हो परन्तु बहुत नम्रता से लिखता है और जयसिंहजी भी मध्यस्थ है। भविष्य में राज्य इसी के हाथ में आना है। इसलिये इस समय दारा की सहायता में जाना नीति और विचार से बाहिर है। यों सोच कर महाराजा वहां से पीछे लौट आये और बालसमन्द में मुक़ाम किया।

संवत् १७१६ की चैत्र सुदी २ को अजमेर में दारा के और औरंगज़ेब के संग्राम हुआ। लिखते हैं कि उस समय दोनों ओर एक एक लाख सेना थी। महा घमसान युद्ध हुआ। तेरह हज़ार मनुष्य मारे गये। दारा इस युद्ध में पराजित हुआ और उसे प्राण बचाने के लिये भागना पडा। औरंगज़ेब की विजय हुई। दारा यहां से भाग कर सूरत की तर्फ़ गया। औरंगज़ेब ने उस का पीछा करने के लिये नवाब दलेलखां और जैसिंहजी को सेना दे कर भेजा। दारा सूरत मे था। सूरत वालों ने उसे इन के अधीन कर दिया। इन्होंने उसे मार डाला।

शेख़ अजमतखां ने गुजरात में उपद्रव मचा दिया था। उसे शान्त करने के लिये बादशाह औरंगज़ेब ने महाराजा को गुजरात की सूबहदारी दी और लिखा कि गुजरात में जा कर इस उपद्रव का दमन करो।

[illegible] महाराजा अजीतसिंहजी—ये महाराजा जसवंतसिंहजी के पुत्र थे। इन की उत्पत्ति के विषय में ऐसा लिखा मिलता है कि जब महाराजा जसवन्तसिंहजी काबुल में थे तब एक योगी जिस का नाम ऋद्धपुरी था और जो हिंगलाज देवी का भक्त था महाराजा के पास आया और यह कहलवाया कि मै देवी की आज्ञा से महाराजा का पुत्र होऊंगा सो मुझ को जीवित समाधि दिला देवें। परन्तु महाराजा ने इस पर कुछ ध्यान नही दिया तब उस योगी ने क्रुद्ध हो कर अपनी पादुका, पुस्तक तथा भस्म का गोला करणोत राठौड़ दुर्गदास को सौंप कर यह कहा कि—"जब महाराज मेरा मुख देखना नहीं चाहते है तो मैं भी महाराज का मुख नहीं देखूंगा"। यह कह कर उस योगी ने जीवित समाधि ले ली। वही योगी अजीतसिंहजी के नाम से प्रकट हुआ और जब वे रानी के गर्भ में थे तब इन के पिता का स्वर्गवास हो गया। कहा जाता है कि पेशावर शहर में के बुंदेला के बाग में जसवन्तसिंहजी का देह पात हुआ था जहां दाह-स्थान पर छतरी बनी हुई है।

उक्त महाराज जसवन्तसिंहजी की विद्यमानता में औरंगजेब जैसा प्रबल बादशाह न तो मदिर ही गिरा सका और न जजिया कर ही लगा सका जिस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है:—

दोहा

जिते जसो यह जीवियो, थिर रहिया सुरथाण।
आंगल ही अवरंग सूं, पडियो नह पाखाण॥

उस ईर्ष्या से औरग ने महाराज के स्वर्गवास करने पर उन के बन्धु वर्ग को सब प्रकार से पीडित किया। महाराज के स्वर्गवास करने पर सब सरदार और मुत्सद्दियों ने मिल कर यह विचार द्वारा निश्चय किया कि अब यहां रहना उचित नही। जैसे तैसे सिन्धु नदी (अटक) को पार कर मारवाड चला चलना चाहिये और विरोध न दिखा कर मैत्री भाव से काम लेना चाहिये। तदनुसार उन्होंने बादशाह के पुरुषों को बुला कर विनय पूर्वक यह कहा कि अब हम मारवाड को जाते है सो जितनी वस्तु बादशाह की हमारे पास है आप सँभाल लें। इस से प्रसन्न हो कर उन्होंने इन का कथन स्वीकार कर लिया। राठौडों ने जो वस्तु साथ लेने योग्य थी उन का खुरजियां आदि में भर लीं और देने योग्य थीं व दे दी और जो साथ चलने योग्य न थीं उन को पृथ्वी में गाड़ दी।

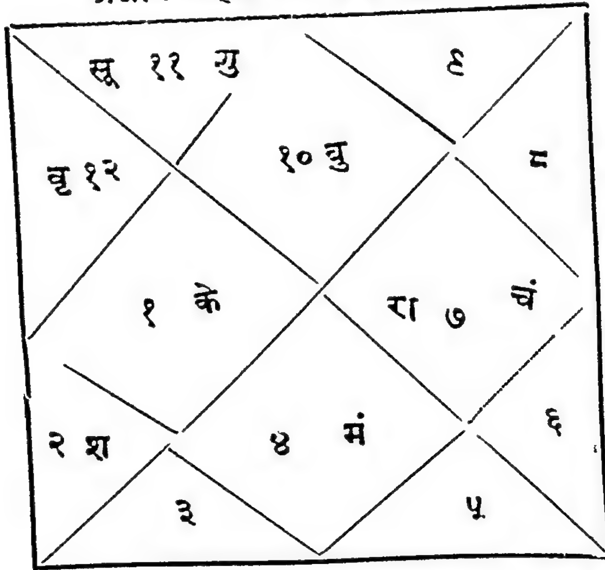
ऐसा प्रबन्ध कर राठौडों ने देश में जो सरदार तथा मंत्रि-वर्ग था उन को भी यही लिख भेजा कि इस समय बादशाह को कुपित करना उचित नही। हम लोगों ने प्रीति का व्यवहार दिखा कर काम निकाला है, आप भी वैसा ही करें। यह समय ऐसा ही है। राठौडों ने नदी पार करने के लिये बादशाह के आदमियों से आज्ञा चाहा, किन्तु उन्होंने इनकार किया तब उन्होंने बादशाह के पास अर्जी भेजी। बादशाह ने सवत् १७३५ की माघ वदि १० को फ़रमान भेजा जिस में लिखा था कि सोजन और जेतारण बहाल है और महाराजा के पुत्र होगा तब जोधपुर दिया जायगा। उस के साथ अटक उतरने की आज्ञा और २०००० बीस हज़ार रुपया ख़र्च के लिये आए।

माघ सुदि १० को रोहितासगढ के फ़ौजदार निवाजबेग के पास बादशाह का हुक्म पहुँचा कि तुम महाराज के परिजन को दिल्ली ले आओ। निवाजबेग ने पेशावर के सुबहदार मीरखां से कहा कि इन लोगों के लिये अटक पार होने की आज्ञा दीजिये। परन्तु मीरखां ने टालाटूली की। तब निवाजबेग ने मीरख़ां पर दबाव डालने की संमति दी। राठौड़ों ने वैसा ही किया तब मीरखां ने आज्ञा दी। फिर भी नौका वालों ने इन्कार किया तब राठौड़ों ने बलात्कार पूर्वक नावें

छीन लीं और अटक पार उतर आये। वे सब माघ सुदि १३ को रवाना होकर फाल्गुन सुदि १५ को लाहोर आये और वहीं की हवेली में डेरा किया।

राठौड़ लाहोर में अनुमान ३ मास ठहरे। उन के साथ महाराज की दो रानियां थी और दोनो ही गर्भवती थीं। यहां रानियों के एक ही दिन चैत्र वदि ४ बुधवार को दो पुत्र उत्पन्न हुए। यादववंशी रानी के उदर से अजीतसिंहजी और नरूका वंश की रानी के गर्भ से दलथंभनजी का जन्म हुआ। अजीतसिंहजी के जन्म के समय ग्रहों की स्थिति इस भांति थी—

अजीतसिंहजी की जन्म कुण्डली



महाराज के एक साथ दो पुत्र प्रकट होने से राठोड़ों का परम आनन्द हुआ। वधाई के तीन पत्र जोधपुर, दिल्ली और काबुल लिखे गये। जोधपुर में खबर होने पर बहुत उत्सव हुआ। परन्तु बादशाह दिल्ली मे न होने से राठोड़ों का पत्र अजमेर आया कि महाराजा जसवतसिंहजी के दो पुत्र हुए हैं, सुन कर बड़ा विस्मित हुआ और कहने लगा कि आदमी कुछ और ही चाहता है और ईश्वर कुछ और ही करता है। और होता वही है जो ईश्वर करता है।

औरंगजेब के हुक्म मुवाफ़िक़ अजमेर के सूबहदार ने जोधपुर के अधिकारी वर्ग को पत्र द्वारा सूचना भेजी कि मेड़ता और जोधपुर में बादशाही क़ब्ज़ा होगा। अधिकारी वर्ग ने प्रत्युत्तर लिखा कि दिल्ली में मारवाड़ का वकील रहता है वह इस विषय में बादशाह से अर्ज़ कर लेगा और जैसी आज्ञा होगी वैसा किया जायगा। किन्तु इस बात पर ध्यान रहे कि महाराज की दो रानियाँ सगर्भा हैं सो जब तक उन के प्रसव न हो आप को धैर्य रखना चाहिये। और बादशाह को भी इतना अधीर न होना चाहिये। आप इस बात को भली भाँति समझ लें कि देश हमारे सिर के साथ है। यदि किसी प्रकार की गड़बडी हुई तो उस मे भला नहीं है।

राठौड बादशाह के अभिप्राय को भली भाँति जानते थे कि वह मारवाड़ का राज्य खालसा करना चाहता था और उसे अपने किसी आज्ञाकारी के अधिकार में देना चाहता था। बादशाह के वैसा करने के निम्न कारण थे—(१) प्रथम तो आँबेर तक तो बादशाह का ही

राज्य था, उस से आगे अपने आज्ञाकारी आंवेरनाथ का राज्य होने से वादशाह को किसी प्रकार का खटका नही था। परन्तु आंवेर के आगे गुजरात जाने में वीच मे मारवाड़ पड़ता था जो राठौड़ों के आधीन होने से और राठौडों के वादशाह के आज्ञाकारी न होने से वह सदा खटकता था। (२) वादशाह प्रति वर्ष मक्का के लिये भेट भेजा करता था जिसे राठौड़ लूट लिया करते थे (३) उन दिनों में पाली नगर व्यापार का केन्द्र था जिसे अपने अधीन करना वादशाह नित्य चाहता था। (४) वादशाह मेवाड़ पर हरदम हमला किया करता था जिस में राठौड वाधाकर हुआ करते थे जिस से वादशाह सदा अप्रसन्न रहा करता था (५) मारवाड का राज्य उत्तरभयत में एक प्रवल राज्य था जिस का राजा ज़सवन्तसिंह प्रवल था। उसके पीछे भी कोई वैसा ही प्रवल राजा पैदा न हो जाय जो हर समय वादशाह से मुठभेड़ किया करे। (६) वादशाह अपने इसलाम धर्म के वढ़ाने के लिये जितने प्रयत्न करता था उन में महाराजा जसवन्त-सिंह वाधा करने वाला होने से खटका करता था। (७) वादशाह के मंदिर गिराने का अभिप्राय ज्ञात होने पर उक्त महाराजा ने काबुल में सरे आम दरवार में यह कहा था कि यदि वादशाह मन्दिर गिरवावेगा तो हम सव मस्जिदें गिरा देंगे जिस से भयभीत हो कर वादशाह उन के जीतेजी एक भी मन्दिर न गिरा सका। (८) महा-राजा ने जजिया नामक कर जो केवल हिन्दुओं से ही लिया जाता था और जिस के भय से वहुत से हिन्दू मुसलमान हो गये थे, उठवा दिया।

उपर्युक्त कारणों से वादशाह का अभिप्राय बुरा होने के कारण उस ने महाराज के दोनों वालकों को दिल्ली वुलवा कर मुसलमान वनाने का मन में निश्चय किया। और तदनुसार उस ने फ़रमान लिख भेजा जो राठोड़ों के लाहोर से कूंच कर लेधाणा ग्राम में पहुँचने पर चैत्र सुदि ११ को उनके पास पहुँचा था। उस में लिखा था कि "महाराज के वेटा हुआ हमें ख़ुशी हुई। हम अजमेर से दिल्ली आते हैं तुम भी वालकों को ले कर दिल्ली आओ। इन का नाम करण कर, मन्सव दे कर सरफराज करेंगे।" वादशाह की आज्ञानुसार राठौड रणछोड़दास दुर्गदास आदि महाराज की रानियाँ और पुत्रों के साथ वैशाख सुदि ५ को दिल्ली पहुँचे और हवेली में डेरा किया।

मारवाड के अधिकारी वर्ग को पता लग चुका था कि वादशाह की मनशा अच्छी नहीं है और लाहोर से भी पत्र उन के पास दुर्गदास प्रभृति का पहुँच चुका था जिस में लिखा था कि हम जब तक मार-वाड़ में न आवें तव तक आप लोग वादशाही लेखों के साथ ऊपर से प्रीति का व्यवहार रखें। यदि कोई जोधपुर पर क़ब्ज़ा करने को भी

आवे तब भी क्रोध मत करो और उन को प्रसन्न रखो। बादशाह के मनुष्य जो कुछ करें करने दो। किन्तु गुप्त रीति से युद्ध की सामग्री का सचय करते रहो ऐसा न हो कि बादशाह के मनुष्यों को यह भेद ज्ञात हो जाय। इस बात का पूर्ण ध्यान रखो। तदनुसार देश में के सब राठौड़ों ने मिल कर यही निश्चय किया कि दुर्गदास आदि ने निश्चय करके जो कर्तव्य ठाना है आपन को उसी के अनुसार कार्य करना है। इसलिये उन्होंने गुप्त रीति से सेना संग्रह करना आरभ कर दिया और उस के निर्वाह के लिये सामग्री का भी संचय इधर उधर से किया। इन के उद्योग से थोड़े से थोड़े अर्से में ही बीस हज़ार सवार और पैदल बहुत सी सेना एकत्र हो गई। बादशाह ने जब यह सुना तो उस के मन में यह विचार होने लगा कि अब क्या करना चाहिये ? उस ने सोच विचार शाहजादा अकबर को मुलतान से, शाइस्ताख़ां को आगरे से, हमदअलीखां को गुजरात से, बहादुर-ख़ां और असदख़ां,को उज्जैन से ससैन्य बुलवाया। और दक्षिण से इन्द्रसिंह राठौड को बुलवाया जो राठौड़ अमरसिंह का पौत्र था। जब इधर उधर से सब आ उपस्थित हुए और सेना संग्रह हो गया तब बादशाह स्वयं बड़ी सेना ले कर राठौड़ों का दमन करने के लिये अजमेर आया।

चैत्र वदि ५ को अजमेर आ कर बादशाह ने खानेजमां[१] को दस सहस्र सेना दे कर जोधपुर की ओर रवाना किया और उस के साथ तहवरख़ां को भेजा। उन को यह आज्ञा दी गई कि जोधपुर को बिगाड़ दिया जाय। राठोड़ों को इस की ख़बर लगी तो उन्होंने पूर्व निश्चयानुसार युद्ध करना उचित न समझ संधि कर लेना उचित समझा और वैसा करने के लिये राठौड़ रूपसिंह ऊदावत, नरसिंह-दास ऊदावत और भाटी कुंभा को भेजा। ये सरदार बादशाही सेना से गुढ़ा नामक ग्राम के मुक़ाम पर मिले और कहा कि हम संधि के अभिप्राय से आये हैं। यह सुन कर नवाब खानजमा ने यह कहा कि यदि तुम्हारी यह इच्छा होती तो तुम इतनी सेना सग्रह नही करते और बादशाह को कुपित न करते। तब उन्होंने बड़े विनय और नम्रता के साथ कहा कि जो हुआ सो तो हो गया, अब हम आप के समीप आ गये है और हम आप से निवेदन करते है उस पर आप ध्यान देवें। हम बादशाह की सेवा करने को तैयार हैं अब आप जैसा उचित समझें वैसा करे। तब खानेजमां ने उस से कहा कि जब तुम बादशाह की नौकरी करने को तैयार हो तो तुम्हारे हक़ में सब ठीक होगा। स्वामी की सेवा करने मे ही सेवक का श्रेय है। फिर

१—एक ख्याति में बहादुरख़ां का नाम लिखा मिलता है।

खान ने मेडता में आ कर मुकाम किया। यहाँ मारवाड़ का मंत्रि मण्डल और सरदार गये। उन के साथ नवाब के वार्तालाप हुआ उन के शत्रु भाव को देख कर नवाब ने कुरानशरीफ़ हाथ में ले कर शपथ पूर्वक कहा कि अभी जोधपुर और मेड़ते पर बादशाही अधिकार होने दो। यदि जसवन्तसिंहजी के पुत्र हो जायगा तो वह मारवाड़ का मालिक होगा इस मे तुम कुछ भी सदेह मत करो बादशाह ने आज्ञा दे दी है। इस पर सब सरदार शान्त हो गये और नवाब ने सब को यथोचित सरोपाव दिये।

राठौड़ उमराव अपने कर्तव्य का निश्चय करके पीछे अपने स्थान को आ गये। खानेजहाँ मेड़ता से रवाना हो कर चैत्र वदि १३ को पालासणी[1] पहुँचा जहाँ उसे महाराजा जसवंतसिहजी के पुत्रोत्पत्ति की सूचना मिली। वह यह सुन कर प्रसन्न हुआ और वह पालासणी से रवाना हो कर जोधपुर आया और रातानाडा पर डेरा किया जहाँ से बादशाह ने जसवतसिहजी की हाडी राणी के लिये जो सरोपाव उस के साथ भेजा था वह राणी के पास भेज दिया और कहलाया कि आप धैर्य रखे सब ठीक होगा। चैत्र सुदि ६ को उसने जोधपुर पर शान्ति से सब अधिकार कर लिया। उस ने प्रवन्ध में निम्न परिवर्तन किये (१) सेर अस्सी रुपये भर का नियत किया जो शाहजानी सेर कहलाता है। (२) चुंगी का कर रुपये पीछे दो पैसे लगाया और (३) भांग मदिरा आदि मादक वस्तुओं का निषेध किया।

राठोड़ों ने जब देखा कि मारवाड़ में बादशाही अधिकार हो गया है तो उन्होंने महाराजा जसवंतसिंहजी के अन्तःपुर के लोगों को योग्य स्थानो पर पहुंचा दिया। हाडी रानी और चौहान रानी को बुंदी, भटियानी को जैसलमेर, शेखावत रानी को खंडेले और देवडी रानी को सिरोही पहुंचा दिया।

जब मारवाड़ में शान्ति पूर्वक बादशाही अधिकार हो गया तब खानेजमा ने बादशाह को अर्जी लिखी कि यहां आप के प्रताप से सर्वत्र बादशाही प्रबन्ध हा गया है और उधर महाराजा जसवंतसिह जी के पुत्र हो गया है सो यह जोधपुर का राज्य उसे मिल जाना चाहिये, यदि राज्य उसे दे दिया जायगा तब तो शान्ति बनी रहेगी अन्यथा यहां महाघोर युद्ध होगा और सर्वत्र अशान्ति फैल जायगी क्योंकि राठौड लडने और मरन मारने को तैयार है। राज्य न देने में मुझे हानि होती दीख पड़ती है इस लिये मैंने यह निवेदन किया है। फिर आप विचार कर ले। मैं तो अब सेना सहित आप के चरण में

१—पालासणी गॉव जोधपुर से ६ कोस पूर्व में है।

सोजत व जेतारण के परगने मिलने का कहा. किन्तु उस के साथ उन्होंने यह भी कहा कि महाराज के ये दोनों बालक बादशाह के सुपुर्द करने होंगे। इन का पालन पोषण बादशाह करेंगे। और तुम को ५०० घोड़ों से चाकरी करनी होगी। और तुम को तुम्हारी इच्छानुसार जागीर मिल जायगी। इस प्रकार जागीर का लोभ दिखाने पर भी स्वामिभक्त सरदारों ने जोधपुर का राज्य दिये बिना उन के कथन को स्वीकार नही किया।

इस पर राठोड़ों ने खानेजमा को पत्र लिखा कि आप ने प्रतिज्ञा की थी कि जसवंतसिहजी के पुत्र को मारवाड़ का राज्य मिल जायगा। उसी शर्त पर हम ने बादशाही अधिकार मारवाड पर शान्ति से करा दिया था। यहां उलटा ही मामला जान पडता है। आप की प्रतिज्ञा का पालन नहीं होता दीखता। इस से खानेजमा निरा संतप्त हुआ और उस ने बादशाह की सेवा में एक अर्जी लिखी जिस में उस ने अपनी प्रतिज्ञा करना राठौड़ों का शान्ति पूर्वक बादशाही अमल करवाना, आदि का हवाला देकर इस बात पर जोर दिया कि यदि जोधपुर इन को नहीं दिया गया तो बडी अशान्ति और मार-काट हो जायगी और मैं अजमेर छोड कर दिल्ली आ जाऊंगा। परन्तु बादशाह ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया और उस को इकल्ले को दिल्ली आने की आज्ञा भेजी। तदनुसार वह द्वितीय ज्येष्ठ वदि १२ को दिल्ली आया और बादशाह से बडी खींच के साथ निवेदन किया, परन्तु बादशाह ने उस का कहना नहीं माना।

नवाब खानेजमा के अतिरिक्त बीकानेर के राजा अनोपसिंह और रतलाम के राजा रामसिंह ने भी इस विषय की अर्ज़ियां गंभीर भाव से लिखीं परन्तु बादशाह ने उन पर भी ध्यान नही दिया, क्योंकि उस की अंदरूनी मनशा यह थी कि महाराजा के बालक मेरे अधिकार में आ जावें तो इन को मुसलमान बना दूं। परन्तु राठौड़ों ने न तो बालकों का देना स्वीकृत किया और न सोजत और जेतारण परगनों से संतुष्ट हुए और बादशाह से प्रतिकूल चलने लगे। तब बादशाह ने मुहिम के जमा ख़र्च का हिसाब राठौड़ों से पूछा। और उस बहाने से उन को अत्यन्त तंग किया तब कायस्थ केसरीसिंह[१] ने सरदारों से कहा कि आप इस बात का विचार क्यों करते हैं, आप तो मुझे बतला दीजिये, मैं सब निपट लूंगा। इस से सब सरदार निश्चिन्त हो गये।

बादशाह के मनुष्य ने राठौड़ों से कहा कि जसवंतसिंहजी ५६ वर्ष तक काबुल रहे, समय २ पर ख़र्च भेजा गया जिस का बादशाह

१ केसरीसिंह ने जोधपुर में एक बड़ा झालरा (वापी) करवाया था जो अभी तक सोमती दरवाजे के बाहिर बाएं हाथ को उदेमंदिर के कोट के अन्दर है।

जमा खर्च मांगते हैं। तिस पर राठौड़ों ने कहा कि यह काम दीवान का है और दीवान केसरीसिंह कायस्थ यहां विद्यमान है, इस का प्रत्युत्तर वह देगा। हिसाब के मामले को हम नहीं समझते। तब उस ने केसरीसिंह को बुला कर पूछा। उस ने कहा कि हां यह काम मेरे ज़िम्मे का है। मैं ही उत्तर दूंगा। परन्तु सब काग़ज़ात जोधपुर पड़े हैं। मै उन को यहां लेकर नहीं आया। इस की अर्ज़ बादशाह से की गई तो उस ने केसरीसिंह को कारागार में डाल दिया, और उसे नाना प्रकार से तंग किया तब वह हीरकनी खा कर मर गया और उस के साथ ही हिसाब का फ़ैसला हो गया।

बादशाह यह सुन कर अत्यन्त कुपित हुआ और उस ने क्रोध के विवश हो कर यह आज्ञा दी कि महाराज के बालक इसी समय हमारे समक्ष लाये जाय और अमरसिंह के पौत्र और रायसिंह के पुत्र इन्द्रसिंह को जोधपुर का राज्य दे दिया जाय। परन्तु राठोड़ों ने इन्द्रसिंह को जोधपुर का राज्य देना स्वीकार नहीं किया तब द्वितीय ज्येष्ठ वदि १२ को बादशाह ने जोधपुर इन्द्रसिंहजी को लिख दिया और हाथी, सुनहरी साज के घोड़े, खिलअत, मोती, पहुंचियों की जोडी, मोतियों की माला, धुगधुगी, जड़ाऊ तलवार, ख़ंजर और नौबत इनायत किये। महाराजा का लश्कर दिल्ली की हवेली में था उस के नाम हुक्म पहुंचा कि हवेली ख़ाली कर देवे। तब राठोड़ हवेली छोड़ कर राजा रूपसिंह भारमलोत कृष्णगढ़ वाले की हवेली में चले गये।

महाराजा के बालकों को लाने के लिये सेना भेजने की आज्ञा हो गई। इस का पता लगने पर सब राठौड़ों ने सलाह की। दुर्गदास की यह राय सर्व संमति से स्वीकृत हुई कि अपने यहां अभी जितने तरुण पुरुष हैं वे सब देश को चले जायं और वृद्ध पुरुष यहां रहें और साथ ही महाराजा के बालकों को भी देश में पहुंचा दिया जाय। स्वामी की रक्षा करना अपना सर्व प्रथम कर्तव्य है। इसी अवसर पर दैवयोग से बलूंदा ग्राम के ठाकुर मेड़तिया चांदावत राठौड़ मोहकमसिंह की पत्नी गंगाजी की यात्रा करके पीछे लौटती दिल्ली आ गई। उस दिन उस का मुक़ाम वहीं था। मोहकमसिंह को जो राठौड़ों के साथ दिल्ली में ही था इस बात की ख़बर लगी कि ठकुरानी का मुक़ाम आज यहां है, वह तुरन्त वहां गया और ठकुरानी से कहा कि महाराजा के बालक हम तुम्हारे पास भेजते हैं सो तुम उन को अपने साथ मारवाड़ ले जाओ। ठकुरानी ने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य की। मोहकमसिंह ने आ कर जोधा रणछोड़दास और दुर्गदास आदि से सब बात कही। राठौड़ बालकों को मारवाड़ भेजना चाहते ही थे। यह अति उत्तम अवसर मिल गया जिस से सब सहमत हो गये

और अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया और इस के प्रबन्ध का भार भी मोहकमसिंह पर छोड दिया। सब की समति से इस कार्य का खीची मुकुन्ददास के सुपुर्द किया जिस को बालकों के साथ मारवाड तक जाना और बालको के बड़े होने तक उन की निगरानी करना आदि की भोलामन दी गई। मुकुन्ददास ने स्वामिभक्ति के वशवर्ती होकर यह सब सहर्ष स्वीकार कर लिया। ठकुरानी के साथ कुछ तो सुभट थे और कुछ और भेज दिये गये।

खीची मुकुन्ददास को पूगी का बाजा बजाने का शौक़ था, वह इस अवसर पर उपयोगी हुआ। उस ने सपेरे का भेष बनाया दोनो बालकों को दो टाकरो में रखे। उन टोकरों को कावड़ में रख कावड़ कन्धे पर ले पूगी का बाजा बजाता हुआ खीची निकला और अलक्षित रूप से ठकुरानी के पास पहुंचा और बालक ठकुरानी को सौप दिये गये। ठकुरानी उन्हें ले कर रवाना हुई। खीची मुकुन्ददास भी उन के साथ हो गया, कुछ दिनों मे वे मारवाड़ में आये। मार्ग में एक बालक दलथंभन का स्वर्गवास हो गया। एक बालक महाराज अजीतसिंहजी रहे। उन का पालन पोषण बलूंदा ठकुरानी ने स्वामि भक्ति के वश परम स्नेह से किया। बलूंदा मे निवास करते ७-८ मास हो गये और लोकों में महाराज के निवास का प्रवाद फैलने लगा तब बलूंदा ठाकुर के कहने पर मुकुन्ददास ने बालक को ले जाकर सीरोही में महाराजा की देवडी रानी के सुपुर्द किया। और आप भी वहां गुप्त रीति से वेष बदल कर रहने लगा।

कुछ समय के पश्चात् यह वार्ता सीरोही के राव वैरीसाल के कानों पहुंची। उस ने सोचा कि बादशाह राठौड़ों से नाराज़ है। इस बलाला के पीछे कहीं मुझ पर कोई आपत्ति न आ पड़े तदनुसार उस ने देवड़ी रानी को अखेराज की पुत्री थी यह कहलवाया कि यदि जोधपुर के महाराजा जसवतसिंहजी का बालक आपके पास हो तो उस को निकलवा दो। देवडी रानी ने राव से कहा कि यह असत्य वार्ता आप को किस ने कही? वह मेरे यहां नही है। राव को तो उस ने इस प्रकार निरुत्तर कर दिया परन्तु उस बालक को अपने पास रखना उचित न जान कर उसे अपनी विश्वासपात्र एक ब्राह्मणी को सौपने का अपना विचार उस से प्रकट किया। उस ब्राह्मणी ने अपने पति से परामर्श कर उत्तर देने का कहा। उस का पति जयदेव नाम का पुष्करणा ब्राह्मण जेसलमेर का निवासी था। उस ने विकट मामल समझा, किन्तु अपनी स्त्री के समझाने पर कि यदि यह कार्य निर्विघ्न पार हो जाय तो इस मे बड़ा लाभ होने की संभावना है अपनी स्वीकृति दे दी। अपने पति के स्वीकार करने पर ब्राह्मण

बालक महाराजा को अपने घर पर ले आई। जयदेव व्यापार करता था। उस ने अब सीरोही मे रहना उचित नहीं समझा और वह कालिन्द्री गांव में सकुटुम्ब आ बसा। महाराजा उस के घर पर परवरिश पाने लगे और मुकुन्ददास खीची उसी साधु वेष में रह कर महाराज के निरीक्षण के कार्य मे तत्पर रहने लगा।

दिल्ली मे बैठे हुए राठौडों ने विचार किया कि अब क्या करना चाहिये क्योंकि बादशाह की सेना अपने पर अवश्य आवेगी। इतने मे दिल्ली का कोतवाल राठौडो के निवास स्थान पर पहुँचा और उस ने उन से कहा कि तुम लोगो के लिये बादशाह का हुक्म है कि तुम लोग हवेली छोड़ कर नूरगढ़ में जाओ। राठौडों ने उन को स्पष्ट कह दिया कि हम इस स्थान को छोड कर नूरगढ़ मे नहीं जावेंगे। बिचारा कोतवाल कर क्या सकता था? उस ने जाकर बादशाह से निवेदन कर दिया।

कोतवाल के चले जाने पर राठौडों ने सलाह की कि इस समय यहां सब का रहना उचित नहीं। यदि सब रहे तो सब के सब मारे जावेंगे। इस लिये यहां से सुभटों को निकाल देना चाहिये जो देश की रक्षा कर सकेंगे। तदनुसार बहुत सों को रवाना कर दिया, उस समय जोधा रणछोडदास ने दुर्गदास से भी देश जाने का कहा किन्तु उस ने प्रथम तो अस्वीकार ही किया। अत्यन्त आग्रह करने पर और देश की रक्षा का भार उस के भुजों पर होने का कहने पर वह मान गया और रात्रि को प्रयाण भी कर दिया। परन्तु प्रातःकाल होते ही वह पीछा आ उपस्थित हुआ। और उस ने रणछोड़दास से कहा कि यदि ईश्वर को मारवाड़ की रक्षा मेरे हाथ से कराना मंजूर है तो मेरी इस युद्ध मे मृत्यु नहीं होवेगी[1] और यवनों का भली भांति संहार करूंगा। यह कह कर वीरवर राठौड दुर्गदास ने कवच उतार दिया और जीवन पर्यन्त धारण नहीं करूंगा का प्रण किया।

राठौड युद्ध की तैयारी कर अपने स्थान में बैठे हैं। दोनों रानियां इन के साथ हैं। बादशाह ने हलकारों के दरोगा को इन के पास भेज कर कहलाया कि बालकों को बादशाह के पास भेज दो। तुम्हें तुम्हारा राज्य मिल जायगा। बादशाह का ऐसा आज्ञा पत्र भाटी रघुनाथसिंह को दिया तो उस ने वह फर्मान फैंक कर कहा कि इतने दिन तो बादशाह की आज्ञा हमारे सिर पर थी और अब जूती के तले है। ठीक है, जिस ने मरण का भय त्याग दिया उसे डर किस का? यह सुन कर दारोगा ने कहा कि तुम्हारी मौत निकट आ गई है,

---

१ कहा जाता है कि यह वार्ता देवी ने दुर्गदास को स्वप्न में कह दी थी।

वह तुम को इस तरह प्रेरणा करती है। तुमको बादशाह की आज्ञा माननी चाहिये। खैर, तुम न मानते हो तो मैं जा कर क्या करूं? उस समय दुर्गदास ने तलवार हाथ में ले कर यह कहा कि तुम राज्य देने वाले कौन होते हो? यह हमारी तलवार राज्य और अपना स्थान लेगी। हमारी सहायक यह तलवार है और उस का सहायक वह जगदाधार परमेश्वर है। यह उत्तर सुन कर दारोग़ा ने बादशाह से राठौड़ों की उद्धतता का वृत्तान्त जा कहा। उसे सुन कर बादशाह अत्यन्त कुपित हुआ और फ़ौलादख़ां को २० हज़ार सेना दे कर राठौड़ों पर भेज दिया।

संवत् १७३६ श्रावण सुदि ३ के दिन उस ने आ कर राठौडों को घेर लिया। राठौड रात्रि के चतुर्थ प्रहर मे उठ खड़े हुए और शौचादि से निवृत्त हो स्नान ध्यान नित्य कृत्य कर पीले (केसरिया) कपडे रणोन्मुख हो गये, तब उन्होंने विचार किया कि महाराज की दो रानियां यहा हैं। ऐसा न हो कि ये अपने मरने पर शत्रुओं के हाथ में चली जाय इस लिये इन को प्रथम ही मार देनी चाहिये। रानियों को इस बात की ख़बर लगी तब उन्होंने रणछोडदास और दुर्गदास आदि से कहा कि तुम ऐसा विचार क्यों करते हो? हम ने भी राजपूत कुल मे जन्म लिया है, बड़े घर में प्रकट हुई है और बड़े घर मे ही आई है, हम भीरु और कातर नही है। हम आप के साथ रणाङ्गण में चल कर युद्ध करके आप की सहायिका होवेंगी। ऐसा कह पुरुष का वेष धारण कर युद्धार्थ तैयार हो गई। उस समय उन के साथ में दो महावीर पुरुष नियत कर दिये गये। एक तो पांचला गांव का ठाकुर जोधा राठौड चन्द्रभाण प्रयागदास का पुत्र और दूसरा पंचोली तिलोकचन्द का पुत्र पंचायण। और इन को कह दिया गया कि यदि सकट का समय देखो तो इन्हे धारा स्नान करवा कर जमना में वहा दो।

राठौडों ने सलाह की कि बादशाही सेना २० सहस्र है और अपने केवल ३०० मनुष्य हैं। इस समय ऐसा यत्न करना चाहिये कि शत्रु सब मारे जायँ। तब राठौड़ रूपसिंह और दुर्गदास ने कहा कि यदि आप लोगों की अनुमति हो तो शत्रुओं को धोखा दिया जाय कि हम सधि के मिस से उन के पास जावें और उन से संधि की वार्ता करें जिस से वे कुछ शिथिल रहेंगे फिर हम सूचना करें उसी अवसर में आप लोग घोड़ों को उठा कर तोपों पर जा पड़ें और गोलमदाजों को मार दें जिस से तोपों की मार तो बन्द हो जायगी फिर तलवारों और भालों से काम लें। राठौड़ों ने वैसा ही किया। १०० सवार एक दम अवसर देख कर तोपों पर जा पड़े, गोलमदाजों को मार दिया

और बारूद को जला दिया। इस घनघोर महाउपद्रव में अपना पराया कोई न दीख पड़ा। परस्पर अपने ही मनुष्यों को शत्रु समझ मारने लगे जिस से बहुत सी शत्रु सेना मारी गई। और राठौड़ों ने भी शत्रु संहार करने में कमी न रखी। यह युद्ध संध्या समय तक बराबर प्रवृत्त रहा जिस में असंख्य यवन मारे गये। इस महाघोर संग्राम में महाराज की रानियों ने अच्छी तलवार बजाई। अन्त में प्रहार जर्जरित होने पर सिर काट कर जमना के जल में बहा दी गईं। इस संग्राम में जोधा रणछोड़दास और रघुनाथसिंह भाटी आदि नामी सरदार मारे गये। दुर्गदास भी क्षतविग्रह हो कर रणक्षेत्र में गिर गया था परन्तु सावधान हो कर फिर उठ खड़ा हुआ और घायल योधों को ले कर मारवाड़ की ओर चल पड़ा।

यवनों ने दुर्गादास का पीछा किया परन्तु उस वीर ने उन को उस दशा में भी मार हटाया। इस समय केवल ईश्वर ही उस का सहायक था, किंवा उस की स्वामिभक्ति ने उसे सहायता दी थी। इस युद्ध में बादशाही ५०० सुभट मारे गये और ८०० घायल हुए। राठौड़ों के ३०० राजपूतों में से केवल ४० अवशिष्ट रहे परन्तु घाव लगने से एक भी नहीं बचा।

बादशाह के पास इस वृत्तान्त की सूचना गई कि बहुत से राठौड़ मारे गये और कुछ निकल गये हैं। तब बादशाह ने राजपुत्रों की तलाश करने के लिये दिल्ली का घर घर ढूंढने की आज्ञा की और घर घर ढूंढा गया। शहर के कोतवाल ने बादशाह के संतोष के लिये बादशाह के हजूर में एक लड़के को ले जाकर पेश किया और कहा कि खुदावंद! यह राजा का लड़का मिल गया है। बादशाह ने उसे महाराजा का पुत्र समझ कर बड़ी सावधानी से उसे रखने और उस का पालन पोषण करने का प्रबन्ध किया। और उस का नाम महमदी राजा रखा। परन्तु वह बाल्यावस्था में ही मर गया।

दिल्ली का यह वृत्तान्त जोधपुर में श्रावण सुदि ८ को पहुंचा। उसे सुनते ही राठौड़ों ने सिर उठाया और बादशाही लोगों पर चारों ओर हमला कर दिया जिस से उन को प्राण बचाना कठिन हो गया। कायमखानी दीनदारखां भाग कर नागोर गया। चांपावत वीठलदास का पुत्र सोनग और भाटी रामदास कुंभावत ये दोनों सेना सहित उठ खड़े हुए और इन्होंने ताहिरबेग और काजी रहीमखां को जा घेरा। राठौड़ों का उग्र वेग देख कर दोनों ने अपने पास जो माल असबाब था राठौड़ों को दे दिया और अपने प्राण बचाये। इन दोनों ने पहले जोधपुर नगर में रह कर कोई ज़ोर जुल्म नहीं किया था

जिस से राठौड़ों ने इन के प्राण हरण न करके ऊदावत भीम के पुत्र सूरजमाल को साथ मे दे कर इन को सकुशल अजमेर पहुंचा दिया। और जोधपुर मे राठोडो ने अपना अधिकार कर लिया। और यवनों को मार भगाया। इधर जोधपुर मे सोनग और रामदास थे और उधर मेडत का तर्फ मेड़तिया जयमल्ल का वशज गोकुलदास का पुत्र प्रतापसिंह[1] और चांपावत अजबसिह [2] का पुत्र शिवदानसिंह गये और मेड़ते को घेर कर निसेनियो द्वारा पुर में प्रविष्ट हुए। मेडत मे सादुल्लाखां अधिकारी था, उस ने प्रजा के साथ बहुत अत्याचार किया था। इस ने समस्त प्रान्त का धान्य लेकर घर, मन्दिर, दूकानो आदि मे भर दिया था। प्रजा उस से अत्यन्त दुःखित थी। उस ने प्रतापसिंह और शिवदानसिंह को पुर मे प्रविष्ट हुए देख कर जो कुछ उस के पास द्रव्य था कूए मे डाल दिया। राठोड़ वीरों ने उसे पकडा और द्रव्य के लिये उसे ताड़ना दी तो उस ने वह द्रव्य बतला दिया। राठोड़ो ने वह द्रव्य ले लिया और सादुल्लाखां के प्राण भी ले लिये।

सिवाने की ओर भनेचा राठौड़ वीरम का पुत्र सुजाणसिंह सेना लेकर गया। सिवाने मे ताहिरबेग का पुत्र[3] कुच्छकबेग था। राठोडों ने सिवाना को घेरा और कुच्छकबेग को पकड़ा और उस के दुर्व्यवहार के कारण उसे मार डाला और सिवाने पर अपना अधिकार कर लिया, इस के सिवाय मारवाड में जहां २ बादशाही थाने थे वहीं पर राठोडो ने आक्रमण किया और यवनो को मार भगाया। अब अजमेर पर हमला करने के लिये राठोड मेडता मे जमा हुए और वहां से दो व्यूह बना कर रवाना हुए। एक व्यूह में तो ऊदावत नरसिहदास दयालदासोत व ऊदावत राजसिह बलरामोत आदि और दूसरी अनी में माफ़ी का स्वामी मेड़तिया प्रतापसिह का पुत्र राजसिह था। तहवरखान ने सुना कि राठौड़ एकत्र हो कर अजमेर आते हैं। तुरन्त अपनी सेना सज कर युद्धार्थ तैयार हो गया और राठोड़ो के सामने रवाना हुआ। तहवरखां सेना के साथ पुष्कर पहुंचा इतने मे राठोड भी पुष्कर के निकट जा पहुंचे। दोनो की मुठभेड़ हो गई। प्रथम नरसिहदास ने बडे वेग से यवन सेना पर आक्रमण किया और यवन सेना को दबाया। परन्तु शत्रु सेना ने जो पुनः हल्ला किया जिस में राठोड़ो की कुछ न्यूनता रही और शत्रुओं की बढ़ती रही। मौक़ा देख कर नरसिहदास पीछे हट गया, उस समय यवन आगे बढ़े उन पर

---

१ इसका वंशज अमरसिंह इस समय आलनियावास का ठाकुर है।
२ अजबसिह बीठलदासोत।
३ एक ख्याति में जामाता लिखा है।

आलणियावास ठाकुर राजसिंह चढ़ आया और शत्रुओं को पीछा दबा दिया। यवन भी भीरु नहीं थे, सामने आये और बड़ी बहादुरी से लड़े और वाण वृष्टि से राठोड़ों की सेना को आच्छादित कर दिया। राठौड़ वीर तलवार और भाले लिये शत्रुओं पर चले और ऐसे हाथ दिखाये कि शत्रु सेना घवरा गई। तहवरखान ने देखा कि राठोड़ बढ़े चले आ रहे हैं और अपनी सेना भागने को है वह तुरन्त हाथी पर सवार हो मध्य में आ खड़ा हुआ। राजसिंह उसे आया देख कर उस के सामने चला और उस के समस्त बंधु उस की पीठ पर खड़े हुए। दूदा वंश के तिलक राजसिंह और उस के बन्धुओं ने ऐसी तलवार बजाई कि यवन वन वन के हो गये। कई तो भाग गये, कई घायल हो कर रणाङ्गण मे पड़े तडपने लगे और कई प्यास के मारे पानी पानी करने लगे और कई मस्तक कटे हुए रुधिर से लिप्त शरीर रण-शय्या में दीर्घनिद्रा के वशवर्ती हो गये। राजसिंह अनेक यवनों का संहार कर, मांसाहारी पशु पक्षियों को तृप्त कर अपने सहोदर तीन भाइयों (आनन्दसिंह, चतुरसिंह, रूपसिंह) के साथ स्वर्ग को सिधारा। इन के सिवाय इस युद्ध मे और भी वहुत से राठौड़ काम आये। यह घटना संवत् १७३७ की भाद्रपद वदि ८ को हुई थी।

इस युद्ध में हार खा कर तहवरखान तो अजमेर गया और राठोड पीछे मारवाड़ मे आये। राठोड़ों ने जसवतसिंहजी की शेष रानियों को अपने २ पीहर पहुंचा दिया। रानी बाघेली और पर्दायते नैणसी मुहणोत के घर में रखी गई।

बादशाह ने जोधपुर का राज्य राव इन्द्रसिंह को लिख दिया था जिस से वह सेना ले कर दिल्ली से मारवाड़ में आया। प्रथम वह नागोर गया, फिर वहां से जोधपुर आया। भादों सुदि ५ के दिन उस का डेरा रातानाडा पर हुआ। इन्द्रसिंह ने अपने मनुष्य राठोड़ सरदार और मुत्सद्दियों के पास भेजे कि वे शान्त रहें। उस समय जोधपुर के किले में ऊहड़ वंश के दो राठोड़ थे, भगवानदास और सबलसिंह। और नगर की रक्षा का प्रवन्ध चांपावत सोनंग को सौंपा हुआ था। और अन्य समस्त सरदार उस के सहायक थे। इन्द्रसिंह की ओर से कुछ प्रतिष्ठित पुरुष आये जिन्होंने सोनंग आदि से कहा कि महाराजा गजसिंहजी ने जसवंतसिंहजी को अपना उत्तराधिकार बनाया। उन का पुत्र हो तब तो वह राज्य का अधिकारी होवे किन्तु उस के अभाव मे तो गजसिंहजी के पुत्र अमरसिंह के वंशज ही राज्य के अधिकारी है। इन्द्रसिंह अमरसिंह का पौत्र होने से राज्य का

अधिकारी है ही। आप को उसे अपना स्वामी स्वीकार कर उस की सेवा में रहना चाहिये और कुछ जागीर का भी लोभ दिखाया जिस से सोनंग लोभाविष्ट हो गया और उस की बुद्धि पर पर्दा पड गया और वह इन्द्रसिंह का पक्षपाती हो गया। उस के देखादेखी अनेक सरदार भी लोभ से लुढ़क गये। केवल देवकर्ण का पुत्र प्रतापसिंह और गिरधरदास का पुत्र हरनाथ विचलित नहीं हुए। इन्द्रसिंह ने सोनंग आदि को अपने पास बुलाने के लिये अपने पुत्र अजयसिंह को भेजा कि वह उन को तसल्ली कर के अपने पास ले आवे। सोनंग आदि उस के साथ इन्द्रसिंह के पास गये। इन्द्रसिंह ने उन का बडा आदर सत्कार किया और उन सब को अपने साथ में ले कर भादों सुदि ७ मंगलवार को राजमार्ग हो कर किले में प्रवेश किया। कइयों को इन्द्रसिंह ने जागीरें दीं।

इन्द्रसिंह ने जोधपुर पर अधिकार पा कर बादशाह को प्रसन्न रखने के लिये ऐसे कार्य किये जो उस को हिन्दू रक्त होने से करने योग्य न थे। उस ने मन्दिरों को तुड़वाये और किले के महलों का विध्वंस किया। और यवन गो-वध करते थे उन को मना नहीं किया। ब्राह्मण व चारणों के शासन ज़ब्त किये। इसी मामले मे तिवरी का पुरोहित नगराज आत्मघात करके मरा। राव जोधाजी का खड्ग जो जोधपुर के किले में था नागोर ले गया। ठाकुरजी आनन्दघनजी और नागणेचिया देवी की मूर्तियां भी नागोर पहुंचा दी। और बहुत सी बहुमूल्य चीज़ें भी नागोर ले गया। इन्द्रसिंह के इस समय का एक शिलालेख कागे के बाग में खुदा हुआ मिला है।

जब दुर्गदास को, सोनंग इन्द्रसिंह के पास चला गया की, खबर लगी तब उस ने सोनंग को उपालम्भ का एक पत्र लिखा कि आप ने यह काम बिना विचारे किया। आप को अपने किये पर पछताना पड़ेगा। आप ने यह अयोग्य कार्य किया तो है किन्तु आप की यह मित्रता कितने दिन चलेगी। वास्तव में वैसा ही हुआ। थोडे ही अर्से में इन्द्रसिंह के व्यवहार से सोनग अप्रसन्न हो गया और अपने किये पर पछताने लगा। इन्द्रसिंह वास्तव में अपने कुव्यवहारों के कारण राज्य के योग्य नहीं है। इस में अनेक अवगुण भरे हैं। प्रथम तो वह मर्यादा का पालन नहीं करता, दूसरा धर्म पर इस की श्रद्धा नहीं। इस का व्यवहार दुष्ट है अतः इस से भला होना नहीं। ऐसे दुराचारी के समीप रहने में अपना भी कल्याण नहीं है। इस से मरु-देश को बड़ी हानि पहुंचेगी। इस लिये चल कर इस को समझावे यदि अपना कहना नहीं मानेगा तो फिर देख लेंगे। ऐसे विचार कर सोनंग प्रभृति सरदार इन्द्रसिंह के पास गये और कहा

कि महाराज ! आप इस राठोडी राज्य में जो कर रहे हैं वह योग्य नहीं है। इस पर इन्द्रसिंह ने ज़ोर के साथ कहा कि हम जो करते हैं वह योग्य है। राठोड़ यह वचन सुनते ही बदल गये।

इसी अर्से में दुर्गदास दिल्ली से मारवाड़ में आया। सालवा ग्राम में ठहर कर सेना संग्रह करने लगा। इन्द्रसिंह दुर्गादास के पास अपने मनुष्य भेज कर कहलाया कि आप के प्रभुत्व का समय है, आप तैयार हूजिये और सेना एकत्र करें। दुर्गादास ने वक्रता से यह उत्तर दिया कि सेना सग्रह किया जाता है, जब मेरा प्रयत्न पूर्ण होगा तब आप के पास हाज़िर होऊंगा। तत्पश्चात् वह खीची मुकुन्ददास के पास सीरोही राज्य के गांव वीसलपुर में गया।

इन्द्रसिंह ने सिवाने पर अधिकार करने के लिये संवत् १७३७ को आश्विन वदि १३ के दिन जोधपुर से सिवाने की ओर प्रयाण किया। वहां के किले का बाला राठौड़ किलेदार था। उसे ख़बर लगी कि इन्द्रसिंह आ रहा है तो उस ने किले का पूर्ण प्रवन्ध कर लिया और युद्धार्थ सुसज्ज हो गया। घवेचा, बाला आदि राठोड़ एकत्र हुए जिन की सख्या १७०० के अनुमान थी। इन्द्रसिंह ने सिवाने को घेर लिया और लड़ाई हुई जिस में इन्द्रसिंह पराजित हुआ। तब वह सिवाना छोड कर सोजत पर गया। वहां जसवंतसिहजी का रखा हुआ देवदत्त व्यास था। उसे ख़बर मिली कि इन्द्रसिंह आता है, उस ने युद्ध की सामग्री एकत्र की और सुभटों को सहायतार्थ बुलवाया। देवदत्त के पास सेना जमा हुई इतने में इन्द्रसिंह आ पहुंचा। दोनों में लड़ाई हुई जिस मे देवदत्त मारा गया। इसी बात पर सोनग आदि राठौड़ उस से बिगड़ गये और इन्द्रसिंह को छोड़ कर दुर्गदास से जा मिले और इन्द्रसिंह के मूलोच्छेद में लगे। पहले से ही वे उस से विरक्त तो थे ही, यह अच्छा अवसर मिल गया जाते समय वे किसानों को भी अपने साथ ले गये जिस से उन का निर्वाह होता रहे और किसानो की यवनों से रक्षा।

उधर उदयपुर के महाराणों के और यवनों के सदा विरोध चलता था इधर राठौड़ों के साथ भी पूर्ण विरोध हो गया जिस से गुहिलोत और राठौड़ दोनों यवनों के विरोधी हो गये। महाराणा राजसिंहजी ने राठौड़ों से मैत्री करने का यह उत्तम अवसर समझकर अपने आदमी भेज कर मित्रता कर ली। राठोड़ और सीसोदिया एक सूत्र मे बँध गये और यवनों का नाश करने लगे। महाराणा राजसिहजी ने अपनी सेना राठौड़ों के शामिल कर दी और दोनों सेनाएं जालोर पर गंई। वहां का किलेदार फतहखान पठान था उस से लड़ाई हुई जिस में

जालोर का किला तो हाथ न लगा किन्तु जालोर नगर पर अधिकार हो गया। नगर लूटा गया और द्रव्य हाथ लगा वह ले गये।

सीसोदिया और राठौडों के मिल जाने से देश में उपद्रव और अधिक बढ़ा उसे शान्त करने के लिये बादशाह स्वयं अजमेर आया। वहां ५ दिन ठहरा। फिर उदयपुर की ओर गया। चारों ओर सेना भेजने का प्रबन्ध किया। उदयपुर पर बडी सेना भेजी। अवसर देख कर राजसिंहजी उदयपुर छोड़ पहाड़ो मे चले गये। बादशाह देहबारी पहुंचा। जहां महाविकट सग्राम हुआ उस में बडा वीर कूपावत उगरसिह और उदयसिंह सांवलदासोत मारे गये। बादशाह उदयपुर गया और शाहजादा आजम चीतोड़ गया। मेवाड मे चारों ओर यवन ही यवन हो गये। राठौड़ और सीसोदिये मेवाड से जालोर की ओर गये और जालोर को घेरा। फतहखान ने बादशाह से मदद मांगी। तब मुकरबखान सेना देकर भेजा गया। उस ने राठौड़ और सीसोदियो की फ़ौज अधिक देख कर १०००० रुपये देकर संधि कर ली। राजपूत द्रव्य ले कर सोजत पर गये जहां इन्द्रसिंह विद्यमान था। उस ने राठौड़ो को दम बुत्ता दे कर रख लिया और बादशाह को लिखा कि मै १७ राठोडों के सिर भेजता हूँ। इन्द्रसिंह का अभिप्राय राठौडो को ज्ञात हो गया जिस से वे सोजत से निकल गये। केवल एक भाटी कुंभा का पुत्र रामदास धोखे में आ गया और मारा गया। इन्द्रसिह ने उस का मस्तक बादशाह के पास पेश किया परन्तु वह इस से प्रसन्न नही हुआ।

बादशाही सेना अधिक होने से दुर्गदास ने उस से लडना उचित न समझा, किन्तु बादशाह के घर में बखेडा डालने का उपाय सोचा कि शाहज़ादह मुअज्ज़िम को बादशाह के विरुद्ध उभार दिया जाय, किन्तु उस प्रयत्न में सफलता न हुई जिस से दुर्गदास वापिस मारवाड़ में आ गया, और हर ठौर लूट-पाट करने लगा। सीसोदिये भी दुर्गदास के साथ थे। बादशाह ने इस उपद्रव को देख कर अपने छोटे पुत्र अकबर को जेतारण की ओर भेजा और कहा कि राठोड़ अत्यन्त उद्दण्ड हो रहे है, कई बादशाही थाने लूट लिये हैं और बादशाह की आज्ञा की अवहेलना करते है तुम जा कर उनका दमन करो। अकबर मारवाड़ मे सेना लिये भ्रमण करता है। जहां राठोड़ों का समूह देखता है डट कर उन का दमन करता है। मदिरो का गिराता है मूर्तियो को तोड़ फोड कर विध्वस्त करता है। राठोड वीर देश मे ठौर २ धावा मारते है मसजिदों का उन्मूलन करते हैं। परस्पर द्वेषानल बड़े वेग से भभक रहा है। उधर मेवाड़ में मुअज्ज़िम से कुछ नही हुआ तब बादशाह ख़ुद मेवाड़ में गया और उसका विध्वंस किया।

बादशाह ने जोधपुर का राज्य इन्द्रसिंह को इस अभिप्राय से दिया था कि यह जोधपुर के राजा का वंशज है, राठौड़ से इस से विरुद्ध व्यवहार नहीं करेंगे। परन्तु राठौड़ उस के काबू मे नहीं आये और मारवाड़ राज्य का प्रबन्ध भी उस से कुछ न हो सका। तब बादशाह उस पर कुपित हुआ और उसे बधनोर भेज दिया। मारवाड मे राठौड़ों का अधिक उपद्रव देख कर बादशाह को मेवाड़ से पीछा अजमेर आना पडा। अपने शाहजादा अकबर को हिदायत की कि तुम्हारे पास इतनी बड़ी फ़ौज है तब भी तुम से कुछ न हो सका। अकबर ने इस उपालम्भ के कारण मारवाड़ में ठौर ठौर अपने थाने बिठा दिये और पूरा प्रबन्ध किया। किन्तु राठौड दुर्गदास और सोनंग राजपूतो की बड़ी सेना लिये बादशाही थानों पर जाते और यवनो को लूटते।

ज्येष्ठ वदि १० के दिन राठौड़ दुर्गदास और सोनंग बीलाड़ा के थाने पर गये जहां महाराजा जसवंतसिंहजी की मुख्य अश्वशाला थी और अच्छे घोड़ों का संग्रह था। इन्होने जा कर बीलाड़े को घेरा। यवनों से लड़ाई हुई। कई यवन और राठौड मारे गये। परन्तु विजय राठोड़ों की हुई और यवन पराजित हुए। राठौडों ने अश्वशाला में से अभिलषित अश्व लिये और बहुमूल्य वस्तु ले कर चल दिये। इस थाने पर इन्द्रसिंह का रखा हुआ पवार गोविन्ददास था जिस ने इन्द्रसिंह के पास बधनोर जा कर बीलाड़े का समस्त वृत्तान्त कहा। इन्द्रसिंह ने उसे बादशाह के पास जा कर सब वार्ता कहने का और तबेले के सब घोड़ों के चले जाने का कहा। इस पर बादशाह ने इन्द्रसिंह को जोधपुर जाने की इजाज़त दी। इन्द्रसिंह ज्येष्ठ सुदि १० को जोधपुर आया। राठोड दुर्गादास, सोनंग आदि का डेरा उस समय सालावास मे था। इन्द्रसिंह इन पर चढ़ कर आया। दोनो ओर के वीर राजपूत मारे गये। युद्ध के पश्चात् राठोड़ों का डेरा खेतासर के तालाब पर हुआ और वहां से १ मील की दूरी पर राव इन्द्रसिंह की सेना पड़ी थी। उस की ओर से चारण गोवर्धन खिडिया राठोड़ों के पास आया और दुर्गादास आदि से कहा कि इन्द्रसिंह की सेना प्यास के मारे मरती है आप उन को जल पीने दें और उस ने संधि का पैगाम भी सुनाया। यह संधि क्षणिक रही। इस पर राठौड़ों ने अपने डेरे तालाब से उठा कर गांव चेहराई में किये। दुर्गदास ने चारण गोवर्धन से यह प्रण करा लिया था कि इन्द्रसिंह की सेना पानी पीकर चली जावे, युद्ध नहीं करे। इन्द्रसिंह का डेरा तालाब पर हुआ। वहां से ज्येष्ठ सुदि १५ को कूच कर वह आषाढ़ वदि १० को जोधपुर आया और अपनी हार के समाचार बादशाह के पास अजमेर

भेजे। मदद मंगवाई। बादशाह ने सेना देकर मुकरबखां को सहायतार्थ भेजा। उस का डेरा दहीभर में हुआ। इन्द्रसिंह और मुकरबखां ने मिल कर सोनग दुर्गादास आदि का पीछा किया, परन्तु ये उन के हाथ न आये। राठोड़ों की सेना खेड़ में होकर गुड़ा[1] के राणा के इलाका मे ठहरी। मुकरबखां ने गांव नेवाई से वापिस लौट कर गांव रोहेड़ा मे डेरा किया। इन्द्रसिंह का डेरा बालोतरा में हुआ। वहां से तलवाड़े जा कर राव इन्द्रसिंह ने मल्लिनाथजी का दर्शन किया। और वहां पर रावल भारमल हरिसिंहोत से मिला।

शाहजादा अकबर को बादशाह ने राठौड़ों के दमन के लिए भेजा था। उस के साथ सेनापति तहवरखान था। इन का मुकाम गांव कुंडाद्रह में हुआ। कुंडाद्रह का ठाकुर ऊदावत रूपसिंह कुंभकरणोत वल्लभराम का पौत्र था।

मुसलमानी सेना लूट मार करने लगी, तब वह मुकाबला में आया। दोनों में लड़ाई हुई जिस में रूपसिंह ४० मनुष्यों के साथ मारा गया।

वहां से आगे बढ़ कर शाहजादा अकबर सोजत आया। उस ने वहां छावनी डाल दी और तहवरखां को नाडोल की ओर भेजा क्योंकि नाडोल[2] में सीसोदिया और राठौड़ दोनों शामिल हो गये थे। महाराणा राजसिंहजी ने अपने पुत्र भीम को सेना देकर वहां भेज दिया था, क्योंकि नाडोल महाराणा के राज्य के अन्तर्गत था। भर सोनंग, दुर्गादास आदि राठौड़ वहां जा पहुंचे थे। यहां युद्ध भार जोधा मुकनदास के पुत्र इन्द्रभाण ने धारण किया था। उस अवसर पर महाराणा राजसिंहजी का दूत राठौड़ों के पास आया और उस ने महाराणा का पत्र दे कर कहा कि राठोड़ और सीसोदिया एकमत हो जाओ और परस्पर मेल रखो। मेवाड़ को आप अपने से जुदा मत समझो। तब सोनग दुर्गादास आदि राठोड़ों ने सीसो-

---

१ गुडा मालानी परगने में जेतमालोत राठौडों का वार्षिक दो लाख आय का ठिकाना है। ये मल्लिनाथ के छोटे भाई जेतमल के वंशज हैं। गुडा के राणा के पूर्वज वीदाजी ने चीतोड़ के महाराणा सांगा के प्राण बचाये और खुद मारा गया जिस का उल्लेख हरविलास सारड़ा ने 'महाराणां सांगा' नामक अंगरेजी भाषा की पुस्तक के पृष्ठ १९ पर किया है। उदयपुर के प्रसिद्ध महाराणा प्रतापसिंहजी भी विपत्ति के समय कुछ दिन इन राठोड़ों के यहां रहे थे। और महाराणा ने ही इन को राणा की पदवी दी थी। इसी से ये राणा कहलाते हैं।

२—कई ख्यातों में नाडलाई भी लिखा मिलता है। नाड़लाई और नाडोल पास पास ही हैं। केवल २ कोस का अन्तर है।

दिया भीम से कहा कि कल सूर्योदय होते ही युद्ध का आरम्भ कर दो। भीम ने स्वीकार किया। प्रातःकाल सब सजधज कर तैयार हो गये। इस की ख़बर तहवारखां को लगी तो वह भी अपनी फ़ौज के साथ तैयार हो आ खडा हुआ। दोनों में महाविकट संग्राम हुआ। आधे प्रहर तक तलवार चली। जोधा इन्द्रभाण मुकनदासोत शत्रु सेना पर चला। कई शत्रुओं का संहार कर के वीरगति को प्राप्त हुआ। कई वीरों ने अपने हाथ दिखाये। राठोड़ो की विजय हुई। तहवारखां रणाङ्गण छोड कर भाग निकला। यह युद्ध संवत् १७३७ की आश्विन वदि को हुआ था। तहवरखां ने इस युद्ध का दृश्य देख कर शाहजादा अकबर से कहा कि आज सोनंग और दुर्गा के बराबर कोई वीर नही है।

संवत् १७३७ की कार्तिक सुदि १० को महाराणा राजसिंहजी का अन्तकाल हो गया और उन के उत्तराधिकारी महाराणा जयसिंहजी हुए। शाहजादा अकबर और तहवरखान मेवाड़ में डेरा डाले हुए थे। सोनग और दुर्गादास आदि राठोड़ गोरमजी के पहाड़ में हो कर मार्गशीर्ष मास में मेड़ते की ओर गये। मार्ग में व्योपारियों का माल लूटते हुए मेड़ता पहुंचे। मेडते को घेर लिया। वहां से २५ हज़ार रुपया ले कर डीडवाणे की तरफ़ गये। वहां से ५१ हज़ार रुपये लिये। वहां का थानादार दीनदारखां था जिस ने अपनी ओर से द्रव्य दे कर अपना पीछा छुड़ाया। वहां से ये सांभर गये। वहां पेशकसी ली। ऐसे हर ठौर से रुपये वसूल करते हुए राठोड़ लूट पाट करते नागोर की तर्फ़ आये, बादशाही सेना इन के पीछे लगी हुई थी। ये नागोर के परगने में भ्रमण करते हुए राठोड़ आइदानसिंह वनमालीदासोत के गांव में आ कर ठहरे। यहां ठाकुर के साथ इन के परस्पर वाद-विवाद हो गया और लड़ाई हो पड़ी, जिस मे चांपावत हरिसिंह महेशदासोत मारा गया।

वहां से राठोड़ सेना पुनः गोड़वाड़ की तर्फ़ चली। गाँव जालो-वाड़ा में इन का मुकाम हुआ। उधर शाहजादा अकबर और तहवरखान इन के पीछे लगे हुए हैरान हो गये थे। और बादशाह को पूरी तकरार थी जिस से शाहजादा ने राठोड़ों के पास संधि के लिये पैगाम भेजा। शाहजादा का खिदमतगार ताजमहम्मद और चौहान भावसिंह राठोड़ो के पास जालीवाड़ा में आये। इन्होने आ कर राठोड़ सोनग और दुर्गादास आदि से कहा कि यदि शाहजादा अकबर दिल्ली का बादशाह हो जाय तो महाराजा अजीतसिंहजी को जोधपुर का राज्य दे दिया जायगा। दोनो की स्वार्थ-सिद्धि का प्रयोजन होने से परस्पर वार्तालाप हुआ। राठोड़ों ने शाहजादे से मिलने का विचार किया।

उसी अवसर पर रतलाम के राजा रामसिंहजी रतनोत और तहवर-खान का दगा न करने का पत्र मिला। तब राठोड़ों ने शाहजादे से मिलने का निश्चय किया। जब दोनो में बात पक्की हो गई तब सोनंग और दुर्गदास जाने को तैयार हुए। इन की पेशवाई के लिये रतलाम का राजा रामसिंह और तहवरखान का बेटा मानो दस बारह कोस गांव चांचोड़ी के मुकाम पर आये। इन के आने से राठोडों को पूर्ण विश्वास हो गया और वे उन के साथ वहां से देसूरी गये। शाहजादे से मिले। वार्तालाप होने पर पूर्व विचार निश्चित हुआ। उस समय राठोडों ने शाहजादा से कहा कि आप तख्त पर बैठने की पूरी रीत रश्म कर ले तो हमें पूर्ण विश्वास हो जाय। फिर शाहजादा और राठोड़ खोड़ गये। वहां शाहजादा तख्त पर बैठा। राठोडों को सिरोपाव, २ घोड़े, १ हाथी, जड़ाऊ तलवार और १००० मुहरें इनायत की गईं। बादशाही ओहदेदार मौसमखां तीन हजारी मन्सव-दार कैद किया गया। और भी कई एक कैद किये गये। बादशाह को इस बात की ख़बर लगी तब वह घबराया।

शाहजादा अकबर के पास उस समय अनुमान एक लाख फ़ौज जमा हो गई थी। बादशाह अजमेर में था। उसके पास सेना बहुत अल्प थी। सिर्फ़ दस हज़ार सेना थी। शाहजादा राठोड़ों और सीसोदियों के साथ अजमेर की ओर रवाना हुआ। बादशाह घबराया और उसने शाहजादा मुअज्ज़िम को बुलाया जो उज्जैन से आकर उदयपुर तालाब पर मुकाम किये पड़ा था। मुअज्ज़िम बहुत त्वरा के साथ ससैन्य बादशाह के पास पहुंचा। तब बादशाह अजमेर से रवाना हो कर डूमाणा गांव मे आया जो अजमेर से ८ मील पश्चिम मे है और शाहजादा अकबर बुधवाड़ा मे आया जो अजमेर से १४ मील पश्चिम में है। बुधवाडा और डूमाड़ा गांव में ८ मील का अन्तर है। कुटिल बादशाह ने एक उपाय तो अजमेर बैठे ही यह किया कि तहवरखान को अपने पास बुलाया। तहवरखां का श्वसुर इनायतखां बादशाह के पास अजमेर में था। उसको बुला कर बादशाह ने कहा कि तहवरखां हरामखोर हो गया है, उस के घर की दुर्गति की जायगी और उसके बालबच्चे मरवा दिये जायगे। इनायतखां ने बादशाह से हुक्मनामा लिखा कर, जिस पर बादशाह ने पंजे का चिन्ह कर दिया था, अपने पास ले लिया और तहवरखां को सब वृत्तान्त लिख भेजा। इनायतखां का पैग़ाम जब तहवरखां के पास पहुंचा तब वह घबराया और रात्रि में ही शाहजादा अकबर को छोड़ कर अजमेर को चल दिया। और जाते समय राठोडों को कह गया कि बाप बेटे मिल गये है, सावधान रहना। उस से पहले ही जब दोनों सेनाओं के बीच बहुत अल्प अन्तर

रहा उस समय जाहिदखां आदि कितने ही यवन अकबर को छोड़ कर बादशाह के पास चले गये।

तहवरख़ां जब बादशाह के डेरे पर पहुंचा तब बादशाह ने उसके लिये आज्ञा की कि वह (तहवरख़ां) शस्त्र खोल कर हमारे हजूर में हाज़िर होवे। उस ने शस्त्र खोलने से इन्कार किया। तब बादशाह ने उसे गुरजबरदारों के हाथ मरवा दिया और अकबर के नाम पत्र लिख कर भेजा जिस में बहुत सी बातें लिख कर अन्त में यह लिखा था कि 'तुम हमारे पास चले आओ'। परन्तु वह अपने पिता के कृत्य को भली भांति जानता था। उस सपूत पिता के सुपुत्र ने यह उत्तर दिया कि 'इस मार्ग के शिक्षक आप ही हैं। आपने जो मार्ग प्रदर्शित किया है मुझे भी उसी का अनुसरण करना चाहिये। वह कुमार्ग नहीं हो सकता।' इस उत्तर को पाकर उस कुटिल बादशाह ने दूसरी चाल चली। वह यह थी कि उसने राठोड़ों के पास एक जाली फ़रमान पहुंचा दिया जिस में लिखा था कि—'हे बेटा! तुमने बहुत होश्यारी का काम किया है जो राठोड़ों को इकट्ठा कर ले आया। अब उधर से तो इन को तुम मारो और इधर से मैं मारता हूँ।'

ख़फीफा आदि का कथन है कि–'आलमगीर ने चालाकी से अकबर की सेना में अकबर के नाम का एक जाली फ़रमान डलवा दिया जो राजपूतों के हाथ पड़ गया उस में यह लिखा था कि तुम बड़ी सावधानी से राजपूतों के अपने साथ ले आये हो। अब इनको सेना के अग्रेसर कर लेना चाहिये जिस से हम सामने से और तुम पीछे से इनको नष्ट कर दें।' राजपूतों ने यह देखते ही शाहज़ादे से किनारा ले लिया और अकबर को भागने के सिवाय कोई उपाय न दीख पड़ा। शाहज़ादा मुअज्ज़िम अबुलक़ासिम आदि उस का पीछा करने को भेजे गये। उन्हों ने अकबर की सब सामग्री ज़ब्त कर ली और उस के नौकर मार दिये।

इस विषय में दूसरी ख्याति पुस्तकों में यह लिखा है कि राठोड़ दुर्गदास को तहवरखां के जाने की ख़बर लगी और जाली काग़ज़ों का पता लगा तब वह शाहज़ादा अकबर के पास गया। उस समय शाहज़ादा गाना बजाना सुन कर सो गया था। दुर्गदास से नहीं मिला। जिस से दुर्गदास आदि राठोडों को शाहजादा के विषय का संदेह और दृढ़ हो गया कि बाप बेटे अवश्य मिल गये। राठोड़ वहां से चल दिये। शाहज़ादे की सेना के मनुष्यों ने भी उस दशा में शाहजादे का साथ छोड़ दिया। पिछली रात्रि में उसकी आँख खुली और उसने

यह वृत्तान्त सुना, तब वह अपने हुरमखाना-को ले कर चल पडा। उस समय उसके साथ सिर्फ २५ मनुष्य[1] थे। बहुमूल्य वस्तु और जवाहिरात ले कर यह राठोड़ो के पीछे चला। मार्ग में मेरों ने इसे घेर लिया और जवाहिरात उस से छीन लिये। यद्यपि बादशाही नौकर और हुरम ने तीरों द्वारा उन को रोकने का प्रयत्न किया था, परन्तु सब निष्फल हुआ।

शाहजादा दस कोस चल कर राठोड़ों के समीप डेढ़ प्रहर दिन चढ़े पहुंचा। राठोड़ों ने देखा कि शाहजादा आ गया है वे उस के सामने जा कर गांव रावड़ियास में उससे मिले। और उसका शुद्ध भाव उन को ज्ञात हो गया तो उन्हों ने उसका आदर किया। उसी अवसर पर बादशाह का दूत पहुंचा। उसके द्वारा ज्ञात हुआ कि इस समय बादशाह के पास ५२ सेना जमा है, तथापि अकबर ने उस से युद्ध करना चाहा। परन्तु दुर्गदास आदि ने उस को रोक दिया और कहा कि यह युद्ध करने का समय नहीं है। उस समय सोनंग चांपावत ने कहा कि आप की रक्षा का भार हमारे बाहु बल पर है, आप निश्चिन्त रहें। अन्य राठोढ़ों ने इस का अनुमोदन किया। जब अकबर को राठोड़ों की ओर से सान्त्वना मिल गई तब उस ने दुर्गदास से कहा कि इस समय मुझको मेरी तो पड़ी ही है। परन्तु इससे बढ़ कर मुझे हुरम और बेटा बेटी की चिन्ता है। इन को कहां रखें। तब दुर्गदास ने कहा कि इन को आप मुझे सौंपिये, मैं अपने जनाना के साथ रखूंगा और यों कह कर उन को अपने भाई खीवकरण के सुपुर्द कर दिया। और कहा कि मुझे इस का भरोसा है। जो जवाहिरात मेरो ने अकबर से छीन लिये थे वे राठोड़ों ने अपने सुभट भेज कर वापिस मंगवा लिये और अकबर को सौंप दिये।

मारवाड की ख्यातो में लिखा है कि बादशाह ने शाहजादा आलम को ३० हज़ार सेना दे कर शाहजादा अकबर और राठोडों का पीछा करने को भेजा। इस सेना में राव इन्द्रसिह, रतलाम का राजा रामसिंह और नवाब किलीचखां थे। इन के और राठोडों के जालोर के पास युद्ध हुआ, इसमें राठोड़ों की विजय हुई। राठोड़ों ने भार बरदारी का सामान छीन लिया और हाथी भी छीन लिये इस पराजय की ख़बर मिली तब बादशाह सेनाध्यक्ष किलीचखां से अप्रसन्न हो गया। उस की जागीर जब्त कर उसे कारागार में डाल दिया। इन्द्रसिंह से जोधपुर तो पहले ही जब्त हो चुका था परन्तु राठोडों से लड़ने के लिये जोधपुर में रख छोड़ा था सो उस को भी जोधपुर से हटा दिया। जालोर की जागीर फतहखां से जब्त कर

---

१ राजरूपक-कर्ता लिखता है कि शाहजादा अकबर के साथ इस समय १००० मुगल थे।

राठोड़ रामसिंह को दी गई थी वह भी इस अवसर पर वापिस ले ली गई। राठोड़ों ने जालोर से पेशकसी ली। वहां से सांचोर की तर्फ गये। वहां शाहजादा आलम की हरोल की सेना पहुंच गई। उधर राठोड़ सेना के मनुष्य सांचोर से रसद का सामान ले कर आते थे रास्ते में दोनों की मुठभेड़ हो गई। युद्ध हुआ जिस में राठोड़ों के तीन मनुष्य मारे गये। युद्ध फाल्गुन वदि ६ को हुआ।

सांचार से राठोड़ शाहजादा अकबर को लिये कोट कोलर में आये। मुकाम किया। यहां पर शाहज़ादा आलम ने सुलह का पैग़ाम भेजा और कहलाया कि महाराजा अजीतसिंहजी को जोधपुर दे दिया जाय और शाहजादा अकबर को गुजरात का सूवह दिया जाय। लड़ाई मत करो और मुल्क बरबाद मत करो, बादशाह से जोधपुर और गुजरात के सूवह का फ़रमान मँगाया जाता है, इस पर दुर्गदास ने आलम को कहलाया कि हमारे पास ख़र्चा नहीं है इसी से पेशकसी लेते हैं और मुल्क को लूटते हैं। हमें संधि होने का विश्वास नहीं। तब आलम ने मौसमखां के पुत्र को जमानत के तौर पर राठोरों के हवाले कर दिया जिस के साथ २०० सवार थे। इसने आ कर राठोड़ों के पास डेरा कर दिया कि इस बात में किसी प्रकार का दगा हो तो राठोड़ मौसमखां के बेटे को मार डालें या क़ैद कर देवें। राठोड़ों ने उस समय लूट पाट बंद कर दी। ख़र्चा के लिये आलम ने ४ हज़ार मुहरें भेज दीं और कहलाया कि यदि संधि न हो तो मुहरें वापिस शाहजादे के पास पहुंचा दी जावें। आलम ने सोनंग को अपने पास बुलाया। वह जाने को तैयार भी हो गया। परन्तु दुर्गदास की राय में यह बात नहीं जंची। अकबर भी उस में सहमत था जिस से सोनग आलम के पास नहीं गया। इस से संधि न हो सकी। संधि न होने से आलम ने मुहर वापिस मांगी। दुर्गदास ने कहलाया कि मुहरें ख़र्च में आ गईं। अब नहीं मिल सकतीं।

पचोली पंचायन को राठोड़ों ने बादशाह औरंग की कार्यवाहियों की ख़बरें देने के लिये अजमेर में छोड़ रखा था। वह गुप्त रीति से ख़बर भेजता रहा। आवश्यकता होने पर उसे अकबर के पास बुलाया। उस ने सब गुप्त भेद कहा जिस से प्रसन्न हो कर शाहजादा ने उसे एक खासा घोड़ा और खिलअत दी। और वापिस भेज दिया गया।

अब शाहजादा अकबर और राठोड़ दुर्गदास प्रभृति वहां से चल कर महेवा (मालानी) आये। संवत् १७३८ की वैशाख वदि ३ को शाहजादा आलम की हरोल सेना के साथ युद्ध हुआ जिस में ४ सरदार काम आये।

बादशाह ने इन्द्रसिंह को जोधपुर से जाने का हुक्म दे कर उसके स्थान में इनायतखां और दो हजारी मनसबदार खानसामा को जोधपुर

भेजा। इनायतख़ां सवत् १७३८ की वैशाख सुदि १० को जोधपुर पहुंचा। राव इन्द्रसिह नागोर चला गया और जाता हुआ सब सामान नागोर ले गया।

राठोड दुर्गदास शाहजादा अकबर को ले कर गोड़वाड़ में होत हुआ आबू की तलहटी में पहुंचा। शाहजादा आलम इन का पीछ करता रहा और राठोडों के अधिकृत गांवों को बरबाद करता रहा राठोड़ों ने वहां से जा कर सांचोर और सूराचद को लूटा। वहां सब की समति से दुर्गदास अकबर को ले कर दक्षिण को गया। पीछे प्रबंध सोनंग के हाथ में दिया गया। अकबर के जनाने को भेज दिया।

दुर्गदास अकबर के साथ थिराद[1] पहुंचा, वहां पेशकसी ली। वहां से पालनपुर आया और पेशकसी ली। वहां से कोलीवाड़ा और सीरोही होता हुआ उदयपुर पहुंचा। जहां महाराणा जयसिंह ने अकबर शाहजादा का बड़ा सन्मान किया। दुर्गदास को १५ हजार रुपये और ८० घोड़े दिये। और अपने सामंत झाला जैतसिंह को पहुंचाने के लिये भेजा। उदयपुर से रवाना हो कर ये डूंगरपुर बांसवाड़ा गये। डूंगरपुर के रावल ने शाहजादा को मिहमानी दी। झाला जैतसिह को शाहजादा ने खिलअत और घोड़े दे कर यहां से वापिस भेज दिया। दुर्गदास वहां से राजपीपला होता हुआ दक्षिण को चला। बादशाह को यह ख़बर मिली तब उन्हें रोकने के लिये ठौर २ हुक्म भेज दिये। शाहजादा आलम वापिस अजमेर बादशाह के पास आ गया। बादशाह को राव इन्द्रसिह के विषय में सदेह हो गया कि यह राठोडों से मिल गया है, उसे अजमेर बुला लिया और उसे क़ैद कर अटक पार भेजने का हुक्म दिया। परन्तु आलम की सिफ़ारिस पर कि यह नालायक़ है किन्तु इसका दर्जा आप ने 'ही बढ़ाया है ऐसा न होना चाहिये' उसे क़ैद नहीं किया।

इधर जोधपुर में इनायतखां बादशाही अधिकारी बैठा है। दुर्गदास के दक्षिण की ओर जाने पर राठोड सोनग ने उस पर हमला करने के लिये बड़ी सेना इकट्ठी की। इनायतखां ने बादशाह के पास मदद मांगी। उसने २० हजार सेना दे कर शाहबुद्दीनखां[2] को भेजा। महाघोर युद्ध हुआ, राठोड़ों की सेना के २०० और बादशाही सेना के ४०० मनुष्य मारे गये। इस की ख़बर बादशाह को अजमेर से जाते ४ मील पर मिली जिस से दुःखित हुआ।

---

१ थिराद मारवाड़ और गुजरात की सीमा पर एक गांव है।
२ ख्यातों में साइस्ताख़ां भी लिखा मिलता है।

दुर्गदास और अकबर नर्मदा नदी और भँवरिया घाटा पार करके संवत् १७३७ की ज्येष्ठ वदि ५ को शिवाजी के बेटे शंभाजी के देश में सालेर पहुंचे। पंडित चिटकू स्वागत के लिये आया। एक घोड़ा और ५००) रुपय नज़र किये। यहां से आगे जाते जहां २ शभा का थाना आया वहां इन का स्वागत किया गया। शभा ने इन के खर्चे का प्रबन्ध कर दिया और इन्हों ने पौष वदि २ को छावनी डाल दी। रायगढ़ से १७ कोस पर बादशाहपुर में अकबर व शभा की मुलाकात हुई। मिसंद के सहारे दोनो कौने पर बैठे। परस्पर वार्तालाप हुआ; फिर अपने २ डेरों पर गये।

बादशाह को इस बात की सूचना मिली कि अकबर शभाजी के पास गया है, वह उस से मिल कर दक्षिण में अवश्य उपद्रव करेगा। इस विचार से उसने स्वयं दक्षिण जाने का इरादा किया। इतने में ख़बर लगी कि तोसीणे का स्वामी मेडतिया मोहकमसिंह कल्याणदासोत, जो तहवरखां के ताल्लुक में बादशाही नोकर था, तहवरखां के मारे जाने से घर पर बैठ गया। इस से बादशाह ने उसे तंग किया, तब वह सोनंग के पास चला आया। राठोड़ों ने बगडी को लूटा। वहां से सोजत गये। वहां के हाकिम सरदारख़ां से लड़ाई हुई जिस में सरदारख़ां भाग गया। राठोड़ों के भी ७ सरदार काम आये।

जोधपुर में इनायतख़ां था। बादशाह ने शहाबुद्दीनख़ां को सेना देकर फिर भेजा। उस का डेरा बीलाड़ा में हुआ तब राठोडों को उस की ख़बर हुई उन्हों ने एकत्र हो कर उस पर हमला किया। बादशाही सेना तीन-तेरह हो गई। शहाबुद्दीनख़ां वापिस बादशाह के पास गया और उस ने राठोड़ों का उपद्रव शान्त होने के लिये संधि की सलाह दी। बादशाह ने उस के कहने पर ध्यान दिया और दक्षिण को रवाना होते समय शाहजादा आलम के बेटे अजीमुद्दीन और दीवान आसतख़ां को अजमेर रखा और कहा कि राठोड़ों का उपद्रव बहुत अधिक है। युद्ध से शांत होने की सम्भावना नहीं है। यदि तजवीज से संधि हो जाय तो कर लेना। यह कह कर बादशाह संवत् १७३८ की आश्विन सुदि ६ को दक्षिण जाने के लिये रवाना हुआ। असदखां ने महाराणा राजसिंहजी के पुत्र भीमसिंहजी के द्वारा संधि की बात की। और अपने आदमी भेज कर कहलाया कि महाराजा अजीतसिंह को जोधपुर मिल जायगा। तुम उपद्रव मत करो। सोनग आदि राठोड़ों ने प्रत्युत्तर में कहलाया कि हम बिना राजा की आज्ञा के संधि कैसे कर सकते हैं? हमे मालूम नहीं कि हमारा मालिक कहां है? इस बात को राठोड दुर्गदास जानता है। हम उस से दर्याफ़्त करते हैं, उस का जवाब आने पर वार्तालाप होगा। फिर राठोड़ों

ने दुर्गदास को पत्र दे कर पूछा कि संधि का पैग़ाम आया है, क्या करना चाहिये ? दुर्गदास ने प्रत्युत्तर में लिखा कि बादशाह महाधूर्त है, इस का विश्वास कभी मत करना। तथापि सोनंग आदि लोभवश अजमेर जाने को उद्यत हुए। मेड़ते के पास पूंदलोता में इनका मुक़ाम था। यहां सोनंग यकायक संवत् १७३८ की आश्विन सुदि ११ को मर गया। सोनंग के मर जाने से संधि की बात शिथिल पड़ गई।

तब सीसोदिया भीम ने चांपावत अजबसिंह बीठलदासोत को कहलाया कि अब शिथिल मत रहना। पराक्रम करके दिखलाओगे तब कुछ होगा। इस कथन से उत्तेजित हो कर राठोड़ों ने अजबसिंह को सेनापति बनाया और पुनः लूट मार करनी शुरू की। प्रथम डीडवाणा में जा कर पेशकसी ली। वहां से जा कर मकराना लूट कर संवत् १७४० की कार्तिक वदि १४ को मेड़ता लूटा। वहां से इंदावड़ गये जहां बादशाही सेना से लड़ाई हुई जिस में बहुत से सामन्त काम आये।

संवत् १७३९ में इनायतखां का पुत्र नूरमली जेतारण में था। उस पर ऊदावत जगराम ने श्रावण वदि १४ को आक्रमण किया। महाघोर संग्राम हुआ। नूरमली परास्त हो कर भाग गया। जगराम पहले महाराणा के पास जा रहा था। वहां से दिल्ली जाकर बादशाही मनसबदार हो गया था। परन्तु जब बादशाह ने राठोडों से विरोध किया तब मनसब छोड़ कर राठोड़ों के शामिल हो गया।

अब राठोड़ों ने बड़ी लूट मार की। फाल्गुन सुदि २ को पुर मण्डल को लूटा। तब अजमेर से कासिमखां सेना ले कर आया। परन्तु वह राठोड़ों का बल प्रबल देख कर टल गया। राठोड़ों ने उस का माल लूट लिया और बादशाही नक़ारा निशान भी छीन लिया। तदनन्तर राठोड़ों ने सोजत को घेरा वहां से पेशकसी ली। वहां से भाद्राजण गये। यहां बादशाही सेना से मुक़ाबला हुआ। दुतरफ़ा मनुष्य मरे। वहां से खैरवा की तर्फ़ गये। वहां जाते मार्ग में राणपुर में गुजराती सैयद महम्मद आ पहुंचा। तोपखाना तो इस का पीछे रह गया था परन्तु ४००-५०० सवार आगे आ गये थे। पहले बंदूकों की लड़ाई हुई, फिर तलवार चली। दुतरफ़ा मनुष्य मरे।

इस के पश्चात् चांपावत उदयसिंह तो गुजरात की तर्फ़ गया और सैयद महम्मद सिवाना के गांव मोकलमसर में आया। बादशाही सेना बहुत अधिक थी तो भी राठोड़ों ने मुक़ाबला किया। अन्त में रात्रि के समय राठोड़ पहाड़ों में चले गये।

राठोड़ मुकनदास भाद्राजण में निवास करता था। इनायतखां के पुत्र नूरमली ने उस पर आक्रमण किया। मुकनदास सज कर

युद्धार्थ उपस्थित हुआ। लड़ाई हुई जिस में नूरमली पराजित हुआ। इस लड़ाई में एक तोप २० जुजरबा वाले ऊंट मुकनदास के हाथ लगे। इस में खींची रुघोदासावत काम आया। दूसरी वार फिर समर हुआ जिस में १६ राजपूत काम आये।

इनायतखां स्वयं जोधपुर में और उस का पुत्र नूरमली पाली में थे। वाला राठोड़ विसनदास ने पाली के पास लूट मार शुरू की जिस की पुकार नूरमली के पास पहुंची। तब वह बालो पर चढ़ कर किला घेर लिया। राठोड़ों ने नूरमली पर आक्रमण किया। लड़ाई हुई जिस से नूरमली रणभूमि छोड़ कर भाग गया। घटना संवत् १७३६ की भाद्रों सुदि १३ को हुई।

चांपावत राठोडों ने सोजत पर फिर आक्रमण किया तब के शासक सीदी ने चांपावत उदयसिंह से प्रति वर्ष सहस्र रुपये देने करके संधि कर ली।

ऊदावत जगराम ने कार्तिक वदि १२ को जेतारण को जा घेरा। लोग जोधपुर और अजमेर पुकारू गये। आसतखां ने इनायतखां को लिखा कि इसका प्रवन्ध बहुत शीघ्र करो। तब इनायतखां ने सेना दे कर नूरमली को भेजा। इस समय सब ऊदावत एकत्र हो गये और कुछ मेड़तिया राठोड़ भी इन के शामिल हो गये। नूरमली हाथी पर सवर हो युद्ध स्थलो में आया। महाघोर संग्राम हुआ। जिस में राठोड़ों के ५० और यवनों के ५०० मनुष्य मारे गये। इस युद्ध मे नरा नाम का मेर ७ सुभटों के साथ काम आया। यह युद्ध मार्गशीर्ष वदि १२ को हुआ था। इस में राठोड़ों की विजय हुई।

उधर पाली पर भाटी रामसिंह मुकनदासोत ने आक्रमण किया। इस के मुक़ावला में अबदलखां ५०० सवारों से चढ़ कर आया। रामसिंह ने बड़े वेग के साथ आक्रमण किया। महाघोर युद्ध हुआ। रामसिंह ने अबदलखां को भाले के प्रहार से मार गिराया। ३० मुसलमान मरे। यह युद्ध संवत् १७४० की वैशाख वदि २ को हुआ था। राठोड़ों की विजय हुई।

वैशाख सुदि ६ को मेड़तिया मोहकमसिंह ने मेड़ता को घेरा। मुक़ावला मे शेख गोहर आया। विकट युद्ध हुआ। मोहकमसिह के हाथ सैयदअली मारा गया और गोहर भाग गया। राठोड़ों की विजय हुई।

मगरा (पहाड़ी प्रदेश) में ऊदावतों ने लूट पाट शुरू की। उस का दमन करने के लिये असदखां ने अपने पुत्र को सेना देकर अजमेर से भेजा। राठोड़ चारों ओर फैले हुए थे जिस से उस को रसद नहीं

मिली और वह वापिस अजमेर को लौट गया। उस ने असदखां से कहा कि राठोड़ चारों ओर फैले हुए हैं जिस से न तो भार-बरदारी के ऊंट मिलत हैं और न रसद मिलती है। किसी प्रकार लोभ लालच दे कर इन को बिठा देना चाहिये, असदखां को भी यह बात पसद आई और उस ने राठोडों को कहलाया कि तुम मनसब (जागीर) इजारे ले लो। हम देते हैं। परन्तु राजा प्रकट न हो तब तक युद्ध बंद रखो। इनायतखां का दामाद सिकदर इस कार्य के लिये नियत हुआ। कई राठोड लोभवश हो उस के पास गये। बादशाही मनसबदार मोहकमसिंह मेड़तिया को संतुष्ट कर तोसीण वापिस दिया गया और कुछ गांव वधारा में दिये गये। जोधा उदयभाण मुकनदासोत को भाद्राजण की चौरासी दे कर संतुष्ट किया। इस से कुछ दिन शान्ति रही।

संवत् १७४० की श्रावण वदि १४ को आसतखां अजीम ले कर दक्षिण की तर्फ गया। अजमेर तथा मारवाड़ के दोनों सूबों की अमलायन इनायतखां को दी गई।

कुछ दिन शान्ति रही परन्तु शीतकाल मे फिर उपद्रव उठा। करणोत खीवकरण आसकरणोत और सेजकरण दुर्गदासोत ने फलोधी की तर्फ लूट पाट की। चांपावत सामतसिंह जोगीदासोत और उस का भाई भगवानदास प्रभृति यकायक पाली थाना पर गये और गावों को घेरा। नवाब का पुत्र अहमदअली मुक़ाबला में आया। दोनों में घोर सग्राम हुआ जिस में भाटी वेणीदास केशवदासोत मारा गया। तत्पश्चात् चांपावत सावन्तसिंह और भाटी रामसिंह बॅवाल की ओर गये और लूट मार की। इसी अर्से मे ऊदावत जगराम इन से आ मिला। उस का शामिल ले कर मेडतिया सादूल को मारा क्योंकि वह तुर्कों से जा कर मिल जाता था। वहां से आकर राठोडों ने जोधपुर और सोजत के बीच महान् उपद्रव किया। कई गांव लूटे। तदनन्तर सोजत पर चढ़ कर गये। उस समय सोजत का थाना सोदी से तागीर हो कर सैराणी बहलोलखां को दिया गया था। वह ११ हजार सेना लेकर जोधपुर से सोजत आया। राठोड़ों ने उस की सेना देख कर नक्कारा बजाया और सज कर युद्धार्थ तैयार हो गये। दोनो ओर से तलवार चली। मुंड कट कट कर धड भूमि पर गिरने लगे। रुधिर से पृथ्वी रक्त हो गई। उस समय सामन्तसिंह ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाता और मूली की भांति शत्रुओं को काटता हुआ आगे बढ़ा। भाटी रामसिंह भी उस के साथ घोड़ा बढा कर शत्रु सेना पर जा पड़ा। घमासान युद्ध हुआ जिस में शत्रु सेना के १००० मनुष्य मारे गये और राठोड़ो के केवल २००। संवत् १७४१ के वैशाख में यह युद्ध हुआ।

संवत् १७४१ के उसी मास में करमसोत प्रतापसिंह पृथ्वीराजोत ने मार काट करना शुरू किया। उस के मुक़ाबले में उसतरां गांव का थानादार कूंपावत अनाड़सिंह आया। लड़ाई हुई। अनाड़सिंह पराजित हो भाग छूटा। प्रतापसिंह थाना को विध्वस्त करके गांधाणा के थाने पर गया। उसे लूट कर मंडोवर पर आया। इस के प्रवल वेग को देख कर मीयां भाई भाग गये।

वैशाख सुदि १२ को महमदअली मेड़ते आया। मेड़तिया मोहकमसिंह पहले बादशाही मनसबदार था। विपत्ति के दिनों में मनसब छोड़ कर राठोड़ों के शामिल हो गया था। महमदअली मेड़ते की तर्फ़ उस का उपद्रव देख कर उसे धोखे से मारने का विचार कर मोहकमसिंह को अपना प्रतिष्ठित पुरुष भेज कर पत्र द्वारा प्रीति व्यवहार दिखा कर अपने पास बुलाया। राजपूत सीधे सरल प्रकृति के होते हैं। वह उस कुटिल के कपट को कैसे जान सकता था? उस के बुलाने से वह उस के पास चला आया। मीयां से उसे अत्यन्त ही प्रीति दिखाई और उसे मुग्ध कर लिया। जब यह उस के काबू आ गया तब उस ने उसे वेबचे के महलों में मरवा डाला।

बादशाह को यह ख़बर मिली तब उस ने उलहना देते हुए लिखा कि राठोडो को भेद उपाय द्वारा फॅटा कर नौकर रखो। उन के अंदरूनी मामले को देख कर काम करो। सब को अप्रसन्न मत करो। ऐसे कामों से सब का मन हिल जाता है। इस लिये बहुत समझ कर काम करो।

इनायतख़ां ने बादशाह की इच्छानुसार सोजत का थाना मुग़लों से तागीर कर राठोड़ सुजाणसिंह को दिया। राठोड एकत्र हो सब थानों पर आक्रमण करते है, मुसलमानों को मारते है, थाने लूटते है और लड़ाइयां होती है। थानेदार संध्या समय दरवाज़ा बन्द कर लेता है और दिन निकले खोल देता है। यह सुन कर इनायतख़ां ने अत्यन्त क्रुद्ध हो शेख़ फ़ाज़िल को उसी क्षण रवाना किया। यह एक हज़ार सेना ले कर चला। रणछोड ने इस के सामने घोड़ा बढ़ाया और शत्रु-सेना पर टूट पड़ा। तलवार बड़े वेग से चली। कई शत्रु मारे गये। इस थाने में अधिकतर सिंधी थे और उन के शामिल ऊहड़ भी थे। महम्मद सिंधी इस लड़ाई में मारा गया और शेख़ भाग गया।

भाटी उदयभाण दक्षिण से देश में आ रहा था। मार्ग में सोजत आते इस के सुजाणसिंह से मुठभेड़ हो गई। लड़ाई हुई जिस में

भाटी बड़ी वीरता से लड़ कर काम आया। पिता के वैर का बदला लेने के लिये उस का बेटा महेशदास सुजाणसिंह पर चढ़ आया किन्तु मारा गया।

राठोड़ों ने जोधपुर में उपद्रव करना शुरू किया। सामन्तसिंह, रामसिंह और मोहकमसिंह आदि के मरने से बादशाह के मन को चिन्ता कुछ कम हो चली थी, परन्तु अन्य अवशेष राठोडों ने ऐसा उपद्रव मचाया कि यवन तंग आ गये। उस समय चौहान चतुरसिंह ने कहा कि इस काम को प्रवृत्त रखो। यदि इस समय ८ का पौत्र संग्रामसिंह जूंझारसिंहोत आ कर अपने शामिल हो तो बड़ी मदद मिल सकती है। यह सुन कर बारहठ केसरीसिंह ने कहा कि यह काम मेरा है। मैं उसे ले आऊंगा। बारहठ सांगा के पास गया और कहा कि सामन्तसिंह मर गया है, अब वह भार आप के कंधे पर है। यह सुन कर सांगा ने अपने बन्धुओं से कहा कि "केसरीसिंह जो कहता है वह तुमने सुना अब मैं बादशाही मनसब छोडता हूँ।" यह कह कर वह राठोडों की पक्ष में हो गया। इतने में भाद्राजण का जोधा उदयभाण आ पहुँचा। सब राठोड संवत् १७४२ की कार्तिक सुदि ६ को एकत्र हुए। इन्होंने उस समय अपने दो विभाग किये। एक में अग्रणी उदयसिंह, लीवकरण वो भाटी राज सिंह। ये बीकानेर की तर्फ़ गये। देश को लूटा और थाने भ्रष्ट किये दूसरे विभाग में संग्रामसिंह। यह जोधपुर की ओर आया। राठोड पहले बालोतरा और पचपदरा लूट कर जोधपुर पहुँचे। मुग़लो ने दरवाज़े बन्द कर लिये। मुक़ाबला में भी नही आया। इन्हों ने बहुत बिगाड किया। तुरकों से कुछ न बन पडा। सरदारों ने अपना जनाना मगरा में रखा और खुद लूट पाट कर सिवाणे के पहाड़ों में चले जाते।

जोधा उदयभाण मुकनदासोत भाद्राजण का ठाकुर पहले बादशाही मनसबदार था। वह इस समय तुरको से विरुद्ध हो गया। तब इनायतख़ां ने नूरमली को सेना दे कर भेजा। लड़ाई हुई जिस में नूरमली परास्त हुआ। यह युद्ध माघ सुदि ७ शनिवार को हुआ था। इस में ५०० यवन मरे और १००० घायल हुए। इस मुहिम में कुछ घरावे, एक तोप पचीस हज़ार की और १०० ऊँट राठोड़ो के हाथ लगे।

मिरजा नूरमली ने इस घटना के समाचार इनायतख़ां के पास भेजे तब उस ने इस की मदद में महमदअली को भेजा। इस समय उदयभाण मुसलमानो का प्रबल बल देख भाद्राजण छोड़ कर पहाड़ों में चला गया और लूट पाट करते रहा।

राठोड सिवाणा पर गये जहां बादशाही मनसबदार पुड़दलख़ां फ़ौजदार था। मेवाती नाहरख़ां उस के शामिल था। उस समय पुडदलख़ां काणाणा के थाने पर गया हुआ था। राठोड़ उस के पीछे काणाणा पहुँचे। इन में अग्रणी राठोड़ वाला अखैसिंह था। दोनों के मुठभेड हुई जिस में पहले अखैसिंह ने शत्रु पर आक्रमण किया। फिर रतनसिंह सुन्दरदासोत आगे बढ़ा और तुरक को ललकारा और उसे मार लिया। परन्तु वह भी वहीं मारा गया। यह लड़ाई संवत् १७४२ की चैत्र सुदि २ को हुई जिस में राठोड़ों के १०० और तुरकों के ६०० सुभट मारे गये। वाला अखैसिंह विजयी हुआ।

चांपावत राठोड़ अजमेर की तर्फ़ गये थे। नूरमली मिरजा उन के पीछे जाता हुआ सोजत के गांव महेव में आया। वहां भाटी सबलसिंह आसावत था। उस ने अपना मोरचा संभाला। महा तुमुल युद्ध हुआ जिस में राठोडों के ६ सरदार मारे गये। सबलसिंह तुरकों से लड़ रहा था इतने में खबर आई कि उस को दो बेटियां पकड़ी गईं। सबलसिंह बेटियों के शामिल हो गया। और उन के वास्ते वह क़ैद भी हो गया। उस ने यह मन में इरादा किया कि पहले बेटियों को मार कर फिर मिरजा को मारूंगा। मिरजा महेव गांव लूट कर मेड़ते गया। मेड़ते में मिरजा और उस का भाई दोनों शामिल हो गये। मिरजा मेडते से तोड़े की तर्फ़ गया। सबलसिंह उस के साथ क़ैद में था। बेटियां भी उस के साथ थीं। मिरजा ने चलते हुये कुचील गांव मे डेरा किया। उस ने भाटी कन्याओं के साथ विवाह करने का विचार किया कि सबलसिंह श्वसुर बनाया जाय। सबलसिंह के मन मे यह था कि इसे मार डालूं। विवाह के रीति के अनुसार अफीम मंगाया गया। और तलवार भी मांग कर ले ली। मिरजा उत्साह के साथ मनुहार करता था। मरना विचार कर सबलसिंह उठा और मिरजा नूरमली को मार लिया, परन्तु खुद भी मारा गया।

उन दिनों में जोधपुर के आस पास उपद्रव बना ही रहता था। भाटी दुर्जनसाल ने ईदगाह वाली मस्जिद को सुअरों के रक्त से लाल कर दिया। उरजनोत भाटी इस के शामिल हुआ। सूरसिंह भाटियो को ले के आया। लड़ाई हुई। इस में ५ तुरक मारे गये। वहां से भाटी ऊँटों को ले कर बीसलपुर गये। मीरफतू ने इन का पीछा किया। भाटी मुक़ाबला में खड़े हो गये और युद्ध हुआ जिस में मीर का मामा अबदुल्ला ८ मनुष्यों से मारा गया। यह युद्ध संवत् १७४२ की ज्येष्ठ सुदि ३ को हुआ।

राठोड़ों ने राड़धड़ा लूट कर मार्गशीर्ष वदि १० को साचोर लूटा। यहां युद्ध हुआ जिस में ५० मुसलमान मारे गये। यहां घोड़े

ऊँट बहुत हाथ लगे। इस युद्ध में अग्रणी अखैसिंह लखावत और खींवकरण आसकरणोत थे।

फिर राठोड़ जोधपुर की तर्फ़ आये और महान् उपद्रव किया। गावों को लूटा और थानों को विध्वस्त किया। और गांव गठिया मगराणा के समीप तुरकों का बहुत सा माल लूटा।

कुचेरा के ठाकुर जैतावत उरजा प्रतापसिंहोत ने दलथंभन के नाम से एक नया फ़ितूर उठाया। और तुरकों से मिल गया। उस ने भी मगरा में आ कर बहुत बिगाड़ किया।

पठान कुशालखां जोधपुर से मेड़ता जाता था उस को देघाण के ठाकुर जोधा हरनाथ चन्द्रभाणोत ने एक तर्फ़ से आ कर मार डाला।

ऊदावत जगराम धीरोत गोडवाड़ की तर्फ़ गया। प्रथम उस ने पाली में लूट की फिर आगे अजमेर तक गया। थांवला का थाना लूटा। इस के ऊपर रावण खडा[1] मिरजा जोधपुर से चढ कर आया। उसे राठोड़ों ने मेड़ते में आते घेर लिया। लड़ाई हुई जिस में मिरजा पराजित हुआ। मिरजे का नाम महमदअली था।

संवत् १७४२ के माघ मास के पश्चात् राठोड़ों ने फिर गिरोह बांध कर जोधपुर की तर्फ़ प्रयाण किया। इस में अग्रणी चांपावत संग्रामसिंह जूंझारसिंहोत, उस का भाई भोपत व चांपावत भगवान-दास जोगीदासोत थे। अरदलखां सेना ले कर जोधपुर से आया। गांव पाल्हासणी में आ कर मुकाम किया। राठोड इस पर चढ़ आये। यहां घोर संग्राम हुआ जिस में अरदलखां मारा गया। राठोड़ों ने थाना लूटा जिस में बहुत द्रव्य हाथ आया। यहां से यह थलो की तर्फ़ गये, फलोधी को लूटा और पेशकसी ली। फिर वापिस जोधपुर की तर्फ़ आये। इस समय इन के वेग को देख कर इनायतखां घबराया। राठोड़ लूट-पाट कर चल दिये।

उधर रावणखड ने बूसी को लूटा। वहां से भाद्राजण गया, लडाई हुई जिस में २० तुरक मारे गये। वहां से दूनाडे गांव को जा कर लूटा। वहां से जोधपुर आया। खुसालबेग इक्का इस के साथ था। जो फ़ौज ले अलग ही चलता था। हरनाथ चन्द्रभाणोत से उस के मुठभेड़ हो गई। हरनाथ ने उस इक्के को मार लिया।

संवत् १७४३ का चैत्र मास व्यतीत हुआ। ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ हुआ। जालोरगढ़ में विहारी पठान फ़तहखान था। उस पर महाराज की सेना ने चढ़ाई की। फ़तहखान इन के प्रवल बल को

---

[1] ...स का ऊपर का होठ कटा हुआ होता है उसे रावणखंड कहते हैं।

देख कर भाग गया और शरण प्रार्थी हुआ। सेना ने नगर को लूटा। यह आक्रमण वैशाख वदि १४ को हुआ।

भाटियों ने दईकूर गांव को लूटा, फिर जोधपुर को घेरा। लड़ाई हुई। दुतर्फ़ा मनुष्य मारे गये। इधर तो इस प्रकार का बखेडा ठौर-ठौर हो रहा है। गांव लूटे जाते है, थाने विध्वस्त किये जाते है। बादशाही सेना राठोडो के पीछे मारी मारी फिरती है। सब के मन पर शका बनी रहती है। किसी का चित्त स्थिर नही है।

उधर दक्षिण की तर्फ़ शाहजादा अकबर और दुर्गदास के पीछे औरगज़ेब ने मुरतवख़ां, राव इन्द्रसिह, आदि को भेजा जिन के साथ ५००० सवार थे। शाहजादा के साथ युद्ध हुआ जिस मे ४०० मुसलमान मारे गये। और शंभा की तर्फ़ से धना था उस के ६ मनुष्य मारे गये। शंकरराय ने बादशाही सेना का बाजार लूटा। गांव आसटा में राठोड़ विजयसिह कचरावत आदि थे। बादशाही सेना के साथ ज्येष्ठ सुदि ३ को लडाई हुई उस में ८ सुभट काम आये।

संवत् १७४३ की पौष सुदि ५ को भींवड़ा नदी के तट पर गांव नीव पर शाहजादा अकबर का डेरा था। बादशाह ने उस पर मुकरवख़ां को भेजा, लडाई हुई बहुत से सुभट काम आये।

संवत् १७४३ को श्रावण में राठोड़ों ने महाराजा को देखना चाहा। जिन में अग्रणी चांपावत उदयसिह लखधीरोत, जोधा केसरीसिंह मानसिहोत, उस का छोटा भाई हरिराम व किसनसिंह जगन्नाथोत थे। इसी अवसर पर दुर्जनसाल हाडा १००० सवार ले कर आया और राठोड़ों के शामिल हुआ। चांपावतों ने इस को अपनी कन्या व्याही। तेजसी और मुकनसिह ने दुर्जनसाल से कहा कि हम महाराजा अजीतसिहजी को देखना चाहते है, आप भी इस का उद्योग करें। दुर्जनसाल सब के सहमत हो गया। खीची मुकनदास को बुला कर कहा तो उस ने कहा कि दुर्गदास दक्षिण मे है। मुझे महाराजा को उस ने सौंपा है। मैं उस के बिना कहे महाराजा को प्रकट नहीं कर सकता। उसने दुर्गदास के पास पत्र भेज पूछा कि समस्त सरदार अजीतसिंहजी को देखना चाहते है, बिना स्वामी के अब सब का धैर्य भग होता है। मालिक को देख लें तो सब का मन स्थिर हो जाय। महाराजा बड़े हो गये है, सवारी कर सकते है, अब गुप्त रखने से क्या प्रयोजन है? मेरी समझ में यदि प्रकट कर दिये जायं तो सब को संतोष हो जाय। दुर्गदास ने यह पत्र देख कर शाहजादा अकबर से रुखसत ली और मारवाड़ की तर्फ़ रवाना हुआ। शाहजादा ने उसे भोलामन दी कि मेरे कुटुम्ब को बादशाह को मत सौंपना और आप विलायत जाने के लिये जहाज़ में बैठ गया।

इधर राठोड मालपुरा की ओर गये। मुल्क को लूट कर पेशकसी ली। तत्पश्चात् सिवाना प्रान्त के गांव मोकलसर मे डेरा किया। यहां सब ने विचार किया कि महाराज आठ वर्ष के हो गये हैं, दुर्गदास कब आवे? महाराज को प्रकट करना चाहिये। यह सलाह कर चांपावत उदयसिह मुकनदास खीची के पास सीरोही गया और कहा कि सब राठोड महाराज का दर्शन करना चाहते हैं। हमें दर्शन करा दो। उदयसिंह के अत्यन्त हठ करने पर महाराजा से अर्ज किया कि समस्त राठोड आप का दर्शन करना चाहते हैं। तब महाराजा ने फ़रमाया कि वहुत अच्छा।

सवत् १७४४ की चैत्र सुदि १५ को गांव पालडी में महाराजा बाहिर आये। कुलदेवी नागणेचियां की पूजा की। उदयसिह ने मुजरा किया। और सरदारों को, जो मोकलसर में डेरे किये हुए थे, कहलाया कि महाराजा बाहिर आ गये है, दर्शनार्थ सब यहां आ जावे और हाडा दुर्जनसाल को भी लेते आवे। तदनुसार समस्त सरदार महाराज के पास हाज़िर हुए और नज़र न्यौछावर की। हाडा दुर्जनसाल को महाराजा ने उचित कुरब देकर सत्कृत किया और उस ने मोतियों की माला नज़र की।

तब बारहठ केसरीसिंह रूपावस वाले ने महाराजा की चेष्टा देख यह गीत कहा—

असपतरो साल दिली रो ओठम, पूरा वे हूँ पखां सुप्रीत।
गिणियां दिनां मांय खात्रियां गुर, जोधाणै आसो अगजीत ॥ १ ॥
हाथी घणां घरां हीडलसी, सूरहरां रा इसा सभाव।
दूणा पटा वधारा देसी, आप जिसा करसी अमराव ॥ २ ॥
प्रजा नचीत रहो सुख पावो, सुख पावो सोह कवेसर।
पाणेची धर किसू पूछणो, नवी खाट सी जिसो नर ॥ ३ ॥
चक्रवत हुसी अभनिमो चूंडो, घणूं दाखवूं किसूं घणो।
मे दीठो इसड़ो महाराजा तेज पुज जसराज तणो ॥ ४ ॥

सब ने दर्शन कर के कहा कि आज का दिवस धन्य है, शुभ घडी है जो स्वामी का दर्शन हुआ। तदनन्तर सांगा ने मिहमानो दी। महाराजा की सेवा में अपने पुत्र उदयभाण को रख कर महाराजा से आज्ञा ले सांगा अपने वतन को गया।

इनायतख़ां यह सब वृत्तान्त सुन कर घबराया और बादशाह को लिखा कि राठाडो ने अजीतसिह को प्रकट कर दिया है। अब पूरी मदद मिले तो इच्छानुसार कर सकता हूं। शुजाअतख़ां गुजराती

नोट—एक ख्याति में वैशाख वदि ५ और एक में चैत्र सुदि १० लिखा है।

को मेरी सहायतार्थ आज्ञा होनी चाहिये। औरंगजेब मन में चिन्तित हुआ और उस ने महाराणा को देखने के लिये अपना दूत भेजा।

राठौड़ महाराजा अजीतसिंह को ले कर आउवा आये। ठाकुर ने महाराजा को मोतियों से वधा कर स्वागत किया और घोड़े नजर किये। तदनन्तर बगड़ी, रायपुर, बीलाडा, बलूंदा, रीयां, आसोप, लवेरा, खेड़ और खीवसर हो कर कोलू गये। यहां संवत् १७४४ की भादों सुदि १० को पाबूजी के दर्शन किये। वहां से पोकरण गये।

उधर दक्षिण से रवाना हो कर दुर्गदास ने मारवाड़ आते मार्ग में रतलाम से जोधा अखैसिंह रत्नसिंह को अपने साथ लिया। बादशाही मुल्क लूटता हुआ आगरा से २० कोस पर हंसार का प्रान्त लूट कर ज्येष्ठ वदि ५ को मालपुरे पहुंचा। वहां लूट पाट कर के आगे बढ़ा। सैयद कुतुबुद्दीन से लडाई हुई वहां राव अनोपसिंह तीर लगने से काल का कवल हुआ। तालाव पर दाह क्रिया की गई। इस लड़ाई में राठोड़ों के ३ सरदार घायल हुये और सैयद के ६० मनुष्य मारे गये। दुर्गदास ने आगे चल कर गांव रतनथल लूटा। लडाई हुई जिस में ४ सरदार घायल हुए और सैयदों के १०० मनुष्य मारे गये। तत्पश्चात् केकड़ी आदि गांव लूटे गये। संवत् १७४४ की श्रावण सुदि १० को दुर्गदास प्रथम नागाणा गांव गया, वहां कुलदेवी नागणेच्चियां के दर्शन कर महेवे के गांव भीवरलाई में, जहां उस का परिजन था, आया। भाई खीवकरण से मिला, उस ने समस्त वृत्तान्त कहा, और शाहजादा सुरताण से मिला।

महाराजा दुर्गदास की सम्मति विना प्रकट हो गये जिस से नाराज़ हो कर वह घर में बैठ रहा। और उस ने महाराजा की सेवा में अर्जी लिखी कि मैने दक्षिण से आते रतलाम से जोधा अखैसिंह को अपने साथ लिया। मार्ग में पेशकसी ली। सैयद कुतुबुद्दीन से लडाई हुई जिस में अनोपसिंह काम आया। मुझ से बन पड़ा जहां तक मैंने महाराजा की सेवा की। अब वह दिन होवे, मै श्री हजूर में आऊँ और महाराजा के दर्शन करूँ। और भी समाचार अर्ज़ करने हैं वहां आने पर अर्ज़ करूँगा। इस अर्जी को पढ़ कर महाराजा अत्यन्त प्रसन्न हुए। दुर्गदास की प्रशंसा की जिस से अन्य सरदार अप्रसन्न हुए।

महाराजा पौढ़ी गांव से रवाना हो रामसापीर के दर्शनार्थ राम देहरे गये। वहां से कार्तिक वदि १४ को भीमरलाई गये। दुर्गदास समस्त राजपूतो के साथ अगौनी में आया। नज़र न्यौछावर कर चरण स्पर्श किया। महाराजा ने सिरोपाव दिया। उस समय दुर्गदास ने

अर्ज़ किया कि आप पीपलोद के पहाड़ों में कुछ दिन निवास करें। हम लूट खसोट करते हैं।

इनायतखां ने महाराजा का प्रबल प्रताप देख कर सोजत में आ कर शान्ति के लिये यह उपाय किया कि सिवाणा तो महाराजा के निवास के लिये दिया और प्रान्त में चतुर्थांश देना नियत किया। इस से कुछ शान्ति हुई। बादशाह ने यह वार्ता सुनी तो उसे चिन्ता हुई और इनायतखां को उपालम्भ के साथ लिखा कि यह तुम ने बुरा किया, अब भी अजीतसिंह को पकड़ने का प्रबन्ध करो। तदनुसार वह उसी विचार में था, परन्तु वह उसी अर्से में काल का कवल हो गया।

इसी अर्से में कृत्रिम महमदीराव, जिसे बादशाह ने अपने पास रख छोड़ा था, मर गया। इस के मरने से राठोड़ों को बड़ी खुशी हुई। इनायतखां के मरने पर बादशाह ने जोधपुर शुजाअतखां के अधीन किया। उसने जोधपुर कारतलबखां को भेजा। समस्त राठोड़ जोधपुर की तर्फ चले, तुरकों ने सामना किया। लड़ाई हुई जिस में भंडारी मयाचंद काम आया। तुरकों ने सिवाना छुड़ा लिया। महाराजा छप्पन के पहाड़ों में चले गये।

संवत् १७४४ की कार्तिक वदि १३ को राठोड़ सोजत पर गये। राठोड सुजाणसिंह[१] केसरीसिंहोत जोधा सामने आया। संग्राम हुआ ४ सामन्त काम आये। तत्पश्चात् दुर्गदास और संग्रामसिंह। सिंध की तर्फ गये। जगराम आदि सरदार जेतारण की तर्फ गये। वहां से चल कर उन्होंने फिर सोजत पर आक्रमण किया, परन्तु सोजत हाथ न आया। तदनन्तर सेना संग्रह कर सुजाणसिंह जगराम की जागीर गांव वर पर चढ़ कर गया। लड़ाई हुई। सुजाणसिंह विजयी हुआ। वह जगराम का गढ़ गिरा कर सोजत गया।

दुर्गदास सिंध में से पेशकसी ले पुर-माण्डल आया और वहां पेशकसी ली। संवत् १७४५ की चैत्र सुदि १४ को राठोड अखैराज प्रभृति आगे बढे। इन का डेरा गॉव मांगलोद जारोड़ा में था। वहां पर मन्सौर उज्जैन का फ़ौजदार चढ़ आया। युद्ध हुआ जिस में ५ सामन्त घायल हुये।

तदनन्तर राठोड़ों ने राठोड़ मदनसिंह मनुरूपोत को सेना देकर राठौड अखैराज के पास भेजा। इनके रामसर के डेरों पर तुरकों से वैशाख वदि ६ को युद्ध हुआ जिस में १८ मरे और ४ सामत घायल हुए।

---

१ विसांगण का स्वामी।

औरंगज़ेब वहां से सीधा आगरे गया और अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद को भेज वहां के किले पर अपना अधिकार कर बादशाह शाहजहां को क़ैद कर दिया। औरंगज़ेब ने विचार किया मैंने मुराद-बख़्श को बादशाहत का लोभ दे कर अपने शामिल किया था। बादशाह को तो क़ैद कर लिया है परन्तु यह एक कण्टक बाक़ी है इस की भी सफ़ाई होनी चाहिये। इस बात को मन में रखा। और दारा के पीछे चला, मार्ग मे जाते मथुरा पहुंच वहां मुराद को खूब शराब पिला कर ग़ाफ़िल कर दिया और उस दशा में उस को भी क़ैद कर लिया। अब इधर तो एक दारा ही कण्टकी था उसे उखेड़ने के लिये वह दिल्ली आया इतने में दारा दिल्ली छोड़ कर लाहोर की तर्फ़ चल पड़ा। औरंग उस के पीछे गया। मार्ग में जाते सं० १७१५ की श्रावण सुदि १ (ई० सन् १६५८ ता० २१ जुलाई) को अज्ञाबाद मे तख़्त पर बैठा। और बादशाह संवत् १७१५ के भाद्रपद वदि ११ (ई० सन् १६५८ ता० १४ अगस्त) को औरंगज़ेब ने आम्बेर के राजा जयसिंहजी की मारफ़त महाराजा जसवन्तसिंहजी को अपने पास बुलाया। लिख आये है कि इस समझोता में राव अमरसिंहजी के पुत्र रायसिंहजी भी शामिल थे। महाराजा के पास बादशाह ने पत्र भेजा उस मे लिखा कि तुम स्वामिभक्त हो, मैं भी ऐसे स्वामिभक्तो को चाहता हूं। हमारे हजूर मे हाज़िर होवो। और खर्च के लिये सांभर के खज़ाने से पांच लाख रुपये और पचास हज़ार की हुंडियां भेजी गई। महाराजा ने भी समय की गति देख कर तदनुसार व्यवहार किया। जोधपुर से चल कर पञ्जाब में जहां बादशाह का मुक़ाम था, वहां पहुँचे। बादशाह ने उस समय इन का भली भांति सत्कार किया। ख़ासा खिलअत, जरदोजी भूल और चांदी के साजवाला एक हाथी और हथनी व एक क़ीमती जडाऊ तलवार दी। तत्पश्चात् सतलज नदी पर पहुंचा तब उस ने महाराजा को फिर खासा खिलअत, जडाऊ जमधर, मोतियों का एक गुच्छा, और एक परगना, जिस की आमदनी ढाई लाख सालियाना थी, दिया। और महाराजा से कहा कि अब तुम दिल्ली जावो और वहां की निगरानी करते रहो। महा-राजा बादशाह की आज्ञा पाकर वहां से पीछे लौटे और सं० १७१५ की आश्विन सुदि १ को दिल्ली पहुँचे।

औरंगज़ेब दारा के पीछे चला। दारा ने लाहोर में किलेबन्दी करने की चेष्टा की थी परन्तु वह निष्फल हुई। अब वह पञ्जाब से मुलतान की तर्फ़ गया। उस समय उस के हितैषियों ने उस को काबुल जाने की सलाह दी थी। क्योंकि काबुल का अमीर महाबतख़ां, जिस के पास दस हज़ार से अधिक फ़ौज थी, दारा की सहायता करने को तैयार था। क्योकि औरंगज़ेब के साथ उस के बनती नही